।। ॐ तत्सत ।।

शुक्लयजुर्वेदीया-

बृहदारण्यकोपनिषत्

जिसको-

मुरादाबादनिवासी

सनातनधर्मपताका-सम्पादक ऋषिकुमार

पण्डित रामस्वरूप शर्माने

मुमुक्षु पुरुषोंके हितार्थ

अन्वय पदार्थ और भावार्थ सहित

सम्पादन कर
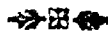
सनातनधर्म-यन्त्रालय

मुरादाबादमें छापकर प्रकाशित किया

सम्वत् १९७७

भूमिका ।

शास्त्र दो प्रकारका है-एक पौरुषेय और दूसरा अपौरुषेय पुरुष का रचा शास्त्र पौरुषेय कहलाता है और परमेश्वरका कहा हुआ शास्त्र अपौरुषेय कहलाता है । वेद परमेश्वरका कहा हुआ है, इस लिये अपौरुषेय है । यह वेद एकमात्र और सकल लौकिक अलौकिक ज्ञानका आदिभण्डार है । जिसको चार ऋत्विज् किया करते हैं और जिसका फल स्वर्ग है, उस यज्ञकर्मका सब विधान पहले इस एकमात्र वेदसे निकाला गया है । यज्ञकर्ममें अध्वर्यु, होता, उद्गाता और ब्रह्मा इन चार ऋत्विजों (होम करनेवालों) की आवश्यकता होती है । इनमें वेदीकी रचना आदि यज्ञशरीरका सम्पादन यजुर्वेदवेत्ता अध्वर्युका काम है । अध्वर्युके कामको अध्वरक्रिया कहते हैं । बनी हुई वेदी पर होम आदि यज्ञालङ्कारका ठीक करना ऋग्वेदज्ञ होताका काम है । होताके कर्मको होतृक्रिया कहते हैं । होम होनेके साथ २ श्रीविष्णुस्मरण आदि सामवेदज्ञ उद्गाताका काम है, उद्गाताके कर्मको उद्गातृक्रिया कहते हैं । इन सबके कामोंमें त्रुटि हो उसको सम्हालना और देखभाल रखना सकल वेदोंके पारदर्शी ब्रह्माका काम है । ब्रह्माके कामको ब्रह्मकर्म कहते हैं । इन सब कामोंको करनेके लिये अध्वर्यु आदि हरएकके तीन २ सहायक नियत होकर बारह सहायक होते हैं । अध्वर्युके सहायक प्रतिप्रस्थाता, नेता और उन्नेता कहलाते हैं । होताके सहायक मैत्रावरुण, अच्छावाक् और ग्रावस्तोता कहलाते हैं । उद्गाताके सहायक प्रस्तोता, प्रतिहर्त्ता और सुब्रह्मण्य कहलाते हैं तथा ब्रह्माके सहायक ब्राह्मणाच्छंसि, आग्नीध्र और पोता कहलाते हैं । इनमेंसे हरएकका अलग २ काम होता है । इन सबके नियत कर्मके सुगमतासे जाननेके लिये एकमात्र वेदके ऋक्, यजु, साम और अथर्व ये चार विभाग किये गये हैं । इसप्रकार विभाग किये हुए चारों वेदोंमेंसे हरएकके फिर दो २ भाग हैं और उन दोनों भागोंका नाम है—मन्त्र और ब्राह्मण । ऋग्वेदका एक ऐतरेयनामक ब्राह्मण है, यजुर्वेदके तैत्तिरीय और शतपथ नामके दो ब्राह्मण हैं, सामवेदका ताण्ड्य नामक एक ब्राह्मण है और अथर्ववेदका गोपथ नामका एक ब्राह्मण है । सब मन्त्रोंका

याग आदि क्रियामें प्रयोग होता है और यागादिकी विधि तथा मंत्रों का मर्म ब्राह्मण भागमें मिलता है। इन मंत्र और ब्राह्मणोंके जिस २ अंशमें ब्रह्मविद्याका वर्णन है, उस २ अंशका नाम उपनिषद् है। कुछ उपनिषद् स्वतंत्र भी हैं। उप-नि-पूर्वक-सद् धातुसे उपनिषद् शब्द बना है। सद् धातुका अर्थ है अवसादन, विशरण और गति। इसलिये जो संसारको सार माननेवाली बुद्धिको अवसन्न (शिथिल) करे, जो संसारकी बीजभूत अविद्याका विशरण (विनाश) करे और जो सर्वशक्तिमान् परब्रह्म परमात्माके पास पहुँचादेय उसका नाम उपनिषद् है। ब्रह्मविद्या ही अधिकारीकी चित्तवृत्तिको परमतत्त्वके समीप लेजाकर-परम तत्त्वके साथ अभेदभावसे स्थापन करके अविद्या और उसके कार्य शोक मोह आदि सर्वथा और सदाके लिये निवृत्त करनेवाली है, इसलिये ब्रह्मविद्या ही उपनिषद् शब्दका अर्थ है और इस ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति करानेवाले—ज्ञानोपदेश करनेवाले वेद के भाग ब्रह्मविद्यामें हेतु होनेके कारण उपनिषद् कहलाते हैं। आज काल जितने उपनिषद् प्रचलित हैं, उनमें ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्ड, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषद् विशेष प्रामाणिक माने जाते हैं। श्वेताश्वतर, कौषीतकि, जाबाल, मैत्रायणी, नृसिंहतापनीय, कैवल्य, और परमहंस आदि दूसरे कितने ही उपनिषद् भी प्राचीन माने जाते हैं, अल्लोपनिषद् आदि कितने ही उपनिषदोंके विषय और भाषासे प्रतीत होता है, कदाचित् ये आधुनिक हों। सब उपनिषदोंका मुख्य तात्पर्य जीव ब्रह्मका अभेद बताने में है। उपनिषदोंमें जो कर्म और उपासनाओंका वर्णन है वह चित्त की शुद्धि और स्थिरताको उत्पन्न करके ज्ञानमें सहायक होता है।

जीवके चित्तमें मल, विक्षेप और आवरण ये तीन दोष रहते हैं। कुकर्म और कुविचारसे पड़े हुए संस्कार मल कहलाते हैं। इन्द्रियोंसे या विषयोंके स्मरणसे जो अन्तःकरण बार २ प्रबल वेगके साथ विषयोंकी ओरको खिचता है वह विक्षेप कहलाता है, और अपने कूटस्थ स्वरूपको न जानना आवरण कहलाता है। आत्मस्वरूपके आवरणसे जीवको शरीर आदिमें अहन्ताकी और जगत्में सत्यताकी भ्रान्ति होकर राग द्वेषरूप विक्षेप उत्पन्न होता है। और रागद्वेषसे धर्म अधर्मरूप प्रवृत्तिके द्वारा जीव धर्म अधर्मके संस्काररूप मलदोषको ग्रहण करता है। सकाम पुण्यकर्म भी संसारभ्रमणको का ही हेतु है, इस कारण विद्वानोंकी दृष्टिमें वह भी पापरूप ही है। इस धर्माधर्मसे

जीव घटीयन्त्रकी सुईकी समान नीचे ऊपरको घूमा करता है, विश्राम नहीं पाता। कामनाको त्याग कर लौकिक वैदिक शुभ कर्म करनेसे धीरे २ चित्तका मलदोष दूर होजाता है। चित्तको किसी योग्य ध्येय (ध्यान करने योग्य) में चिरकालतक निरन्तर आदरके साथ स्थापन करनेसे धीरे २ चित्तका विक्षेप दोष दूर होजाता है सत्शास्त्र तथा सत्युक्तियोंको जाननेवाले एवं परमतत्त्वमें श्रद्धा रखनेवाले परम दयालु गुरुके मुखसे वेदान्तशास्त्रको सुनने पर अपने स्वरूपका अपरोक्षज्ञान होकर चित्तका आवरणदोष अत्यन्त निवृत्त होजाता है। आवरणोंके निःशेष रूपसे दूर होजाने पर जीवका, भयदायक भवाटवीका दुःखदायक भ्रमण दूर होजाता है और वह सदा अखण्ड आनन्द रूपसे विराजमान रहता है।

विवेकी पुरुषको मुख्य रूपसे दो बातें प्राप्त करनी चाहियें, एक तो तीन प्रकारके दुःखका अज्ञानरूप मूलसहित उच्छेद और दूसरे— स्वाभाविक परमानन्दका नित्य आविर्भाव। इस प्राप्त करने योग्य वस्तुकी प्राप्ति आत्मस्वरूपके ज्ञानसे होती है और आत्मस्वरूपका ज्ञान उपनिषदोंके श्रवण पठन आदिसे होता है। इसलिये मुमुक्षुको उपनिषदोंको सुनना या पढ़ना आवश्यक है। उपनिषदोंमें वर्णन किया हुआ सिद्धान्त जीवको परम शान्ति देकर कृतार्थ करनेवाला, कर्त्तव्यपरायण होनेका उत्तम मनोबल देनेवाला, नीतिबलको सुदृढ़ करनेवाला और सब प्रकारके दुःखमें उत्तम रीतिसे आश्वासन देनेवाला है। इन उपनिषदोंका स्वस्थ चित्तसे विचार करनेवालेको यह बातें स्पष्ट प्रतीत होजायगी।

पश्चिम (यूरुप) के कितने ही प्रसिद्ध विद्वानोंने भी उपनिषदों पर अपनी बड़ी संमति दी है। शोपेंहार कहता है, कि-"संसारमें उपनिषदोंके अभ्यासकी समान कल्याण करनेवाला और कोई अभ्यास नहीं है, मेरे जीवनका यह आश्वासन है और मेरे मरणकालमें भी मुझे यही आश्वासन देगा।" फ्रेडरिक श्लेगल कहता है, कि-"यूरुपका उत्तमसे उत्तम तत्त्वज्ञान और ग्रीक तत्त्वज्ञोंका चैतन्य वाद आर्यावर्त्तके ब्रह्मवादके साथ तुलना करने पर मध्याह्नकालके पूर्ण प्रकाशमय सूर्यके सामने एक चिनगारीकी समान है।" प्रोफेसर मैक्समूलर कहता है-"यदि सुखकी मृत्यु पानेकी योग्यता प्राप्त करना ही तत्त्वविचारका फल हो तो उसके लिए भारतके वेदान्तकी,

समान दूसरा कोई साधन नहीं है, प्रोफेसर ड्यूसेनने कहा है, कि-
"अपने सत्यस्वरूपमें वेदान्त नीतिका सबसे सुदृढ़ आधार है और
व्यावहारिक दुःखमें परम मूल्यवान् आश्वासन है।"

शुद्ध और स्थिरचित्तवाले साधनसम्पन्न पुरुषको अद्वितीय पर-
मात्मतत्त्वका ज्ञान वेदवेत्ता ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी विधि पूर्वक अनन्य
शरण लेकर उनके मुखसे महावाक्यका उपदेश सुननेसे होता है।
परन्तु जिसके चित्तमें संशय विपर्यय हो उसको महावाक्य
का उपदेश सुनने पर भी दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान नहीं होगा॥ ऐसे
अधिकारियों को श्रेष्ठ गुरुसे तात्पर्यका निर्णय करानेवाले छः
लिङ्गोंके साथ वेदान्त शास्त्रको सुनना चाहिये। वेदान्तशास्त्रको
सुननेसे वह शास्त्र द्वैतका वर्णन या अद्वैतका उपदेश देता
है, यह वेदान्तरूप प्रमाणमेंका संशय दूर होजाता है। मोक्ष और
ज्ञानादिरूप प्रमेयके स्वरूपमेंका संशय दूर करनेके लिये श्रवण
किये हुए उपदेशका एकान्तमें भेदकी बाधक और अभेदकी साधक
युक्तियोंसे वारंवार विचार करना चाहिये। ऐसा विचार करना मनन
कहलाता है। श्रवण और मनन करलेने पर भी यदि चिरकालके
अज्ञानसे पली हुई देहमें अहन्ताकी और जगत्‌की सत्यताकी भ्रान्ति
रूप विपरीतभावना अत्यन्त निवृत्त न होय तो उसको दूर करनेके
लिये अनात्माकार वृत्तियोंको रोककर श्रद्धा और सावधानताके साथ
ब्रह्माकार वृत्तियोंको निरन्तर चलाता रहे, इसको ही निदिध्यासन
कहते हैं। ऐसा करनेसे परमतत्त्वका सुदृढ़ अपरोक्षज्ञान होकर पुरुष
कृतार्थ होजाता है।

विवेक, वैराग्य, शम आदि छः सम्पत्ति और मुमुक्षुता इन चार
साधनोंसे रहित बहिर्मुख पुरुष श्रवण आदि साधनोंका सम्पादन
नहीं करसकता, इसलिये पहले विवेक वैराग्य आदि साधनोंका
अभ्यास करनेकी बड़ी आवश्यकता है। क्षण २ में रूप बदल कर
नष्ट होजानेके स्वभाववाली अनित्य जड़ वस्तुएं और जिसमें इनमें
वस्तुओंकी उत्पत्ति, स्थिति और विनाश होते हैं ऐसी चेतनरूप नित्य
वस्तु ये दोनों भिन्न२ हैं, ऐसा जानना विवेक कहलाता है। यह
विवेक ज्यों२ दृढ़ होता जाता है त्यों२ अनेकों दोषोंसे भरी क्षणभंगुर
जड़ वस्तुओंमेंकी आसक्ति क्षीण होती चलीजाती है और अन्तको
हिरण्यगर्भके पदमें भी दोष दीखकर उसमें भी लालसा नहीं रहती

है। इसप्रकार इस लोकके विषयोंसे लेकर हिरण्यगर्भ पदके ऐश्वर्य पर्यन्तमें अभिलाषा होनी दूर होजाय तो यह वैराग्य कहलाता है। इस वैराग्यकी स्थिरता होजाने पर शम आदि छः सम्पदायें सहजमें सिद्ध होजाती हैं। शम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपरति और तितिक्षा ये छः सम्पत्तियोंके नाम है। जैसे धनरूप सम्पत्तियोंके बिना अन्न वस्त्रादि पदार्थ नहीं मिलसकते, ऐसे ही इन छः संपत्तियों बिना ब्रह्म का अनुभव नहीं होसकता। मनको निषिद्ध विषयोंके चिन्तवनसे रोकने के बलका नाम शम है। इन्द्रियोंके निषिद्ध विषयोंकी ओरके प्रबल वेगको रोकनेकी शक्ति दम कहलाती हैं। सत्गुरु और सत्शास्त्रके उपदेशमें दृढ़ विश्वास रखनेका नाम श्रद्धा है। सर्वोत्तम विषयोंके अधिष्ठानरूप ब्रह्ममें मनकी स्थिरता होजाने पर किसी भी निषिद्ध विषयके स्मरणसे या समीपमें होनेसे मनमें क्षोभ न होना समाधान कहलाता है। विषयी जीवोंको अतिप्रिय लगनेवाले विषय हलाहल विषकी समान प्रतीत होकर उनमें स्वाभाविक उपेक्षा होना और सकाम कर्ममें फलकी कामनासे प्रवृत्ति न होना उपरति कहलाता है और प्रारब्धसे प्राप्त होनेवाले मान अपमान, सुख दुःख भूख प्यास आदिको सहन करनेके बलका नाम तितिक्षा है। विवेक वैराग्य और शम आदि छः सम्पत्तियें, इन तीन साधनोंके परिपक्व होते ही मोक्ष पानेकी तीव्र इच्छा उत्पन्न होजाती है, इस मुमुक्षुताके होजाने पर श्रवण आदिमें शीघ्र ही प्रवृत्ति होती है।

जिनके संस्कार विवेक आदि साधनोंको पानेमें बाधा डालते हों और विवेक आदिमें रुचि न होने देते हों उनको इसलोक और परलोकके फलकी इच्छा त्यागकर केवल परमात्माकी प्रसन्नताके लिये अपनेको अच्छे लगनेवाले पदार्थोंके विहित त्यागरूप यज्ञको करना चाहिये, ऐसा करनेसे चित्तमें निर्मलता आती है और विवेक आदि साधनोंके सम्पादनमें रुचि उत्पन्न होजाती है।

इस जन्ममें परमतत्त्वका साक्षात्कार करके सद्योमोक्ष पानेकी शक्ति जिनकी बुद्धिमें नहीं है, उनको निर्गुण उपासना करनी चाहिये जो निर्गुण उपासनाके अधिकारी न हों उनको सगुण उपासना करनी चाहिये। ऐसे उपासक इस उपासनाका परिपाक होने पर यदि ज्ञानके द्वारा उनको तत्त्वसाक्षात्कार नहीं होसकता है तो इस उपासनाके बलसे शरीरपात होनेके अनन्तर अर्चिमार्गसे ब्रह्मलोकमें जाते हैं और तहां उत्तम भोग भोग कर महाकल्पके अन्तमें विदेह-

कैवल्य पाते हैं। इसका नाम क्रममोक्ष है। इनसे नीचेके अधिकारियोंको निष्काम शुभ कर्म और उनसे भी उतरते हुए अधिकारियोंको सकाम शुभकर्म करने चाहियें। इष्ट, पूर्त्त और दानादिरूप सकाम शुभकर्म करनेवाले दक्षिणायनमार्गसे स्वर्गलोकमें जाते हैं और स्वर्गका भोग देनेवाले पुण्यकर्मोंका क्षय होजाने पर वहांसे फिर मर्त्यलोकमेंको लौट आते हैं। जो सकाम शुभकर्म न करके स्वच्छन्दताका वर्त्ताव करते हैं वे मुख्यरूपसे दुःखका अनुभव करनेके लिये तीसरे स्थानमें अर्थात् मनुष्यसे नीचेकी योनियोंमें जाते हैं, इन तीनों मार्गोंका वर्णन इस बृहदारण्यक उपनिषद् तथा छान्दोग्य उपनिषद् में भी किया है।

इसलिये मैंने इस उपनिषद्को संसारी जीवोंका परम उपकारी समझ कर मूल, अन्वय पदार्थ और भाषानुवादके साथ छापकर प्रकाशित किया है। मूलके नीचे एक २ पदका अन्वयके साथ अर्थ लिखनेसे अधिकारियोंको बड़ा सुभीता कर दिया है, यह विधि गुरुमुखसे पढ़नेका काम देती है। मूलमेंका एक २ पद अन्वयके साथ ( ) ऐसे चिन्हके बीचमें लिखकर उसके आगे ही उसका अर्थ लिखदिया है। अर्थको स्पष्ट करनेके लिये प्राचीनभाष्यके आधार पर जो पद ऊपरसे लिये हैं उनको [ ] ऐसे चिन्हके भीतर लिखा है। तदनन्तर भगवान् शङ्कराचार्यके भाष्यके आधार पर सरल संक्षिप्त भावार्थ लिखदिया है। जिस समय इस ग्रन्थका छापना आरम्भ किया था, कागज और छपाईमें बहुत कम खरच पड़ता था, परन्तु तयार करके २ चौगुनी लागत पड़गयी, इसलिये अतिसुलभ मूल्यमें प्रचार करनेकी इच्छा दरिद्रके मनोरथकी समान होगयी, तथापि इसका मूल्य बहुत ही सुलभ नियत किया गया है, आशा है अधिकारी पुरुष इसका आदर कर मुझे अनुगृहीत करेंगे।

विनीत निवेदक—

विजयादशमी }
१९७७ विक्रमी }

ऋ० कु० रामस्वरूप शर्मा
मुरादाबाद

॥ ॐ तत्सत्-ब्रह्मणे नमः ॥

श्रीशुक्लयजुर्वेदीया-

बृहदारण्यकोपनिषत्

अन्वय पदार्थ और भाषाटीका सहित

शान्तिपाठ

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

अन्वय और पदार्थ—(अदः) वह (पूर्णम्) पूर्ण है (इदम्) यह (पूर्णम्) पूर्ण है (पूर्णात्) पूर्ण से (पूर्णम्) पूर्ण (उदच्यते) ऊपर जाता है (पूर्णस्य) पूर्ण के (पूर्णम्) पूर्णको (आदाय) लेकर (पूर्णम्, एव) पूर्ण ही (अवशिष्यते) शेष रहता है (शान्तिः) शान्ति हो (शान्तिः) शान्ति हो (शान्तिः) शान्ति हो ॥ १ ॥

(भावार्थ)-वह अर्थात् तत् पदका लक्ष्य अर्थ जो मायारूप उपाधिसे रहित चेतन है वह पूर्ण कहिये निरतिशय व्यापक है। यह अर्थात् त्वं पदका लक्ष्य अर्थ जो अविद्यारूप उपाधिसे रहित चेतन है यह भी ब्रह्मरूप होनेसे पूर्ण कहिये निरतिशय व्यापक है। पूर्ण कहिये कारण ब्रह्मसे पूर्ण कहिये नामरूप उपाधिवाला कार्य ब्रह्म ऊपर जाता है अर्थात् अलगसा प्रतीत होता है, परन्तु अपने ब्रह्मस्वरूपको नहीं त्यागता है, यह ज्ञानका फल है। ज्ञानी पूर्णके अर्थात् कार्य-ब्रह्मके अस्ति-भाति

प्रियरूप पूर्णभावको प्राप्त करके, ज्ञानसे अज्ञानजनित नामरूप आदि उपाधियोंके संसर्गका तिरस्कार करता हुआ उस ज्ञानकालमें पूर्ण नाम उस सच्चिदानन्दरूपमें ही अवशिष्ट रहता है। "ॐ" पद सगुणनिर्गुण ब्रह्मका वाचक है। 'शान्ति' पदको तीन बार कहनेका तात्पर्य यह है, कि-इस उपनिषद्का पठन पाठन करनेवालोंकी परमदयालु परमात्मासे प्रार्थना है, कि-वह हमारे स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरोंके ज्वरोंकी वा आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंकी शान्ति करें ॥ १ ॥

प्रथम अध्याय

यह उपनिषद् श्रीशुक्लयजुर्वेद वा वाजसनेयि संहिता के शतपथ नामक ब्राह्मणमें है। छः अध्यायोंवाला यह उपनिषद् "बृहदारण्यक उपनिषद्" वा "वाजसनेयिब्राह्मणोपनिषद्" कहलाता है। दूसरे उपनिषदोंसे परिमाण में बृहत् (बड़ा) होनेके कारण और अरण्य (वन) में इसके अध्ययनका शिष्टाचार होनेके कारण यह उपनिषद् "बृहदारण्यक" नामसे कहाजाता है। यहाँ इस उपनिषद्का पाठ काण्व शाखाके अनुसार है। उपनिषद् शब्द ब्रह्मविद्याका वाचक है। उपचारसे ब्रह्मविद्याके उत्पादक ग्रन्थको भी उपनिषद् नामसे कहाजाता है। सब वेदोंमें प्रत्यक्ष और अनुमान आदि प्रमाणोंसे जाननेमें न आनेवाले इष्ट पदार्थोंकी प्राप्ति और अनिष्ट पदार्थोंकी निवृत्तिके साधनोंका उपदेश है। सब मनुष्योंको स्वभाव से ही इष्ट (इच्छित) पदार्थोंकी प्राप्तिकी और अनिष्ट पदार्थोंकी निवृत्तिकी इच्छा रहती है। कर्मकाण्ड और ज्ञानकांडरूप वेद अज्ञातका ज्ञापक है इसकारण प्रमाणरूप

है। दृष्ट (देखेहुए) लौकिक विषयमें इष्टकी प्राप्ति और अनिष्टकी निवृत्तिका ज्ञान प्रत्यक्ष अनुमान आदि अन्य प्रमाणोंसे होजाता है, इसलिये लौकिक विषयमें वेदके प्रमाणको खोजनेकी आवश्यकता नहीं है। जबतक जन्म जन्मान्तरसे संबन्धवाले जीवात्माके सद्भावका ज्ञान नहीं होता है तबतक जन्मान्तरके इष्टकी प्राप्ति और अनिष्टकी निवृत्तिकी इच्छा नहीं होती है, इसलिये जन्म जन्मान्तरसे संबन्धवाले जीवात्माके सद्भावका और जन्मान्तरके इष्टकी प्राप्ति तथा अनिष्टकी निवृत्तिके उपायका शास्त्र वर्णन करता है। प्रत्यक्ष प्रमाणके विषय में वादियोंका विवाद नहीं होसकता और देहसे भिन्न आत्माके सद्भावमें अर्थात् देहसे भिन्न कोई आत्मा भी है इस विषयमें वादियोंमें परस्पर विवाद होता देखनेमें आता है, इससे सिद्ध होता है कि देहसे भिन्न आत्मा का सद्भाव प्रत्यक्ष प्रमाणका विषय नहीं है, किन्तु श्रुति प्रमाणका विषय है। जिसको श्रुतिके प्रमाणसे देहान्तर का संबन्धवाले जीवात्माके सद्भावका निश्चय होगया है तथा जो देहान्तरगत इष्टकी प्राप्ति और अनिष्टकी निवृत्तिके उपायको चाहता है उस पुरुषको वह उपाय बतानेके लिये कर्मकाण्डका आरम्भ होता है। जीवात्मा को जो इष्टकी प्राप्तिकी और अनिष्टकी निवृत्तिकी इच्छा होती है, इसका कारण आत्माको आच्छादन करनेवाला अज्ञान है। वही अज्ञान कार्यरूपमें कर्त्ता और भोक्ता का अभिमान बनजाता है। उस अज्ञानको 'मैं कर्त्ता भी नहीं हूं और भोक्ता भी नहीं हूं किन्तु ब्रह्मस्वरूप वा आत्मस्वरूप हूं' ऐसे ज्ञानसे जबतक दूर नहीं कर दियाजाता है तबतक राग द्वेष आदि स्वाभाविक दोष

उसको कर्मके फलमेंको ढकेलते रहते हैं और यह विप-रीतबुद्धि होकर विहित कर्मोंको नहीं करता किन्तु निषिद्ध कर्मोंको करनेमें लगजाता है तब इस अज्ञानी मनुष्यके राग द्वेष आदि स्वाभाविक दोष बलवान् हो उठते हैं, इसकारण यह मन वाणी और शरीरसे बहुधा अनिष्टके साधनरूप अधर्मके काम करने लगता है, उस अधर्मसे अधोगति होकर वह स्थावर (वृक्ष पर्वतादिकी) योनियोंमें जा पड़ता है और कदाचित् शास्त्रका संस्कार बलवान् होजाता है तो मन वाणी शरीरसे बहुधा इष्टके साधनरूप धर्मके काम करने लगता है। वह धर्म दो प्रकारका होता है एक उपासनासहित और दूसरा केवल। इष्ट आदिरूप केवल धर्मके फलसे पितृलोककी प्राप्ति होती है और उपासनासहित धर्मके फलसे देवलोकसे लेकर ब्रह्मलोक पर्यन्तकी प्राप्ति होती है। धर्म और अधर्म दोनोंका आचरण समान होता है तो मनुष्ययोनि मिलती है। यह सब संसार अविद्यासे कल्पित है, इस संसारसे विरक्त हुए पुरुषकी अविद्या दूर होजानेके लिये उस अविद्यासे विपरीत ब्रह्मविद्या को प्राप्त करानेवाले इस उपनिषद्‌का आरम्भ होता है। इस उपनिषद्‌में यद्यपि अश्वमेधप्रकरणके कर्मोंसे संबन्ध रखनेवाली उपासना कही है, उसका यह प्रयोजन है, कि-जिन ब्राह्मण आदिकों अश्वमेध यज्ञ करनेका अधि-कार नहीं है और वे अश्वमेधयज्ञके फलको चाहते हैं, उनको इस अश्वमेधकी ज्ञानरूप उपासनासे ही वह फल मिलजाता है। अश्वमेधसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है, इसकारण यह अश्वमेध सब कर्मोंमें श्रेष्ठ है, उस अश्व-मेधको इस उपनिषद्‌के आरम्भमें यह दिखानेके लिये

कहा है, कि-सब ही कर्मोंका फल संसार है अर्थात् कोई भी कर्म करो उससे संसारके बन्धनमें अवश्य पड़ोगे । इस अध्यायके अश्वमेध नामक प्रथम ब्राह्मणमें अश्व-विषयक उपासना इसलिये कही है, कि अश्वमेधमें अश्व नामक अङ्ग ही प्रधान है । इस यज्ञके नामके साथ अश्व शब्द लगा हुआ है तथा अश्वका देवता प्रजापति है इसकारण अश्वमेध यज्ञमें अश्व नामक अङ्गकी प्रधानता है । इस ब्राह्मणकी पहिली कण्डिका यह है-

ॐ उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः । सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणो व्यात्तमग्निर्वैश्वानरः संवत्सर आत्माऽश्वस्य मेध्यस्य द्यौः पृष्ठमन्तरिक्षमुदरं पृथिवी पाजस्यं दिशः पार्श्वे अवान्तरदिशः पर्शव ऋतवोऽङ्गानि मासाश्चार्धमासाश्च पर्वाण्यहोरात्राणि प्रतिष्ठा नक्षत्राण्यस्थीनि नभो माꣳसानि । ऊवध्यꣳसिकताः सिन्धवो गुदा यकृच्च क्लोमानश्च पर्वता ओषधयश्च वनस्पतयश्च लोमान्युद्यन्पूर्वार्धो निम्लोचञ्जघनार्धो यद्विजृम्भते तद्विद्योतते यद्विधूनुते तत्स्तनयति यन्मेहति तद्वर्षति वागेवास्य वाक् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वै) प्रसिद्ध (उषाः) ब्राह्ममुहूर्त्त (मेध्यस्य) यज्ञसम्बन्धी (अश्वस्य) अश्वका (शिरः) सिर है (सूर्यः) सूर्य (चक्षुः) नेत्र (वातः) वायु (प्राणः) प्राण (वैश्वानरः, अग्निः) वैश्वानर नामवाला अग्नि (व्यात्तम्) खुला हुआ मुख (संवत्सरः) वर्ष (मेध्यस्य, अश्वस्य)

यज्ञसंबन्धी अश्वका (आत्मा) आत्मा है (द्यौः) स्वर्ग (पृष्ठम्) पीठ (अन्तरिक्षम्) आकाश (उदरम्) पेट (पृथिवी) भूमि (पाजस्यम्) धरणतल (दिशः) दिशायें (पार्श्वे) करवट (अवान्तरदिशः) दिशाओंके कोण (पर्शवः) पसलियें (ऋतवः) ऋतुएँ (अङ्गानि) अवयव (मासाः) महीने (च) और (अर्धमासाः, च) पक्ष भी (पर्वाणि) शरीरके जोड़ (अहोरात्राणि) दिन रात (प्रतिष्ठा) पैर (नक्षत्राणि) तारागण (अस्थीनि) हड्डियें (नभः) आकाशमेंका मेघ (मांसानि) मांस (सिकताः) बालुकाके ढेर (ऊवध्यम्) आधापचा भोजन (सिन्धवः) नदियें (गुदाः) नाड़ियें (पर्वताः) पर्वत (यकृत्) हृदयके नीचे दाहिनी ओर रहनेवाला मांसपिण्ड (च) और (क्लोमानः, च) हृदयके नीचे वामभागमें रहनेवाला मांसपिण्ड भी (ओषधयः) ओषधियें (च) और (वनस्पतयः, च) वनस्पति भी (लोमानि) लोम (उद्यन्) ऊपरको उठता हुआ सूर्य (पूर्वार्धः) नाभिका ऊपरका भाग (निम्लोचन्) अस्त होता हुआ सूर्य (जघनार्धः) नाभिके नीचेका भाग है (यत्) जो (विजृम्भते) बिजली चमकती है (तत्) वह (विजृम्भते) जँभाई लेता है । (यत्) जो (स्तनयति) गरजता है (तत्) वह (विधूनुते) शरीरको कँपाता है (यत्) जो (वर्षति) बरसता है (तत्) वह (मेहति) मूत्र करता है (वाक्, एव) वाणी ही (अस्य) इसकी (वाक्) वाणी है ॥ १ ॥

(भावार्थ)-ब्राह्ममुहूर्त रूप दिनका श्रेष्ठ भाग इस यज्ञसंबन्धी अश्वका मस्तक है । दिनका अधिष्ठाता सूर्य चक्षु है । वायु प्राणवायु है । वैश्वानर नामक अग्नि

फैला हुआ मुख है । संवत्सररूप काल शरीरका मध्यभाग है । स्वर्ग पीठ है । आकाश उदर है । पृथिवी खुर है । अवस्थान भेदसे दो २ होकर चारों दिशायें दोनों करवट हैं । अग्निकोण आदि चारों अवान्तर दिशायें करवटोंकी पसलियें हैं । ऋतुएँ अवयव हैं । मास और पक्ष इस प्रजापति रूप यज्ञसम्बन्धी अश्वके अङ्गोंके जोड़ हैं। प्राजापत्य आदि चार प्रकारके दिन रात चार चरण हैं । तारागण हड्डियें है । आकाशमेंके मेघ मांस हैं । पृथिवी परका रेता उदरमें रहनेवाला अधपचा भोजन है। नदियें नाड़ियें हैं । पहाड़ इस अश्वका यकृत् कहिये हृदयके नीचे दाहिनी ओरका मांसपिण्ड और क्लोम अर्थात् हृदयके नीचे बाईं ओरका मांसपिण्ड है । औषधें रोम और वनस्पति केश हैं । उदयसे लेकर दिनके पूर्वार्धका सूर्य नाभिसे ऊपरका भाग है और मध्यान्हसे अस्त पर्यन्त दिनके उत्तरार्धका सूर्य नाभिसे नीचेका भाग है । बिजलीका चमकना इसका जँभाई लेना है । मेघका गर्जना इस अश्वका शरीरको कम्पायमान करना है । मेघका वर्षना इसका मूत्रत्याग करना है और प्रसिद्ध शब्द ही इस अश्वकी हिनहिनाहट है ॥ १ ॥

इसप्रकार अश्वके अङ्गोंमें काल आदिकी भावनायें करके अश्वका प्रजापतिरूप कहा,अब अश्वके आगे और पीछे जो ग्रह कहिये हवनकी सामग्री रखनेके पात्र रक्खे जाते हैं उनके विषयकी उपासना और अश्वकी स्तुति कहते हैं—

अहर्वा अश्वं पुरस्तान्महिमान्वजायत तस्य पूर्वे समुद्रे योनी रात्रिरेनं पश्चान्महिमान्वजायत

तस्यापरे समुद्रे योनिरेतौ वा अश्वं महिमाना वभितः संबभूवतुः। हयो भूत्वा देवानवहद्वाजी गन्धर्वानर्वाऽसुरानश्वो मनुष्यान्समुद्र एवास्य बन्धुः समुद्रो योनिः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(पुरस्तात्) पहले (अश्वम्) अश्व के उद्देश्यसे (महिमा) महिमा नामका पात्र (अन्वजायत) प्रवृत्त हुआ [सः] वह (वै) प्रसिद्ध (अहः) दिन है (पूर्वे, समुद्रे) पूर्व समुद्र (तस्य) उसका (योनिः) उत्पत्तिस्थान है। (पश्चात्) पीछे (एनम्) इस अश्व के उद्देश्यसे (महिमा) महिमा नामका पात्र (अन्वजायत) प्रवृत्त हुआ (रात्रिः) वह रात्रि है (अपरे, समुद्रे) पश्चिम समुद्र (तस्य) उसका (योनिः) उत्पत्तिस्थान है (वै) प्रसिद्ध (एतौ) ये (महिमानौ) महिमा नामके पात्र (अश्वं, अभितः) अश्वके दोनों ओरसे (संबभूवतुः) प्रवृत्त हुए (हयः भूत्वा) हय (देवान्) देवताओंको (वाजी) वाजी अर्वा होकर होकर (गन्धर्वान्) गन्धर्वोंको (अर्वा) होकर (असुरान्) असुरोंको (अश्वः) अश्व होकर(मनुष्यान्)मनुष्यों को उठाता हुआ (समुद्रः, एव) परमात्मा ही (अस्य) इसका (बन्धुः) बन्धनस्थान है (समुद्रः) परमात्मा (योनिः) उत्पत्तिस्थान है ॥ २ ॥

(भावार्थ)—दिन ही सुवर्णका बनाहुआ महिमा नामका ग्रह अर्थात् हवनके पदार्थोंको रखनेका पात्र है और वह अश्वके आगे रक्खाजाता है, इसका उत्पत्तिस्थान पूर्व समुद्र है। रात्रि ही चाँदीका बनाहुआ महिमा नामक ग्रह अर्थात् हवनके पदार्थ रखनेका पात्र है और

वह अश्वके पीछे रक्खाजाता है, इसका उत्पत्तिस्थान पश्चिम समुद्र है। ये महिमा नामके सुवर्ण और रजतके दोनों पात्र अश्वके आगे और पीछे रक्खेजाते हैं। यह अश्व हय जातिका होकर देवताओंको सवारी देता था, वाजी जातिका होकर गन्धर्वोंको, अर्वा जातिका होकर असुरोंको और अश्व जातिका होकर मनुष्योंको सवारी देता था। समुद्ररूप परमात्मा इसका बन्धनस्थान है। और समुद्ररूप परमात्मा ही इसका उत्पत्तिस्थान है। इसप्रकार इस अश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और लयस्थान परमब्रह्म हैं ॥ २ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य प्रथमं ब्राह्मणं समाप्तम् ।

अब अश्वमेधके उपयोगी अग्निकी उत्पत्ति कहते हैं-

नैवेह किञ्चनाग्र आसीन्मृत्युनैवेदमावृतमासीद-
शनाययाऽशनाया हि मृत्युस्तन्मनोऽकुरुतात्म-
न्वी स्यामिति । सोऽर्चन्नचरत्तस्यार्चत आपो-
ऽजायन्तार्चते वै मे कमभूदिति तदेवार्कस्या-
र्कत्वं कं ह वा अस्मै भवति य एवमेतदर्क-
स्यार्कत्वं वेद ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इह) यहाँ (अग्रे) पहले (किञ्चन) कुछ भी (नैव) नहीं (आसीत्) था (अशनायया, मृत्युना, एव) भोजन करनेकी इच्छारूप मृत्यु करके ही (इदम्) यह (आवृतम्) आच्छादित (आसीत्) था (हि) क्योंकि (अशनाया) भोजनकी इच्छा (मृत्युः) मृत्यु है (तत्) वह (आत्मन्वी) अन्तःकरणवाला (स्याम्) होऊँ (इति) ऐसा विचार कर (मनः) अन्त-

करणको (अकुरुत) रचता हुआ (सः) वह (अर्चन्) पूजन करता हुआ (अचरत्) विचरा (तस्य) उसके (अर्चतः) पूजन करते हुए (आपः) जल (अजायन्त) उत्पन्न हुए (अर्चते) पूजन करते हुए (मे) मेरे अर्थ (वै) प्रसिद्ध (कम्) जल (अभूत्) हुआ (इति) ऐसा मानता हुआ (तदेव) वह ही (अर्कस्य) अर्क का (अर्कत्वम्) अर्कपना है (यः) जो (एवम्) इस प्रकार (एतत्) इस (अर्कस्य) अर्कके (अर्कत्वम्) अर्कपनेको (वेद) जानता है (अस्मै) इसके अर्थ (वै) प्रसिद्ध (कम्, ह) सुख ही (भवति) होता है ॥ १ ॥

(भावार्थ)- इस संसारमण्डल में मन आदिकी उत्पत्ति से पहले नाम रूप से अलगर कहाजाने वाला कुछ भी नहीं था। हिरण्यगर्भ नामधारी क्षुधारूप मृत्युसे, यह नाम रूप से विभाग पाने वाला जगत् ऐसे आच्छादित हो रहा था जैसे पिण्ड रूप हुई मृत्तिका से घट आच्छादित होता है अर्थात जैसे मृत्तिका के पिण्डके भीतर घट (उत्पत्ति से पहले) होता है ऐसे ही हिरण्यगर्भ रूप पिंडके भीतर उत्पत्ति से पहले यह सब जगत् था। क्षुधा बुद्धिरूप आत्माका धर्म है, इसलिए यह बुद्धिरूप अवस्थावाला हिरण्यगर्भ ही मृत्यु है। मैं इस अन्तःकरण से अन्तःकरणवाला होजाऊँ, ऐसा विचारकर उस हिरण्यगर्भने अन्तःकरणको रचा। उस हिरण्यगर्भने मैं सृष्टि रचनेकी शक्ति रखता हूँ ऐसा विचार रूप पूजन किया। उसके ऐसे विचार रप पूजन से आकाश आदि आद्य तीन रूपों सहित जल उत्पन्न हुआ। मुझ पूजन करने वालेके लिए यह प्रसिद्ध जल उत्पन्न हुआ ह उस हिरण्यगर्भ ने ऐसा माना। अर्चन करने वाले हिर-

ण्यगर्भ का नाम अर्क है । उसके साथके संबन्ध से अग्निका अर्कनाम गौण है । यही अश्वमेध यज्ञमें उपयोगी अग्निका अर्कपना है । जो इस प्रकार अर्कके अर्कपने को जानता है उसको सुख प्राप्त होता है ॥१॥

आपो वा अर्कस्तद्यदपां शर आसीत्तत्स-महन्यत । सा पृथिव्यभवत्तस्यामश्राम्यत्तस्य श्रान्तस्य तप्तस्य तेजो रसो निवर्त्तताग्निः ॥२॥

अन्वय और पदार्थ- (आपः) जल (वै) प्रसिद्ध (अर्कः) जल है (अपाम्) जलका (यत्) जो (शरः) मण्ड-भूत (आसीत्) था (तत्) वह (समहन्यत) पककर गाढ़ा हुआ (सा) वह (पृथ्वी) पृथ्वी (अभवत्) हुई (तस्याम्) उसमें (तत्) वह हिरण्यगर्भ (अश्राम्यत्) श्रमको प्राप्त हुआ (श्रान्तस्य) श्रमको पाये हुए (तप्तस्य) स्वेदयुक्तहुएसे (तेजोरसः) तेजःसार (अग्निः) अग्नि की समान विराट (निरवर्त्तत) प्रकट हुआ ॥ २ ॥

(भावार्थ)-अन्य भूतों की मात्रासहित सृष्टिके कारण भूत जलों में पृथ्वीको मात्राके द्वारा पार्थिव अग्नि रहता है अतएव जल भी अग्निकी समान अर्क अर्थात् तेजो-मय हैं, उन जलोंका जो सारभाग था वह भीतर और बाहर तेजसे पक कर ऊपर माँडके आकारमें गाढ़ा होगया, वह सूक्ष्म महत्तत्व आदिके क्रमसे परिणाम को पाकर कठिन पृथिवीके आकारमें आगया अर्थात् उन जलोंमेंसे विराट नामधारी एक अंडा होगया । पूर्वोक्त हिरण्यगर्भ पृथिवी की सृष्टिविषय की आलोचना करते करते श्रमयुक्त होगया और खिन्न होकर उस कठिन रूप हुए पृथिवी तत्वके ऊपर सोरहा तब उस अन्ताप

को प्राप्त हुए हिरण्य गर्भ पुरुषके रोम कूपमें से तेजका रस अग्नि रूप विराटका अभिमानी चतुर्मुख नाम से कहा जानेवाला प्रजापति प्रथमशरीरी उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥

स त्रेधाऽऽत्मानं व्याकुरुताऽऽदित्यं तृतीयं वायुं तृतीयꣳ स एष प्राणस्त्रेधा विहितः। तस्य प्राची दिक्छिरोऽसौ चासौ चेर्मौ अथास्य प्रतीची दिक् पुच्छमसौ चासौ च सक्थ्यौ दक्षिणा चोदीची च पार्श्वे द्यौः पृष्ठमन्तरिक्षमुदरमियमुरः स एषो-ऽप्सु प्रतिष्ठितो यत्र क्व चैति तदेव प्रतितिष्ठत्येवं विद्वान् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (आत्मानम्) अपनेको (त्रेधा) तीन प्रकारसे (व्याकुरुत) विभक्त करताहुआ (आदित्यम्) सूर्यको (तृतीयम्) तीसरा (वायुम्) वायुको (तृतीयम्) तीसरा [व्याकुरुत] करता हुआ (सः) वह (एषः) यह (त्रेधा) तीन प्रकारसे (विहितः) विभक्त हुआ (प्राची दिक्) पूर्वदिशा (तस्य) उसका (शिरः) सिर है (असौ) यह (च) और (असौ च) यह भी (ईर्मौ) बाहु हैं (अथ) और (प्रतीची, दिक्) पश्चिम दिशा (अस्य) इसका (पुच्छम्) पिछला भाग है (असौ) यह (च) और (असौ, च) यह भी (सक्थ्यौ) जाँघें हैं (दक्षिणा) दक्षिणदिशा (च) और (उदीची, च) उत्तर दिशा भी (पार्श्वे) दोनों करवट हैं (द्यौः) स्वर्ग (पृष्ठम्) पीठ है (अन्तरिक्षम्) आकाश (उदरम्) पेट है (इयम्) यह पृथिवी (उरः) छाती है (सः) वह (एषः) यह (अप्सु)

जलमें (प्रतिष्ठितः) स्थित है (एवम्) ऐसा (विद्वान्) जाननेवाला (यत्र क्व च) जहां कहीं (एति) जाता है (तदेव) तहां ही (प्रतितिष्ठति) स्थिति पाता है ॥३॥

(भावार्थ)-अब ध्यानके निमित्त, उत्पन्न हुए विराट् के विभागको कहते हैं, कि-उस हिरण्यगर्भात्माने विराट् का नाश न करके अपना तीन प्रकारसे विभाग किया। अग्नि और वायुकी अपेक्षासे आदित्यको तीसरा किया अग्नि और आदित्यकी अपेक्षामें वायुको तीसरा किया तथा वायु और आदित्यकी अपेक्षामें अग्निको तीसरा किया, इसप्रकार यह हिरण्यगर्भरूप प्राण तीन प्रकारसे विभक्त हुआ। अब इस अर्क नामक अग्निस्वरूप विराट्का अश्वकी समान संस्कारके लिये स्वरूप कहते हैं, कि-पूर्वदिशा इस विराट्रूप अग्निका शिर है। ईशान और अग्निकोण दो हाथ हैं। पश्चिम दिशा इसका पिछला भाग है। वायव्य और नैर्ऋत्य कोण दो साँथलें हैं। दक्षिण और उत्तर दिशा दोनों करवट हैं। स्वर्ग पीठ है, अंतरिक्ष उदर है और यह पृथिवी छाती है। इसप्रकार यह प्रजापतिरूप अग्नि अर्थात् नारायणरूप कारणभूत जलीकृत जलमें स्थित है। इसको जो जलशायी नारायणरूप जानता है, वह जहां कहीं जाता है तहां ही प्रतिष्ठा पाता है ॥ ३ ॥

सोऽकामयत द्वितीयो म आत्मा जायेतेति स मनसा वाचं मिथुनꣳ समभवदशनाया मृत्युस्त द्यद्रेत आसीत्स संवत्सरोऽभवत्। न ह पुरा ततः संवत्सर आस तमेतावन्तं कालमबिभर्यावान्संवत्सरस्तमेतावतः कालस्य परस्तादसृजत। तं जा-

तमभिव्यादात्स भाणकरोत्सैव वागभवत् । ४ ॥

अन्वय और पदार्थ (सः) वह (मे) मेरा (द्वितीयः) दूसरा (आत्मा) शरीर (जायेत) हो (इति) ऐसा (अकामयत) चाहता हुआ (सः) वह (मनसा) मनके द्वारा (वाचम्) वाणीरूप (मिथुनम्) द्वन्द्वको (समभवत्) सम्यक् प्रकारसे उत्पन्न करता हुआ [सः] वह (अशनाया) क्षुधारूप (मृत्युः) हिरण्यगर्भ था (तत्) उसमें (यत्) जो (रेतः) वीर्य (आसीत्) था (सः) वह (संवत्सरः) वर्ष (आसीत्) हुआ (ततः पुरा) उससे पहले (संवत्सरः, ह) प्रसिद्ध संवत्सर (न) नहीं (आस) था (तम्) उसको (यावान्) जितना (सम्वत्सरः) सम्वत्सर है (एतावन्तं,कालम्) इतने समय पर्यन्त (अबिभः) धारण किये हुए था (तम्) उसको (एतावतः) इतने (कालस्य) समय के (परस्तात्) पीछे (असृजत) रचता हुआ (जातम्) उत्पन्न हुए (तम्) उसको (अभिव्यादद्वात्) लक्ष्य करके मुख फैलाता हुआ (सः) वह (भाण्) भाण् ऐसा शब्द (अकरोत्) करताहुआ (सा,एव) वह ही (वाक्) वाणी (अभवत्) हुई ॥४॥

(भावार्थ)-उस हिरण्यगर्भ सूत्रात्माने विराट्को किस प्रकार रचा यह बात आगेके ग्रन्थसे दिखाते हैं, अथवा तेजःसार अग्नि उत्पन्न हुआ, ऐसा कहचुके हैं वह भक्षण करनेवाली सृष्टि है, अब उसकी स्थितिके लिये अन्नसृष्टि कहते हैं. कि उस मनकी रचना करलेने वाले सूत्रात्मा हिरण्यगर्भने चाहा, कि-सूक्ष्मशरीरकी अपेक्षा मेरा एक स्थूल शरीर भी उत्पन्न होजाय, उस हिरण्यगर्भने पहले वाणीरूप द्वन्द्वको उत्तम

प्रकारसे उपजाया अर्थात् वेदमें कहेहुए सृष्टिक्रमका मन से विचार किया। वह विचार करनेवाला क्षुधाधर्मवाली प्राणकी अवस्थारूप हिरण्यगर्भ था। उस मन और वाणी में जो प्रजापतिकी उत्पत्तिका कारण जन्मान्तरमें किया हुआ ज्ञानकर्मरूप बीज था, उस बीजसे जलमें अण्ड-रूपके द्वारा प्रवेश करके गर्भरूप हो वह संवत्सर कहिये वर्षकी रचना करनेवाला आदित्यरूप होगया। इस आदित्यसे पहले प्रसिद्ध संवत्सररूप काल नहीं था। जितना संवत्सर है इतने समय तक उस आदित्यको हिरण्यगर्भ धारण किये रहा, उसको इतने समयके अनन्तर रचा, इस प्रकार रचित प्रथम शरीरी कुमारको खानेके लिये मृत्यु नामक हिरण्यगर्भने मुख फैलाया, तब वह आदित्यरूप बिराट स्वाभाविक अविद्यासे युक्त होनेके कारण भयभीत होकर भाण् यह शब्द करने लगा, यही शब्दरूप वाणी हुई ॥ ४ ॥

स ऐक्षत यदि वा इममभिमᳬस्ये कनीयोऽन्नं करिष्य इति स तया वाचा तेनात्मनेदᳬ सर्व-मसृजत यदिदं किञ्चर्चो यजूᳬषि सामानि च्छन्दाᳬसि यज्ञान् प्रजाः पशून्। स यद्यदे-वासृजत तत्तदत्तुमध्रियत सर्वं वा अत्तीति तददितेरदितित्वᳬ सर्वस्यैतस्यात्ता भवति सर्व-मस्यान्नं भवति य एवमेतददितेरदितित्वं वेद ५

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (यदि) जो (वै) प्रसिद्ध (इमम्) इसको (अभिमंस्ये) मारूँगा (कनीयः) अल्प (अन्नम्) अन्नको (करिष्ये) करूंगा (इति) ऐसा

(ऐक्षत) विचारता हुआ (सः) वह (तया) तिस (वाचा) वाणीके द्वारा (तेन) तिस (आत्मना) मनके द्वारा (इदम्) यह (यत् किञ्च) जो कुछ है (इदम्) इस (सर्वम्) सबको (असृजत) रचता हुआ (ऋचः) ऋचाओंको (यजूंषि) यजुओं को (सामानि) सामों को (छन्दांसि) छन्दों को (यज्ञान्) यज्ञोंको (प्रजाः) प्रजाओंको (पशून्) पशुओंको (असृजत) रचता हुआ (सः) वह (यत् यत् एव) जिस जिसको ही (असृज-त) रचता हुआ (तत् तत्) उस उसको (अत्तुम्) खानेको (अध्रियत) ग्रहण करता हुआ (सर्वम्) सबको (अत्ति) खाता है (इति) इस कारण (तत्) वह (अदितेः) अदितिका (अदितित्वम्) अदितिपना (वै) प्रसिद्ध है (यः) जो (एवम्) इस प्रकार (एतत्) इस (अदितेः) अदितिके (अदितित्वम्) अदितिपनेको (वेद) जानता है (एतस्य) इस (सर्वस्य) सब का (अत्ता) खानेवाला (भवति) होताहै (सर्वम्) सब (अस्य) इसका (अन्नम्) अन्न (भवति) होता है॥५॥

(भावार्थ)-इस प्रकार भयभीत तथा पुकारते हुये विराट को देखकर वह क्षुधावान् भी हिरण्यगर्भस्वरूप मृत्यु विचार-नेलगा, कि यदि मैं आगेको रचेजानेवाले अन्नके हेतु-भूत इस प्रसिद्ध कुमार को मारडालूँगा तो आगेको इस के द्वारा जो अधिक अन्न होनेवाला है वह न होगा और मैं आपही अपने अन्न को न्यून करलूँगा, ऐसा विचार कर उसके हनन का विचार छोड़ दिया, फिर अन्न की बहुतायतके प्रयोजनको विचार कर वह क्रमशः उस कु-मारके मुखसे निकली वेदरूप वाणीके द्वारा और कुमार स्वरूपको प्राप्त हुए उस मनके द्वारा नाम—नामी रूप जो

वीर्य है (तत्) जिससे (प्राणेषु) इन्द्रियोंके (उत्क्रान्तेषु) निकलनेपर (शरीरम्) शरीर (श्वयितुम्, अध्रियत) सूजना आरंभ होगया (तस्य) उसका (मनः) मन (शरीरे, एव) शरीरमें ही (आसीत्) था ॥ ६ ॥

(भावार्थ) उस मृत्युरूप सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ प्रजापतिने पहले कल्पोंकी समान फिर चाहा, कि-मैं बड़ीभारी दक्षिणावाले अश्वमेधरूप यज्ञसे फिर यजन करूँ। इस बड़ेभारी कार्यकी कामनासे उसको श्रम हुआ उसने इस कामनाकी सिद्धिके लिये तपस्या की, उसके श्रान्त और तप्त होने पर उसमें सृष्टिकी सामर्थ्य प्रकट होगयी, वह भोक्ता और भोग्यरूप जगत्को अलग २ करनेमें समर्थ होगया, तब भोक्ता और भोग्य जगत्रूप उसके शरीरमेंसे यश और वीर्य निकला। चक्षु आदि इन्द्रियें ही यश और बल हैं, क्योंकि-इन्द्रियोंके शरीरको छोड़जाने पर न कोई यश ही पाता है और न बलवान् ही रहता है। जैसे शरीरमेंसे इन्द्रियोंके निकलजानेपर वह शरीर फूलने लगता है, ऐसे ही जब सूक्ष्म हिरण्यगर्भने स्थूल भोक्ता भोग्यरूप जगत्को अपनेमें से पृथक् किया तब वह भोक्ता भोग्यरूप जगत् क्रमसे स्थूलसे स्थूलतर भाव धारण करते २ दृश्य पृथिवीके आकारमें परिणत होगया। प्राण कहिये इन्द्रियोंके शरीरमेंसे निकलजाने पर भी मन जिसप्रकार कुछ समय उस त्यागेहुए शरीरमें ही आसक्त रहता है तैसे ही हिरण्यगर्भ इस भोक्ता भोग्यरूप जगत्को अपनेमेंसे त्याग देने पर भी इसमें ही आसक्तचित्त रहा अर्थात् जिसमें कि यह क्रमसे परिणामको प्राप्त होकर पृथिवी और

पार्थिव उपाधियोंके आकारको धारण करे इस विषयमें मन लगाये रहा ॥ ६ ॥

सोऽकामयत मेध्यं म इदꣳ स्यादात्मन्व्यनेन स्यामिति । ततोऽश्वः समभवद्यदश्वत्तन्मेध्यमभूदिति तदेवाश्वमेधस्याश्वमेधत्वम् । एष ह वा अश्वमेधं वेद य एनमेवं वेद तमनवरुध्यैवामन्यत । तꣳ संवत्सरस्य परस्तादात्मन आलभत । पशून् देवताभ्यः प्रत्यौहत् । तस्मात्सर्वदेवत्यं प्रोक्षितं प्राजापत्यमालभन्त एष ह वा अश्वमेधो य एष तपति तस्य संवत्सर आत्माऽयमग्निरर्कस्तस्येमे लोका आत्मानस्तावेतावर्काश्वमेधौ । सो पुनरेकैव देवता भवति मृत्युरेवाप पुनर्मृत्युं जयति नैनं मृत्युराप्नोति मृत्युरस्यात्मा भवत्येतासां देवतानामेको भवति ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(मे) मेरा (इदम्) यह शरीर (मेध्यम्) पवित्र (स्यात्) हो (अनेन) इससे (आत्मन्वी) शरीरवाला (स्याम्) होऊँ (इति) ऐसा (सः) वह (अकामयत) चाहता भया (यत) क्योंकि (अश्वत्) फूला (ततः) तिससे (अश्वः) अश्व (समभवत्) हुआ (तत्) वह (मेध्यम्) पवित्र (अभूत्) हुआ (तदेव) तिससे ही (अश्वमेधस्य) अश्वमेधका (अश्वमेधत्वम्) अश्वमेधपना है (यः) जो (एनम्) इसको (एवम्) इसप्रकार (वेद) जानता है (एषः, ह) यह ही (वै) प्रसिद्ध (अश्वमेधम्)

अश्वमेधको (वेद) जानता है (तम्) उसको (अनवरुध्य, एव) न बाँधकर ही (अमन्यत) चिन्तवन करता हुआ (तम्) उसको (संवत्सरस्य, परस्तात्) वर्ष भर पीछे (आत्मने) अपने लिये (आलभत) वध करता हुआ (पशून्) पशुओंको (देवताभ्यः) देवताओंके अर्थ (प्रत्यौहत्) अर्पण करता हुआ (तस्मात्) तिससे (सर्वदेवत्यम्) सब देवताओंवाले (प्रोक्षितम्) प्रोक्षण कियेहुए (प्राजापत्यम्) प्रजापतिसंबन्धीको (आलभन्ते) हनन करते हैं (एषः, ह) यही (वै) प्रसिद्ध (अश्वमेधः) अश्वमेध है (यः) जो (एषः) यह (तपति) तपता है (तस्य) उसका (संवत्सरः) वर्ष (आत्मा) शरीर है (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि (अर्कः) सूर्य है (तस्य) उसके (इमे) ये (लोकाः) लोक (आत्मानः) अवयव हैं (तौ) वे (एतौ) ये (अर्काश्वमेधौ) अर्क और अश्वमेध हैं (सा उ) वे दोनों ही (पुनः) फिर (एका, एव) एक ही (देवता) देवता (भवति) होता है (मृत्युः, एव) हिरण्यगर्भ ही (मृत्युम्) मृत्युको (अपजयति) जीतलेता है (एनम्) इसको (पुनः) फिर (न) नहीं (आप्नोति) प्राप्त होता है (मृत्युः) मृत्यु (आत्मा) आत्मा (भवति) होता है (एतासाम्) इन (देवतानाम्) देवताओंमें (एकः) एक (भवति) होता है ॥ ७ ॥

(भावार्थ)-शरीरमेंसे निकलकर भी उस शरीरमें आसक्त चित्तवाला प्रजापति अपनी परमसामर्थ्यसे विचारने लगा कि-यह शरीर यज्ञके योग्य पवित्र होजाना चाहिये और मैं इस शरीरसे शरीरवान् होजाऊँ, ऐसा विचार कर वह उस शरीरमें प्रवेश कर गया। क्योंकि-यह शरीर मेरे त्याग

देने से यश और बलसे हीन होकर अश्वत् (फूलाहुआ) होगया था, इसलिये यह अश्व था, शरीर और शरीरवान् का अभेद होनेसे यह साक्षात् प्रजापति ही था। यश और बलसे शून्य होनेके कारण अपवित्र था और फिर मेरे प्रवेशसे मेध्य (पवित्र) होगया, यही अश्वमेध यज्ञका अश्वमेधपना है। प्रजापतिके संकल्पानुसार उस शरीरमेंसे क्रमशः मनोमय ऋषि देवता, प्राणमय देवयोनि, छायामय पितृगण तथा स्त्रीपुरुष, भेदभावमय मनु और मनुपत्नी उत्पन्न हुए, फिर उनसे अनेकों प्रकारके मिथुनभाववाले प्राणी उत्पन्न हुए, इस ही क्रममें प्रजापतिके शरीरसे अश्वजाति उत्पन्न होगई। अश्वजाति यज्ञके उपयोगी हुई, क्योंकि प्रजापतिके शरीरने फूलकर अश्व आकार धारण किया था, जो इस अश्व के ऐसे स्वरूप को जानता है वह अश्वमेध यज्ञको भी जानता है और इस अश्वमेधकी ही उपासना करता है। हिरण्यगर्भ ने अश्वमेध यज्ञकी इच्छा की, अपने शरीरको यज्ञसंबन्धी पशु कल्पना करके उसकी बन्धनशून्य खुली हुई अवस्था का चिन्तवन किया। उस अपने स्वरूपभूत अश्वको बारह मासके समयके अनन्तर अपने लिये अर्थात् प्रजापति देवताका मानकर आलम्भन किया। अन्यान्य ग्राम्य और आरण्य पशुओं को भी अपने अवयवरूप देवताओं के लिये उत्सर्ग किया। हिरण्यगर्भने ऐसा किया था, इसलिये आजकल के यज्ञ करने वाले भी सकल देवताओं वाले और वेदमंत्रोंसे संस्कार युक्त कियेहुए प्रजापति संबन्धी पशुका आलम्भन करते हैं। इसप्रकार यह प्रसिद्ध अश्वमेध है। जो यह सूर्य अपने तेजसे जगत्को प्रकाशित करता है, उस यज्ञके फलरूप सूर्यका संवत्सर शरीर है

जो यह पृथिवी लोकमें स्थित यज्ञका साधनरूप अग्नि है वह भी सूर्य ही है। उस अग्निरूप सूर्यके ये द्यु आदि लोक शरीरके अवयव हैं। ऐसा यह यज्ञका साधनरूप अग्नि और यज्ञका फलभूत सूर्यरूप अश्वमेध भी एक ही देवतारूप है। जो हिरण्यगर्भ क्रिया, साधन और फलके भेदके लिये तीन प्रकारसे विभक्त हुआ था वह क्रियाकी समाप्ति होजाने पर यज्ञके फलरूपसे एक हिरण्यगर्भ ही होजाता है। जो मैं हिरण्यगर्भ हूँ ऐसा जानता है वह मरणका तिरस्कार करता है, मृत्यु उसके पास दूसरी बार नहीं आता है, मृत्यु उसका आत्मा हो जाता है, फलरूप होता हुआ यह मृत्यु आदि देवताओं से अभिन्न हो जाता है अर्थात् सबका आत्मा प्रजापतिरूप होजाता है ॥ ७ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य द्वितीयं ब्राह्मणम् ।

इस प्रकार अश्वमेध ब्राह्मण और अग्नि ब्राह्मणके द्वारा समुच्चित वा केवल उपासना कर्मका हिरण्यगर्भभाव की प्राप्तिरूप परमफल कहा, अब उस उपासना और कर्मका जिसमें से उद्भव हुआ है, उस उद्भावकरूप उपास्य प्राणके स्वरूपका निर्णय करनेके लिये इस उद्गीथ ब्राह्मणका आरम्भ होता है। प्राणोपासनाका अवान्तर फल पापरूप मृत्युके पार होजाना है, इसलिये प्राणोपासना, उपासना और कर्मकी उत्पत्तिमें प्रतिबन्धकरूप रागादि का विनाश करनेवाली है। पापरूपमृत्यु कौन है? उसकी उत्पत्ति कहांसे है? और उसके पार होनेका कौनसा उपाय वा कौनसी रीति है? इस सबको स्पष्ट करने के लिये श्रुति भगवती आख्यायिकाका आरम्भ करती है-

द्वया ह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च ततः कनीय-

सा एव देवा ज्यायसा असुरास्त एषु लोकेष्व-स्पर्धन्त ते ह देवा ऊचुर्हन्तासुरान्यज्ञ उद्गीथेना-त्ययामेति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(द्वया) दो (ह) प्रसिद्ध (प्राजापत्याः) प्रजापतिकी सन्तान हैं (देवाः) देवता (च) और (असुराः,च) असुर भी (ततः) तिससे (देवाः) देवता (कनीयसाः,एव) थोड़े ही हैं (असुराः) असुर (ज्यायसाः) बहुतसे हैं (ते) वे (एषु, लोकेषु) इन शरीरोंमें (अस्पर्धन्त) स्पर्धा करनेलगे (ते) वे (ह) प्रसिद्ध (देवाः) देवता (हन्त) इस समय (यज्ञे) यज्ञमें (उद्गीथेन) उद्गीथके द्वारा (असुरान्) असुरोंको (अत्ययाम) जीतें (इति) ऐसा (ऊचुः) बोले ॥ १ ॥

(भावार्थ)-यजमानरूप हुए हिरण्यगर्भकी दो प्रकारकी सन्तानें हैं-एक देवता और दूसरे असुर। शास्त्रमें कहे ध्यान और कर्मकी वासनावाली वाक् आदि इन्द्रियों की सात्विकी वृत्तियें देवता हैं और प्रत्यक्ष अनुमानसे उपजी लौकिक प्रयोजनवाली तथा शास्त्रकी मर्यादासे शून्य ध्यान और कर्मकी वासनावाली वाक् आदि इन्द्रियोंकी तामसी वृत्तियें देवताओंसे भिन्न होनेके कारण असुर हैं। क्योंकि-वाक् आदिकी आसुरी वृत्तियें बहुतसी हैं और शास्त्रके अनुकूल काम करनेमें बड़ा यत्न करना पड़ता है, इसकारण ऊपर कहे देवता थोड़े ही हैं और शास्त्रके आश्रयको छोड़कर मनमानी प्रवृत्तियें बहुतसी होती हैं इसकारण असुर बहुतसे हैं। वे देवता और असुर इन प्राणियोंके शरीरोंमें शम आदि और काम आदि वृत्तियोंके उद्भव अभिभव और अभिभव उद्भवरूप स्पर्धा करनेलगे

अर्थात् जब शास्त्रानुकूल शमादि वृत्तियोंका उदय होने पर देवताओंकी विजय होकर धर्मकी वृद्धि होनेलगी तब मनुष्योंकी प्रजापतिमात्रपर्यन्त उन्नति होगयी और जब इसके विपरीत कामादि वृत्तियोंका उदय होने पर असुरों की विजय होकर अधर्मकी वृद्धि होने लगी तब मनुष्य गिरते २ वृक्ष पाषाण पर्यन्तकी गतिमें पहुँच गये तथा जब दैवी तथा आसुरी वृत्तियोंकी समता हुई तबमनुष्य ही बने रहे। जब देवताओंको असुरोंने दबालिया तब देवता आपसमें कहनेलगे कि यदि अनुमति होय तो अब इस ज्योतिष्टोम नामके यज्ञमें उद्गीथ कहिये कर्म करनेवालेके प्राणके स्वरूपका आश्रय लेकर हम असुरों को जीतकर अपने देवभावको प्राप्त होजायँ। उद्गीथ कर्म करनेवालेके स्वरूपका आश्रय चिन्तवन और कर्म से होता है। मन्त्रजप कर्म कहलाता है और अशुद्ध वाणी आदिको छोड़कर शुद्ध प्राणकी उपासना चिन्तवन कहलाती है॥ १॥

ते ह वाचमूचुस्त्वं न उद्गायेति तथेति तेभ्यो वागुदगायत्। यो वाचि भोगस्तं देवेभ्य आगायद्यत्कल्याणं वदति तदात्मने। ते विदुरनेन वै न उद्गात्रात्येष्यन्तीति तमभिद्रुत्य पाप्मनाऽविध्यन्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूपं वदति स एव स पाप्मा॥ २॥

अन्वय और पदार्थ-(ते, ह) वे प्रसिद्ध देवता (वाचं, ऊचुः) वाणीसे कहनेलगे (त्वम्) तू (नः) हमारे लिये (उद्गाय) उद्गाताका कर्म कर (इति) इस

प्रकार (तथा, इति) ऐसा ही होगा यों कहकर (वाक्) वाणी (तेभ्यः) उनके लिये (उद्गायत्) गान करती हुई (वाचि) वाणीमें (यः) जो (भोगः) भोग है (तम्) उसको (देवेभ्यः) देवताओंके अर्थ (आगायत्) गाती हुई (यत्) जो (कल्याणं, वदति) शोभन बोलती है (तत्) वह (आत्मने) अपने निमित्त है (वै) निश्चय (अनेन, उद्गात्रा) इस उद्गाताके द्वारा (नः) हमको (अत्येष्यन्ति) उल्लंघन करजायँगे (इति) ऐसा (ते) वे असुर (विदुः) जानते हुए (तम्, अभिद्रुत्य) उसके प्रति शीघ्र आकर (पाप्मना, अविध्यन्) पापसे संयुक्त करते हुए (सः) वह (यः) जो (सः) वह (पाप्मा) पाप था (यत्, एव) जो ही (इदम्) यह (अप्रतिरूपम्) अनुचित (वदति) बोलता है (सः, एव) वह ही (सः) वह (पाप्मा) पाप है ॥ २ ॥

(भावार्थ)-वे प्रसिद्ध देवता वाग्देवतासे कहने लगे कि-तु हमारे लिये उद्गाताका कर्म कर। ऐसा कहने पर तथास्तु कह कर उनके लिये वाग्देवताने उद्गान किया। वाणीमें जो सुख विशेष है उसको देवताओंके लिये गान किया और जो वर्णोंको शास्त्रानुसार उत्तम रीति से बोलता है वह, शुभ बोलनेकी शक्ति मेरे लिये हो, ऐसा गान किया। क्योंकि यथायोग्य उच्चारणमें वाग्देवताका अभिनिवेशरूप छिद्र (अच्छे प्रकार बोलना रूप विषयमें आसक्ति) देखकर असुर अपने कामका उद्योग करनेलगे अर्थात् जब देवताओंने शम आदिके द्वारा असुरोंको उनके काम आदि प्रवृत्तियोंके अधिकारसे गिराना आरम्भ किया तो उन्होंने इस बातको जानलिया, कि-

निग्रग ही ऐसा शास्त्रसे जानेहुए कर्मके ज्ञानरूप उद्गाताके द्वारा शास्त्रकी उपेक्षा करके मनमाना काम करने वाले हम असुरोंका तिरस्कार करके हमको जीतलेंगे, ऐसा जानकर असुरोंने उस वाणीरूप उद्गाताके ऊपर वेगसे आक्रमण किया और उनको आसक्तिरूप पापसे ताड़ित किया । जो पाप साधक अवस्थावाले प्रजापतिकी वाणीमें जा लगा था वह पाप अनुमानसे जाना जाता है, क्योंकि-उस ही पापसे युक्त हुई आजकलकी प्रजाकी वाणी यह असभ्य भयानक और मिथ्या आदिसे भरी बातोंको बोलती है, यह वही पाप है कि-जो हम प्रजाओंके आविष्कारण प्रजापतिकी वाणीमें बैठगया था, वहाँसे ही कार्यरूप प्रजाओंमें आगया है ॥ २ ॥

अथ ह प्राणमूचुस्त्वं न उद्गायेति तथेति तेभ्यः प्राण उदगायद्यः प्राणे भोगस्तं देवेभ्य आगायद्यत्कल्याणं जिघ्रति तदात्मने । ते विदुरनेन वै न उद्गात्राऽत्येष्यन्तीति तमभिद्रुत्य पाप्मनाऽविध्यन्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूपं जिघ्रति स एव स पाप्मा ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) इसके अनन्तर (ह) प्रसिद्ध देवता (त्वम्) तू (नः) हमारे लिये (उद्गाय) उद्गान कर (इति) ऐसा (प्राणं, ऊचुः) प्राणसे कहनेलगे (प्राणः) प्राण (तथा, इति) तथास्तु कहकर (तेभ्यः) उनके लिये (उदगायत्) उद्गान करता हुआ (प्राणे) प्राणमें (यः) जो (भोगः) सुखविशेष है (तम्) उसको (देवेभ्यः) देवताओंके लिये (आगायत्) गाताहुआ

(यत्) जो (कल्याणम्) शोभन (जिघ्रति) सूंघता है (तत्) वह (आत्मने) मेरे लिये हो (ते) वे असुर (विदुः) जानते हुए (अनेन) इस (उद्गात्रा) उद्गाता के द्वारा (वै) निश्चय (नः) हमको (अत्येष्यन्ति) अतिक्रमण करजायँगे (इति) ऐसा जानकर (तम्, अभिद्रुत्य) उसके प्रति शीघ्रतासे जाकर (पाप्मना) पापके द्वारा (अविध्यन्)ताड़न किया (सः) वह (यः) जो (सः) वह (पाप्मा) पाप था (यत्, एव) जो ही (इदम्) यह (अप्रतिरूपम्)अनुचित (जिघ्रति) सूँघता है (सः, एव) वही (सः) वह (पाप्मा) पाप है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-फिर वे प्रसिद्ध देवता घ्राण (नासिका) के देवतासे कहने लगे, कि-तू हमारे लिये उद्गान कर, इस पर घ्राणके देवताने तथास्तु कहकर उनके लिये उद्गान किया। घ्राणमें सूँघनेसे समूहको जो सुखविशेष होता है उसको देवताओंके लिये गान किया, और जो सुन्दर सूँघाजाता है वह मेरे लिये हो,ऐसा गान किया, सुगन्धमें घ्राणके देवताकी आसक्तिरूप छिद्र देखकर असुरोंने अपने कामका उद्योग किया। उन असुरोंने समझा कि निःसन्देह इस उद्गाताके द्वारा देवता हमें दबाकर हमसे बढ़ जायँगे। ऐसा जानकर उन्होंने उद्गाता के ऊपर आक्रमण किया और उसमें पापको जोड़ दिया, साधक अवस्थावाले प्रजापतिकी घ्राणमें वह जो पाप जुड़ा था वह पाप अनुमानसे जाना जाता है, जिससे युक्त हुआ यह घ्राण अनुचितको सूँघता है, यही वह पाप है ॥ ३ ॥

अथ ह चक्षुरूचुस्त्वं न उद्गायेति तथेति तेभ्यश्चक्षुरुदगायत् । यश्चक्षुषि भोगस्तं देवेभ्य आगायद्यत्कल्याणं पश्यति तदात्मने । ते विदुरनेन वै न उद्गात्राऽत्येष्यन्तीति तमभिद्रुत्य पाप्मनाऽविध्यन्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूपं पश्यति स एव स पाप्मा ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अनन्तर (ह) वे प्रसिद्ध देवता (चक्षु) नेत्र (नः) हमारे लिये (उद्गाय) उद्गान कर (इति) ऐसा (ऊचुः) कहतेहुए (चक्षुः) नेत्र (तथा इति) तथास्तु कह कर (तेभ्यः) उनके लिये (उदगायत्) उद्गान करता हुआ (चक्षुषि) चक्षुमें (यः) जो (भोगः) सुखविशेष है (तम्) उसको (देवेभ्यः) देवताओंके अर्थ (आगायत्) गान करता हुआ (यत्) जो (कल्याणम्) अच्छा (जिससे) सूझता है (तत्) वह (आत्मने) अपनेलिये (वै) निश्चय (अनेन, उद्गात्रा) इस उद्गाताके द्वारा (नः) हमें (अत्येष्यन्ति) उल्लंघन करेंगे (ते) वे (विदुः) जानतेहुए (इति) ऐसा जानकर (तम्, अभिद्रुत्य) उसके ऊपर आक्रमण करके (पाप्मना) पापसे (अविध्यन्) बींधते हुए (सः) वह (यः) जो (सः) वह (पाप्मा) पाप था (यत् एव) जो ही (इदम्) यह (अप्रतिरूपम्) अनुचितको (पश्यति) देखता है (सः, एव) वह ही (सः) वह (पाप्मा) पाप है ॥ ४ ॥

(भावार्थ)–फिर उन देवताओंने नेत्रके देवतासे कहा कि-तू हमारे लिये उदगान कर । इसपर नेत्रके देवताने

तथास्तु कहकर उनके लिये उद्गान किया । चक्षुमें देखने से समूहको जो एक प्रकारका सुख होता है । वह देवताओंके लिये गान किया और जो सुन्दर देखता है वह मेरे लिये हो, ऐसा गान किया । सुन्दर रूपमें नेत्रके देवता की आसक्तिरूप छिद्रको देखकर असुर अपने कामका उद्योग करने लगे । उन असुरोंने जान लिया, कि निःसन्देह इस उद्गाताके द्वारा देवता हमारा तिरस्कार करके हमसे बढ़ जायँगे । यह जान कर उद्गाताके ऊपर शीघ्रता से आक्रमण किया और उसको पापसे जोड़ दिया, साधक अवस्थावाले प्रजापतिके नेत्रमें जो पाप आ जुटा था वह पाप अनुमानसे जाना जाता है, जिससे युक्त हुआ यह प्रजाका नेत्र अनुचितको देखता है, यह वही पाप है ४

अथ ह श्रोत्रमूचुस्त्वं न उद्गायेति तथेति तेभ्यः श्रोत्रमुदगायद्यः श्रोत्रे भोगस्तं देवेभ्य आगायद्यत्कल्याणꣳ शृणोति तदात्मने । ते विदुरनेन वै न उद्गात्राऽत्येष्यन्तीति तमभिद्रुत्य पाप्मनाऽविध्यन्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूपꣳ शृणोति स एव स पाप्मा ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ (अथ) अनन्तर (ह) वे प्रसिद्ध देवता (त्वम्) तू (नः) हमारे लिये (उद्गाय) उद्गान कर (इति) ऐसा (श्रोत्रम्) श्रोत्रके प्रति (ऊचुः) बोले (श्रोत्रम्) श्रोत्र (तथेति) तथास्तु कहकर (तेभ्यः) उनके लिये (उदगायत्) उद्गान करता हुआ (श्रोत्रे) श्रोत्रमें (यः) जो (भोगः) सुखविशेष है (तम्) उसको (देवेभ्यः) देवताओंके लिये (आगायत्) गान करता

हुआ (यत्) जो (कल्याणम्) अच्छा (शृणोति) सुनता है (तत्) वह (आत्मने) अपने लिये ही (ते) वे (विदुः) जानतेहुए (वै) निश्चय (अनेन, उद्गात्रा) इस उद्गाताके द्वारा (नः) हमें (अत्येष्यन्ति) उल्लंघन करेंगे (इति) ऐसा जान कर (तम्, अभिद्रुत्य) उसके ऊपर आक्रमण करके (पाप्मना) पापसे (अविध्यन्) बींधतेहुए (सः) वह (यः) जो (सः) वह (पाप्मा) पाप था (यत् एव) जो ही (इदम्) यह (अप्रतिरूपम्) अनुचितको (शृणोति) सुनता है (सः एव) वह ही (सः) वह (पाप्मा) पाप है ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-फिर उन देवताओंने श्रोत्रके देवतासे कहा, कि-तू हमारे लिये उद्गान कर, इसपर श्रोत्रके देवताने तथास्तु कहकर उनके लिये उदगान किया। श्रोत्रमें जो सुननेसे समूहको होने वाला सुखविशेष है वह देवताओंके लिए गान किया और श्रोत्र जो अच्छा सुनता है वह मेरे लिये हो, ऐसा गान किया। अच्छा सुनने में श्रोत्रके देवताकी आसक्तिरूप छिद्रको देखकर असुर अपने कामका उद्योग करने लगे। उन असुरोंने जाना कि-निःसन्देह इस उद्गाताके द्वारा देवता हमें दबाकर हमसे बढ़ जायँगे। यह जानकर शीघ्र ही उद्गाताके ऊपर आक्रमण किया और उसको पापमें जोड़ दिया, साधन की अवस्थावाले प्रजापतिके श्रोत्रमें जो पाप जुड़ा था यह वही पाप है जो प्रजाके कानोंमें जुड़ कर अनुचित बातोंको सुनता है ॥ ५ ॥

अथ ह मन ऊचुस्त्वं न उद्गायेति तथेति तेभ्यो मन उदगायद्यो मनसि भोगस्तं देवेभ्य आगा-

यद्यत्कल्याणꣳसङ्कल्पयते तदात्मने ते विदुरनेन वै न उद्गात्राऽत्येष्यन्तीति तमभिद्रुत्य पाप्मनाऽविध्यन्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूपꣳ सङ्कल्पयति स एव स पाप्मैवमु खल्वेता देवताः पाप्मभिरुपासृजन्नेवमेनाःपाप्मनाऽविध्यन् ॥६॥

अन्वय और पदार्थ–(अथ) अनन्तर (ह) प्रसिद्ध देवता (त्वम्) तू (नः) हमारे लिये [उद्गाय] उद्गान कर (इति) ऐसा (मनः) मनके प्रति (ऊचुः) बोले (मनः) मन (तथेति) तथास्तु कहकर (तेभ्यः) उनके अर्थ (उदगायत्) उद्गान करता हुआ (मनसि) मनमें (यः) जो (भोगः) सुखविशेष है (तम्) उसको (देवेभ्यः) देवताओंके अर्थ (आगायत्) गान करता हुआ (यत्) जो (कल्याणम्) अच्छा (सङ्कल्पयते) सङ्कल्प करता है (तत्) वह (आत्मने) मेरे निमित्त हो (ते) वे (विदुः) जानते हुए (अनेन, उद्गात्रा) इस उद्गाताके द्वारा (नः) हमको (वै) निश्चय (अत्येष्यन्ति) उल्लङ्घन करेंगे (इति) ऐसा जानकर (तम्, अभिद्रुत्य) उसके ऊपर आक्रमण करके (पाप्मना) पापसे (अविध्यन्) बींधते हुए (सः) वह (यः) जो (सः) वह (पाप्मा) पाप था (यत्, एव) जो ही (इदम्) यह (अप्रतिरूपम्) अनुचितको (सङ्कल्पयति) सङ्कल्प करता है (सः, एव) वही (सः) वह (पाप्मा) पाप है (एवम्, उ) ऐसे ही (एताः) ये (देवताः, खलु) देवता भी (पाप्मभिः) पापोंसे (उपासृजन्) युक्त होगये (एवम्) इसप्रकार (एनाः) ये (पाप्मना) पापसे (अविध्यन्) बिंधगये ॥६॥

(भावार्थ)-फिर वे प्रसिद्ध देवता मनके देवतासे कहनेलगे, कि-तू हमारे लिये उद्गान कर। इस पर मन के देवताने तथास्तु कहकर उद्गान किया। मनमें जो सङ्कल्पसे कमूहको होनेवाला सुखविशेष है उसको देवताओंके लिये गान किया और मन जो शुभ सङ्कल्प करता है वह मेरे लिये हो ऐसा गान किया। शुभ सङ्कल्पमें मनके अभिमानी देवताकी आसक्तिरूप छिद्र देखकर असुर अपना काम करनेका उद्योग करने लगे। वे असुर जानते थे,कि-निःसन्देह इस उद्गाताके द्वारा देवता हमें दबाकर हमसे आगे बढ़ जायँगे। ऐसा जान कर उन्होंने उद्गाताके ऊपर आक्रमण कर उसको पाप से बींध दिया। साधक अवस्थावाले प्रजापतिके मनमें वह जो पाप आजुटा था, वह पाप अनुमानसे जाना-जाता है, जिससे युक्त हुआ मन जिन अनुचित सङ्कल्प करता है वह वही पाप है। ऐसे ही जिनको यहाँ नहीं कहा है वे त्वचा आदिके प्रसिद्ध देवता भी अपना२ इन्द्रियोंके साथ आसक्त होनेके कारण पापसे युक्त होगये अर्थात् इसप्रकार वाणी आदिके अभिमानी देवता ओंकी समान ये देवता पापसे युक्त होगये ॥ ६ ॥

ये वाणी आदिके देवता मृत्युकेपार नहीं होसकते, ऐसा निश्चय करके देवता मुख्य प्राणसे प्रार्थना करने लगे—

अथ हेममासन्यं प्राणमूचुस्त्वं न उद्गायेति तथेति तेभ्य एष प्राण उदगायत्ते विदुरनेन वै न उद्गात्राऽत्येष्यन्तीति तदभिद्रुत्य पाप्मनाऽवि-व्यत्सन्स यथाश्मानमृत्वा लोष्टो विध्वꣳसेतैव-

थँ्हैव विध्वँ्समाना विष्वञ्चो विनेशुस्ततो देवा अभवन्पराऽसुरा भवत्यात्मना पराऽस्य द्विषन् भ्रातृव्यो भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अनन्तर (ह) प्रसिद्ध देवता (त्वम्) तू (नः) हमारे अर्थ (उद्गाय) उद्गान कर (इति) ऐसा (इमम्) इस (आसन्यम्) मुखमें रहने वाले (प्राणं, ऊचुः) प्राणके प्रति कहते हुए (एषः) यह (प्राणः) प्राण (तथा, इति) तथास्तु कह कर (तेभ्यः) उनके अर्थ (उदगायत्) उद्गान करता हुआ (ते) वे (विदुः) जानगये (अनेन, उद्गात्रा) इस उद्गाताके द्वारा (वै) निश्चय (नः) हमको (अत्येष्यन्ति) उल्लंघन करेंगे (इति) ऐसा जान कर (तत्, अभिद्रुत्य) उसके ऊपर आक्रमण करके (पाप्मना) पाप से (अविव्यत्सन्) बींधना चाहने लगे (सः) वह दृष्टान्त है (यथा) जैसे (अश्मानम्) पाषाणको (ऋत्वा) प्राप्त होकर (लोष्टः) मट्टीका ढला (विध्वंसेत) नष्ट होजाय (एवं,ह एव) इसप्रकार ही (विश्वञ्चः) अनेकों रीतियोंसे (विध्वंसमानाः) विध्वस्त होतेहुए (विनेशुः) नाशको प्राप्त होगये (ततः) तिससे (देवाः,अभवन्) देवता अपने २ रूपमें आगये (असुराः) असुर (परा, अभवन्) परास्त होगये (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (आत्मना, भवति) प्रजापति रूप होजाता है (अस्य) इसका (द्विषन्, भ्रातृव्यः) द्वेष करनेवाला शत्रु (परा,भवति) तिरस्कार पाता है ७

(भावार्थ)-फिर उन प्रसिद्ध देवताओंने इस मुखमें रहनेवाले प्राणसे कहा,कि-तू हमारे लिये उद्गान कर

इस पर प्राणने तथास्तु कहकर उनके लिये उद्गान किया वे असुर जानगये, कि-निःसन्देह इस उद्गाताके द्वारा देवता हमारा तिरस्कार करके हमसे बढ़जायँगे। यह जान कर उन्होंने शीघ्र ही उद्गाता के ऊपर आक्रमण किया और उसको पापसे वींधना चाहा, परन्तु उसने निष्कामभावसे उद्गान किया था इसकारण उसको स्पर्श करते ही असुर अनेकों प्रकारसे बलहीन होकर इसप्रकार विनष्ट होने लगे कि-जैसे पाषाणके ऊपर फेंका हुआ मृत्तिकाका डला पत्थर पर लगते ही चूरा२ होकर विनष्ट होता हुआ इधर उधरको विखर जाता है। असुरोंका विनाश होजानेसे देवपनेके प्रतिबन्धक स्वाभाविक आसक्तिसे उत्पन्न हुए पाप दूर होगये। इसप्रकार मुख्य प्राणके आश्रयसे वाणी आदि के देवता अपने २ अग्नि आदि रूपमें आगये और असुरोंका तिरस्कार होगया, फिर उनका जय नहीं हुआ। जो इसप्रकार प्राणकी आत्मभावसे उपासना करताहै वह प्रजापतिरूप होजाता है और उससे नित्य द्वेष करनेवाले पापरूप शत्रुका तिरस्कार होता है ॥ ७ ॥

ते होचुः क नु सोऽभूद्यो न इत्थमसक्तेत्ययमा-स्येऽन्तरिति सोऽयास्य आङ्गिरसोऽङ्गानाꣳ हि रसः ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ते, ह) वे प्रसिद्ध इन्द्रियें (ऊचुः) कहनेलगीं (सः) वह (क्व, नु) कहाँ (अभूत्)है (यः) जो (नः) हमको (इत्थम्) इसप्रकार (असक्त) देव-भावमें युक्त करता हुआ (इति) ऐसा विचार कर (आस्ये) मुखमें (अन्तः) भीतर (अयम्) वह [अस्ति]

है (इति) इसकारण (सः) वह (अयास्यः) अया-
स्य है (हि) क्योंकि (अंगानां, रसः) अंगोंका रस है
[अतः] इस कारण (आङ्गिरसः) आंगिरस है ॥ ८ ॥

(भावार्थ)-मुख्य प्राणके द्वारा जिनको देवस्वरूप
की प्राप्ति हुई है ऐसी वे प्रजापतिकी इन्द्रियें परस्पर
कहने लगीं, कि-जिसने हमको इस देहभावमें पहुँचाया
है वह कहां है ? ऐसा विचार कर कहा कि-मुखमें जो
आकाश है उसके भीतर ही रहता है उसका कोई आश्रय
नहीं है इसकारण उसको अयास्य अर्थात् मुखके भीतर
आकाशमें रहनेवाला कहते हैं, वह कार्यकारणरूप अंगों
का रस कहिये सार है इस कारण आंगिरस कहलाता
है । प्राणके विना शरीर सूख जाता है इसकारण उसको
स्थूल सूक्ष्म सबका सार कहा है ॥ ८ ॥

सा वा एषा देवता दूर्नाम दूरꣳ ह्यस्या मृत्यु
र्दूरꣳ ह वा अस्मान्मृत्युर्भवति य एवं वेद ॥९॥

अन्वय और पदार्थ-(सा) वह (वै) प्रसिद्ध (एषा)
यह (देवता) देवता (दूर्नाम) दूर नामवाला है (हि)
क्योंकि (अस्याः) इससे (मृत्युः) मृत्यु (दूरम्) दूर
होता है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है
(अस्मात्) इससे (मृत्युः) मृत्यु (वै) निश्चय (दूरम्
ह, भवति) दूर ही होता है ॥ ९ ॥

(भावार्थ)-जिसको पाकर असुर विनष्ट होगये उस
वर्त्तमान उपासकके शरीरमें रहनेवाले प्राण देवताका
नाम दूर है, क्योंकि-इस प्राण देवतासे मृत्यु कहिये विष-
यासक्तिरूप पाप दूर होता है । इस दूर नामके कारण
प्राण विशुद्ध है । जो इस विशुद्धि गुणयुक्त प्राणकी उपा-

सना करता है, उसके समीपसे पापरूप मृत्यु निःसन्देह दूर चलाजाता है। शास्त्र और आचार्यने देवता आदि का जैसा स्वरूप कहा है उस ही स्वरूपके उप कहिये मन से समीप लाकर आसन कहिये लौकिक वृत्तिके विघ्नसे रहित चिन्तवन उपासना कहलाता है। जबतक उस देवता आदिके स्वरूपका अपनेमें अभिमान फुरे तबतक उस उपासनाको करै ॥ ९ ॥

सा वा एषा देवतैतासां देवतानां पाप्मानं मृत्युमपहत्य यत्राऽऽसां दिशामन्तस्तद्गमयाञ्चकार तदासां पाप्मनो विन्यदधात्तस्मान्न जनमियान्नान्तमियान्नेत्पाप्मानं मृत्युमन्ववायानीति ॥१०॥

अन्वय और पदार्थ-(सा) वह (एषा) यह (वै) प्रसिद्ध (देवता) प्राण देवता (एतासाम्) इन (देवतानाम्) देवताओंके (पाप्मानम्) पापरूप (मृत्युम्) मृत्युको (अपहत्य) छेदन करके (यत्र) जहाँ (आसाम्) इन (दिशाम्) दिशाओंका (अन्तः) अन्त है (तत्) तहाँ (गमयाञ्चकार) जाता हुआ (तत्) तहाँ (आसाम्) इन के (पाप्मनः) पापोंको (विन्यदधात्) विविध अधम भावसे स्थापन करता हुआ (तस्मात्) तिससे (जनम्) जनको (न) नहीं (इयात्) प्राप्त होय (अन्तम्) निवासस्थानको (न) नहीं (इयात्) प्राप्त होय (पाप्मानम्) पापरूप (मृत्युम्) मृत्युको (अन्ववायानि) प्राप्त होऊँ (इति) ऐसे (नेत्) महाभयसे ॥ १० ॥

(भावार्थ)-वह यह प्रसिद्ध प्राण देवता इन वाणी आदिके अभिमानी देवताओंके पापरूप मृत्यु कहिये विषयासक्तिका छेदन करके जहाँ इन दिशाओंका अन्त है

अर्थात् शास्त्रीय ज्ञानसे संस्कार को प्राप्तहुए मनुष्योंके निवासस्थानसे अन्यत्र रहनेवाले मनुष्यमें उसको खेंचे हुए चलागया, तहां इन वाणी आदि के अभिमानियों के पापोंको अनेकों प्रकारके अधम भावसे स्थापन कर दिया, इसकारण शास्त्रीय ज्ञानशून्य पापयुक्त मनुष्यों का दर्शन भाषण आदि संसर्ग नहीं करना चाहिये तथा ऐसे मनुष्योंके निवासस्थानमें भी नहीं आना चाहिये । यदि मैं जाऊँगा तो निषेधके उल्लंघनसे पापरूप मृत्युको प्राप्त होऊँगा, ऐसे भयसे किसी शिष्ट पुरुषको तहां नहीं जाना चाहिये ॥ १० ॥

सा वा एषा देवतैतासां देवतानां पाप्मानं मृत्यु-मपहत्याथैना मृत्युमत्यवहत ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सा) वह (एषा) यह (वै) प्रसिद्ध (देवता) देवता (एतासाम्) इन (देवतानाम्) देवताओंके (पाप्मानम्) पापरूप (मृत्युम्) मृत्युको (अपहत्य) छेदन करके (अथ) अनन्तर (एनाः) इनको (मृत्युम्, अत्यवहत) मृत्युका अतिक्रमण कराता हुआ ॥ ११ ॥

(भावार्थ)-इस प्रसिद्ध प्राण देवताने वाणी आदिके देवताओंके पापरूप मृत्युका हनन करके फिर इन वाणी आदिके देवताओंको मृत्युका उल्लंघन कराकर अपने२ अपरिच्छिन्न अग्नि आदि स्वरूपमें पहुँचा दिया ॥ ११ ॥

स वै वाचमेव प्रथमामत्यवहत्स यदा मृत्युमत्यमुच्यत सोऽग्निरभवत्सोऽयमग्निः परेण मृत्युमतिक्रान्तो दीप्यते ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (वै) प्रसिद्ध (प्रथमाम्) मुख्य (वाचम्, एव) वाणीको ही (अत्यवहत्) मृत्युके

पार करता हुआ (सा) वह (यदा) जब (अत्यमुच्यत) मृत्युके पार होकर छूटगई (सा) वह (अग्निः) अग्नि (अभवत्) हुआ (सः) वह (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि (मृत्युम्, अतिक्रान्तः) मृत्युके पार हुआ (परेण) पापसे छूटने पर (दीप्यते) प्रकाशित होता है ॥ १२ ॥

(भावार्थ)-उस प्रसिद्ध प्राणने उद्गीथ कर्ममें अति उपकारक होनेके कारण मुख्य वाणीको ही मृत्युके पार करके उसके मूल स्वरूपमें पहुँचा दिया, वह वाणी जब पापरूप मृत्युके पार होकर मुक्त हुई तब वह स्वयं ही अग्निरूप होगई, ऐसा यह पापके पार हुआ अग्नि पापसे छूटने पर अच्छेप्रकारसे प्रकाशित होता है ॥१२॥

अथ प्राणमत्यवहत्स यदा मृत्युमत्यमुच्यत स वायुरभवत्सोऽयं वायुः परेण मृत्युमतिक्रांतःपवते १३

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अनन्तर (प्राणम्) प्राणको (अत्यवहत्) मृत्युके पार पहुँचाता हुआ (सः) वह (यदा) जब (मृत्युम्, अत्यमुच्यत) मृत्युके पार होकर छूटा (सः) वह (वायुः) वायु (अभवत्) होगया (सः, अयम्) वह यह (वायुः) वायु (अतिक्रान्तः) पापके पार हुआ (परेण, मृत्युम्) मृत्युसे रहित होने पर (पवते) चलता है ॥ १३ ॥

(भावार्थ)-फिर उस प्राणने घ्राणको मृत्युका उल्लंघन करा कर उसके मूल स्वरूपमें पहुँचा दिया, वह घ्राण जब पापरूप मृत्युको लाँघ कर छूटा तब स्वयं ही वायुरूप होगया ऐसा यह पापसे छूटा हुआ वायु पापसे विमुक्त होने पर उत्तमतासे बहता है ॥ १३ ॥

अथ चक्षुरत्यवहत्तद्यदा मृत्युमत्यमुच्यत स आ-

दित्योऽभवत्सोऽसावादित्यः परेण मृत्युमतिक्रान्तस्तपति ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अनन्तर (चक्षुः) चक्षुको (अत्यवहत्) मृत्युके पार पहुँचाता हुआ (तत्) वह (यदा) जब (मृत्युम्, अत्यमुच्यत) मृत्युके पार होकर छूटगया (सः) वह (आदित्यः) आदित्य (अभवत्) होगया (सः) वह (असौ) यह (आदित्यः) आदित्य (अतिक्रान्तः) पार हुआ (परेण, मृत्युम्) मृत्युसे रहित होने पर (तपति) तपता है ॥ १४ ॥

(भावार्थ)-फिर उस प्राणने चक्षुको मृत्युका उल्लंघन कराकर उसके मूल स्वरूपमें पहुँचा दिया । चक्षु जब पापरूप मृत्युके पार होकर मुक्त हुवा तब स्वयं ही आदित्यरूप होगया । वह पापके सम्पर्कसे रहित हुआ आदित्य पाप शून्य होने पर उत्तमरूपसे तपता है १४

अथ श्रोत्रमत्यवहत्तद्यदा मृत्युमत्यमुच्यत ता दिशोऽभवꣳस्ता इमा दिशः परेण मृत्युमतिक्रान्ताः ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अनन्तर (श्रोत्रम्) श्रोत्र को (अत्यवहत्) मृत्युके पार पहुँचाता हुआ (तत्) वह (यदा) जब (मृत्युम्, अत्यमुच्यत) मृत्युके पार होकर छूटगया (ताः) वे (दिशः) दिशायें (अभवन्) होगयीं (ताः) वे (इमाः) ये (दिशः) दिशायें (अतिक्रांताः) पार हुई (मृत्युम्, परेण) पापसे विमुक्त हैं ॥ १५ ॥

(भावार्थ)-फिर उस प्राणने श्रोत्रको मृत्युके पार करके उसके मूल स्वरूपमें पहुँचा दिया. वह श्रोत्र जब पाप

रूप मृत्युको लाँघकर छूटा तब स्वर्ग दिशारूप होगया, वे पापसे रहित हुईं दिशायें पापसे छूटकर पूर्व आदि विभागसे स्थित हैं ॥ १५ ॥

अथ मनोऽत्यवहत्तद्यदा मृत्युमत्यमुच्यत स चन्द्रमा अभवत्सोऽसौ चन्द्रः परेण मृत्युमतिक्रान्तो भात्येवꣳ ह वा एनमेषा देवता मृत्युमतिवहति य एवं वेद ॥ १६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अनन्तर (मनः) मनको (अत्यवहत्) मृत्युके पार पहुँचाता हुआ (तत्) वह (यदा) जब (मृत्युम्, अत्यमुच्यत) मृत्युके पार होकर छूटा (सः) वह (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (अभवत्) हुआ (सः) वह (असौ) यह (चन्द्रः) चन्द्रमा (अतिक्रान्तः) मृत्युके पार हुआ (परेण, मृत्युम्, भाति) पापसे विमुक्त होनेपर प्रकाशित होता है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (एनम्) इसको (एषा) यह (देवता) देवता (एवम्, ह, वै) इस प्रकार ही (मृत्युम्, अतिवहति) मृत्युके पार पहुँचा देता है ॥ १६ ॥

(भावार्थ)- फिर उस प्राणने मनको पापका उल्लंघन कराकर उसके मूल स्वरूपमें पहुँचा दिया, वह मन जब पापको लाँघ कर मुक्त हुआ तब वह स्वर्ग ही चन्द्रमा रूप होगया, वह पापसे रहित हुआ चन्द्रमा पापका वियोग होनेपर उत्तमतासे प्रकाशित हो रहा है। जो इस प्रकार अग्नि आदि रूप वाक् आदि पाँचोंसे मुक्त प्राणकी उपासना करता है उसको यह प्राण देवता इसप्रकार ही पापके पार करके वैराज पदपर पहुँचा देता है ॥१६॥

अथात्मनेऽन्नाद्यमागायद्यद्धि किञ्चान्नमद्यतेऽने-
नैव तदद्यत इह प्रतितिष्ठति ॥ १७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अनन्तर (आत्मने) अपने लिये (अन्नाद्यम्) भक्षण करनेयोग्य अन्नको (आगात्) गाता हुआ (हि) क्योंकि (यत्किञ्च) जो कुछ (अन्नम्) अन्न (अद्यते) खाया जाता है (तत्) वह (अनेनैव) इस प्राणके द्वारा ही (अद्यते) खाया जाता है (इह) यहाँ (प्रतितिष्ठति) स्थित होता है ॥ १७ ॥

(भावार्थ)—मुख्य प्राणने अन्य इन्द्रियोंके साधारण प्रजापतिरूप फलका गान करके फिर अपने लिये भक्षण करने योग्य अन्नका गान किया, क्योंकि-प्राणी जो कुछ भी अन्न भक्षण करते हैं वह प्राणके द्वारा ही भक्षण करते हैं, इसलिये प्राणने उस भक्षण करने योग्य अन्न का अपने लिये गान किया, ऐसा प्रतीत होता है और इस शरीरके आकारके परिणामको प्राप्त हुए अन्नमें प्राण स्थित रहता है, इसकारण भी प्राणने अन्नको अपने लिये गान किया ऐसा प्रतीत होता है। प्राणसे जो अन्न का भक्षण होता है वह प्राणकी और इन्द्रियोंकी स्थितिके ही लिये है, इसलिये वाणी आदिकी समान शुभकी आसक्तिसे उत्पन्न हुए पापका संभव प्राणमें नहीं है ॥ १७ ॥

ते देवा अब्रुवन्नेतावद्वा इदꣳ सर्वं यदन्नं तदा-
त्मन आगासीरनु नोऽस्मिन्नन्न आभजस्वेति
ते वै माऽभिसंविशतेति तथेति तꣳ समन्तं परि-
ण्यविशन्त । तस्माद्यदनेनान्नमत्ति तेनैतास्तृ-

प्यन्त्येवथ्ँ ह वा एनथ्ँस्वा अभिसंविशन्ति
भर्त्ता स्वानाथ्ँ श्रेष्ठः पुर एता भवत्यन्नादोऽ-
धिपतिर्य एवं वेद य उ हैवं विदथ्ँ स्वेषु प्रति
प्रतिर्बुभूषति न हैवालं भार्येभ्यो भवत्यथ य
एवैतमनु भवति यो वैतमनु भार्यान् बुभूर्षति स
हैवालं भार्येभ्यो भवति ॥ १८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(ते) वे (देवाः) देवता (अब्रुवन्) कहने लगे (इदम्) यह (सर्वम्) सब (वै) प्रसिद्ध (यत्) जो (अन्नम्) अन्न है (एतावत्) इतना ही है (तत्) वह (आत्मने) अपने लिये (आगासीः) गाया था (अनु) आगेको (नः) हमको (अस्मिन्, अन्ने) इस अन्नमें (आमजस्व) भागवाला कर (इति) ऐसा कहने पर (ते, वै) ऐसे तुम (मा, अभिसंविशत) मुझमें सब ओरसे प्रवेश करो (इति) ऐसा कहने पर (तथेति) तथास्तु कहकर (तम्, समन्तं, परिण्यविशन्त) उसको सब ओरसे घेर कर स्थित होगये (अस्मात्) तिससे (यत्) जो (अनेन) इसके द्वारा (अन्नम्) अन्नको (अस्ति) खाता है (तेन) तिससे (एताः) ये (तृप्यन्ति) तृप्त होते हैं (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (एनम्) इसके प्रति (एवं ह वै) इस प्रकार ही (स्वाः) अपनी ज्ञातिवाले (अभिसंविशन्ति) आश्रय लेते हैं (स्वानाम्) अपनोंका (भर्त्ता) भरण करनेवाला (श्रेष्ठः) श्रेष्ठ (पुरः, एता) अग्रगामी (अन्नादः) अन्न खानेवाला (अधिपतिः) अधिष्ठाता (भवति) होता है (ह) निश्चय (उ) अचरज है

(स्वेषु) अपनी ज्ञातिवालोंमें (एवंविदं, प्रति) ऐसा जाननेवालेके प्रति (यः) जो (प्रतिः, बुभूषति) प्रतिकूल होना चाहता है (ह) निश्चय (भार्येभ्यः) पोषण करने योग्योंके लिये (अलम्) पर्याप्त (न, एव) नहीं (भवति) होता है (अथ) और (यः) जो (एतं, अनु) इसके अनुगत (एव) ही (भवति) होता है (वा) अथवा (यः) जो (एतं, अनु) इसके अनुकूल होकर (भार्यान्) भरण करने योग्योंको (बुभूर्षति) पोषण करना चाहता है (ह) निश्चय (सः, एव) वह ही (भार्येभ्यः) भरणीयोंके लिये (अलम्) पर्याप्त (भवति) होता है ॥ १८ ॥

(भावार्थ)-वे वाणी आदिके देवता प्राणसे कहनेलगे कि-यह सब प्रसिद्ध प्राणकी स्थितिका कारणरूप जो अन्न है वह इतना ही है, इससे अधिक नहीं है और उस सबको तूने अपने लिये ही गाया है अर्थात् उसको तूने गानसे अपना कर लिया है और हम उसके बिना जीवित नहीं रह सकते, इसलिये अब आगेको हमें भी इस अन्नमेंसे भाग दे। ऐसा कहने पर प्राणने कहा, कि-यदि तुम अन्न चाहते हो तो चारों ओरसे मुझमें प्रवेश कर जाओ। ऐसा कहने पर वे देवता इस बातको अङ्गीकार करके उस प्राणको चारों ओरसे घेर कर स्थित होगये। क्योंकि—वे प्राणके आश्रयसे स्थित हुए इस लिये लोग जिस अन्नको प्राणके द्वारा भक्षण करते हैं उस प्राणके अन्नसे ये वाणी आदि तृप्त होते हैं। वाक् आदिके देवता प्राणके आश्रयसे रहते हैं। और वह प्राण मैं ही हूँ ऐसा जान कर जो उपासक उपासना करता है तो जिसप्रकार वाक् आदि प्राणका आश्रय लेते हैं

जैसे ही इस उपासककी ज्ञातिके लोग इसका आश्रय लेते हैं और यह अपनी ज्ञातियोंका पोषण करनेवाला पूजनीय, अग्रगामी, प्रदीप्त जठराग्निवाला व्याधि रहित तथा मुख्य बनकर पालन करनेवाला होता है। जो पुरुष अपनी ज्ञातिमें ऐसे प्राणवेत्ताके प्रतिकूल होकर उससे स्पर्धा करता है वह निःसन्देह प्राणसे स्पर्धा करनेवाले असुरोंकी समान पोषण करनेयोग्योंका पोषण नहीं कर सकता है और जो अपनी ज्ञातिमें ऐसे प्राणवेत्तासे अनुराग रखता है तथा उसके अनुकूल होकर रहता हुआ अपने पोषण करनेयोग्योंका पोषण करना चाहता है वही निःसन्देह अपने पोषणीयोंका पोषण कर सकता है ॥ १८ ॥

सोऽयास्य आङ्गिरसोऽङ्गानाᳫं हि रसः प्राणो वा
अङ्गानाᳫं रसः प्राणो हि वा अङ्गानाᳫं रस-
स्तस्माद्यस्मात्कस्माच्चाङ्गात्प्राण उत्क्रामति तदेव
तच्छुष्यत्येष हि वा अङ्गानाᳫं रसः ॥ १९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (अयास्यः) मुखमें रहनेवाला (आङ्गिरसः) आङ्गिरस है (हि) क्योंकि (अङ्गानाम्) अङ्गोंका (रसः) रस है (प्राणः, वै) प्रसिद्ध प्राण (अङ्गानाम्) अवयवोंका (रसः) सार है (हि) क्योंकि (प्राणः, वै) प्रसिद्ध प्राण (अङ्गानाम्, रसः) अङ्गोंका सार है (तस्मात्) तिससे (यस्मात्, च, कस्मात्) जिस किसी भी (अङ्गात्) अङ्गसे (प्राणः) प्राण (उत्क्रामति) निकल जाता है (तत्, तत्, एव) वह वह ही (शुष्यति) सूख जाता है (एषः, वै, हि) यह प्रसिद्ध प्राण ही (अङ्गानाम्) अङ्गोंका (रसः) रस है ॥ १९ ॥

(भावार्थ)-वह मुखमें रहनेवाला प्राण आङ्गिरस है, क्योंकि-वह अङ्गोंका सार है, प्रसिद्ध प्राण शरीरके अवयवोंका सार है, इसलिये जिस किसी अवयवमेंसे प्राण निकल जाता है, वह वह ही अवयव सूखजाता है, इसलिये अवयवोंके सार इस प्रसिद्ध प्राणकी ही उपासना करनी चाहिये, वाक् आदिकी नहीं ॥ १९ ॥

एष उ एव बृहस्पतिर्वाग् बृहती तस्या एष पतिस्तस्मादु बृहस्पतिः ॥ २० ॥

अन्वय और पदार्थ-(एषः, उ,एव) यह ही (बृहस्पतिः) बृहस्पति है (वाग् , वै) प्रसिद्ध वाक् (बृहती) बृहती है (तस्याः) उसका (एषः) यह (पतिः) पति है (तस्मात् , उ) तिससे ही (बृहस्पतिः) बृहस्पति है ॥२०॥

(भावार्थ)-यह आङ्गिरस ही बृहस्पति है, वाणी प्रसिद्ध बृहती छन्द है, सब ऋचायें इस बृहती छन्द के अन्तर्गत हैं, इसलिये वाणी ऋचारूप है, उस वाणीरूप ऋचाका यह प्राण पति है,क्योंकि-वाणीका पालन करता है, इसलिये ही यह बृहस्पति कहिये ऋचाओंका प्राण वा आत्मा है ॥ २० ॥

एष उ एव ब्रह्मणस्पतिर्वाग् वै ब्रह्म तस्या पतिस्तस्मादु ब्रह्मणस्पतिः ॥ २१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एषः, उ, एव) यह प्राण ही (ब्रह्मणस्पतिः) ब्रह्मणस्पति है (वाग् , वै) प्रसिद्ध वाणी (ब्रह्म) वेद है (तस्याः) उसका (एषः) यह (पतिः) पति है (तस्मात् , उ) तिससे ही (ब्रह्मणस्पतिः) ब्रह्मणस्पति है॥

(भावार्थ) यह प्राण ही ब्रह्मणस्पति है,वाणी प्रसिद्ध यजुर्वेद है, उसका यह पति है,इसलिये यह ब्रह्मणस्पति कहिये यजुर्वेदका आत्मा है ॥ २१ ॥

एष उ एव साम वाग्वै साऽमैष सा चामाश्चेति तत्साम्नः सामत्वम् । यद्वेव समः प्लुषिणा समो मशकेन समो नागेन सम एभिस्त्रिभिर्लोकैः समोऽनेन सर्वेण तस्मादेव सामाश्नुते साम्नः सायुज्यꣳ सलोकतां य एवमेतत्साम वेद ॥ २२ ॥

अन्वय और पदार्थ- (एषः , उ, एव) यह ही (साम) साम है (सा) वह (वाग् वै) प्रसिद्ध वाणी (अमः) अम है (एषः) यह प्राण (सा) सा है (च) और (अमः,-च) अम भी है (इति) इस कारण (तत्) वह (साम्नः) सामका (सामत्वम्) सामपना है (यत्) क्योंकि (प्लुषिणा, समः) पुत्तिकाकी समान है (मशकेन, समः) मच्छरकी समान है (नागेन, समः) हाथीकी समान है (एभिः त्रिभिः, लोकैः, समः) इन तीन लोकोंकी समान है (अनेन, सर्वेण, समः) इस सबके समान है (तस्मात्, उ, एव) तिससे ही (साम, एव) साम ही है । (यः) जो (एवम्) इस प्रकार (एतत् , साम) इस सामको (वेद) जानता है (सः) वह (साम्नः) सामके (सायुज्यम्) सायुज्यको (सलोकताम्) समान लोकताको (अश्नुते) भोगता है ॥ २२ ॥

(भावार्थ)-यह प्राण साम है । स्त्री लिङ्ग वस्तुमात्रको विषय करती है, इस कारण वाणी सा कहलाती है, पुल्लिङ्ग वस्तुमात्रको विषय करने वाली वाणी अम कहलाती है । यह प्राणही सा और अम है, इस व्युत्पत्तिसे ही सामका सामपना है । वाणीमें गौण सामपना है और प्राणमें मुख्य सामपना है । उपासनाके लिये प्रकारान्तर से सामका सामपना कहते हैं कि-यह सूत्रात्मारूप प्राण

पुत्तिका (दीपक) के शरीरकी समान, मच्छरके शरीर की समान और, हाथीके शरीरकी समान, इन तीनों लोकोंके विराटशरीरकी समान और इस सर्वरूप कहिये हिरण्यगर्भके कार्य जगत्की समान है, इसलिये ही साम है जो इसप्रकार इस सामरूप प्राणको प्राणात्माके अभिमानका आविर्भाव होने पर्यन्त उपासना करता है वह अपनी भावनाके अनुसार सामरूप प्राणके सायुज्यको अर्थात् उसकी समान इन्द्रियोंके अभिमानत्वको और प्राणकी सलोकता को भोगता है॥ २२ ॥

एष उ वा उद्गीथः प्राणो वा उत्प्राणेन हीदꣳ सर्वमुत्तब्धं वागेव गीथोच्च गीथा चेति उद्गीथः ॥ २३ ।

अन्वय और पदार्थ-(एषः, उ) यह ही (उद्गीथः, वै) प्रसिद्ध उद्गीथ है (हि) क्योंकि (इदं, सर्वम्) यह सब (प्राणेन) प्राणने (उत्तब्धम्) ऊँचा धारण किया है [अतः] इस कारण (प्राणः, वै) प्राण ही (उत्) उत् है (वाक्, एव) वाणी (गीथा) गीथा है (उत्) उत् है (च) और (गीथा, च) गीथा भी है (इति) इस कारण (उद्गीथः) उद्गीथ है ॥ २३ ॥

(भावार्थ)-यह प्राण ही उद्गीथ है, क्योंकि-प्राण इस सब जगत्को ऊँचा करके धारण किये हुए है, इस कारण प्राण ही उत् है और वाणीसे ही गान किया जाता है इस कारण वाणी गीथा उद् और गीथा दोनों मिलकर उद्गीथ है और इन दोनों शब्दोंसे प्राण ही कहाजाता है ॥ २३ ॥

तद्धापि ब्रह्मदत्तश्चैकितानेयो राजानं भक्षयन्नु

वाचायं त्यस्य राजा मूर्धानं विपातयताद्यदितो ऽयास्य आङ्गिरसोऽन्येनोदगायदिति वाचाच ह्येव स प्राणेन चोदगायदिति ॥ २४ ॥

अन्वय और पदार्थ- (तत्, अपि) इस विषयमें भी (ह) आख्यायिका है (चैकितानेयः) चिकितान का पुत्र (ब्रह्मदत्तः) ब्रह्मदत्त (राजानम्) सोमको (भक्षयन्) भक्षण करता हुआ (उवाच) बोला (अयास्यः) मुख में रहनेवाला प्राण (आङ्गिरसः) उद्गाता है (यत्) यदि (इतः) इससे (अन्येन) अन्य देवताके द्वारा (उदगायत्) उद्गान किया हो (इति) ऐसा हो तो (राजा) सोम (त्यस्य) तिस मेरे (मूर्धानम्) शिरको (विपातयतात्) गिरादेय (इति) इसप्रकार (वाचा, च) वाणीके द्वारा भी (प्राणेन एव, हि) प्राणके द्वारा भी (सः) वह (उदगायत्) उद्गान करता हुआ॥२४॥

(भावार्थ)-इस विषयमें एक आख्यायिका भी सुननेमें आती है-चिकितानके पोते ब्रह्मदत्तने विश्वसृष्टा ऋषियोंके यज्ञमें सोमका भक्षण करते हुए कहा, कि-मुखमें रहनेवाला प्राण उद्गाता है, इसलिये वाणी सहित प्राणसे भिन्न अन्य देवताके द्वारा यदि पूर्व ऋषियों के यज्ञमें उद्गान किया हो तो मैं मिथ्याभाषी होऊं और इसकारण मुझ मिथ्याभाषीके शिरको यह सोम गिरादेय। ऐसा वाणीसे और प्राणसे उस मुख्य प्राणरूप उद्गाताने उद्गान किया, यह अर्थ शपथसे निश्चित किया॥ २४॥

तस्य हैतस्य साम्नो यः स्वं वेद भवति हास्य

स्वं तस्य वै स्वर एव स्वं तस्मादार्त्विज्यं करिष्यन्वाचि स्वरमिच्छेत तया वाचा स्वरसम्पन्नयार्त्विज्यं कुर्यात्तस्माद्यज्ञे स्वरवन्तं दिदृक्षन्त एव। अथो यस्य स्वं भवति भवति हास्य स्वं य एवमेतत्साम्नः स्वं वेद ॥ २५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्य) उस (एतस्य,ह) इस प्रसिद्ध (साम्नः, स्वम्) सामके धनको (यः,वेद) जो जानता है (अस्य) इसके (स्वं,ह) प्रसिद्ध धन (भवति) होता है (तस्य, वै) उस प्रसिद्ध का (स्वरः, एव) स्वर ही (स्वम्) धन है (तस्मात्) तिससे (आर्त्विज्यं,करिष्यन्) ऋत्विक् का कर्म करना चाहनेवाला (वाचि, स्वरं इच्छेत) वाणी में स्वरको चाहे (तया) तिस (स्वरसम्पन्नया, वाचा) स्वरयुक्त वाणीसे (आर्त्विज्यं, कुर्यात्) ऋत्विक्का कर्म करै (अथो) जैसे (यस्य) जिसके (स्वम्) धन (भवति) होता है (तस्मात्) तैसे ही (यज्ञे) यज्ञमें (स्वरवन्तम्) स्वरवालेको (दिदृक्षन्तः, एव) देखना चाहते ही हैं (यः) जो (एवम्) इसप्रकार (एतत्) इस (साम्नः) सामके (स्वम्) धनको (वेद) जानता है (अस्य) इस के (स्वं, ह) प्रसिद्ध धन (भवति) होता है ॥ २५ ॥

(भावार्थ)-इस प्रसिद्ध सामके स्वररूप धनको जो जानता है उसको प्रसिद्ध धनरूप फल प्राप्त होता है। उस सामका कण्ठमाधुर्यरूप स्वर ही धन कहिये भूषण है । क्योंकि कण्ठकी मधुरतासे शोभायमान उद्गाता ऐश्वर्यवाला प्रतीत होता है, इसलिये ऋत्विक्का कर्म करनेवाले उद्गाताको अपनी वाणीमें अच्छे स्वरको चाहना करनी चाहिये, इसके लिये दन्तधावन

आदि करै । उस स्वरभरी वाणीसे ऋत्विक्का काम उद्गान करै। जैसे जिसके पास धन होता है उसको संसारी पुरुष देखना चाहते हैं, ऐसे ही मनुष्य यज्ञमें अच्छे स्वरवाले उद्गाताको भी देखना चाहते हैं। जो इसप्रकार सामके इस धनको जानता है उसको प्रसिद्ध धन प्राप्त होता है ॥ २५ ॥

तस्य हैतस्य साम्नो यः सुवर्णं वेद भवति हास्य सुवर्णं तस्य वै स्वर एव सुवर्णं भवति हास्य सुवर्णं य एवमेतत्साम्नः सुवर्णं वेद ॥ २६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्य) तिस (एतस्य, ह) इस प्रसिद्ध (साम्नः) सामके (सुवर्णम्) सुवर्णको (यः) जो (वेद) जानता है (अस्य) इसके (सुवर्णम्, ह) प्रसिद्ध सुवर्ण (भवति) होता है (तस्य, वै) उस प्रसिद्धका (स्वरः, एव , स्वर ही (सुवर्णम्) सुवर्ण है (यः) जो (एवम्) इसप्रकार (साम्नः) सामके (एतत् सुवर्णम्) इस सुवर्णको (वेद) जानता है (अस्य) इसके (सुवर्णं, ह) प्रसिद्ध सुवर्ण (भवति) होता है ॥ २६ ॥

(भावार्थ)-इस सामनामक मुख्य प्राणके सुवर्ण कहिये यह अक्षर कण्ठस्थानी है यह दन्तस्थानी है ऐसे लक्षणको जानता हुआ जो उत्तम प्रकारसे वर्णके उच्चारणको जानता है उसको प्रसिद्ध सुवर्णरूप फल प्राप्त होता है। सामका स्वर ही सुवर्ण है। जो इसप्रकार सामके इस सुवर्णको जानता है, उसको प्रसिद्ध सुवर्ण प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

तस्य हैतस्य साम्नो यः प्रतिष्ठां वेद प्रति ह ति-

ष्ठति तस्य वै वागेव प्रतिष्ठा वाचि हि खल्वेष एतत्प्राणः प्रतिष्ठितो गीयतेऽन्न इत्यु हैक आहुः २७

अन्वय और पदार्थ-(तस्य) तिस (एतस्य, ह) इस प्रसिद्ध (साम्नः) सामकी (प्रतिष्ठाम्) प्रतिष्ठाको (यः) जो (वेद) जानता है (प्रतितिष्ठति, ह) प्रसिद्ध स्थितिको पाता है (तस्य) उसकी (वाक्, एव, वै) प्रसिद्ध वाणी ही (प्रतिष्ठा) प्रतिष्ठा है (हि) क्योंकि (एषः, प्राणः) यह प्राण (वाचि, प्रतिष्ठितः) वाणीमें स्थित हुआ (खलु) निश्चय (एतत्, गीयते) इस गीतिभावको प्राप्त होता है (अन्ने) अन्नमें (इति, उ, ह) ऐसा भी (एके) एक (आहुः) कहते हैं ॥ २७ ॥

(भावार्थ)-साम नामक मुख्य प्राणकी प्रतिष्ठाको जो जानता है वह प्रसिद्ध स्थिति पाता है, क्योंकि उच्चारणका स्थान ही सामकी प्रतिष्ठा है । क्योंकि उच्चारणके स्थानरूप वाणीमें स्थित हुआ यह प्राण इस गानको गाता है, इसलिये वाणी ही सामकी प्रतिष्ठा है । अन्नमय शरीरमें स्थित हुआ यह प्राण गान करता है, ऐसा भी कोई कहते हैं ॥ २७ ॥

अथातः पवमानानामेवाभ्यारोहः स वै खलु प्रस्तोता साम प्रस्तौति स यत्र प्रस्तुयात्तदेतानि जपेत । असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमयेति । स यदाहासतो मा सद्गमयेति मृत्युर्वा असत्सदमृतं मृत्योर्माऽमृतं गमयाऽमृतं मा कुर्वित्येवैतदाह । तमसो मा ज्योतिर्गमयेति मृत्युर्वै तमो ज्योतिरमृतं मृत्यो-

र्माऽमृतं गमयामृतं मा कुर्वित्येवैतदाह मृत्योर्मा-
ऽमृतं गमयेति नात्र तिरोहितमिवास्ति । अथ
यानीतराणि स्तोत्राणि तेष्वात्मनेऽन्नाद्यमागाये-
त्तस्मादु तेषु वरं वृणीत यं कामं कामयेत तꣳ
स एष एवंविदुद्गातात्मने वा यजमानाय वा यं
कामं कामयते तमागायति तद्धैतल्लोकजिदेव
न हैवालोक्यताया आशास्ति य एवमेतत्साम वेद।

अन्वय और पदार्थ–(अथ) अनन्तर (अतः) इसकारण
से (पवमानानाम्, एव) पवमानोंका ही (अभ्यारोहः)
अभ्यारोह कहलाता है (सः, वै) वह प्रसिद्ध (प्रस्तोता)
प्रस्तोता (साम) सामको (प्रस्तौति) प्रारम्भ करता है
(खलु) यह प्रसिद्ध है (सः) वह (यत्र) जब (प्रस्तु-
यात्) प्रारम्भ करे (तत्) तब (एतानि) इनको
(जपेत्) जपे (असतः) असत्से (मा) मुझको (सत्,
गमय) सत्की ओर पहुँचा (तमसः) तमसे
(मा) मुझको (ज्योतिः, गमय) ज्योतिकी ओर लेजा
(मृत्योः) मृत्युसे (मा) मुझको (अमृतम्, गमय)
अमृतकी ओर लेजा (सः) वह (मन्त्र) जो (आह)
कहता [illegible] ([illegible], मा, सत् गमय) असतसे मुझे
सत् [illegible] ओर लेजा (इति) यह (मृत्युः, वै) मृत्यु ही
(असत्,) असत् है (अमृतम्, सत्) अमृत ही सत्
है (मृत्योः, मा, अमृतं, गमय) मृत्युसे मुझे अमृतकी
ओर लेजा (मा, अमृतं, कुरु) मुझे अमर कर (इति,
एव) ऐसा ही (एतत्) यह (आह) कहता हुआ
(तमसः, मा, ज्योतिः, गमय) तमसे मुझे ज्योतिकी

ओर लेजा (इति) यह (मृत्युः, वै) मृत्यु ही (तमः) तम है (अमृतं, ज्योतिः) अमृत ज्योति है (मृत्योः, मा, अमृतं, गमय) मृत्युसे मुझे अमृतकी ओर लेजा (मा, अमृतं, कुरु) मुझे अमर कर (इति, एव) ऐसा ही (एतत्) यह (आह) कहता हुआ (मृत्योः, मा, अमृतं, गमय) मृत्युसे मुझे अमृतकी ओर लेजा (इत्यत्र) इसमें (तिरोहितं, इव) लुपाहुआसा (न अस्ति) नहीं है (अथ) अनन्तर (यानि) जो (इतराणि) दूसरे (स्तोत्राणि) स्तोत्र हैं (तेषु) उनमें (आत्मने) अपने लिये (अन्नाद्यम्) खानेयोग्य अन्न को (आगायेत्) गान करै (सः) वह (एषः) यह (उद्गाता) उद्गाता (आत्मने) अपने लिये (वा) अथवा (यजमानाय) यजमानके लिये (यं, वा) जिस किसी (कामम्) भोगको (कामयते) चाहता है (तम्) उसको (आगायति) गानके द्वारा साधन करलेता है (तस्मात्, उ) तिससे ही (तेषु) उन स्तोत्रोंमें (यं, कामं, कामयेत) जिस भोगकी इच्छा करे (तं, वरं, वृणीत) उसको वरकरके मांगलेय (यः) जो (एतत्, साम) इस सामरूपको (एवम्) इसप्रकार (वेद) जानता है (तत्, एतत् ह) वह यह (लोकजित्, एव) लोकसाधन ही है (अलोक्यताया, ह) अलोकताकी (आशा) प्रार्थना (न, एव, अस्ति) नहीं है ॥ २८ ॥

(भावार्थ)-यहाँतक प्राणोपासनाको कहा, अब क्योंकि विद्वान् इसका देवभाव पानेके लिये प्रयोग किया करते हैं और इसके अभिमुख होकर आरोह कहिये धीरे२ देवभावकी ओरको चढ़ाव होता है, इसलिये पवमान सूक्तोंका जप अभ्यारोह कहलाता है । उत्तम प्रकारसे

स्तुति करनेवाला प्रस्तोता सामका आरम्भ करता है, उसको उस आरम्भके समय यजुर्वेदके इन मंत्रोंका जप करना चाहिये। असत्से मुझे सत्की ओर लेजा। अज्ञान रूप तमसे मुझे ज्योतिकी ओर लेजा। मृत्युसे मुझे अमृत की ओर लेजा। इन मंत्रोंका अर्थ गूढ है,इसलिये ब्राह्मण-भागरूप श्रुति इन मन्त्रोंका अर्थ स्वयं ही कहती है। जो मन्त्र कहे थे वे ये हैं-असत्से मुझे सत्की ओर लेजा। यह जो कहा था इसका यह अर्थ है कि-शास्त्रविरुद्ध कर्म और शास्त्रविरुद्ध ध्यानरूप मृत्यु ही अत्यन्त अधम गति का कारण होनेसे असत् है और शास्त्रानुकूल कर्म तथा ध्यानरूप सत् अमरभावका कारण होनेसे अमृत है। उस शास्त्रविरुद्ध कर्म ध्यानरूप मृत्युसे मुझे शास्त्रविहित कर्म ध्यानरूप अमृतकी ओर लेजा, मुझे अविनाशी कहिये अमृतपनेके साधनेयोग्य स्वभाववाला बना, यही इस मंत्रवाक्यमें कहा है। यह जो कहा था कि-अज्ञान-रूप तमसे मुझे ज्ञानरूप प्रकाशकी ओर लेजा, इसका यह अर्थ है, कि-शास्त्रविरुद्ध कर्म और ध्यानका मूल कारण अज्ञान ही मरणका हेतु होनेसे मृत्यु है और स्वरूपका ज्ञान अविनाशी होनेसे अमृत है, आसुरभाव-रूप मृत्युसे मुझे देवभावरूप अमृतकी ओरको लेजा, मुझे अमृत कहिये प्रजापति बना यही इस मन्त्रवाक्यने कहा है। मृत्युसे मुझे अमृतकी ओर लेजा, यह पहले दोनों मन्त्रोंका मिला हुआ अर्थ है, इसमें गूढ अर्थ कुछ नहीं है। तीनों पवमान स्तोत्रोंमें यजमान संबन्धी उद्गान करके फिर जो और नौ स्तोत्र हैं उनमें प्राणवेत्ता उद्गाता अपने लिये वा यजमानके लिये जिस भोगको चाहता है उस ही भोगको गाता है अर्थात् गानके द्वारा

सम्पादन करलेता है, इसलिये यजमान जिस भोगको चाहे उसकी प्रयोग किये हुए भी स्तोत्रोंमें प्रार्थना करे। जो निश्चय की हुई महिमावाले इस सामरूप प्राणकी, 'वह मैं ही हूं,ऐसा अभिमान प्रकट होने पर्यन्त' उपासना करता है, उसको यह कर्मरहित प्राणोपासन भी लोक-साधन ही है अर्थात् यह प्राणदर्शन स्वर्गादि लोकोंकी साधना करदेता है, लोकाभावके लिये यह प्रार्थना नहीं होसकती। इसप्रकार कर्मसहित उपासना और कर्म-रहित उपासना दोनों ही फल देनेवाली हैं॥ २८॥

इति प्रथमाध्यायस्य तृतीयमुद्गीथब्राह्मणम्.

इसप्रकार उपासना और कर्मसे तथा अकेली उपासनासे प्रजापतिभावकी प्राप्ति कही, अब प्रजापति की जगत्की उत्पत्तिपालन प्रलयमें स्वतंत्रता आदि विभूति के वर्णनसे वैदिक उपासना और कर्मके फलका उत्कर्ष वर्णन करने योग्य है, इसके लिये ही इस पुरुषविध ब्राह्मणका आरम्भ होता है। उसमें पहले प्रजापतिके अहं और पुरुष नामोंका वर्णन करते हैं-

आत्मैवेदमग्र आसीत्पुरुषविधः सोऽनुवीक्ष्य नान्यदात्मनोऽपश्यत्सोऽहमस्मीत्यग्रे व्याहरत्ततोऽहंनामाऽभवत्तस्मादप्येतर्ह्यामंत्रितोऽहमयमित्येवाग्र उक्त्वाऽथान्यन्नाम प्रब्रूते यदस्य भवति स यत्पूर्वोऽस्मात्सर्वस्मात्सर्वान् पाप्मन औषत्तस्मात्पुरुष ओषति ह वै स तं योऽस्मात्पूर्वो बुभूषति य एवं वेद॥ १॥

अ ५५ और पदार्थ-(इदम्) यह (अग्रे) पहले (पुरुषविधः) पुरुषाकार (आत्मा, एव) आत्मा ही (आसीत्)

था (सः) वह (अनुवीक्ष्य) आलोचना करके (आत्मनः) अपनेसे (अन्यत्) अन्य (न) नहीं (अपश्यत्) देखता हुआ (सः) वह (अहं, अस्मि) मैं हूं (इति) ऐसा (अग्रे) पहले (व्याहरत्) करता हुआ (ततः) तिस से (अहंनामा) अहं नामवाला (अभवत्) हुआ (तस्मात्) तिससे (एतर्हि, अपि) इस समय भी (आमन्त्रितः) प्रश्न किया हुआ (अयम्, अहम्) यह मैं हूं (इति, एव) ऐसा ही (अग्रे) पहले (उक्त्वा) कहकर (अथ) अनन्तर (अन्यत्) और (यत्) जो (अस्य) इसका (नाम) नाम (भवति) होता है (प्रब्रूते) कहना है (यत्) जिससे (सः) वह (अस्मात्) इस (सर्वस्मात्) सबसे (पूर्वः) मुख्य होता हुआ (सर्वान्) सब (पाप्मनः) पापोंको (औषत्) भस्म करता हुआ (तस्मात्) तिससे (यः) जो (पुरुषः) पुरुष (एवं वेद) ऐसा जानता है (सः, वै, ह) वह भी (यः) जो (अस्मात्) इससे (पूर्वः, बुभूषति) मुख्य होना चाहता है (तम्) उसको (ओषति) भस्म करना चाहता है ॥ १ ॥

(भावार्थ) - यह दीखनेवाला भिन्न २ शरीरों का समूह अन्य शरीरकी उत्पत्तिसे पहले पुरुषाकार विराट् रूप आत्मा ही था। उसने तदनन्तर 'मैं कौन हूँ किन लक्षणोंवाला हूँ?' ऐसी आलोचना करके अपने शरीरसे भिन्न अन्य किसी वस्तुको नहीं देखा। उसने पहले 'सबका आत्मा प्रजापति मैं हूँ' ऐसा कहा, इसलिये वह अहम्-मैं नामवाला हुआ। क्योंकि-कारणरूप प्रजापति का ऐसा वृत्तान्त है इसलिये कार्यरूप प्रजामें अब भी जब कोई पूछता है कि-तू कौन है? तो 'यह मैं हूँ' पहले

ऐसा ही कह कर फिर दूसरा [illegible] आदि जो कुछ इसका नाम होता है उस नामको कहता है । क्योंकि- उस प्रजापतिने पहले कर्मोपासनाके अनुष्ठानसे इन सब प्रजापतिभावको पानेकी इच्छावाले पुरुषोंकी अपेक्षा मुख्य होकर आसक्ति और अज्ञानरूप सब पापोंको भस्म कर दिया था, इसलिये वह पुरुष कहलाता है । प्रजापतिकी समान और भी जो कोई 'मैं पुरुष [illegible] प्रजापति हूं' ऐसी उपासना करता है वह और जो कोई उससे मुख्य बन कर प्रजापति बनना चाहता है, उसका तिरस्कार करता है ॥ १ ॥

यह प्रजापतिभाव संसारके विषयके पार नहीं होता है अर्थात् उत्तम होते हुए भी संसारके अन्तर्गत ही है कैवल्यरूप नहीं है, इस बातको सूचित करते हुए कहते हैं -

सोऽबिभेत्तस्मादेकाकी बिभेति स हायमीक्षांचक्रे यन्मदन्यन्नास्ति कस्मान्नु बिभेमीति तत एवा-स्य भयं वीयाय कस्माद्ध्यभेष्यद् द्वितीयाद्वै भयं भवति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (अबिभेत्) भयभीत हुआ (तस्मात्) तिससे (एकाकी) अकेला (बिभेति) भयभीत होता है (सः, अयम्, ह) वह यह प्रसिद्ध प्रजापति (यत्) क्योंकि (मदन्यत्) मुझसे अन्य (न, अस्ति) नहीं है (कस्मात्, नु) किससे (बिभेमि) भयभीत होऊँ (इति) ऐसा (ईक्षांचक्रे) विचार करता हुआ (ततः, एव) तिससे ही (अस्य) इसका (भयम्) भय (वीयाय) दूर हुआ, (कस्मात्, हि) किससे (अभेष्यत्) भयभीत हुआ (हि) क्योंकि (द्वितीयात्, वै) दूसरेसे ही (भयम्) भय (भवति) होता है

(भावार्थ)-वह प्रजापति भयभीत होगया क्योंकि देहमें आत्मज्ञानसे प्रजापति भयभीत हुआ था, इसकारण अब भी अकेला पुरुष भयभीत हुआ करता है। फिर उस प्रसिद्ध प्रजापतिने यह विचार किया, कि क्यों कि-मुझसे भिन्न कोई वस्तु है ही नहीं इसलिये मैं किस से भयभीत होऊँ? ऐसे यथार्थ आत्मज्ञानसे ही उस प्रजापतिका भय दूर हुआ था। वह भयभीत क्यों हुआ था? भय तो दूसरेसे ही होता है, अपने आपसे अपने को भय नहीं होता अर्थात् परमार्थरूप अद्वैतमें भयका संभव ही नहीं है, अविद्याकल्पित द्वैतसे ही भय होता है। ब्रह्मात्मकी एकताका ज्ञान किसी अधिकारीको पूर्वजन्ममें कियेहुए शुभकर्मसे प्रतिबन्धक (रुकावट डालनेवाले) संस्कार दूर होजाने पर ईश्वरके अनुग्रहसे आचार्यके विना भी होजाता है, जैसे कि-प्रजापति तथा वामदेवको हुआ था। किसी अधिकारीको श्रद्धाभक्तिपूर्वक एकाग्रतासे तप करने पर ही आचार्यके उपदेश के विना उस ज्ञानकी प्राप्ति होती है, जैसे भृगुको हुई थी और बहुतसे अधिकारियोंको आचार्यके उपदेशसे ही वह ज्ञान प्राप्त होता है, जैसे श्वेतकेतु आदिको हुआ था ॥ २ ॥

प्रजापति भयभीत हुआ इसलिये संसारके अन्तर्गत है, यह बात कही, अब वह अरति कहिए इच्छित पदार्थके वियोगसे होनेवाली व्याकुलतासे युक्त हुआ इससे भी संसारके अन्तर्गत ही है, इस बातको दिखाते हैं-

स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते, स द्वितीयमैच्छत। स हैतावानास यथा स्त्रीपुमाꣳसौ

संपरिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्वेधा पातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां तस्मादिदमर्धबृगलमिव स्व इति ह स्माऽऽह याज्ञवल्क्यस्तस्मादयमाकाशः स्त्रिया पूर्यत एव ताꣳसमभवत्ततो मनुष्या अजायन्त ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ (सः, ह) वह प्रसिद्ध (नैव) नहीं ही (रेमे) रमण करता हुआ (तस्मात्) जिससे (एकाकी) अकेला (न) नहीं (रमते) रमण करता है (सः) वह (द्वितीयम्) दूसरेको (ऐच्छत्) इच्छा करता हुआ (सः, ह) वह प्रसिद्ध (यथा) जैसे (संपरिष्वक्तौ) गाढ़ आलिंगित (स्त्रीपुमांसौ) स्त्री पुरुष होते हैं (एतावान्) इतना (आस) हुआ (सः) वह (इमं, आत्मानं, एव) इस शरीरको ही (द्वेधा) दो भागोंमें (अपातयत्) गिराता हुआ (ततः) तिससे (पतिः) पति (च) और (पत्नी, च) पत्नी भी (अभवताम्) हुए (तस्मात्) तिससे (इदम्) यह (स्व अर्धबृगलम्, इव) सीपीकी समान दो दलमें विभक्त अपना अर्धभागसा हुआ (इति) ऐसा (याज्ञवल्क्यः) याज्ञवल्क्य (आह, स्म, ह) कहता हुआ (तस्मात्) तिससे (अयम्) यह (आकाशः) आकाश (स्त्रिया, एव) स्त्रीके द्वारा ही (पूर्यते) पूर्ण होता है (ताम्, समभवत्) तिससे समागम करता हुआ (ततः) तिससे (मनुष्याः) मनुष्य (अजायन्त) हुए ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-क्योंकि—उसमें संसारावस्थाके होनेके कारण अविद्याके लेशका लगाव था, इस कारण उस

विराट् भगवान्का अकेले चित्त न लगा, कारणका धर्म कार्यमें आता है, इस कारण आजकलके पुरुषोंका भी अकेले चित्त नहीं लगता है। उस प्रजापतिने व्याकुलता को दूर करनेवाली अपनेसे दूसरी वस्तुकी इच्छा की। वह प्रसिद्ध प्रजापति उस इच्छासे ही, जैसे लोकमें परस्पर गाढ़ आलिङ्गन किये हुए स्त्री पुरुष जिस परिमाणके होते हैं उतने ही परिमाणवाला होगया। वह प्रजापति अपने स्वरूपको मिले स्त्रीपुरुषको आलिङ्गन कियेहुए अन्यशरीर-रूप होगया था। उस प्रजापतिने इस आलिङ्गनवाले अन्य शरीरके ही ऐसे दो भाग किये जैसे सीपीको बीचमेंसे फाड़ देने पर दो भाग होजाते हैं, इससे मनु आदि पति और शतरूपा आदि पत्नीका आविर्भाव हुआ। क्योंकि शरीरका आधा भाग स्त्री है, इसलिये यह शरीर विवाह करनेसे पहले अपना आधा भागसा ही होता है, ऐसा प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य (देवराति) का कथन है, इसलिये यह आकाश अर्थात् स्त्रीके न होने पर जो भाग खाली था वह स्त्रीको स्वीकार करने पर ही पूर्ण होता है। उस शतरूपाके साथ मनुरूप हुए प्रजापतिने समागम किया उससे मनुष्य उत्पन्न हुए ॥ ३ ॥

(अब गौ आदिकी सृष्टि कहते हैं—)

सो हेयमीक्षाञ्चक्रे. कथं नु माऽऽत्मन एव जन-
यित्वा सम्भवति हन्त तिरोऽसानीति सा गौरभव-
दृषभ इतरस्ताꣳ समेवाभवत्ततो गावोऽजायन्त
वडवेतराऽभवदश्ववृष इतरो गर्दभीतरा गर्दभ इत-
रस्ताꣳ समेवाभवत्तत एकशफमजायताजेतरा-
भवद्बस्त इतरोऽविरितरा मेष इतरस्ताꣳ समेवा-

भवन्तोऽजावयोऽजायन्तैवमेव यदिदं किञ्च मिथुनमा पिपीलिकाभ्यस्तत्सर्वमसृजत ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सा, इयम्) वह यह शतरूपा (उ, ह) बड़े विस्मयके साथ (ईक्षाञ्चक्रे) विचार करनेलगी (मा) मुझको (आत्मनः, एव) अपने आपमें ही (जनयित्वा) उत्पन्न करके (कथं, नु) कैसे (संभवति) समागम करता है (हन्त) दुःखकी बात है (तिरः,असानि) अन्तर्धान होजाऊँ (इति) ऐसा विचार कर (गौः,अभवत्) गौ होगयी (इतरः) दूसरा मनु (ऋषभः) वृषभ बनगया (तां, समभवत्) उससे समागम करता हुआ (ततः, एव) उससे ही (गावः, अजायन्त) गौ बैल उत्पन्न हुए (इतरा) शतरूपा (वडवा) घोड़ी (इतरः) मनु (अश्ववृषः) घोड़ा (इतरा) शतरूपा (गर्दभी) गधी (इतरः) मनु (गर्दभः) गधा (अभवत्) हुआ (तां, समभवत्) उसके साथ समागम किया (ततः, एव) उस जोड़ेमें ही (एकशफम्) एक खुरवाली पशु जाति (अजायत) उत्पन्न हुई (इतरा) शतरूपा (अजा) बकरी (इतरः) मनु (वस्तः) बकरा (इतरा) शतरूपा (अविः) भेड़ (इतरः) मनु (मेषः) मेंढा (अभवत्) हुआ (तां,समभवत) उनका परस्पर समागम हुआ (ततः, एव) उनसे ही (अजावयः) बकरी भेड़ें (अजायन्त) उत्पन्न हुईं (एवमेव) ऐसे ही (आपिपीलिकाभ्यः) चींटियों पर्यन्त (इदम्) यह (यत्किञ्च) जो कुछ भी (मिथुनम्) जोड़ा है (तत्, सर्वम्) उस सबको (असृजत) रचता हुआ ॥४॥

(भावार्थ)-वह प्रसिद्ध शतरूपा विचार करने लगी

कि-मुझे अपनेसे उत्पन्न करके क्यों समागम करता है ? इसका दुःख होता है, इसलिये मैं अन्य जातिके आकार में अन्तर्धान होजाऊँ, ऐसा विचार कर वह गौ बन गयी, यह देख कर मनु बैल बनगया और उन्होंने समागम किया तब उनसे गोजाति उत्पन्न हुई फिर शतरूपा घोड़ी और मनु घोड़ा, शतरूपा गधी और मनु गधा बनगया और इन्होंने समागम किया तब इनसे एक खुरवाले घोड़े खच्चर गधे आदिकी जाति उत्पन्न हुई । शतरूपा बकरी मनु बकरा और शतरूपा भेड़ी तथा मनु मेंढ़ा हुआ तथा उनके समागमसे बकरी और भेड़की जाति उत्पन्न हुई इसप्रकार ही यह जो कुछ भी चींटी पर्यन्त स्त्री पुरुषरूप द्वन्द्व है, इस सबको रचा । उत्पन्न होने वाले प्राणियोंके कर्मोंसे प्रेरित शतरूपा और मनुकी बार २ यही बुद्धि हुई और जगत्की रचना होती चलीगयी ॥ ४ ॥

अब प्रजापतिका सृष्टिसे अभेद और उसकी उपासना का फल कहते हैं—

सोऽवेदहं वाव सृष्टिरस्म्यहꣳ हीदꣳ सर्वमसृक्षीति ततः सृष्टिरभवत्सृष्ट्याꣳ हास्यैतस्यां भवति य एवं वेद ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (अवेत्) जानता हुआ (अहं, वाव) मैं ही (सृष्टिः अस्मि) जगत् हूँ (हि) क्योंकि (इदम्) इस (सर्वम्) सबको (अहम्) मैं (असृक्षि) रचता हुआ (इति) ऐसा जाना (ततः) तिससे (सृष्टिः) सृष्टिनामा (अभवत्) हुआ (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (अस्य) इस की (एतस्याम्) इस (सृष्ट्याम्) सृष्टिमें (ह) प्रसिद्ध (भवति) होता है ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-इस प्रजापतिने इस सब जगत्को रच कर जाना, कि-मैं ही जगत्रूप हूं, क्योंकि-मैंने ही इस सबको रचा है । प्रजापतिने ऐसा जाना था, इसलिये वह सृष्टि नामवाला हुआ । जो कोई 'मैं जगत्रूप हूँ' ऐसी उपासना करता है, वह इस प्रजापतिके इस जगत् में प्रसिद्ध सृष्टिकर्त्ता होता है ॥ ५ ॥

अब अनुग्रह करने वाले अग्नि आदिकी सृष्टिको कहते हैं-

अथेत्यभ्यमन्थत्स मुखाच्च योनेर्हस्ताभ्यां चाग्नि-मसृजत तस्मादेतदुभयमलोमकमन्तरतोऽलोमका हि योनिरन्तरतः । तद्यादिदमाहुरमुं यजामुं यजे-त्येकैकं देवमेतस्यैव सा विसृष्टिरेष उ ह्येव सर्वे देवाः । अथ यत्किञ्चेदमार्द्रं तद्रेतसोऽसृजत तदु सोम एतावद्वा इदꣳसर्वमन्नं चैवान्नादश्च सोम एवान्नमग्निरन्नादः सैषा ब्रह्मणोऽतिसृष्टिः यच्छ्रेयसो देवानसृजताथ यन्मर्त्यः सन्नमृतान-सृजत तस्मादतिसृष्टिरतिसृष्ट्याꣳहास्यैतस्यां भवति य एवं वेद ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अनन्तर (इति) इसप्रकार (अमन्थत्) मथन करता हुआ (सः) वह (मुखात्) मुखरूप (योनेः) योनिसे (च) और (हस्ताभ्यां, च) हाथोंसे भी (अग्निम्) अग्निको (असृजत) रचता हुआ (तस्मात्) तिस (एतत्) ये (उभयम्) दोनों (अन्तः) भीतरसे (अलोमकम्) लोमरहित हैं (हि)

क्योंकि (योनिः) योनि (अन्तरतः) भीतरसे (अलो-मका) लोमरहित है (तत्) तिसमें (अमुं, यज, अमुं, यज) इसका यजन कर, इसका यजन कर (इति) ऐसा (एकैकं, देवम्) एक २ देवताके प्रति (यत्) जो (इदम्) यह (आहुः) कहते हैं (एतस्य, एव) इसकी ही (सा) वह (विसृष्टिः) विशेष सृष्टि है (एषः, उ, एव, हि) यह ही निश्चय (सर्वे देवाः) सब देवतारूप है (अथ) अनन्तर (यत्किंच) जो कुछ (इदम्) यह (आर्द्रम्) गीला है (तत्, एतत्) उस सबको (रेतसः) वीर्यसे (असृजत) रचता हुआ (तत्, सोमः, उ) वह सोम ही है (अन्नम्) अन्न (च) और (अन्नादः, च एव) अन्न भक्षक ही है (एतावत्) इतना ही (वै) प्रसिद्ध (इदं, सर्वम्) यह सब है (सोमः, एव) सोम ही (अन्नम्) अन्न है (अग्निः, अन्नादः) अग्नि अन्नका भक्षक है (सा) वह (एषा) यह (ब्रह्मणः) प्रजापति की (अतिसृष्टिः) अधिक सृष्टि है (यत्) जो (श्रेयसः) अति प्रशंसनीय (देवान्) देवताओंको (असृजत) रचता हुआ (अथ) और (यत्) जो (मर्त्यः, सन्) मरणधर्मी होकर (अमृतान्) अमरणधर्मियोंको (असृ-जत) रचता हुआ (तस्मात्) तिससे (अतिसृष्टिः) अधिक सृष्टि है (यः, एवं, वेद) जो ऐसी उपासना करता है (एतस्याम्) इस (अतिसृष्ट्याम्) विशेष सृष्टिमें (ह) प्रसिद्ध (भवति) होता है ॥ ६ ॥

(भावार्थ)-फिर प्रजापतिने मुखमें हाथ डाल कर मथन किया, इस प्रकार उस प्रजापतिने मुखरूप योनिसे और दोनों हाथ रूप योनिसे ब्राह्मणों के ऊपर अनुग्रह करनेवाले अग्निको रचा, क्योंकि-

नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियतेऽसौनामाऽयमिदꣳ रूप इति स एष इह प्रविष्टः आ नखाग्रेभ्यो यथा क्षुरः क्षुरधानेऽवहितः स्याद्विश्वंभरो वा विश्वम्भरकुलाये तं न पश्यन्ति। अकृत्स्नो हि स प्राणन्नेव प्राणो नाम भवति वदन्वाक् पश्यꣳश्चक्षुः शृण्वन् श्रोत्रं मन्वानो मनस्तान्यस्यैतानि कर्मनामान्येव। स योऽत एकैकमुपास्ते न स वेदाकृत्स्नो ह्येषोऽत एकैकेन भवत्यात्मेत्येवोपासीतात्र ह्येते सर्व एकं भवन्ति। तदेतत्पदनीयमस्य सर्वस्य यदयमात्माऽनेन ह्येतत्सर्वं वेद। यथा ह वै पदेनानुविन्देदेवं कीर्त्तिꣳ श्लोकं विन्दते य एवं वेद ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(ह) प्रसिद्ध (इदम्) यह (तत्) वह (तर्हि) उस समय (अव्याकृतम्) अप्रकट नाम रूप वाला (आसीत) था (तत्) वह (नामरूपाभ्याम् ,एव) नाम और रूप करके ही (व्याक्रियत) प्रकट हुआ (अयम्) यह (असौनामा) इस नामवाला है (अयम्) यह (इदंरूपः) इस रूपवाला है (इति) इस प्रकार (तत्) वह (इदम्) यह (एतर्हि, अपि) इस समय भी (नामरूपाभ्याम्, एव) नाम और रूप करके ही (अयम्) यह (असौनामा) इस रूपवाला है (इदंरूपः) इस रूपवाला है (इति) इसप्रकार (व्याक्रियते) विस्पष्ट कियाजाता है (सः) वह (एषः) यह (इह) यहाँ (आनखाग्रेभ्यः) नखों पर्यन्त (प्रविष्टः) प्रवेश किये हुए है (यथा) जैसे

(क्षुरः) क्षुरा (क्षुरधाने) पेटीमें (अवहितः) प्रवेश कराया हुआ (स्यात्) स्थित होता है (वा) अथवा (विश्वम्भरः) अग्नि (विश्वम्भरकुलाये) अग्निके आधारमें [अवहितः, स्यात्] प्रविष्ट होकर स्थित होता है (तम्) उसको (न) नहीं (पश्यन्ति) देखते हैं (सः) वह (अकृत्स्नः, हि) अपूर्ण ही (प्राणन्, एव) प्राणकी क्रिया करता हुआ ही (प्राणः, नाम) प्राण नामवाला (वदन्) बोलता हुआ (वाक्) वाणी नामवाला (पश्यन्) देखता हुआ (चक्षुः) चक्षु नामवाला (शृण्वन्) सुनता हुआ (श्रोत्रम्) श्रोत्र नामवाला (मन्वानः) मनन करता हुआ (मनः) मन नामवाला (भवति) होता है (तानि) वे (एतानि) ये (कर्मनामानि, एव) कर्मकृत नाम ही हैं (सः) वह (यः) जो (अतः) इनमेंसे (एकैकम्) एक २ को (उपास्ते) उपासना करता है (सः) वह (न) नहीं (वेद) जानता है (हि) क्योंकि (एषः) वह (अकृत्स्नः) अपूर्ण है (अतः) इनमेंसे (एकैकेन) एक २ से युक्त (भवति) होता है (आत्मा, इति, एव) आत्मा है ऐसा जान कर ही (उपासीत) उपासना करे (हि) क्योंकि (अत्र) इसमें (एते) ये (सर्वे) सब (एकं, भवन्ति) एक होजाते हैं (अस्य) इस (सर्वस्य) सबका (यत्) जो (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा है (तत्) सो (एतत्) यह (पदनीयम्) खोजने योग्य है (हि) क्योंकि (अनेन) इसके द्वारा (एतत्, सर्वम्) इस सब को (वेद) जानता है (यथा) जैसे (पदेन, ह) अभिज्ञ चरणचिह्नसे (अनुविन्देत्) पाजाता है (एवम्, वै) इसप्रकार ही (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (कीर्तिम्) ऐक्यज्ञानको (श्लोकम्) मोक्षको (विन्दते) पाता है ॥७॥

उपासना करै, क्योंकि–उस निरुपाधिक आत्मामें इन सब प्राण आदि उपाधियोंके कियेहुए भेद एक होजाते हैं । इन सब अनात्म पदार्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाला जो आत्मा है उसको ही खोजना चाहिये, क्योंकि–इस आत्मज्ञानसे पुरुष इस सब जड़समूहको जानजाता है, जैसे लोकमें प्रसिद्ध चरणचिह्नसे खोजनेवाला पुरुष खोये हुए पशुको पाजाता है, ऐसे ही आत्माको पाजाने पर सब कुछ प्राप्त होजाता है, जो इस तत्त्वको जानलेता है वह अद्वैतज्ञान और मोक्षको पाजाता है ॥ ७ ॥

और सबको छोड़कर केवल आत्मतत्त्व ही क्यों जानना चाहिये ? इस शङ्काका लोकदृष्टिके आश्रयसे समाधान करते हैं, कि–

तदेतत्प्रेयः पुत्रात्प्रेयो वित्तात्प्रेयोऽन्यस्मात्सर्वस्मादन्तरतरं यदयमात्मा । स योऽन्यमात्मनः प्रियं ब्रुवाणं ब्रूयात्प्रियꣳ रोत्स्यतीतीश्वरो ह तथैव स्यादात्मानमेव प्रियमुपासीत स य आत्मानमेव प्रियमुपास्ते न हास्य प्रियं प्रमायुकं भवति ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यत्) जो (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (अन्तरतरम्) अत्यन्त अन्तरवाला है (तत्) वह (एतत्) यह (पुत्रात्) पुत्रसे (प्रेयः) प्रियतर है (वित्तात्) धनसे (प्रेयः) प्रियतर है (अन्यस्मात्) और (सर्वस्मात्) सबसे (प्रेयः) प्रियतर है (सः) वह (यः) जो आत्मवादी है (आत्मनः) आत्मासे (अन्यम्) अन्यको (प्रियम्) प्यारा (ब्रुवाणम्) कहने वालेके प्रति (प्रियम्) प्रिय (रोत्स्यति) प्राणरोधको प्राप्त होगा (इति) ऐसा (ब्रूयात्) कहै (ईश्वरः, ह) समर्थ ही है (तथैव,

स्यात्) तैसा ही होगा (आत्मानम्) आत्मरूप (प्रियम्, एव) प्रियको ही (उपासीत) उपासना करे (यः) जो (आत्मानम्) आत्मरूप (प्रियम्, एव) प्रियको ही (उपास्ते) उपासना करता है (अस्य) इसका (प्रियम्) प्रिय (प्रमायुकम्) मरण स्वभाववाला (न,ह, भवति) कदापि नहीं होता है ॥ ८ ॥

(भावार्थ)-जिस आत्माका प्राण आदिसे बड़ा भारी अन्तर है यह आत्मा पुत्रसे भी अधिक प्यारा है,सुवर्ण आदि धनसे भी अधिक प्यारा है और लोकमें अन्य जो कुछ प्रिय कहलाता है उस सबकी अपेक्षा यह आत्मा अधिक प्रिय है। जो आत्मवादी है वह आत्मासे भिन्न पुत्र आदिको प्रिय माननेवाले से कहै कि-तू जिनको प्रिय मानता है ये तो सब किसी दिन नष्ट होनेवाले हैं। ऐसा कह सकता है, क्योंकि ऐसा अवश्य ही होगा। इसलिये अन्य प्रियको त्यागकर आत्मरूप प्रियकी ही उपासना करे। जो ऐसी उपासना करता है उसका प्यारा मरण स्वभाव वाला नहीं होता है ॥ ८ ॥

तदाहुर्यद् ब्रह्मविद्यया सर्वं भविष्यन्तो मनुष्या मन्यंते। किमु तद् ब्रह्मावेद्यस्मात्तत्सर्वमभवदिति

अन्वय और पदार्थ-(तत्) उसको [प्रतिविम्बवः] पाना चाहनेवाले (आहुः) कहनेलगे (यद्ब्रह्मविद्यया) जिस ब्रह्मविषयक विद्यासे (सर्वम्) सर्वरूप (भविष्यन्तः) होजायँगे (इति) ऐसा (मनुष्याः) मनुष्य (मन्यन्ते) मानते हैं (तत्) उसने (ब्रह्म) ब्रह्म (किमु अवेत्) किसको जाना (यस्मात्) जिससे (सर्वम्) सब (अभवत्) हुआ ॥ ९ ॥

(भावार्थ)-ब्रह्मको जाननेकी इच्छावाले,जन्म मरण

के प्रवाहमें चक्रकी समान निरन्तर भ्रमणसे उत्पन्न हुए दुःखरूप जलवाले संसार नामक अपार महासागरकी नौकारूप सद्गुरुको प्राप्त होकर वे संसारसागरके ब्रह्मरूप तट पर उतरने की इच्छावाले तथा धर्म अधर्म रूप साधन और उसके फलरूप संसारसे उदास हुए एवं उससे विलक्षण नित्य निरतिशय श्रेयको प्राप्तकरना चाहनेवाले जिन मुमुक्षुओंका आगे वर्णन करेंगे वे कहने लगे, कि-जिसके द्वारा ब्रह्म ही आत्मस्वरूपसे जाना जाता है उस ब्रह्मविद्याके द्वारा सर्वरूप कहिये निरवशेषरूप होजायँगे, ऐसा जो मनुष्य मानते हैं, उसमें विरोधसा प्रतीत होता है, इसलिये हम बूझते हैं, कि-वह ब्रह्म किसको जाना कि-जिस ज्ञानसे सर्वरूप हुए?९

इस प्रश्नका श्रुति सबदोषरहित उत्तर देती है-

ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्तदात्मानमेवावेदहं ब्रह्मास्मीति तस्मात्तत्सर्वमभवत् । तद्यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत्तथर्षीणां तथा मनुष्याणां तद्धैतत्पश्यन्नृषिर्वामदेवः प्रतिपेदेऽहं मनुरभवꣳ सूर्यश्चेति । तदिदमप्येतर्हि य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति । स इदꣳसर्वं भवति तस्य ह न देवाश्चानुभूत्या ईशते । आत्मा ह्येषाꣳ स भवति । अथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेवꣳस देवानाम् यथा ह वै बहवः पशवो मनुष्यं भुञ्ज्युरेवमेकैकः पुरुषो देवान् भुनक्त्येकस्मिन्नेव

पश्चाद्वादीयमानेऽप्रियं भवति किमु बहुषु तस्मा-
देषां तन्न प्रियं यदेतन्मनुष्या विद्युः ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अग्रे) पहले (इदम्) यह (ब्रह्म,वै) ब्रह्म ही (आसीत्) था (तत्) वह (आत्मानम् ,एव) अपनेको ही (अहम्) मैं (ब्रह्म) ब्रह्म (अस्मि) हूँ (इति) ऐसा (अवेत्) जानता हुआ (तस्मात्) तिससे (तत्) वह (सर्वम्) सर्वरूप (अभवत्) हुआ (तत्) तहाँ (देवानाम्) देवताओंमें (यः, यः) जो जो (प्रत्य-बुध्यत) जानता हुआ (सः, एव) वह ही (तत्) वह (अभवत्) होगया (तथा) तैसे ही (ऋषीणाम्) ऋ-षियोंमें (तथा) तैसे ही (मनुष्याणाम्) मनुष्योंमें (तत्) उसका (एतत्) इस रूपवाला (पश्यन्) देखता हुआ (वामदेवः, ऋषिः, ह) वामदेव नाम वाला प्रसिद्ध ऋषि (अहम्) मैं (मनुः) मनु (च) और (सूर्यः) सूर्य (अभवम्) हुआ (इति) इत्यादि मंत्रोंको (प्रतिपेदे) प्राप्त हुआ (तत्) वह (इदम्) यह ब्रह्म (एतर्हि, अपि) इस समय भी (यः) जो (अहं, ब्रह्म, अस्मि) मैं ब्रह्म हूँ (इति) ऐसा (वेद) जानता है (सः)वह (इदम्) यह (सर्वम्) सब (भवति) होजाता है (ह) प्रसिद्ध (देवाः, च) देवता भी (तस्य, न) उसकी अ-पेक्षा महावीर्य नहीं होते (अभूत्यै) ऐश्वर्यके रोकनेको (न, ह) कदापि नहीं (ईशते) समर्थ होते हैं (हि) क्योंकि (सः) वह (एषाम्) इन देवताओंका (आत्मा) आत्मा (भवति) होता है (अथ) और (यः) जो (अन्याम्) अन्य (देवताम्) देवताको (असौ) यह (अन्यः) अन्य है (अहम्) मैं (अन्यः) अन्य (अस्मि) हूँ (इति) इस प्रकार (उपास्ते) उपासना करता है (सः)

वह (न, वेद) नहीं जानता है (यथा) जैसे (पशुः) पशु होता है (एवम्) ऐसे ही (सः) वह (देवानाम्) देवताओंमें होता है(यथा) जैसे (ह) प्रसिद्ध (बहवः) बहुत से (पशवः) पशु (मनुष्यम्) मनुष्यको (भुञ्ज्युः) पालन करते हैं (एवम्) ऐसे ही (एकैकः,पुरुषः) एक२ पुरुष (देवान्) देवताओंको (भुनक्ति) पालन करता है (एकस्मिन्नेव) एक ही (पशौ) पशुके (आदीयमाने) अपहृत होने पर (अप्रियम्) अप्रिय (भवति) होता है (बहुषु) बहुतके विषयमें (किमु) क्या कहना है (तस्मात्) जिससे (यत्) जो (एतत्) इसको (मनुष्याः) मनुष्य (विदुः) जानते हैं (तत्) वह (एषाम्) इनको (प्रियम्) प्रिय (न) नहीं होता है ॥ १० ॥

(भावार्थ)- ज्ञानसे पहले इस शरीरमें स्थित प्रमाता आदिके साक्षिभूत त्वं पदका लक्ष्य ब्रह्म ही था, ऐसा तू संसारी नहीं है किन्तु सकल धर्मोंसे रहित चिदानन्दैकरस ब्रह्म ही है, ऐसा दयालु आचार्यके उपदेश देने पर, मैं स्वयं ही प्रमाता आदिका साक्षी संसारके सकल धर्मोंसे रहित,निषेधका अवधिभूत ब्रह्म हूं,ऐसा जानता था। ऐसे ज्ञानसे वह ब्रह्म अविद्या और उसके कार्यकी निवृत्ति होनेसे स्वाभाविक सर्वरूप होगया। इसलिये हम ब्रह्मविद्यासे सर्वरूप होजायँगे, ऐसा जो मनुष्य मानते हैं सो ठीक ही है, "वह ब्रह्म किसको जाना कि- जिस ज्ञानसे वह सर्वरूप होगया" ऐसा जो पूछा था, उसका "पहले यह ब्रह्मही था वह स्वयं मैं ही हूँ ऐसा जाना, इससे वह सर्वरूप हुआ" ऐसा निर्णय किया । उसमें देवताओंमें जिस २ देवताने उस ब्रह्मको यथावत् जाना, वही उस ज्ञानसे सर्वात्मक ब्रह्म होगया तथा ऋषियोंमें

और मनुष्योंमें जिस २ ऋषि और मनुष्यने उस ब्रह्मको यथावत् जाना वही उस ज्ञानसे सर्वात्मक ब्रह्म होगया। यह ब्रह्मविद्याका सर्वभावकी प्राप्तिरूप फल है । इस अर्थको दृढ़ करनेके लिये श्रुति भगवती मंत्रोंका उदाहरण देती है कि-उस ब्रह्मको आत्मस्वरूपसे देखतेहुए प्रसिद्ध वामदेव ऋषिने ''मैं मनु हुआ तथा मैं सूर्य हुआ'' इत्यादि मन्त्रोंको देखा था । सकल भूतोंमें अनुप्रविष्ट हुआ वह ब्रह्म इस समय भी जो कोई बाहरी विषयों के अनुरागको त्याग कर,मैं संसारके सकल धर्मोंसे रहित ब्रह्म हूँ, ऐसा पता लगा लेता है वह, ऐसे ब्रह्मज्ञानके द्वारा अविद्याके किये असर्वज्ञानकी निवृत्ति होजाने पर सर्वरूप होजाता है । प्रसिद्ध देवता भी उस ज्ञानीके सर्वात्मक ब्रह्म भावकी प्राप्तिको नहीं रोक सकते क्योंकि-वह ब्रह्मज्ञानी इन देवताओंका आत्मा होजाता है। और जो जिज्ञासु अपनेमें कर्त्तापनेका आरोप करके अपनेसे भिन्न देवताकी ''यह उपास्यदेव मुझसे भिन्न है और मैं इस उपास्यदेवसे भिन्न हूँ'' ऐसी भेददृष्टि रखकर उपासना करता है वह उपासक, उपास्य और उपासक के वास्तविक स्वरूपको नहीं जानता है। जैसे गौ और घोड़े आदि पशु दूधदेना और सवारी देना आदि उपकारोंसे उपभोगमें आता है, ऐसे ही वह कर्त्तापनेका अभिमानी भेददृष्टिवाला अविद्वान् देवताओंमेंसे एक२ देवताका पशुकी समान अनेकों उपकारोंसे उपभोगका साधन होता है। जैसे प्रसिद्ध गौ और घोड़े आदि बहुत से पशु अपने स्वामी मनुष्यका दोहन वाहन आदिसे पालन करते हैं तैसे ही अनेकों पशुओंके स्थानापन्न ये एक २ कर्मी पुरुष देवताओंका स्तुति नमस्कार आदि

क्रियाओंसे पालन करते हैं। जगत्में जैसे बहुतसे पशु-वालेके एक भी पशुको यदि व्याघ्र आदि हर कर लेजाता है तो वह व्याघ्र आदि उसको अप्रिय प्रतीत होता है ऐसे ही बहुतसे पशुओंकी समान उन अविद्वान् मनुष्यों मेंका एक २ मनुष्य भी पशुभावसे हटकर सर्वात्मभाव को प्राप्तहोने लगता है तो उसको व्युत्थित करनेवाला तत्त्वज्ञान यदि देवताओंको अप्रिय हो तो इसमें कहना ही क्या है ?। क्योंकि-मनुष्योंका पशुभावसे व्युत्थान देवताओंको अप्रिय है इसलिये यदि इस ब्रह्मतत्त्वको मनुष्य किसी प्रकार जानलेता है तो यह देवताओंको इष्ट नहीं होता, इसलिये मुमुक्षु देवाराधनामें तत्पर, श्रद्धा-भक्तिपरायण तथा नम्रतावाला होकर ज्ञानकी प्राप्ति करानेवाले श्रवण मनन आदिमें एकाग्रताके साथ चित्त लगावे, कि जिससे वह देवताओंको प्रिय होय और देवता उसकी साधनामें विघ्न न डालें ॥ १० ॥

पहिले अग्निकी उत्पत्ति कही थी, अब उसके साथ संबन्ध रखनेवाले इन्द्र आदिकी उत्पत्ति कहते हैं—

ब्रह्म वा इदमग्र आसीदेकमेव तदेकꣳसन्न व्यभवत्। तच्छ्रेयोरूपमत्यसृजत क्षत्रं यान्येतानि देवत्रा क्षत्राणीन्द्रो वरुणः सोमो रुद्रः पर्जन्यो यमो मृत्युरीशान इति। तस्मात्क्षत्रात्परं नास्ति तस्माद् ब्राह्मणः क्षत्रियमधस्तादुपास्ते राजसूये क्षत्र एव तद्यशो दधाति सैषा क्षत्रस्य योनिर्यद् ब्रह्म। तस्माद्यद्यपि राजा परमतां गच्छति ब्रह्मैवान्तत उपनिश्रयति स्वां योनिं य

उ एनथ्ँ हिनस्ति स्वाथ्ँ योनिमृच्छति स पापीयान् भवति यथा श्रेयाथ्ँ सथ्ँ हिथ्ँ सित्वा ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अग्रे) पहले (इदम्) यह (ब्रह्म) वै,) ब्रह्म ही (आसीत्) था (एकमेव) एक ही था (तत्) वह (एकं, सत्) एक होता हुआ (न,व्यभवत्) परिपूर्ण नहीं था (तत्) वह (श्रेयोरूपम्) श्रेयोरूप (क्षत्रम्) क्षत्रिय जातिको,(अत्यसृजत) उत्कृष्टताके साथ रचता हुआ (यानि) जो (देवत्रा) देवजातिमें (क्षत्राणि) क्षत्रिय हैं (एतानि) ये हैं (इन्द्रः) इन्द्र (वरुणः) वरुण (सोमः) चन्द्रमा (रुद्रः) रुद्र (पर्जन्यः) मेघ (यमः) यम (मृत्युः) मृत्यु (ईशानः) ईशान (इति) इत्यादि हैं (तस्मात्) तिससे (क्षत्रात् परम्) क्षत्रियसे उत्कृष्ट (न, अस्ति) नहीं है (तस्मात्) तिस से (राजसूये) राजसूय यज्ञमें (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (अधस्तात्) नीचेसे, (क्षत्रियम्, उपास्ते) क्षत्रियकी उपासना करता है (क्षत्रे, एव) क्षत्रियके विषैं ही (तत्, यशः) प्रसिद्धिरूप यशको (दधाति) स्थापन करता है (यत्) जो (ब्रह्म) ब्राह्मण जाति है (सा) वह (एषा) यह (क्षत्रस्य) क्षत्रिय जातिकी (योनिः) उत्पत्तिस्थान है (तस्मात्) तिससे (यद्यपि) यद्यपि (राजा) क्षत्रिय (परमताम्) उत्कृष्टताको (गच्छति) प्राप्त होता है (अन्ततः) परिसमाप्तिमें (स्वां, योनिम्) अपने उत्पत्तिस्थानरूप (ब्रह्म, एव) ब्राह्मण जातिका ही (उपनिश्रयति) आश्रय लेता है (यः, उ) जो भी (एनम्, हिनस्ति) इसकी ओरको वक्रदृष्टिसे देखता है (सः) वह (स्वां, योनिम्) अपने उत्पत्ति स्थानको

(ऋच्छति) विनष्ट करता है (यथा) जैसे (श्रेयांसं, हिंसित्वा) अधिक श्रेष्ठका तिरस्कार करके (सः) वह (पापीयान) अधिक पापी (भवति) होता है ॥ ११ ॥

(भावार्थ)-क्षत्रिय जातिकी उत्पत्तिसे पहले यह क्षत्रियादिके भेदका समूह ब्राह्मणजातिकेअभिमानवाला अग्निरूप ब्रह्म ही था, वह एक ही था, क्षत्रिय आदिका भेद नहीं था। वह एक ब्रह्म पालन आदि करनेवाले क्षत्रिय आदिसे रहित था, इस कारण कर्मके लिये पर्याप्त नहीं था। इस कारण ब्रह्मने श्रेष्ठरूप क्षत्रिय जातिको उत्तम रूपसे रचा। इन देवताओंमें जो क्षत्रियजातिवाले हैं वे-देवताओंका राजा इन्द्र, जलचरोंका राजा वरुण, ब्राह्मणोंका राजा सोम (चन्द्रमा), पशुओंका राजा रुद्र, बिजली आदिका राजा मेघ, पितरोंका राजा यम, रोग आदिका राजा मृत्यु (यमदूत) और प्रकाशोंका राजा ईशान इत्यादि हैं। फिर मनुष्य क्षत्रियोंको रचा। क्योंकि ब्रह्मने क्षत्रिय जातिको उत्तमरूपसे रचा है, इसलिये क्षत्रिय जातिके अतिरिक्त ब्राह्मण जातिका कोई नियन्ता नहीं है, इसलिये राजसूय यज्ञमें ब्राह्मण नीचे स्थित होकर ऊपर स्थित हुए क्षत्रियकी उपासना करता है। क्षत्रियके विषें ही यह ब्रह्म अपनी ब्राह्मणरूप प्रसिद्धिको "हे राजन् तू ब्राह्मण है" ऐसे वचनसे स्थापन करता है। जो ब्राह्मण जाति है वह इस क्षत्रिय जातिका उत्पत्ति स्थान है, इसलिये यद्यपि राजसूयके अभिषेकके समय क्षत्रिय उत्कृष्टताको पाता है तो भी वह कर्मकी समाप्ति के समय अपने उत्पत्तिस्थानरूप ब्राह्मण पुरोहितका ही आश्रय लेता है। जो क्षत्रिय बलके अभिमानसे वा प्रमादसे भी इस ब्राह्मण जातिको वक्रभाव से देखकर

सताता है वह अपने उत्पत्तिस्थानका नाश करता है। जैसे लोकमें अधिक श्रेष्ठका तिरस्कार करके पुरुष अधिक पापी होजाता है, तैसे ही वह इस कर्मको करके अधिक पापी होता है ॥ ११ ॥

स नैव व्यभवत्स विशमसृजत यान्येतानि देवजातानि गणश आख्यायन्ते वसवो रुद्रा आदित्या विश्वेदेवा मरुत इति ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (नैव) नहीं (व्यभवत्) पर्याप्त हुआ (सः) वह (विशम्) वैश्यको (असृजत) रचता हुआ (यानि) जो (देवजातानि) देवसमूह (गणशः) समुदायरूपसे (आख्यायन्ते) कहेजाते हैं (एतानि) ये (वसवः) वसु (रुद्राः) रुद्र (आदित्या) आदित्य (विश्वेदेवाः) विश्वेदेवता (मरुतः) मरुत् (इति) इत्यादि हैं ॥ १२ ॥

(भावार्थ)-अब यज्ञादि कर्मके अनुरूप द्रव्यको संपादन करनेके लिये वैश्यसृष्टि कहते हैं, कि-वह ब्राह्मणका अभिमानवाला अग्निरूप पुरुष क्षत्रियजातिको रचने पर भी धनका संग्रह करनेवालेके न होनेसे कर्मके लिये पर्याप्त नहीं हुआ, इस कारण उसने वैश्यको रचा। जो ये देवसमूह समुदायरूपसे कहेजाते हैं उनमें वैश्य ये हैं आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य तेरह विश्वेदेवा और उनचास मरुत्। इसप्रकार देववैश्योंको रचकर फिर मनुष्य वैश्योंको रचा ॥ १२ ॥

स नैव व्यभवत्स शौद्रं वर्णमसृजत पूषणमियं वै पूषयꣳ हीदꣳ सर्वं पुष्यति यदिदं किञ्च १३

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (नैव) नहीं (व्यभवत्)

पर्याप्त हुआ (सः) वह (शौद्रं, वर्णम्) शूद्र वर्णको (असृजत) रचता हुआ (पूषणम्) पूषाको (इयम्, वै, पूषा) यह प्रसिद्ध पूषा है (हि) क्योंकि (इदम्) यह (यत्, किञ्च) जो कुछ भी है (इदं, सर्वम्) इस सबको (पुष्यति) पुष्ट करता है ॥ १३ ॥

(भावार्थ)-सेवा करनेवालेके न होनेसे वह कर्म करनेको पर्याप्त न हुआ इसलिये उसने शूद्र वर्णको रचा पूषा देवशूद्र है। यह प्रसिद्ध पृथिवी पूषा है, क्योंकि-यह पृथिवी, जो कुछ भी प्राणियोंका समूह है उसका पोषण करती है। देवशूद्रके अन्तर उसने मनुष्य शूद्र वर्णको रचा ॥ १३ ॥

(क्षत्रियके उत्पन्नेसे उसकी नियन्तारूप धर्मसृष्टिको कहते हैं-)

स नैव व्यभवत्तच्छ्रेयोरूपमत्यसृजत धर्मं तदे-तत्क्षत्रस्य क्षत्रं यद्धर्मस्तस्माद्धर्मात्परं नास्त्यथो अबलीयान् बलीयाꣳसमाशꣳसते धर्मेण यथा राज्ञैवं यो वै स धर्मः सत्यं वै तत्तस्मात्सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं वदतीति धर्मं वा वदन्तꣳ सत्यं वदतीत्येतद्ध्येवैतदुभयं भवति ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (नैव) नहीं (व्यभवत्) पर्याप्त हुआ (तत्) वह (श्रेयोरूपम्) श्रेष्ठरूप (धर्मम्) धर्मको (असृजत) उत्तमरूपसे रचता हुआ (तत्) सो (एतत्) यह (धर्मम्) धर्म (क्षत्रस्य) क्षत्रियका (क्षत्रम्) नियन्ता है (यत् धर्मः) जो धर्म है (तस्मात्) धर्मात्) जिस धर्मसे (परम्) श्रेष्ठ (न, अस्ति) नहीं

है (अथो) और (यथा) जैसे (राज्ञा) राजाके द्वारा (एवम्) इस प्रकार ही (अबलीयान्) दुर्बल (धर्मेण) धर्मके द्वारा (बलीयांसम्) बलवान्को(आशंसते)जीतना चाहता है (यः) जो (वै) प्रसिद्ध (सः) वह (धर्मः) धर्म है (तत्,वै,सत्यम्) वह प्रसिद्ध सत्य है (तस्मात्) तिससे (सत्यं,वदन्तम्) सत्य बोलतेहुएको (धर्मं,वदति, इति) धर्म बोल रहा है ऐसा (वा) वा (धर्मं, वदन्तम्) धर्म बोलनेवालेको (सत्यं, वदति, इति) सत्य बोलता है ऐसा (आहुः) कहते हैं (हि) ऐसा है इसकारण (एतत्) यह (उभयम्) दोनों (एतत् , एव, भवति) धर्म ही होता है ॥ १४ ॥

(भावार्थ)-इन चारों वर्णोंको रचकर भी कर्म करने के लिये पर्याप्त न हुआ, इसलिये उस ब्रह्मने श्रेष्ठरूप धर्मको उत्कृष्टरूपसे रचा, वह धर्म ही क्षत्रियका भी नियन्ता है इसलिये धर्मसे श्रेष्ठ और कोई नियन्ता नहीं है। जैसे राजाके बलसे थोडे बलवाला अधिक बलवालेको जीतना चाहता है, ऐसे ही अति दुर्बल भी अधिक बलवान्को धर्मरूप बलसे जीतना चाहता है। जो प्रसिद्ध शास्त्रोक्त कर्मरूप धर्म है वह प्रसिद्ध यथार्थ भाषणरूप सत्य है क्योंकि-धर्म और सत्य दोनोंका अभेद है इसलिये व्यवहारके समय सत्य बोलनेवाले पुरुषको कहते हैं, कि-यह धर्म कहिये न्यायकी बात कहता है, ऐसा धर्म और सत्यके विवेकको जाननेवाले पुरुष कहते हैं अथवा जो धर्म कहिये न्यायकी बात बोलता है उसको सत्य (शास्त्रानुकूल बोलनेवाला)कहते हैं। ऐसा है इसलिये सत्य और धर्म ये दोनों धर्म ही हैं ॥

ऊपर कही रीतिसे ब्रह्मका चार वर्णरूपमें होना, उस

में अग्नि तथा ब्राह्मणकी श्रेष्ठता और आत्मज्ञानका माहात्म्य कहते हैं—

तदेतद् ब्रह्म क्षत्रं विट्शूद्रस्तदग्निनैव देवेषु ब्रह्माभवद् ब्राह्मणो मनुष्येषु क्षत्रियेण क्षत्रियो वैश्येन वैश्यः शूद्रेण शूद्रस्तस्मादग्नावेव देवेषु लोकमिच्छन्ते ब्राह्मणे मनुष्येष्वेताभ्यां हि रूपाभ्यां ब्रह्माभवत्। अथ यो ह वा अस्माल्लोकात्स्वं लोकमदृष्ट्वा प्रैति स एनमविदितो न भुनक्ति यथा वेदो वाऽननूक्तोऽन्यद्वा कर्माकृतं यदिह वा अप्यनेवंविन्महत्पुण्यं कर्म करोति तद्धास्यान्ततः क्षीयत एवात्मानमेव लोकमुपासीत स य आत्मानमेव लोकमुपास्ते न हास्य कर्म क्षीयते। अस्माद्ध्येवात्मनो यद्यत्कामयते तत्तत्सृजते ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ (ब्रह्म) ब्राह्मण (क्षत्रम्) क्षत्रिय (विट्) वैश्य (शूद्रः) शूद्र (तत्) सो (एतत्) यह (अग्निना, एव) अग्निके द्वारा ही (देवेषु) देवताओं में (ब्रह्म) ब्राह्मण (अभवत्) हुआ (मनुष्येषु) मनुष्योंमें (ब्राह्मणः) ब्राह्मण हुआ (क्षत्रियेण) क्षत्रियके द्वारा (क्षत्रियः) क्षत्रिय हुआ (वैश्येन) वैश्यके द्वारा (वैश्यः) वैश्य हुआ (शूद्रेण) शूद्रके द्वारा (शूद्रः) शूद्र हुआ (तस्मात्) तिससे (देवेषु) देवताओंमें (अग्नावेव) अग्निके विषैं ही (लोकम्) कर्मफलको (इच्छन्ते) चाहते हैं (मनुष्येषु) मनुष्योंके विषैं

(ब्राह्मणे) ब्राह्मणमें [इच्छन्ते] चाहते हैं (हि) क्योंकि (एताभ्याम्) इन (रूपाभ्याम्) रूपोंसे (ब्रह्म) ब्रह्म (अभवत्) हुआ (अथ) अब (यः) जो (ह) प्रसिद्ध (स्वं, लोकम्) अपने लोकको (अदृष्ट्वा, वै) अनुभव बिना किये हो (अस्मात् लोकात्) इस शरीरसे (प्रैति) मरणको प्राप्त होता है (एनम्) इसको (अविदितः) न जाना हुआ (सः) वह (न, भुनक्ति) पालन नहीं करता है (यथा वा) जैसे (अननूक्तः) अध्ययन न किया हुआ (वेदः) वेद (वा) अथवा (अकृतम्) न कराहुआ (अन्यत्) और (कर्म) कर्म (इह, अपि) यहाँ भी (अनैवंवित्) ऐसा न जाननेवाला (यद्, वै) जो कुछ भी (महत्, पुण्यं, कर्म) महान् पुण्य कर्मको (करोति) करता है (अस्य) इसका (तत्, ह) वह प्रसिद्ध कर्म (अन्ततः) अन्तमें (क्षीयते, एव) क्षीण ही हो जाता है (आत्मानम्, एव) आत्मरूप ही (लोकं, उपासीत) फलकी उपासना करै (सः) वह (यः) जो (आत्मानं, एव, लोकं, उपास्ते) आत्मरूप ही लोकका अनुसन्धान करता है (अस्य) इसका (कर्म) कर्म (ह) निश्चय (न क्षीयते) क्षीण नहीं होता है (यत्, यत्) जो जो (कामयते) कामना करता है (तत्, तत्) वह वह (अस्मात्) इस (आत्मनः, एव, ह) आत्मामेंसे ही (सृजते) रचलेता है ॥ १५ ॥

(भाषार्थ)-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णोंको रचा, वह अग्निरूपको प्राप्त हुआ ब्रह्म अग्नि-रूपसे ही देवताओंमें ब्राह्मण हुआ। वह अग्निरूप देव-ब्राह्मण उस रूपसे ही मनुष्योंमें ब्राह्मण हुआ। इन्द्रादि देवतारूप क्षत्रियसे अधिष्ठित मनुष्य क्षत्रिय हुआ। वसु

आदि देववैश्यसे अधिष्ठित मनुष्य वैश्य हुआ और पूषा रूप देवशूद्रसे अधिष्ठित मनुष्य शूद्र हुआ। क्योंकि अग्नि में और ब्राह्मणमें अविकृत ब्रह्म है, इसलिये मनुष्य देवताओंमें अग्निके विषैं ही अग्निसंबन्धी कर्म करके ही फलकी कामना किया करते हैं, और मनुष्योंमें ब्राह्मण जातिका ही आश्रय लेकर फलकी इच्छा करते हैं। क्योंकि-इस ब्राह्मण और अग्निरूपसे ब्रह्म ही प्रकट हुआ है, इसकारण ऐसा कहना ठीक है। अब जो कोई प्रसिद्ध ब्रह्मरूप अपने लोकका 'मैं ब्रह्म हूं' ऐसा अनुभव न करके इस शरीरमें मरणको प्राप्त होजाता है, उसको वह परमात्मा अविदित होनेके कारण शोक मोह आदि दोषोंको दूर करनारूप पालन नहीं करता है। जैसे अध्ययन न किया हुआ वेद कर्म आदिके ज्ञापकपनेसे पालन नहीं करता है अथवा न किया हुआ खेती आदि अन्य कर्म अपने फलदानसे पालन नहीं करता है। इस संसार मण्डलमें यदि कोई महात्मा भी अपने स्वरूपको न जान कर अश्वमेध आदि बड़ाभारी पुण्य कर्म करता है तो इसका वह पुण्यकर्म फलभोगके अन्तमें क्षीण हो-जाता है, इससे मनुष्यको चाहिये, कि-अनात्मदृष्टिको दूर करके निरन्तर आत्मस्वरूपका ही विचार करे। जो कोई इस रीतिसे आत्मस्वरूपका अनुसन्धान करता है उस उपासकका कर्म निश्चय क्षीण नहीं होता है। वह उपासक जिस २ इच्छित पदार्थकी कामना करता है, उस सबको इस आत्मामेंसे ही रच लेता है, उसको और किसी साधनकी आवश्यकता नहीं पड़ती है॥१५॥

इस प्रकार विद्वान्‌की स्वतन्त्रताको कहकर अब अवि-

हान् किस २ कर्मसे किस २ देवताका पशुकी समान उपभोग्य होता है सो दिखाते हैं—

अथो अयं वा आत्मा सर्वेषां भूतानां लोकः स यज्जुहोति यद्यजते तेन देवानां लोकोऽथ यदनुब्रूते तेन ऋषीणामथ यत्पितृभ्यो निपृणाति यत्प्रजामिच्छते तेन पितॄणामथ यन्मनुष्यान् वासयते यदेभ्योऽशनं ददाति तेन मनुष्याणामथ यत्पशुभ्यस्तृणोदकं विन्दति तेन पशूनां यदस्य गृहेषु श्वापदा वयाᳫँस्यापिपीलिकाभ्य उपजीवन्ति तेन तेषां लोको यथा ह वै स्वाय लोकायारिष्टिमिच्छेदेवᳫँ हैवंविदे सर्वाणि भूतान्यरिष्टिमिच्छन्ति तद्वा एतद्विदितं मीमाᳫँसितम्॥

अन्वय और पदार्थ-(अथो) अब (अयम्) यह (वै) प्रसिद्ध (आत्मा) पुरुष (सर्वेषाम्) सब (भूतानाम्) प्राणियोंका (लोकः) भोग्य है (सः) वह (यत्) जो (जुहोति) होमता है (यत) जो (यजति) यजन करता है (तेन) उससे (देवानाम्) देवताओंका (लोकः) भोग्य है (अथ) और (यत्) जो (अनुब्रूते) अध्ययन करता है (तेन) उससे (ऋषीणाम्) ऋषियोंका (अथ) और (यत्) जो (पितृभ्यः) पितरोंके अर्थ (निपृणाति) देता है (यत्) जो (प्रजाम्) सन्तानको (इच्छते) उत्पन्न करता है (तेन) उससे (पितॄणाम्) पितरोंका (यत्) जो (मनुष्यान्) मनुष्योंको (वासयते) बसाता है (यत) जो (एभ्यः) इनके लिये (अशनम्) भोजन

(ददाति) देता है (तेन) जिससे (मनुष्याणाम्) मनुष्योंका (यत्) जो (पशुभ्यः) पशुओंको (तृणोदकम्) घास और जल (विन्दति) पहुँचाता है (तेन) उससे (पशूनाम्) पशुओंका (अस्य) इसके (गृहेषु) घरों में (आपिपीलिकाभ्यः) चीटियों से लेकर (श्वापदाः) मार्जार आदि (वयांसि) पक्षी (यत्) जो (उपजीवन्ति) निर्वाह करते हैं (तेन) जिससे (तेषाम्) उनका (लोकः उपभोग्य है (वै) निश्चय (यथा) जैसे (ह) प्रसिद्ध है (स्वाय) अपने (लोकाय) देहके लिये (अरिष्टिम्) अविनाशको (इच्छेत्) चाहे एवं,ह) इस प्रकार ही एवम्विदे) ऐसा जानने वालेके लिये(सर्वाणि)सब (भूतानि) प्राणी (अरिष्टिम्) अविनाशको (इच्छन्ति) इच्छा करते हैं (तत्) वह (एतत्) यह (वै) प्रसिद्ध (विदितम) जानाहुआ (मीमांसितम्) निश्चित है ॥ १६ ॥

(भावार्थ)-अब यह प्रसिद्ध कर्माधिकारी अविद्वान् गृहस्थ पुरुष वर्णाश्रमोंके लिये विहित कर्मोंके द्वारा प्राणियोंके ऊपर उपकार करता है, इस लिये सब प्राणियोंका भोग्य है। यह गृहस्थ देवताओंके लिये जो अग्निमें होम करता है तथा देवताओंके लिये जो दान पूजन करता है उससे इन्द्रादि देवताओंका भोग्य है और जो प्रतिदिन वेद आदिका स्वाध्याय किया करता है उससे ऋषियोंका भोग्य है और पितरोंको जो पिण्ड जल आदि देता है तथा जो सन्तान उत्पन्न करता है इन दोनों कामोंसे पितरोंका भोग्य है और मनुष्योंको जो भूमि जल आदि देता हुआ बसाता है तथा उनको जो भोजन देता है, इससे मनुष्योंका भोग्य है और पशुओंको जो तृण जल आदि देता है इससे पशुओंका

भोग्य है और घरोंमें चींटियोंसे लेकर मार्जार आदि श्वापद तथा पक्षी आदि जो दान भोजन एवं पात्रोंकी धोवन आदिसे निर्वाह करते हैं इससे यह उनका उपभोग्य है, जिस प्रकार प्राणी अपने शरीरका आरोग्य चाहता है, पोषण रक्षण आदिसे अपने शरीरका पालन करता है इसप्रकार ही 'मैं सब प्राणियोंका भोग्य हूं' ऐसा समझने वालेके लिये अपनेको देवऋषि आदिका ऋणी माननेवालेके लिये देवता आदि सकल प्राणी उसके अविनाशकी-उसके आरोग्यकी रक्षा किया करते हैं। इन कहे हुए प्रसिद्ध कर्मोंका अवश्यकर्त्तव्यपना पञ्चमहायज्ञके प्रकरणमें जानलिया गया है और शास्त्रमें इनकी अवश्य कर्त्तव्यताका निश्चय भी किया है ॥ १६॥

किसकी प्रेरणासे यह पुरुष परवश होकर प्रवृत्तिमार्गमें को चलता है और निवृत्तिमार्गमें को नहीं जाता, इस शङ्का पर कहते हैं कि-इसका प्रवर्त्तक काम ही है-

आत्मैवेदमग्र आसीदेक एव सोऽकामयत जाया मे स्यादथ प्रजायेयाथ वित्तं मे स्यादथ कर्म कुर्वीयेत्येतावान् वै कामो नेच्छꣳश्च नातो भूयो विन्देत्तस्मादप्येतर्ह्येकाकी कामयते जाया मे स्यादथ प्रजायेयाथ वित्तं मे स्यादथ कर्म कुर्वीयेति स यावदप्येतेषामेकैकं न प्राप्नोत्यकृत्स्न एव तावन्मन्यते तस्यो कृत्स्नता मन एवास्याऽऽत्मा वाग् जाया प्राणः प्रजा चक्षुर्मानुषं वित्तं चक्षुषा हि तद्विन्दते श्रोत्रं दैवꣳ श्रोत्रेण हि तच्छृ-

णोत्यात्मैवास्य कर्माऽऽत्मना हि कर्म करोति स एष पाङ्क्तो यज्ञः पाङ्क्तः पशुः पाङ्क्तः पुरुषः पाङ्क्तमिदँ सर्वं यदिदं किञ्चतदिदँसर्व-मात्मेति य एवं वेद ॥ १७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अग्रे) पहले (इदम्) यह (आत्मा एव) आत्मा ही (एकः, एव) एक ही (आसीत्) था (सः) वह (मे) मेरे (जाया) स्त्री (स्यात्) हो (अथ) फिर (प्रजायेय) उत्पन्न होऊँ (अथ) और (मे) मेरे (वित्तम्) धन (स्यात्) हो (अथ) फिर (कर्म) कर्म (कुर्वीय) करूँ (इति) ऐसी (अकामयत) इच्छा करता हुआ (एतावान्, वै) इतना ही (कामः) विषय है (इच्छंश्चन) इच्छा करता हुआ भी (अतः) इससे (भूयः) अधिक (न) नहीं (विन्देत्) पावेगा (तस्मात्) तिससे (एतर्हि, अपि) इस समय भी (एकाकी) अकेला (मे, जाया, स्यात्) मेरे स्त्री हो (अथ, प्रजायेय) फिर उत्पन्न होऊँ (अथ) और (मे, वित्तम्, स्यात्) मेरे धन हो (अथ, कर्म, कुर्वीय) फिर कर्म करूँ (इति) ऐसी (कामयते) इच्छा करता है (सः) वह (यावत्) जब तक (एतेषाम्) इनमेंसे (एकैकम्, अपि) एक २ को भी (न) नहीं (प्राप्नोति) पाजाता है (तावत्) तब तक (अकृत्स्नः, एव) अपूर्ण ही (मन्यते) मानता है (तस्य) उसकी (कृत्स्नता) पूर्णता (उ) इस प्रकार होती है (अस्य) इसका (मनः, एव) मन ही आत्मा आत्मा है (वाक्) वाणी (जाया) स्त्री है (प्राणः) प्राण (प्रजा) सन्तान है (चक्षुः) चक्षु (मानुषम्) मनुष्य संबन्धी (वित्तम्) धन है (हि) क्योंकि (चक्षुषा)

चक्षुसे (तत्) उसको (विन्दते) पाता है (श्रोत्रम्) श्रोत्र (दैवम्) देवसंबन्धी धन है (हि) क्योंकि (श्रोत्रेण) श्रोत्रके द्वारा (तत्) उसको (शृणोति) सुनता है (आत्मा, एव) शरीर ही (अस्य) इसका (कर्म) कर्म है (हि, क्योंकि (आत्मना) शरीरके द्वारा (कर्म,करोति) कर्म करता है (सः) वह (एषः) यह (पांक्तः) पांच से होनेवाला (यज्ञः) यज्ञ है (पशुः) पशु (पांक्तः) पांक्त है (पुरुषः) पुरुष (पांक्तः) पांक्त है (इदम्) यह (यत् किञ्च) जो कुछ है (इदम्) यह (सर्वम्) सब (पांक्तम्) पांक्त है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है [सः] वह (तत्) उस (इदम्) इस (सर्वम्) सबको (आप्नोति) प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

(भावार्थ)-स्त्रीके संबन्धसे पहले यह स्त्री आदिका समूह स्वाभाविक अविद्यासे युक्त ब्रह्मचारीरूप आत्मा ही था और वह एक ही था। उस ब्रह्मचारीने स्वाभाविक अविद्याकी वासनासे युक्त होकर "मुझे कर्मके अधिकारकी हेतुरूप स्त्री प्राप्त हो, फिर मैं ही सन्तान रूपसे उत्पन्न होऊं, तदनन्तर मुझे कर्मका साधनरूप गौ आदि धन प्राप्त हो और मैं नित्य नैमित्तिक तथा काम्य कर्म करूं" ऐसी इच्छा की। स्त्री पुत्र धन और कर्म इतना ही इच्छा करनेयोग्य विषय है, इस साधनमें ही मनुष्यलोक पितृलोक और देवलोक रूप फलका अन्तर्भाव है। चाहना करने पर भी इस फल साधनसे अधिक कोई नहीं पाता है, इसलिये इतना ही इच्छा करनेयोग्य विषय है, ऐसा जो ऊपर कहा वह ठीक ही है। क्योंकि-पहले प्रजापतिको स्त्री आदि विषयकी इच्छा हुई थी, इसकारण इस समय भी स्वाभाविक

अविद्यामें युक्त पुरुष अकेला होने पर "मुझे स्त्री मिले और मैं सन्तानरूपसे उत्पन्न होऊँ, फिर मुझे धन मिले और मैं कर्म करूँ" ऐसी इच्छा करता है। इस प्रकार इच्छा करता हुआ यह कामनावाला मनुष्य जबतक उन स्त्री आदिमेंसे एक एक पदार्थको नहीं पाजाता है तब तक अपनेको अपूर्ण मानता है। ऐसे तृष्णावान् पुरुषको संपूर्णता प्राप्त न हो तो उसका यह उपाय है, कि-मन ही आत्मा है, वाणी ही स्त्री है, प्राण ही सन्तान है, दर्शनक्रियावाला नेत्र ही मनुष्य संबन्धी द्रव्य है क्यों कि-नेत्रसे द्रव्यको पाता है, श्रवणक्रियावाला श्रोत्र ही देवसंबन्धी द्रव्य है क्योंकि-श्रोत्रसे ही देवादि विषयका विज्ञान सुनता है और शरीर ही इसका कर्म है क्योंकि शरीरसे कर्म करता है। ऐसा यह पाँचसे सिद्ध होनेवाले पाँक्त नामका उपासनारूप यज्ञ है। पशु-साध्य यज्ञ पाँक्त है, पुरुषसाध्य यज्ञ भी पाँक्त है। जो कुछ इस कर्मका साधन और फलरूप है वह सब पाङ्क्त है, जो इसप्रकार अपनेको पाङ्क्त यज्ञरूप जानता है वह इस सब जगत् को आत्मरूपसे पाजाता है ॥ १७ ॥

प्रथमाध्यायस्य चतुर्थं ब्राह्मणं समाप्तम् ।

इस प्रकार कामनाके प्रेरणा किये हुए गृहस्थ अगृहस्थके द्वारा पाँक्त उपासना तथा कर्मसे वा केवल उपासनासे भोग्यरूपमें रचेहुए अन्नभूत जगत्का उपासना के लिये सात प्रकारके विभागके द्वारा निरूपण करनेके निमित्त इस सप्तान्न ब्राह्मणका आरम्भ किया जाता है, उसमें विनियोग सहित अन्नके प्रकाशक सूत्रभूत मन्त्र ये हैं-

यत्सप्तान्नानि मेधया तपसाऽजनयत्पिता। एक-
मस्य साधारणं द्वे देवानभाजयत्। त्रीण्यात्मनेऽ
कुरुत पशुभ्य एकं प्रायच्छत्। तस्मिन् सर्वं
प्रतिष्ठितं यच्च न। कस्मात्तानि न क्षीयन्तेऽद्य-
मानानि सर्वदा। यो वैतामक्षितिं वेद सोऽन्नमत्ति
प्रतीकेन। स देवानपि गच्छति स ऊर्जमुप-
जीवतीति श्लोकाः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(पिता) जीव (मेधया) उपासना के द्वारा (तपसा) कर्मके द्वारा (यत्) प्रसिद्ध (सप्त, अन्नानि) सात अन्नोंको (अजनयत्) उत्पन्न करता हुआ (एकम्) एक (अस्य) इसका (साधारणम्) साधारण है (द्वे) दो (देवान्) देवताओंको (अभा-जयत्) अर्पण करता हुआ (त्रीणि) तीन (आत्मने) अपने लिये (अकुरुत) करता हुआ (एकम्) एक (पशुभ्यः) पशुओंके अर्थ (प्रायच्छत्) देताहुआ (यत्) जो (प्राणिति) चेष्टा करता है (च) और (यत्) जो (न, च) नहीं करता है (सर्वम्) सब (तस्मिन्) उस में (प्रतिष्ठितम्) स्थित है (सर्वदा) सर्वदा करके (अद्य-मानानि) खाये जाते हुए (तानि) वे (कस्मात्) किस कारणसे (न) नहीं (क्षीयन्ते) क्षीण होते हैं (यः) जो (वै) प्रसिद्ध (ताम्) तिस (अक्षितिम्) अन्नका क्षय न होनेके कारणको (वेद) जानता है (सः) वह (प्रतीकेन) मुख्यभावसे (अन्नम्) अन्नको (अत्ति) खाता है (सः) वह (देवान्, अपिगच्छति) देवभाव को भी प्राप्त होता है (सः) वह (ऊर्जम्) अमृतको

(उपजीवति) भोगता है (एते) ये (श्लोकाः) मंत्र कहे हैं ॥ १ ॥

(भावार्थ)-उपासना और कर्मका अधिकारी क्षेत्रज्ञ जीवने पांक्त उपासनासे और पांक्त कर्मसे जो सात प्रसिद्ध अन्न हैं उनको उत्पन्न किया । क्षुधाको शान्त करनेवाला एक अन्न इस सर्वभक्षक सृष्टिका साधारण अन्न है । दर्श-पूर्णमास नामके दो अन्न देवताओंको दिये । मन, वाणी और प्राणरूप तीन अन्न अपने लिये रक्खे । दूधरूप एक अन्न पशुओंको दिया । अग्निहोत्र आदिमें होमा हुआ दूध सब जगत्का कारण है, इसलिये जो प्राणचेष्टा करते हैं और जो प्राणचेष्टा नहीं करते हैं ये सब उस दूधमें स्थित हैं । उस अन्नको सब भूत खाते हैं तो भी उसका क्षय क्यों नहीं होता है? "उसको निरन्तर पुरुष उत्पन्न किया करता है इसलिये क्षय नहीं होता" इसको अङ्गीकार करके अन्नके हेतुभाव से प्राप्त पुरुषके अविनाशिपनेरूप गुणके विज्ञानका फल कहते हैं, कि-जो अन्नके अक्षयके इस प्रसिद्ध कारणको जानता है वह मुख्य बनकर अन्नको खाता है देवात्मभावको पाता है और वह अमृतका भोक्ता होता है । इसप्रकार मंत्र कहे हैं ॥ १ ॥

इन मंत्रोंका अर्थ बहुत ही कठिन है, इसलिये प्रतीक उठाकर उनकी व्याख्या करनेके लिये नीचेकी कण्डिका का आरंभ होता है-

यत्सप्तान्नानि मेधया तपसाऽजनयत्पितेति मेधया हि तपसाऽजनयत्पिता । एकमस्य साधारणमितीदमेवास्य तत्साधारणमन्नं यदिदमद्यते । स

य एतदुपास्ते न स पाप्मनो व्यावर्त्तते मिश्र-
ꣳ ह्येतत् । द्वे देवानभाजयदिति हुतञ्च
प्रहुतञ्च तस्माद् देवेभ्यो जुह्वति च प्र च
जुह्वत्यथो आहुर्दर्शपूर्णमासाविति । तस्मान्ने-
ष्टियाजुकः स्यात । पशुभ्य एकं प्रायच्छदिति
तत्पयः । पयो ह्येवाग्रे मनुष्याश्च पशवश्चोपजी-
वन्ति तस्मात्कुमारं जातं घृतं वैवाग्रे प्रतिलेह-
यन्ति स्तनं वाऽनुधापयन्त्यथ वत्सं जातमाहुर-
तृणाद इति तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितं यच्च प्राणि-
ति यच्च नेति पयसि हीदꣳ सर्वं प्रतिष्ठितं यच्च
प्राणिति यच्च न । तद्यदिदमाहुः संवत्सरं पयसा
जुह्वदप पुनर्मृत्युं जयतीति न तथा विद्याद्यद-
हरेव जुहोति तदहः पुनर्मृत्युमपजयत्येवं विद्वान्
सर्वꣳ हि देवेभ्योऽन्नाद्यं प्रयच्छति । कस्मात्तानि
न क्षीयन्तेऽद्यमानानि सर्वदेति पुरुषो वा अक्षि-
तिः स हीदमन्नं पुनः पुनर्जनयते । यो
वैतामक्षितिं वेदेति पुरुषो वा अक्षितिः स
हीदमन्नं धिया धिया जनयते कर्मभिर्यद्धैतन्न कुर्यात्
क्षीयेत ह सोऽन्नमत्ति प्रतीकेनेति मुखं प्रतीकं
मुखेनेत्येतत् । स देवानपिगच्छति स ऊर्ज-
मुपजीवतीति प्रशꣳसा ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(पिता) जीव (कृपया) उपासना ।

करके (तपसा) कर्म करके (यत्) जो (सप्त, अन्नानि) सात अन्नोंको (अजनयत्) उत्पन्न करता हुआ (इति) यह कहा (पिता) जीव (मेधया) उपासना करके (तपसा) कर्म करके (अजनयत्) उत्पन्न करता हुआ (हि) यह प्रसिद्ध है (एकम्) एक (अस्य) इसका (साधारणम्) साधारण है (इति) ऐसा कहा (इदं, एव) यह ही (अस्य) इसका (तत) वह (साधारणं,अन्नम्) साधारण अन्न है (यत्) जो (इदम्) यह (अद्यते) खाया जाता है (सः) वह (यः) जो (एतत्) इसको (उपास्ते) उपासना करता है (सः) वह (पाप्मनः) पापसे (न) नहीं (व्यावर्त्तते) मुक्त होता है (हि) क्योंकि (एतत) यह (मिश्रम्) साधारण है (द्वे) दो (देवान्) देवताओंको (अभाजयत्) अर्पण करता हुआ (इति) यह (हुतम्) हवन (च) और (प्रहुतम्, च) बलिहरण है (तस्मात्) तिससे (देवेभ्यः) देवताओंके अर्थ (जुह्वति) होम करते हैं (च) और (प्रजुह्वति, च) बलिदान भी किया करते हैं (अथो) और (दर्शपूर्णमासौ) दर्श और पूर्णमास हैं (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं (तस्मात्) तिससे (इष्टियाजुकः) इष्टिका यजन करनेवाला (न) नहीं (स्यात्) होय (पशुभ्यः, एकं, प्रायच्छत्) पशुओंको एक देता हुआ (इति) ऐसा जो कहा (तत्) वह (पयः) दूध है (हि) क्योंकि (मनुष्याः) मनुष्य (च) और (पशवः, च) पशु भी (अग्रे) पहले (पयः, उपजीवन्ति) दूधसे निर्वाह करते हैं (तस्मात्) तिससे (जातम्) उत्पन्न हुए (कुमारम्) बालकको (अग्रे) पहले (घृतं, वै, एव) घी ही (प्रतिलेहयन्ति) चटाते हैं (पयः) दूध (अनुधापयन्ति)

पीछेसे पिलाते हैं (अथ) और (जातम्) उत्पन्न हुए (वत्सम्) बछड़ेको (अतृणादः) तृण खानेवाला (न) नहीं है (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं (यत्) जो (प्राणिति) चेष्टा करता है (च) और (यत्) जो (न) नहीं (सर्वम्) सब (तस्मिन्) उसमें (प्रतिष्ठितम्) स्थित है (इति) इस मंत्रसे (यत्) जो (प्राणिति) चेष्टा करता है (च) और (यत्) जो (न च) नहीं (हि) निःसन्देह (इदम्) यह (सर्वम्) सब (पयसि) दूधमें (प्रतिष्ठितम्) स्थित है (संवत्सरम्) वर्षभरतक (पयसा) दूधके द्वारा (जुह्वत्) हवन करता हुआ (पुनर्मृत्युम्) पुनः मरणको (अपजयति) जीतलेता है (तत्) सा (यत्) जो (इदम्) यह (आहुः) कहते हैं (इति) इसको (तथा) तैसा (न) नहीं (विद्यात्) जानै (यदहः) जिस दिन (जुहोति) होम करता है (तदहः,एव) उस दिन ही (पुनर्मृत्युम्) पुनः मरणको (अपजयति) जीतलेता है (हि) क्योंकि (एवं, विद्वान्) ऐसा जाननेवाला (सर्वम्) सब (अन्नाद्यम्) भक्षण करनेयोग्य अन्न (देवेभ्यः) देवताओंके अर्थ (प्रयच्छति) देता है (सर्वदा) सबसे (अद्यमानानि) खायेजाते हुए (तानि) वे (कस्मात्) किस कारणसे (न) नहीं (क्षीयन्ते) क्षयको प्राप्त होते हैं (इति पुरुषः, वै) यह पुरुष ही (अक्षितिः) अक्षयका हेतु है (हि) क्योंकि (सः) वह (पुनः पुनः) बार बार (इदं, अन्नम्) इस अन्नको (जनयते) उत्पन्न करता है (यः) जो (वा) प्रसिद्ध (एताम) इस (अक्षितिम्) अक्षयके हेतुको (वेद) जानता है (इति, पुरुषः, वै) यह पुरुष ही (अक्षितिः) अक्षयका कारण है (हि) क्योंकि (सः) वह (इदम्)

इस (अन्नम्) अन्नको (धिया, धिया) प्रत्येक बुद्धिसे (कर्मभिः) कर्मोंसे (जनयते) उत्पन्न करता है (यत्) जो (ह) प्रसिद्ध (एतत्) इसको (न) नहीं (कुर्यात्) करे (चीयते, ह) निश्चय क्षय पाता है (सः) वह (प्रतीकेन) प्रतीकके द्वारा (अन्नम्) अन्नको (अत्ति) खाता है (इति) इस मंत्रमें (प्रतीकम्) प्रतीक (मुखम्) मुख कहलाता है (इति) इसका अर्थ (मुखेन, एतत्) मुखरूपसे ऐसा होता है (सः) वह (देवान्, अपि गच्छति) देवात्मभावको प्राप्त होता है (सः) वह (ऊर्जम्, उपजीवति) अमृतका भोक्ता होता है (इति) यह (प्रशंसा) प्रशंसा है ॥ २ ॥

(भावार्थ)-जीवने उपासनासे और कर्मसे, जो सात अन्न हैं उनको उत्पन्न किया, इस मन्त्रभागका, जीव ने उपासना और कर्मसे सात अन्नरूप जगत्को उत्पन्न किया यह अर्थ प्रसिद्ध है। इसका एक अन्न साधारण है, ऐसा जो मंत्र कहा उसका यह अर्थ है,कि- इन खानेवालों के समूहका साधारण अन्न यही है, जिसको कि-सब प्राणी नित्यप्रति भक्षण किया करते हैं। इस सब साधारण अन्नको असाधारण करनेवाला दोषका भागी होता है अर्थात् जो कोई सर्वसाधारण प्राणियोंके निर्वाहके हेतुरूप इस अन्नको केवल अपने ही शरीरको पुष्ट करनेके लिये खाता है वह अधर्मसे नहीं छूटता है, क्योंकि-यह अन्न मिश्र कहिये सर्व साधारण प्राणियोंका है। दो अन्न देवताओंको विभाग करके अर्पण किये, इस मंत्रमें कहे हुए दो अन्न-हवन और हवनके अनन्तर किया जाने वाला बलिहरण है। इसकारण ही आजकलके गृहस्थ भी देवताओंके लिये होम किया करते हैं और होमके

पीछे बलिहरण करते हैं। इसीका पूर्वपक्षपना सिद्ध करने के लिये पक्षान्तर कहते हैं। दूसरोंका कथन है, कि-हवन और बलिहरण ये दो देवताओंके अन्न नियत नहीं किये गये हैं, किन्तु दर्श और पूर्णमास इन दोनोंको देवताओंका अन्न कल्पना किया गया है, इसलिये मनुष्य काम्य दृष्टि न किया करे, क्योंकि-ऐसा करनेसे उस अन्न के देवान्न होनेमें बाधा पड़ती है। पशुओंके लिये एक अन्न दिया, इस मंत्रमें जिस अन्नको कहा है वह दूध है क्योंकि-मनुष्य और पशु पहले दूधसे ही आजीवन करते हैं, इसलिये द्विज उत्पन्न हुए बालकको जातकर्म में प्रथम दूधसे निकाला हुआ घी ही सुवर्णके साथ चटाया करते हैं, पीछे स्तन पिलाते हैं और शूद्रादिमें तथा पशुओंमें तो पहले ही स्तन पिलायाजाता है। तथा उत्पन्न हुए बछड़ेके विषयमें कोई बूझता है, कि-यह कितना बड़ा है? तो यही उत्तर देते हैं, कि-यह अतृणाद है अर्थात् अभी तृण नहीं खाता किन्तु दूधके ही ही आधार पर रहता है। जो प्राणचेष्टा करते हैं और जो प्राणचेष्टा नहीं करते वे सब उसमें ही स्थित हैं। इस मन्त्रसे, जो मनुष्य पशु आदि प्राणचेष्टा करते हैं और जो स्थावर प्राणचेष्टा नहीं करते वे सब दूधमें ही स्थित हैं, ऐसा कहा है, क्योंकि-सब जगत् दूधकी आहुतिका ही परिणाम है। इस उपासनाकी स्तुति करने के लिये मतान्तरका अवतरण देकर उसमें दोष दिखाते हैं, कि-"मैं प्रजापति हूं" ऐसी भावना करता हुआ और एक वर्ष पर्यन्त दूधसे होम करता हुआ पुनः मृत्युका पराजय करता है अर्थात् फिर मरनेके लिये जन्म नहीं लेता है, ऐसा जो अन्य शाखावाले कहते हैं उसको ठीक

न समझो किन्तु दूधके भीतर सब जगत् है, ऐसा जानता हुआ जिस दिन होम करता है उस दिन ही पुनः मृत्युका पराजय करता है, वार्षिक [illegible] आहुतिके अभ्यासकी आवश्यकता नहीं है । क्योंकि-ऐसा जानने वाला सबके भक्षण करनेयोग्य अन्न (दूध) देवताओं को अर्पण करता है, इसलिये वह सर्वदेवमय प्रजापति होकर उस दिन ही पुनः मृत्युका पराजय करता है, यह कहना ठीक ही है । सब प्राणी निरन्तर भक्षण किया करते हैं तो भी उस अन्नका क्षय क्यों नहीं होता है? इस मंत्रमें कियेहुए प्रश्नका उत्तर कहते हैं, कि-भोक्ता रूप पुरुष ही अन्नका क्षय न होनेका कारण है, क्योंकि वह मन, वाणी और शरीर की चेष्टारूप कर्मोंसे बारंबार इस अन्नको उत्पन्न करता है । जो इस अक्षयके प्रसिद्ध कारणको जानता है । इस मंत्रमें पुरुष ही अक्षयका कारण कहलाता है, क्योंकि वह पुरुष इस सात प्रकारके अन्न को प्रत्येक बुद्धिसे और कर्मोंसे उत्पन्न करता है, यदि इस प्रसिद्ध अन्नका न [illegible] [illegible] उस अन्नों [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] इसलिये इसका अर्थ होता है-'मुख[illegible] [illegible] पाता है और वह अमृतका [illegible] होता है । इस अंश में उपासनाके फलकी प्रशंसा है, और कोई अपूर्व अर्थ नहीं है ॥ ४ ॥

इस प्रकार मंत्रक्रमका उल्लंघन करके [illegible] [illegible] साधनभूत चार अन्नोंकी व्याख्या करके अब [illegible] तीन अन्नोंके प्रतीकको लेकर व्याख्या करते हैं—

त्रीण्यात्मनेऽकुरुतेति मनो वाचं प्राणं तान्यात्मनेऽकुरुतान्यत्रमना अभूवं नादर्शमन्यत्रमना अभूवं नाश्रौषमिति मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति । कामः सङ्कल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव तस्मादपि पृष्ठत उपस्पृष्टो मनसा विजानाति यः कश्च शब्दो वागेव सा । एषा ह्यन्तमायत्तैषा हि न प्राणोऽपानो व्यान उदानः समानोऽन इत्येतत्सर्वं प्राण एवैतन्मयो वा अयमात्मा वाङ्मयो मनोमयः प्राणमयः ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ— (त्रीणि) तीन (आत्मने) अपने लिये (अकुरुत) करता हुआ (मनः) मनको (वाचम्) वाणीको (प्राणम्) प्राणको (इति) इस प्रकार (तानि) तिनको (आत्मने) अपने लिये (अकुरुत) करता हुआ (अन्यत्रमनाः) अन्य विषयमें लगे हुए मनवाला (अभूवम्) था (न) नहीं (अदर्शम्) देखता हुआ (अन्यत्रमनाः) अन्य विषयमें लगे हुए मनवाला (अभूवम्) था (न) नहीं (अश्रौषम्) सुनता हुआ (इति) इसकारण (मनसा, हि) मनके द्वारा ही (पश्यति) देखता है (मनसा, एव) मनके द्वारा ही (शृणोति) सुनता है (कामः) अभिलाष (सङ्कल्पः) निश्चय (विचिकित्सा) संशयज्ञान (श्रद्धा) आस्तिक्यबुद्धि (अश्रद्धा) अविश्वास (धृतिः) धैर्य (अधृतिः) अधैर्य (ह्रीः) लज्जा (धीः) प्रज्ञा (भीः) भय (इति) इत्यादि (एतत्)

यह (सर्वम्) सब (मनः, एव) मन ही है (पृष्ठतः) पीछेसे (स्पृष्टः) स्पर्श किया हुआ (मनसा) मनके द्वारा (विजानाति) जानता है (तस्मादपि) तिससे भी [विवेककारणं, मनः, एव] विवेकका कारण मन ही है (यः, कश्च) जो कोई भी (शब्दः) शब्द है (सा, वाक्, एव) वह वाणी ही है (हि) क्योंकि (एषा) यह (अन्तं आयत्ता) अवसानके अनुगत है (एषा) यह (हि) निश्चित (न) नहीं है (प्राणः) प्राण (अपानः) अपान (व्यानः) व्यान (उदानः) उदान (समानः) समान (अनः) अन (इति) ऐसा (एतत्) यह (सर्वम्) सब (प्राणः, एव) प्राण ही है (अयम्) यह (आत्मा) शरीर (एतन्मयः) इसका कार्यरूप है (वाङ्मयः) वाणीका कार्यरूप है (मनोमयः) मनका कार्यरूप है (प्राणमयः) प्राणका कार्यरूप है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-तीनोंको अपने लिये रचा, इस कंडिकाका अर्थ इस प्रकार है कि-मन, वाणी और प्राण इन तीन अन्नोंको तीनोंको पहले इस प्रकार अपने लिये रच लिया। इनमेंसे मनके होनेमें प्रमाण कहते हैं, कि कोई पुरुष किसीसे प्रश्न करे कि तुमने सामने आयी [illegible] क्या नहीं देखा था? तो वह उत्तर देता है कि मेरा मन और विषयमें था इसलिये उसको मैंने नहीं देखा। यह प्रश्न करे कि-मैंने जो कुछ कहा था वह तुमने सुना? तो उत्तर देता है, कि-मेरा मन अन्यत्र था इसलिये मैंने नहीं सुना। क्योंकि—सब मनुष्य मनसे ही देखते हैं और मनसे ही सुनते हैं तथा मनके व्यग्र होने पर न कुछ दीखता है न कुछ सुनाई आता है, इससे मनका अस्तित्व सिद्ध होता है। अब आध्यात्मिक मनका स्वरूप कहते हैं, कि-स्त्री आदि

विषयके सम्बन्धकी अभिलाषा, यह नीला है यह श्वेत है ऐसा विषयविशेषका निश्चय, संशयज्ञान, अदृष्ट फलवाले कर्म और देवता आदिमें आस्तिक्यबुद्धि-रूप श्रद्धा, अदृष्ट फलवाले कर्म और देवता आदिमें अविश्वासरूप अश्रद्धा, धैर्य, अधैर्य, लज्जा, प्रज्ञा और भय आदि यह सब वृत्ति और वृत्तिवालेका अभेद होने से मन ही है अर्थात् जब ये सब मनकी वृत्तियें हैं तो मन ही हैं। मनके अस्तित्वमें और भी प्रमाण कहते हैं, कि-पीछेसे किसीके छू देने पर मनुष्य, यह किसीके हाथ का स्पर्श है, यह किसीकी जांघका स्पर्श है इस बातको मनसे ही जानलेता है इसलिये भी इस विवेकका कारण मन है। अब आध्यात्मिक वाणीका स्वरूप कहते हैं,कि-जो कोई भी वस्तुको जतानेवाला वर्ण अवर्णरूप शब्द है वह सब वाणी है, क्योंकि-यह प्रकाशस्वरूप वाणी वाक्य के निर्णयके अन्तकी अनुगामिनी है, इसलिये यह वाक्य का निर्णय करनेवाली वाणी निश्चय [प्रकाश्य] नहीं है किन्तु प्रकाशिका है। प्राणके अस्तित्वमें आध्यात्मिक प्राणके कार्यरूप प्रमाणको कहते हुए उसके स्वरूपको कहते हैं, कि-मुख और नासिकाके भीतर विचरनेवाली तथा हृदयमें संबंध रखनेवाली वायुकी वृत्तिरूप प्राण, मल मूत्र आदिको नीचे लेजानेवाली नाभिके आगे स्थित वायु की वृत्तिरूप अपान विशेषतया हृदयसे नाभिपर्यन्त रह कर प्राण अपानको नियममें रखनेवाली और बलवान् कर्म की हेतु वायुकी वृत्तिरूप व्यान, चरणके तलुएसे मस्तक पर्यन्त रहकर देहपुष्टि ऊर्ध्वगमन तथा उत्क्रान्ति आदिकी हेतुभूत वायुकी वृत्तिरूप उदान और कोठेमें रहकर अन्न को पचानेवाली वायुकी वृत्तिरूप समान तथा इन वृत्ति-

विशेषोंकी सामान्यरूप सामान्य देहचेष्टाके सम्बंधवाली वायुकी वृत्तिरूप अन, यह सब प्राण ही है अब इन वाणी आदिके सम्मिलित रूपको दिखाते हैं, कि--यह शरीर इस प्रजापतिकी सन्तानरूप अन्न कहिये वाणी मन और प्राणका कार्यरूप है अर्थात् वाणीका कार्यरूप, मनका कार्यरूप और प्राणका कार्यरूप है ॥ ३ ॥

(इसप्रकार वाणी आदिकी आध्यात्मिकी विभूतिको कहकर अब उनकी आधिभौतिकी विभूतिको कहते हैं-)

त्रयो लोका एत एव वागेवाऽयं लोको मनोऽन्तरिक्षलोकः प्राणोऽसौ लोकः ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(त्रयः) तीन (लोकाः) लोक (एते, एव) ये ही हैं (वाक्, एव) वाणी (अयं, लोकः) यह लोक है (मनः) मन (अन्तरिक्षलोकः) अन्तरिक्षलोक है (प्राणः) प्राण (असौ, लोकः) परोक्ष लोक है ॥४॥

(भावार्थ —भूः भुवः और स्वः नामवाले तीन लोक वाणी, मन और प्राण ही हैं । वाणी भूलोक है, मन अन्तरिक्ष (भुवः) लोक है और प्राण प्रत्यक्ष न दीखने वाला स्वर्गलोक है ॥ ४ ॥

इन वाणी आदिके ध्यानके लिये वेदत्रयरूपपना, देव पितृ-मनुष्यात्मकपना, पिता-माता-प्रजारूपपना और विज्ञात-विजिज्ञास्य तथा अविज्ञातवस्तुरूपपना कहते हैं-

त्रयो वेदा एत एव वागेवर्ग्वेदो मनो यजुर्वेदः प्राणः सामवेदः ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(त्रयः) तीन (वेदाः) वेद (एते, एव) ये ही हैं (वाक्, एव) वाणी ही (ऋग्वेदः) ऋग्वेद है (मनः) मन (यजुर्वेदः) यजुर्वेद है (प्राणः) प्राण (सामवेदः) सामवेद है ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-तीन वेद ही वाणी आदि ही हैं वाणी ही ऋग्वेद है, मन यजुर्वेद है और प्राण सामवेद है ॥५॥

देवाः पितरो मनुष्या एत एव वागेव देवा मनः पितरः प्राणो मनुष्याः ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(देवाः) देवता (पितरः) पितर (मनुष्याः) मनुष्य (एते, एव) ये ही हैं (वाक्, एव) वाणी ही (देवाः) देवता हैं (मनः) मन (पितरः) पितर हैं (प्राणः) प्राण (मनुष्याः) मनुष्य हैं ॥ ६ ॥

(भावार्थ)—देवता, पितर और मनुष्य ये वाणी आदि ही हैं। वाणी ही देवता हैं, मन पितर हैं और प्राण मनुष्य हैं ॥ ६ ॥

पिता माता प्रजैत एव मन एव पिता वाङ् माता प्राणः प्रजा ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(पिता, माता, प्रजा) पिता, माता और प्रजा (एते, एव) ये वाणी आदि ही हैं (मनः, एव) मन ही (पिता) पिता है (वाक्) वाणी (माता) माता है (प्राणः) प्राण (प्रजा) प्रजा है ॥ ७ ॥

(भावार्थ)-पिता माता और प्रजा ये वाणी आदि ही हैं। मन ही पिता है, वाणी माता है और प्राण प्रजा है ॥ ७ ॥

विज्ञातं विजिज्ञास्यमविज्ञात एत एव यत्किञ्च विज्ञातं वाचस्तद्रूपं वाग्घि विज्ञाता वागेनं तद्भूत्वाऽवति ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विज्ञातम्) विज्ञात (विजिज्ञास्यम्) विशेषरूपसे जाननेयोग्य (अविज्ञातम्) अविज्ञात

(एते, एव) ये ही हैं (यत्किञ्च) जो कुछ (विज्ञातम्) विज्ञात है (तत्) वह (वाचः) वाणीका (रूपम्) रूप है (हि) क्योंकि (वाक्) वाणी (विज्ञाता) विज्ञात है (वाक्) वाणी (एनम्) इसको (तत्) वह (भूत्वा) होकर (अवति) पालन करती है ॥ ८ ॥

(भावार्थ)-विज्ञात, विजिज्ञास्य (जिसको अच्छे प्रकारसे जाननेकी इच्छा है वह) और अविज्ञात ये वाणी आदि ही हैं। जो कुछ विज्ञात है वह वाणीका रूप है, क्योंकि-प्रकाशस्वरूप होनेसे वाणी विज्ञाता है। जो दूसरेको जताता है वह अज्ञात नहीं, किन्तु विज्ञात ही होता है, वाणी उस प्रकारकी वाणी की विभूतिको जाननेवालेका विज्ञातस्वरूप होकर पालन करती है अर्थात् विज्ञातरूपसे ही इसके भोग्य-रूपको प्राप्त होती है ॥ ८ ॥

यत्किञ्च विजिज्ञास्यं मनसस्तद्रूपं मनो हि विजिज्ञास्यं मन एनं तद्भूत्वाऽवति ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्किञ्च) जो कुछ (विजिज्ञास्यम्) स्पष्टरूपसे जाननेको इष्ट है (तत्) वह (मनसः) मन का (रूपम्) रूप है (हि) क्योंकि (मनः) मन (विजिज्ञास्यम्) स्पष्टरूपसे जाननेको इष्ट है (मनः) मन (तत्) वह (भूत्वा) होकर (एनम्) इसको (अवति) पालन करता है ॥ ९ ॥

(भावार्थ)-जिसको हम स्पष्टरूपसे जानना चाहते हैं वह मनका रूप है, क्योंकि-सङ्कल्प विकल्परूप होनेसे मनको स्पष्टरूपसे जानना चाहते हैं, मन विजिज्ञास्यरूप होकर अपनी (मनकी) विभूतिका जाननेवाले

की रक्षा करता है अर्थात् विजिज्ञास्यरूपसे इसका भोग्य होजाता है ॥ ९ ॥

यत्किञ्चाविज्ञातं प्राणस्य तद्रूपं प्राणो ह्यविज्ञातः प्राण एनं तद्भूत्वाऽवति ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्किञ्च) जो कुछ (अविज्ञातम्) अविज्ञात है (तत्) वह (प्राणस्य) प्राणका (रूपम्) रूप है (हि) क्योंकि (प्राणः) प्राण (अविज्ञातः) अविज्ञात है (प्राणः) प्राण (तत्) वह (भूत्वा) होकर (एनम्) इसको (अवति) पालन करता है ॥ १० ॥

(भावार्थ)-जो कुछ अविज्ञात है वह प्राणका रूप है, क्योंकि-प्राण अविज्ञात है, प्राण प्राणकी विभूतिको जाननेवालेका अविज्ञात होकर पालन करता है अर्थात् अविज्ञात रूपसे उसका भोग्य होता है ॥ १० ॥

वाक् आदिका आधिभौतिक विस्तार कह दिया अब उनके आधिदैविक विस्तारको कहते हैं—

तस्यै वाचः पृथिवी शरीरं ज्योतिरूपमयमग्नि-स्तद्यावत्येव वाक् तावती पृथिवी तावानयमग्निः ११

अन्वय और पदार्थ-(तस्यै) तिसकी (वाचः) वाणीका (पृथिवी,शरीरम्) पृथिवी आधार है (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि (ज्योतीरूपम्) प्रकाशात्मक है (तत्) तहाँ (वाक्) वाणी (यावती) जितनी है (तावती, एव) उतनी ही (पृथिवी) पृथिवी है (तावान्) उतना (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि है ॥ ११ ॥

(भावार्थ)-उस प्रजापतिके अन्नरूपसे प्रस्तुत हुई आधिदैविक वाणीका शरीर अर्थात् बाहरी आधार यह पृथिवी है और यह पार्थिव अग्नि उसका ज्योतिःस्वरूप

प्रकाशात्मक कारणरूप आधेय है। उसमें अध्यात्म और अधिभूत भेदसे भिन्न हुई वाणीका जितना परिमाण है, उसके आधाररूपसे स्थित कार्यरूप पृथिवीका भी उतना ही परिमाण है तथा उसके आधेय ज्योतिःस्वरूप कारणात्मा और पृथिवीमें प्रविष्ट हुए अग्निका भी उतना ही परिमाण है॥ ११ ॥

अथैतस्य मनसो द्यौः शरीरं ज्योतीरूपमसावादित्यस्तद्यावदेव मनस्तावती द्यौस्तावानसावादित्यस्तौ मिथुनꣳसमैतां ततः प्राणोऽजायत स इन्द्रः स एषोऽसपत्नो द्वितीयो वै सपत्नो नास्य सपत्नो भवति य एवं वेद॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (एतस्य) इसके (मनसः) मनका (शरीरम्) आधार (द्यौः) स्वर्ग है (असौ) यह (आदित्यः) आदित्य (ज्योतीरूपम्) आधेय है (तत्) तिसमें (मनः) मन (यावत्) जितना है (तावती, एव) उतना ही (द्यौः) द्युलोक है (तावान्) उतना ही (असौ) यह (आदित्यः) आदित्य है (तौ) वे दोनों (मिथुनम्) स्त्री पुरुषरूपको (समैताम्) प्राप्त हुए (ततः) उनसे (प्राणः) प्राण (अजायत) उत्पन्न हुआ (सः) वह (इन्द्रः) परमेश्वर है (सः) वह (एषः) यह (असपत्नः) शत्रुरहित है (द्वितीयः) दूसरा (वै) प्रसिद्ध (सपत्नः) शत्रु है (यः) जो (एवम्) इसप्रकार (वेद) उपासना करता है (अस्य) इसका (सपत्नः) शत्रु (न) नहीं (भवति) होता है॥ १२॥

(भावार्थ)-इस प्रजापति के अन्नरूप मानेहुए मन का आधार स्वर्ग है और यह आदित्य प्रकाशमय आधेय

है। उसमें जितना अध्यात्मरूप वा अधिभूतरूप मन है उतने ही परिमाणवाला उसका आधारभूत द्युलोक-स्वर्ग है और आधेयरूप इस आदित्यका भी उतना ही परिमाण है। ये अग्नि और आदित्य कहिये आधिदैविक वाणी और मनरूप माता पिता मिथुन कहिये परस्पर संसर्गको प्राप्त हुए तब उनसे अन्तरायके अन्तर्गत प्राणसे भिन्न अन्तरिक्षचारी वायु स्फुरणरूप क्रियाके लिये प्राण नामसे उत्पन्न हुआ, वह प्राण परमेश्वर है, उसका कोई शत्रु नहीं है, प्रतिपक्षी बना हुआ कोई दूसरा हो तो वह शत्रु कहलाता है। जो ऐसे शत्रुरहित गुणवाले प्राणको जानकर उसकी उपासना करता है, उस उपासक का कोई शत्रु नहीं होता है १२

अथैतस्य प्राणस्यापः शरीरं ज्योतीरूपमसौ चन्द्रस्तद्यावानेव प्राणस्तावत्य आपस्तावानसौ चन्द्रस्त एते सर्व एव समाः सर्वेऽनन्ताः स यो हैतानन्तवत उपास्तेऽन्तवन्तꣳ स लोकं जयत्यथ यो हैताननन्तानुपास्तेऽनन्तꣳ स लोकं जयति ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (एतस्य) इसके (प्राणस्य) प्राण का (शरीरम्) आधार (आपः) जल है (असौ) वह (चन्द्रः) चन्द्रमा (ज्योतीरूपम्) प्रकाशमय आधेय है (तत्) उसमें (यावान्) जितना (प्राणः) प्राण है (तावत्यः, एव, आपः) उतना ही जल है (तावान्) उतना ही (असौ, चन्द्रः) यह चन्द्रमा है (ते) वे (एते) ये (सर्वे, एव) सब ही

(समाः) समान हैं (सर्वे) सब (अनन्ताः) अनन्त हैं (सः) वह (यः) जो (एतान्) इन (ह) प्रसिद्ध (अन्तवतः) परिच्छिन्नोंको (उपास्ते) उपासना करता है (सः) वह (अन्तवन्तम्) परिच्छिन्न (लोकम्) फल को (जयति) जीतता है (अथ) और (यः) जो (एतान्) इन (ह) प्रसिद्ध (अनन्तान्) अपरिच्छिन्नों को (उपास्ते) उपासना करता है (सः) वह (अनन्तम्) अपरिच्छिन्न (लोकम्) फलको (जयति) जीतता है।

(भावार्थ)—इस प्रजापति के अन्नरूप प्राणका आधार जल है और यह प्रकाशरूप चन्द्रमा आधेय है इन अध्यात्म आदि भेदों में प्राणका जितना परिमाण है उतना ही परिमाण जलका है और उतना ही आधेयरूप चन्द्रमा है। ये वाणी, मन और प्राण सब ही समान हैं, क्योंकि-सब ही अनन्त हैं अर्थात् अखिल जगत् में व्याप्त हैं वा जबतक जगत् रहेगा तबतक रहनेवाले हैं। जो कोई प्रजापति रूप पिताके आत्मारूप इनकी अन्तवाले परिच्छिन्नरूपसे अर्थात् अधिभूत रूपसे वा अध्यात्मरूपसे उपासना करता है वह उपासनाके अनुसार अन्तवाले परिच्छिन्न फलको पाता है अर्थात् परिच्छिन्न ही होजाता है उसका आत्मस्वरूप नहीं होता और जो इन वाणी आदिकी अनन्त कहिये अपरिच्छिन्न सकल प्राणियोंके आत्मस्वरूप जानकर उपासना करता है वह अनन्त फलको पाता है अर्थात् सकल विश्वका आत्मस्वरूप बनजाता है ॥ १३ ॥

अधिदैव विषयमें जो पिता माता प्रजा कहे हैं उसको भी पाँचों ही सिद्ध होनेवाला कहना चाहिये, जिसमें आधिदैविक मन, वाणी और प्राणरूप माता पिता और

प्रजा इन लक्षणोंवाले तीन की व्याख्या की, अब शेष रहे वित्त और कर्मको कहने का आरम्भ करते हैं-

स एष सम्वत्सरः प्रजापतिः षोडशकलस्तस्य रात्रय एव पञ्चदशकला ध्रुवैवास्य षोडशी कला स रात्रिभिरेवाऽऽ च पूर्यतेऽप च क्षीयते सोऽमावास्याᳬ रात्रिमेतया षोडश्या कलया सर्वमिदं प्राणभृदनुप्रविश्य ततः प्रातर्जायते तस्मादेताᳬ रात्रिं प्राणभृतः प्राणं न विच्छिन्द्यादपि कृकलासस्यैतस्या एव देवताया अपचित्यै ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (एषः) यह (प्रजापतिः) प्रजापति (षोडशकलः) सोलह कलावाला (संवत्सरः) संवत्सररूप है (रात्रयः, एव) रात्रियें ही (तस्य) उसकी (पञ्चदश) पन्द्रह (कलाः) कला हैं (ध्रुवा, एव) नित्य रहनेवाली ही (अस्य) इसकी (षोडशी, कला) सोलहवीं कला है (सः) वह (रात्रिभिः एव) रात्रिके द्वारा ही (आपूर्यते) पूर्ण होता (च) और (अपक्षीयते, च) क्षीण भी होता है (सः) वह (अमावास्याम्, रात्रिम्) अमावास्याकी रात्रिमें (एतया) इस (षोडश्या) सोलहवीं (कलया) कलाके द्वारा (इदं, सर्वम्) इस सब (प्राणभृत्) चराचरमें (अनुप्रविश्य) प्रवेश करके (ततः) तदनन्तर (प्रातः) प्रातः कालके समय (जायते) जन्म लेता है (तस्मात्) तिससे (एतां, रात्रिम्) इस रात्रि में (प्राणभृतः) प्राणधारीके (प्राणम्) प्राणको (न) नहीं (विच्छिन्द्यात्) विच्छिन्न करे (एतस्याः) इस

(एव) ही (देवतायाः) देवताकी (अपचित्यै) पूजा के लिये (कृकलासस्य, अपि) कृकलासके भी (प्राणं, न, विच्छिन्द्यात्] प्राणका विच्छेद न करे ॥ १४ ॥

(भावार्थ)-जो तीन अन्नवाला प्रजापति है वही सोलह कलावाला संवत्सर है, उस कालरूप प्रजापति की अहोरात्ररूप पन्द्रह तिथियें ही पन्द्रह कला हैं और इसकी सोलहवी कला तो नित्य ही रहती है। यह चंद्रमा रूप प्रजापति शुक्लपक्षमें प्रतिपदा आदि तिथियोंके द्वारा ही पूर्णिमा पर्यन्त बढ़ता रहता है और कृष्णपक्षमें जब तक नित्य रहनेवाली सोलहवी कला शेष रहे तबतक तिथिरूप रात्रियोंके द्वारा क्षीण हुआ करता है अर्थात् पूर्णिमाके दिन पूर्णमण्डल और अमावास्याके दिन नित्य-कलामात्र शेष रहजाता है [इस प्रकार कलायें वित्त हैं और उस वित्तसे साध्य कर्म है] यह कलामात्र शेष रहा हुआ कालरूप प्रजापति प्रत्येक अमावास्याकी रात्रि में उस सोलहवीं नित्य कलाके द्वारा इन चर अचर सकल प्राणियोंमें अन्न जलरूपसे प्रविष्ट होकर अर्थात् अमावास्याकी रात्रिमें सकल प्राणियोंमें व्याप्त रहकर दूसरे दिन प्रातःकालके समय दूसरी कलासे संयुक्त होकर जन्म लेता है। क्योंकि यह चन्द्रमा उस रात्रिमें सकल प्राणियोंमें प्रवेश करके नित्य रहने वाली कलासे स्थित होता है, इस कारण इस अमावास्याकी रात्रिमें किसी प्राणीका प्राणविच्छेद न करे। यहां तक कि-जिसका दर्शन अमङ्गलरूप है उस पापात्मा कृकलास (गिरघट) का भी प्राणविच्छेद न करे। इस कथनसे यह न समझो कि-अमावास्यासे अन्य तिथियोंमें कृकलासकी हिंसा

विहित है, क्योंकि-यह कथन सोम देवताके पूजन के निमित्त है ॥ १४ ॥

यह जो आधिदैविक कलाओंवाले तीन अन्नरूपप्रजापतिकी उपासना कही है उसको 'वह प्रजापति मैं ही हूँ, ऐसे अहंग्रहके द्वारा करे, यह दिखाते हैं—

यो वै स सम्वत्सरः प्रजापतिः षोडशकलोऽयमेव स योऽयमेवम्वित्पुरुषस्तस्य वित्तमेव पञ्चदश कला आत्मैवास्य षोडशी कला स वित्तेनैववाऽऽ च पूर्यतेऽप च क्षीयते तदेतन्नभ्य पद्यमात्मा प्रधिर्वित्तं तस्माद्यद्यपि सर्वज्यानिं जीयत आत्मना चेज्जीवति प्रधिनाऽगादित्येवाहुः १५

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (वै) प्रसिद्ध (सः) वह (षोडशकलः) सोलह कलावाला (संवत्सरः) संवत्सररूप (प्रजापतिः) प्रजापति है (यः, अयम्) जो यह (एवंवित्) ऐसा जाननेवाला (पुरुषः) पुरुष है (सः) वह (अयं, एव) यही है (तस्य) उसका (वित्तम्, एव) द्रव्य ही (पञ्चदश, कलाः) पन्द्रह कला हैं (आत्मा, एव) शरीर ही (अस्य) इसकी (षोडशी) सोलहवीं (कला) कला है (सः) वह (वित्तेन, एव) धनके द्वारा ही (आपूर्यते) पूर्ण होता है (च) और (अपक्षीयते, च) क्षीण भी होता है (यत्) जो (अयम्) यह (आत्मा) शरीर है (तत्) सो (एतत्) यह (नभ्यम्) नाभिके स्थानमें है (वित्तम्) द्रव्य (प्रधिः) परिवारके स्थानमें है (तस्मात्) तिससे (यद्यपि) यद्यपि (सर्वज्यानिं, जीयते) सर्वस्वका अपहरण हुआसा हीन होजाता है

(चेत्) जो (आत्मना) शरीरके द्वारा (जीवति) जीता है (प्रधिना) परिवारसे (अगात्) क्षीणताको प्राप्तहुआ (इति, एव) ऐसा ही (आहुः) कहते हैं ॥ १५ ॥

(भावार्थ)-जिसको परोक्षरूपसे कहा है उस प्रसिद्ध सोलह कलावाले संवत्सररूप प्रजापतिको अत्यन्त परोक्ष नहीं मानना चाहिये। जो पुरुष इस कहेहुए तीन अन्न-रूप प्रजापतिको आत्मरूप जानता है, वह वही प्रत्यक्ष रूपमें प्रतीत होता है। इस पुरुषका गौ आदि वित्त ही पंद्रह कला हैं और उस वित्तसे साध्य कर्म है। शरीर इसकी ध्रुवस्थानीय सोलहवीं कला है, यह विद्वान् चंद्रमा की समान गौ आदि वित्तसे पूर्ण होता है और इसके अभावमें क्षीण होजाता है। इस विद्वानका शरीर रथके पहियेकी नाभि की समान है और गौ आदि द्रव्य उस पहियेके अरे और पुट्ठोंकी समान परिवाररूप है। ऐसा है इस लिये ही यह यद्यपि सर्वस्वका अपहरण होजाने पर ग्लानि पाकर क्षीणसा होजाता है तो भी जो नाभि-स्थानीय शरीरसे जीवित रहता है तो अरे और नेमिसे रहित रथचक्रकी समान यह स्त्री आदि परिवारसे क्षीण होगया है ऐसा ही कहाजाता है ॥ १५ ॥

इस प्रकार तीन अन्नरूप प्रजापतिभावकी व्याख्या कीगयी, उसमें यह कहा कि-स्त्री आदि वित्त परिवारके स्थानमें है, जिसमें पुत्र, कर्म और अपरविद्या लोकप्राप्ति का साधन है यह बात सामान्यरूपसे जानीगयी अब लोकप्राप्तिमें पुत्र आदिका विशेषरूपसे क्या संबन्ध है सो दिखाते हैं-

अथ त्रयो वाव लोका मनुष्यलोकः पितृलोकः

देवलोक इति सोऽयं मनुष्यलोकः पुत्रेणैव जय्यो नान्येन कर्मणा, कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोको देवलोको वै लोकानाᳬ श्रेष्ठस्तस्माद्विद्यां प्रशᳬ सन्ति ॥ १६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अब (मनुष्यलोकः) मनुष्यलोक (पितृलोकः) पितृलोक (देवलोकः) देवलोक (इति) ये (त्रयः, वाव) तीन ही (लोकाः) लोक हैं (सः) वह (अयम्) यह (मनुष्यलोकः) मनुष्यलोक (पुत्रेण,एव) पुत्रके द्वारा ही (जय्यः) जीतनेयोग्य है (अन्येन,कर्मणा) दूसरे कर्मसे (न) नहीं (कर्मणा) कर्मसे (पितृलोकः) पितृलोक (विद्यया) उपासनासे (देवलोकः) देवलोक (देवलोकः) देवलोक(वै) निःसन्देह (लोकानाम्) लोकों में (श्रेष्ठः) श्रेष्ठ है (तस्मात्) तिससे (विद्याम्) उपासनाको (प्रशंसन्ति) सराहते हैं ॥ १६ ॥

(भावार्थ)—मनुष्यलोक, पितृलोक और देवलोक, ये तीन ही शास्त्रमें तिग्य साधन करने योग्य लोक हैं, इनमें मनुष्यलोक पुत्रसे ही साध्य हैं, कर्मसे वा उपासनासे साध्य नहीं है। अग्निहोत्र आदि कर्मसे पितृलोक साध्य है और उपासनासे देवलोक साध्य है। देवलोक निःसन्देह तीनों लोकोंमें श्रेष्ठ है अतएव उपासनाकी सराहना कीजाती है ॥ १६ ॥

इसप्रकार साधने योग्य तीन लोकरूप फलके भेदसे विनियुक्त पुत्र, कर्म और उपासना नामक तीन साधन हैं, जाया पुत्र और कर्मके लिये है अतः वह पुत्र और कर्मसे पृथक् साधन नहीं है और वित्त भी कर्मका साधन होनेके कारण कर्मसे पृथक् नहीं है, अपने चित्त

आदिकी क्रियासे ही उपासना और कर्म लोकजयका हेतु होते हैं परन्तु पुत्र अक्रियरूप है अतः उसमें लोकजयका हेतुपना कैसे है ? सो दिखाते हैं–

अथातः संप्रत्तिर्यदा प्रैष्यन्मन्यतेऽथ पुत्रमाह त्वं ब्रह्म त्वं यज्ञस्त्वं लोक इति स पुत्रः प्रत्याहाऽहं ब्रह्माऽहं यज्ञोऽहं लोक इति । यद्वै किञ्चानूक्तं तस्य सर्वस्य ब्रह्मेत्येकता ये वै के च यज्ञास्तेषाᳬ सर्वेषां लोक इत्येकतैतावद्वा इदᳬ सर्वमेतन्मा सर्वᳬ सन्नयमितोऽभुनजदिति तस्मात्पुत्रमनुशिष्टं लोक्यमाहुस्तस्मादेनमनुशासति स यदैवंविदस्माल्लोकात्प्रैत्यथैभिरेव प्राणैः सह पुत्रमाविशति । स यद्यनेन किञ्चिदक्ष्णयाऽकृतं भवति तस्मादेनᳬ सर्वस्मात्पुत्रो मुञ्चति तस्मात्पुत्रो नाम स पुत्रेणैवास्मिँल्लोके प्रतितिष्ठत्यथैनमेते दैवाः प्राणा अमृता आविशन्ति १७

अन्वय और पदार्थ–(अथ) और (अतः) इससे (संप्रत्तिः) संप्रदान (यदा) जब (प्रैष्यन्) मरने को हूं ऐसा (मन्यते) मानता है (अथ) अनन्तर (पुत्रम्) पुत्रके प्रति (आह) कहता है (त्वम्) तू (ब्रह्म) ब्रह्म है (त्वम्) तू (यज्ञः) यज्ञ है (त्वम्) तू (लोकः) लोक है (इति) ऐसा कहने पर (सः) वह (पुत्रः) पुत्र (अहं, ब्रह्म) मैं ब्रह्म हूं (अहं, यज्ञः) मैं यज्ञ हूँ (अहं, लोकः) मैं लोक हूं (इति) ऐसा (प्रत्याह) उत्तर देता है (यत्किञ्च) जो कुछ (वै) प्रसिद्ध (अनूक्तम्) अध्ययन

से छुटा हुआ है (तस्य, सर्वस्य) उस सबकी (ब्रह्म, इति) ब्रह्म यह (एकता) एकता है (ये के च) जो कोई (वै) प्रसिद्ध (यज्ञाः) यज्ञ हैं (तेषां, सर्वेषाम्) उन सबकी (यज्ञ इति) यज्ञ यह (एकता) एकता है (ये के च) जो कोई (वै) प्रसिद्ध (लोकाः) लोक हैं (तेषां, सर्वेषाम्) उन सबकी (लोकः इति) लोक यह (एकता) एकता है (इदं, सर्वम्) यह सब (एता- वत्, वै) इतना ही है (एतत्, सर्वम्) यह सब (सत्) था (इतः) अबसे (अयम्) यह (अभुनजत्) पालन करेगा (इति) ऐसा है (तस्मात्) तिससे (अनुशिष्टम्) शिक्षित (पुत्रम्) पुत्रको (लोक्यम्) लोकहितकारी (आहुः) कहते हैं (तस्मात्) तिससे (एवम्) इसको (अनु- शासति) शिक्षा देता है (एवम्वित्) ऐसा जाननेवाला (सः) वह पिता (यदा) जब (अस्मात्, लोकात्) इस लोकसे (प्रैति) जाता है (अथ) तब (एभिः,प्राणैः सह, एव) इन प्राण आदिके सहित ही (पुत्रं, आवि- शति) पुत्रमें प्रविष्ट होजाता है (सः) वह (पुत्रः) पुत्र (यदि) जो (अनेन) इस पिताके द्वारा (अक्ष्णया) विस्मृतिसे (किञ्चित्) कुछ (अकृतम्) न किया हुआ (भवति) होता है (तस्मात्, सर्वस्मात्) उस सबसे (एनम्) इसको (मुञ्चति) छुटाता है (तस्मात्) तिस से (सः) वह (पुत्रः, नाम) पुत्र नामवाला है (सः) वह (पुत्रेण, एव) पुत्रके द्वारा ही (अस्मिन्, लोके) इस लोकमें (प्रतितिष्ठति) स्थित रहता है (अथ) अब (एनम्) इसके प्रति (एते) ये (दैवाः) हिरण्यगर्भके संबन्धी (प्राणाः) प्राण (अमृताः) मरणधर्मरहित हुए (आविशन्ति) प्रवेश करते हैं ॥ १७ ॥

(भावार्थ)-पुत्र आदि साधनोंसे किस २ साध्यका सम्बन्ध है, इस बातको कहकर अब पुत्र इस लोकका साधन किस प्रकार है यह बात समझमें नहीं आती, इसलिये पिता आगे कही हुई रीतिसे पुत्रको जो अपना व्यापार अर्पण करता है वह सम्प्रदान कर्म कहलाता है वह पिता जब अरिष्ट आदिको देखकर यह समझता है, कि-अब मैं मरूँगा तब पुत्रको बुलाकर उससे कहता है, कि-हे बेटा ! तू ब्रह्म है ! तू यज्ञ है, तू लोक है। वह शिक्षा पाया हुआ पुत्र इसका प्रत्युत्तर देता है, कि-हाँ मैं ब्रह्म हूं, यज्ञ हूं, मैं लोक हूं। इन संकेतोंको कठिन मानकर श्रुति भगवती स्वयं ही इनकी व्याख्या करती हुई कहती है, कि-जो कुछ प्रसिद्ध अनूक्त है अर्थात् जो कुछ अध्ययन करनेसे रहगया है और जो कुछ अध्ययन नहीं किया है उस सबकी ब्रह्म इस पदमें एकता है अर्थात् इतने समय तक वेदका अध्ययनरूप मेरा जो कुछ कर्त्तव्य था, उसमें जो न्यूनता रहगयी है उसकी पूर्त्ति अब तू करना। जो कोई प्रसिद्ध यज्ञ मैंने किये हैं या मेरे करनेसे रहगये हैं उनको करना अब तेरा कर्त्तव्य है तथा जो कोई प्रसिद्ध लोक मैंने संपादन किये हैं या मेरे संपादन करनेसे रह-गये हैं उन सब लोकोंका सम्पादन करना अब तेरा कर्त्तव्य है। इसप्रकार पिताके कहने पर शिक्षित पुत्रने पिताकी इन सब आज्ञाओंको अङ्गीकार करलिया। इस कथनमें पिताके ऐसे अभिप्रायको मानती हुई श्रुति भगवती कहती है, कि-वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान और लोकजयरूप गृहस्थका जो कुछ कर्त्तव्य है वह सब इतना ही है। यह सब अबतक मेरे अधीन था, अब आगेको इसका भार यह पुत्र मुझसे अपने ऊपर लेकर इसलोक

से मेरी रक्षा करेगा। इस तत्त्वको जाननेवाला पुत्र पिता को कर्त्तव्यतारूप बन्धनसे छुटाता है, इसलिये विवेकी पुरुष शिक्षित पुत्रको पिताका इस लोकमें पालन करने वाला कहते हैं। इसकारण पिता वर्त्तमान समयमें भी पुत्रको शिक्षा दिया करते हैं। जिसने अपना कर्त्तव्य पुत्रको अर्पण करदिया है ऐसा वह पिता 'अनन्त वाणी मन और प्राणरूप मैं हूँ' ऐसा जानता हुआ जब इस शरीरको छोड़ता हुआ मरता है उस समय यह वाणी, मन और प्राणोंके साथ ही पुत्रमें प्रवेश करता है अर्थात् फलरूपसे परलोकमें विद्यमान रहता हुआ भी शिक्षित पुत्ररूपसे यहाँ भी रहता है। पिताने किसी कर्मका कुछ भाग विस्मरण होनेके कारण यदि नहीं किया होता है तो यह पुत्र उस न्यूनताको अपने अनुष्ठानसे पूर्ण करके अपने पिताको बन्धनसे छुटाता है। क्योंकि--पिताकी न्यूनताको पूर्ण करके पिताकी रक्षा करता है इसलिये ही इसका नाम पुत्र [पितरं त्रायते इति पुत्रः] है। वह पिता मृत्युको प्राप्त होजाने पर भी ऐसे पुत्रसे इसलोकमें स्थित रहता है। इसप्रकार यह पिता पुत्रसे इस मनुष्य-लोकको जीतता है। इसप्रकार संप्रदान कर्म करनेवाले पितामें वाणी आदि प्राण हिरण्यगर्भके संबन्धवाले और मरणधर्मसे रहित होकर प्रवेश करते हैं॥ १७॥

(अब वाणी आदिके प्रवेशका प्रकार कहते हैं-)

पृथिव्यै चैनमग्नेश्च दैवी वागाविशति सा वै दैवी वाग्यया यद्यदेव वदति तत्तद्भवति ॥१८॥

अन्वय और पदार्थ-(पृथिव्यै) पृथिवीसे (च) और (अग्नेः) अग्निसे (दैवी) आधिदैविक (वाक्) वाणी

(एनं, आविशति) इसमें प्रवेश करती है (सा) वह (वै) प्रसिद्ध (दैवी, वाक्) दैवी वाणी है (यया) जिसके द्वारा (यत्, यत्) जो जो (वदति) बोलता है (तत्, तत्, एव) वह वह ही (भवति होता है ॥१८॥

(भावार्थ)-आधिदैविकी वाणी पृथिवीसे और अग्निसे इस उपासक पितामें प्रवेश करती है। वह दैवी वाणी आध्यात्मिक रूप होकर आसक्ति आदि दोषोंसे रुकी हुई थी, उपासकके वे दोष दूर होजाने पर आवरणभङ्ग होकर वह जलकी समान और दीपकके प्रकाश की समान व्याप्त होजाती है, इस बातको दिखाते हुए कहते हैं, कि-वही दैवी वाणी है, कि-जिसके द्वारा अपने लिये या दूसरेके लिये जो जो कहे वह वह ही होजाय, उसमें मिथ्यापनेका दोष न आवे ॥ १८ ॥

(वाणीमें दिखाये हुए न्यायको मनमें दिखाते हैं-)

दिवश्चैनमादित्याच्च दैवं मन आविशति तद्वै दैवं मनो येनाऽऽनन्द्येव भवत्यथो न शोचति १९

अन्वय और पदार्थ-(दिवः) स्वर्गसे (च) और (आदित्यात्, च) आदित्यसे भी (दैवं, मनः) दैव मन (एनं, आविशति) इसमें प्रवेश करता है (तत्) वह (वै) प्रसिद्ध (दैवं, मनः) दैव मन है (येन) जिसके द्वारा (आनन्दी, एव) सुखी ही (भवति) होता है (अथो) और (न) नहीं (शोचति) शोक करता है ॥ १९ ॥

(भावार्थ)-स्वर्गमेंसे और आदित्यमेंसे इस उपासक पितामें दैव मन प्रवेश करता है, वह मन स्वभावसे निर्मल होनेके कारण दैव होता है कि-जिस मनसे यह उपासक सदा सुखी ही रहता है और शोकका कारण न होनेसे कभी सोकका अनुभव नहीं करता है ॥ १९ ॥

मनमें दिखाये हुए न्यायको अब प्राणमें दिखाते हैं-

अद्‌भ्यश्चैनं चन्द्रमसश्च दैवः प्राण आविशति स वै दैवः प्राणो यः सञ्चरꣳश्चासञ्चरꣳश्च न व्यथतेऽथो न रिष्यति स एवम्वित्सर्वेषां भूतानामात्मा भवति यथैषा देवतैवꣳ स यथैतां देवताꣳ सर्वाणि भूतान्यवन्त्येवꣳ हैवंविदꣳ सर्वाणि भूतान्यवन्ति । यदु किञ्चेमाः प्रजाः शोचन्त्यमैवासां तद् भवति पुण्यमेवामुं गच्छति न ह वै देवान् पापं गच्छति ॥ २० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अद्‌भ्यः) जलसे (च) और (चंद्रमसः, च) चन्द्रमासे भी (दैवः, प्राणः) दैव प्राण (एनं, आविशति) इसमें प्रवेश करता है (सः) वह (वै) प्रसिद्ध (दैवः, प्राणः) दैव प्राण है (यः) जो (सञ्चरन्) चलता हुआ (च) और (असञ्चरन्, च) न चलता हुआ भी (न) नहीं (व्यथते) व्यथा पाता है (अथो) और (न) नहीं (रिष्यति) विनष्ट होता है (एवम्वित्) ऐसा जाननेवाला (सः) वह (सर्वेषाम्) सब (भूतानाम्) भूतोंका (आत्मा, भवति) आत्मा होता है (यथा) जैसे (एषा, देवता) यह देवता है (एवम्) इसप्रकार ही (सः) वह होता है (यथा) जैसे (एतां देवताम्) इस देवताको (सर्वाणि, भूतानि) सकल भूत (अवन्ति) पूजते हैं (एवं, ह) इसप्रकार ही (एवम्विदम्) ऐसा जाननेवालेको (सर्वाणि, भूतानि) सकल भूत (अवंति) पूजते हैं (यत्, किञ्च, उ) जो कुछ भी (इमाः,प्रजाः) ये प्रजायें (शोचन्ति) शोक करती हैं (तत्) वह (आ-

साम्) इनके (अमा, एव) साथ ही (भवति) होता है (अमुम्) इसको (पुण्यम्, एव) पुण्य ही (गच्छति) पहुँचता है (पापम्) पाप (देवान्) देवताओंको (न, ह, वै) नहीं (गच्छति) पहुँचता है ॥ २० ॥

(भावार्थ)-इस उपासक पितामें जलमेंसे और चन्द्रमामेंसे दैव प्राण प्रवेश करता है, जो जङ्गमोंमें विचरता हुआ और स्थावरोंमें न विचरता हुआ पीड़ा नहीं पाता तथा विनष्ट भी नहीं होता वही दैव प्राण है, जो इसप्रकार तीन अन्नरूप आत्माके स्वरूपको जानता है वह सकल भूतोंका आत्मा कहिये प्राण, मन और वाणीरूप होजाता है और इससे सर्वज्ञ होजाता है। जिसप्रकार यह हिरण्यगर्भ देवता सर्वज्ञ है तैसा ही वह सर्वज्ञ होजाताहै । जिसप्रकार इस हिरण्यगर्भ देवताको सकल भूत पूजते हैं ऐसे ही इस जाननेवाले को भी निःसन्देह सकल भूत पूजते हैं। ये प्रजायें जो कुछ भी शोक करती हैं उस शोक आदिके कारणसे होनेवाला दुःख, मैं मेरा ऐसी अपरिच्छिन्न बुद्धिसे उत्पन्न हुआ होनेके कारण इन प्रजाओंके साथ ही चिपटा रहता है और प्रजापतिके पदमें वर्त्तमान पुरुषको तो पुण्य (का फलरूप सुख) ही प्राप्त होता है । यह बात निःसन्देह है, कि--पापका फल दुःख देवताओंके पास नहीं पहुँचता ॥ २० ॥

यह निश्चय होगया कि-वाणी, मन और प्राणमें समता है, परन्तु अब उपासक किसका ध्यान करे ? और किसके कर्मको व्रतरूपसे धारण करे ? इसके उत्तर में कहते हैं. कि-

अथातो व्रतमीमाꣳसा । प्रजापतिर्हि कर्माणि

ससृजे तानि सृष्टान्यन्योन्येनास्पर्धन्त वदिष्याम्येवाहमिति वाग्दध्रे द्रक्ष्याम्यहमिति चक्षुः श्रोष्याम्यहमिति श्रोत्रमेवमन्यान्यपि कर्माणि यथाकर्म तानि मृत्युः श्रमो भूत्वोपयेमे तान्याप्नोत्तान्याप्त्वा मृत्युरवारुन्ध तस्माच्छ्राम्यत्येव वाक् श्राम्यति चक्षुः श्राम्यति श्रोत्रमथेममेव नाऽऽप्नोद्योऽयं मध्यमः प्राणस्तानि ज्ञातुं दध्रिरे। अयं वै नः श्रेष्ठो यः सञ्चरँश्चासञ्चरँश्च न व्यथतेऽथो न रिष्यति हन्तास्यैव सर्वे रूपमसामेति । स एतस्यैव सर्वे रूपमभवँस्तस्मादेत एतेनाऽऽख्यायन्ते प्राण इति तेन ह वाव तत्कुलमाचक्षते यस्मिन् कुले भवति य एवं वेद य उ हैवम्विदा स्पर्धतेऽनुशुष्यत्यनुशुष्य हैवान्ततो म्रियत इत्यध्यात्मम् ॥ २१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अब (अतः) यहाँसे (व्रतमीमाँसा) व्रतका विचार चलता है (ह) प्रसिद्ध (प्रजापतिः) प्रजापति (कर्माणि) वाक् आदि करणोंको (ससृजे) रचता हुआ (सृष्टानि) रचेहुए (तानि) वे (अन्योन्येन) परस्पर (अस्पर्धन्त) स्पर्धा करते हुए (अहम्) मैं (वदिष्यामि, एव) बोलूंगी ही (इति) ऐसा (वाक्) वाणी (दध्रे) धारण करती हुई (अहम्) (द्रक्ष्यामि) देखूंगा (इति) ऐसा (चक्षुः) चक्षु (अहम्)

मैं (श्रोष्यामि) सुनूंगा (इति) ऐसा (श्रोत्रम्) कर्ण [दध्रे] धारण करता हुआ (एवम्) इसप्रकार, अन्यानि) दूसरे (कर्माणि) करण (यथाकर्म) कर्मके अनुसार [दध्रिरे] धारण करते हुए (तानि) उनको (मृत्युः) मृत्यु (श्रमः, भूत्वा) श्रमरूप होकर (उपयेमे) ग्रहण करता हुआ (तानि) उनको (आप्नोत्) प्राप्त होता हुआ (आप्त्वा) प्राप्त होकर (मृत्युः) मृत्यु (तानि) उनको (अवारुन्ध) रोकता हुआ (तस्मात्) तिससे (वाक्) वाणी (श्राम्यति, एव) थकती ही है (चक्षुः) नेत्र (श्राम्यति) थकता है (श्रोत्रम्) कर्ण (श्राम्यति) थकता है (अथ) और (यः) जो (अयम्) यह (मध्यमः) मध्यम (प्राणः) प्राण है (इमम्, एव) इसको ही (न) नहीं (आप्नोत्) प्राप्त होता हुआ (तानि) वे (ज्ञातुम्) जानने को (दध्रिरे) धारण करते हुए (अयं, वै) यह ही (नः) हममें (श्रेष्ठः) श्रेष्ठ है (यः) जो (सञ्चरन्) सञ्चार करता हुआ (च) और (असञ्चरन्, च) सञ्चार न करताहुआ भी (न) नहीं (व्यथते) पीड़ा पाता है (अथो) और (न) नहीं (रिष्यति) विनष्ट होता है (हन्त) इस समय (सर्वे) सब (अस्य, एव) इसके ही (रूपं असाम) स्वरूपको प्राप्त हों (इति) ऐसा निश्चय करके (ते) वे (सर्वे) सब (एतस्य एव) इसके ही (रूपं, अभवन्) स्वरूप को प्राप्त हुए (तस्मात्) तिससे (एते,प्राणाः) ये प्राण (एतेन) इस नामके द्वारा (आख्यायन्ते) कहेजाते हैं (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (यस्मिन् कुले) जिस कुलमें (भवति) होता है (तत्, कुलम्) उस कुलको (तेन, ह, वाव) उसके द्वारा ही (आच-

न्ते) कहते हैं (यः, उ, ह) जो कोई (एवम्विदा) ऐसा जाननेवालेके साथ (स्पर्द्धते) स्पर्धा करता है (अनुशुष्यति) सूखता चलाजाता है (अनुशुष्य, एव, ह) सूख कर ही (म्रियते) मरजाता है (इति) इसप्रकार (अध्यात्मम्) प्राणात्माकी उपासना कही ॥ २१ ॥

(भावार्थ)-उपासनाको कहकर जिज्ञासा होनेके कारण अब कहिये उपासना और कर्मका विचार करनेमें प्रवृत्त होते हैं कि प्रजापतिने प्रजाओंको रच कर वाक् आदि कर्मोंको रचा, वे उत्पन्न कियेहुए वाक् आदि करण आपसमें एक दूसरेके साथ स्पर्धा करनेलगे हैं निरन्तर बोलूँगी ही ऐसा व्रत वाणीने धारण किया, मैं देखूँगा ऐसा व्रत चक्षुने धारण किया, मैं सुनूँगा यह व्रत कानने धारण किया। इसप्रकार ही नासिका आदि अन्य करणोंने भी अपने २ कर्मके अनुसार व्रत धारण किया, उन वाक् आदि करणोंको मृत्युने श्रमरूप होकर जकड़ लिया, अपने २ व्यापारमें लगेहुए उन वाणी आदि करणोंमें मृत्यु श्रम (थकावट) रूपसे आपहुँचा और आकर मृत्युने उनको अपने २ कर्मसे गिरा दिया, इस लिये आजकल भी अपने बोलनेके व्यापारमें लगीहुई वाणी थकजाया करती है, नेत्र थकजाते हैं और कान थकजाते हैं। इन वाणी आदिके व्रतसे डिगजाने पर भी जो मुख्य है उसके पास श्रमरूप मृत्यु न पहुँचसका, इसलिये ही मुख्य प्राण नहीं थकता है। वाणी आदिने उस प्राणको जाननेके लिये मनको धारण किया। यह प्राण ही इन करणोंमें श्रेष्ठ है, जो जङ्गमोंमें सञ्चार करता हुआ तथा स्थावरोंमें सञ्चार न करताहुआ न पीड़ा पाता

है और न नष्ट होता है। अब भी इन सब इस प्राणके ही स्वरूपको प्राप्त हों। ऐसा जिस प्रकारसे प्राण इस प्राणके ही रूपको प्राप्त हुए। क्योंकि-प्रकाशरूप करण चलनव्यापारके साथ ही अपने २ व्यापारमें लगेहुए देखने में आते हैं, इसलिये ये वागादि प्राण नामसे कहे जाते हैं। जो इसप्रकार सब करणोंके आध्यात्मिक धर्मको और प्राण शब्दसे वाच्यपनेको जानता है वह विद्वान् जिस कुलमें जन्म लेता है उस कुलको लोग उस विद्वान् के नामसे ही पुकारा करते हैं। जो ऐसा जाननेवाले प्राणदर्शीके साथ स्पर्धा करता है वह इस शरीरमें ही सूखने लगता है और बहुत दिनोंतक सूख २ कर अन्तमें मरजाता है। इसप्रकार प्राणरूपकी उपासना कही २१

(इसप्रकार अध्यात्म उपासनाको कह कर अब अधिदैव उपासना कहते हैं)-

अथाधिदैवतम्। ज्वलिष्याम्येवाहमित्यग्निर्दध्रे तप्स्याम्यहमित्यादित्यो भास्याम्यहमिति चन्द्रमा एवमन्या देवता यथादैवतं स यथैषां प्राणानां मध्यमः प्राण एवमेतासां देवतानां वायुर्म्लोचन्ति ह्यन्या देवता न वायुः सैषाऽनस्तमिता देवता यद्वायुः॥ २२॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अब (अधिदैवतम्) देवता-सम्बन्धी उपासना [उच्यते] कही जाती है (अहम्) मैं (ज्वलिष्यामि, एव) प्रज्वलित होऊँगा ही (इति) ऐसा (अग्निः) अग्नि (दध्रे) व्रत धारण करताहुआ (अहम्) मैं (तप्स्यामि) तपूँगा (इति) ऐसा (आदि-

त्यः) आदित्य (अहम्) मैं (भास्यामि) प्रकाश करूंगा (इति) ऐसा (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (एवम्) इसप्रकार ही (अन्याः, देवताः) दूसरे देवता (यथा देवतम्) देवभावके अनुसार [व्रतं, दध्रिरे] व्रतको धारण करते हुए (यथा) जैसे (एषां, प्राणानाम्) इन प्राणोंमें (सः मध्यमः, प्राणः) वह मध्यम प्राण है (एवम्) ऐसे ही (एतासां, देवानाम्) इन देवताओंमें (वायुः) वायु है (हि) क्योंकि (अन्याः, देवताः) दूसरे देवता (म्लोचन्ति) अस्त होजाते हैं (वायुः) वायु (न) नहीं (यत्) जो (वायुः) वायु है (सा) वह (एषा) यह (अनस्तमिता) अस्त न होनेवाला (देवता) देवता है २२

(भावार्थ)-अब अधिदैव कहिये देवतासंबन्धी उपासना कहते हैं अर्थात् किस देवताका व्रत धारण करना श्रेष्ठ है इसका निर्णय करनेको हैं अध्यात्मकी समान अधिदैव विचार करते हैं-'मैं प्रज्वलित ही हुआ करूँगा' ऐसा व्रत अग्निने धारण किया, 'मैं तपा करूंगा' यह व्रत आदित्यने धारण किया, 'मैं प्रकाश किया करूंगा' ऐसा व्रत चन्द्रमाने धारण किया । ऐसे ही विद्युत् आदि अन्य देवताओंने भी अपने २ देवभावके अनुसार व्रत धारण किया । जैसे २ इन वाणी आदि प्राणोंमें मध्यम (मुख्य) प्राण मृत्युसे तिरस्कार न पाकर अपने प्राणव्रतसे अभग्न व्रतवाला है ऐसे इन अग्नि आदि देवताओंमें वायु भी मृत्युसे तिरस्कार न पाकर अपने वायुव्रतसे अभग्न व्रतवाला है । क्योंकि-अन्य अग्नि आदि देवता अपने कर्मोंसे उपराम पाकरके अस्त होजाते हैं, परन्तु वायु अपने कर्मोंसे उपराम पाकर अस्त नहीं होता, इसकारण यह जो वायु है यह अविनाशी व्रतधारी अस्त न होनेवाला देवता है ॥ २२ ॥

ऊपर कहे अर्थको दृढ करनेवाला मंत्र कहते हैं—

अथैष श्लोको भवति—यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छतीति प्राणाद्वा एष उदेति प्राणेऽस्तमेति तं देवाश्चक्रिरे धर्मꣳ स एवाद्य स उ श्व इति यद्वा एतेऽमुर्ह्यध्रियन्त तदेवाप्यद्य कुर्वन्ति । तस्मादेकमेव व्रतं चरेत्प्राण्याच्चैवापान्याच्च नेन्मापाप्मा मृत्युराप्नुवदिति यद्यु चरेत्समापिपयिषेत्तेनो एतस्यै देवतायै सायुज्यꣳ सलोकतां जयति ॥ २३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अब (एषः) यह (श्लोकः) मंत्र (भवति) होता है (यतः) जिससे (सूर्यः) सूर्य (उदेति) उदित होता है (च) और (यत्र) जिसमें (अस्तं, गच्छति, च) अस्तको भी प्राप्त होता है (इति) इस प्रकार (प्राणात्, वै) प्राणसे ही (एषः) यह (उदेति) उदित होता है (प्राणे) प्राणमें (अस्तं, एति) अस्तको प्राप्त होता है (देवाः) देवता (तं, धर्मम्) तिस धर्म को (चक्रिरे) करते हुए (सः, एव) वह ही (अद्य) आज है (सः, उ) वह ही (श्वः) कलको होगा (इति) ऐसा है (एते) ये (अमुर्हि) भूत कालमें (यत्, वै) निश्चय जिस व्रतको (अध्रियन्त) धारण करते हुए (तत्, एव) उसको ही (अद्य, अपि) अब भी (कुर्वन्ति) करते हैं (तस्मात्) तिससे (एकं, एव) एक ही (व्रतम्) व्रतको (चरेत्) करे (प्राण्यात्) श्वासक्रिया करे (च) और (अपान्यात्, एव, च) उच्छ्वासक्रिया

भी अवश्य करे (मा) मुझको (पाप्मा) पापरूप (मृत्युः) मृत्यु (आप्नुवत्) ग्रसलेगा (इति) ऐसा (नेत्) भयभीत रहे (यदि) जो (उ) कदाचित् (चरेत्) करे (समापिपयिषेत्) समाप्त करनेकी इच्छा करे (तेन) उ) तिससे ही (एतस्यै, देवतायै) इस देवताके (सायुज्यम्) एकात्मभावको (सलोकताम्) एकस्थानभाव को (जयति) जीतलेता है ॥ २३ ॥

(भावार्थ) अब इस अर्थका प्रकाशक मंत्र यह है- जिस वायुसे और प्राणसे क्रमशः अधिदैवत सूर्य और अध्यात्म चक्षु प्रातःकालमें और पुरुषके जाग्रत्कालमें उदित होता है तथा जिस वायुमें और प्राणमें क्रमसे अवरसंध्या और पुरुषकी निद्राके समय सूर्य तथा चक्षु अस्त होजाता है। अब इस मंत्रके पूर्वार्धकी व्याख्या श्रुति स्वयं ही करती है-अधिदैव और अध्यात्मरूप प्राण से ही यह अधिदैव सूर्य और अध्यात्म चक्षु उदित होता है और इस प्राणमें ही अस्त होजाता है। वाणी आदि और अग्नि आदि देवताओंने इस प्राणव्रत और वायु व्रतरूप धर्मको पहले विचार कर धारण किया था, वही धर्म आजकल चल रहा है और आगको भी चलेगा, अब इस मन्त्र के उत्तरार्धका संक्षेपमें व्याख्यान करते हैं कि-इस प्रसिद्ध प्राणव्रत और वायुव्रतको वाणी आदि और अग्नि आदिने उस समय धारण किया था उस व्रतको ही आज भी धारण करते हैं और आगेको भी धारण करेंगे। क्योंकि-वाणी आदि और अग्नि आदिने चलनके विना स्थितिमें असमर्थ होकर एक प्राणव्रतको ही धारण किया था, इस कारण उपासकको भी एक ही व्रतका आचरण करना

चाहिये । वह व्रत यह है, कि-अन्य इन्द्रियोंके व्यापार को छोड़ कर श्वासक्रिया और उच्छ्वासक्रिया करे । मुझे श्रमरूप पापात्मा मृत्यु आकर ग्रसलेगा, इसप्रकार सदा भयभीत रहता हुआ प्राणव्रतको धारण करे । यदि इस प्राणव्रतका अनुष्ठान आरम्भ करदेय तो इसको पूर्ण करनेकी भी इच्छा रक्खे । ऐसा करनेसे सकल भूतोंमें वाणी आदि और अग्नि आदि मेरा ही रूप हैं और मैं सूत्ररूप प्राणात्मा सम्पूर्ण चलनक्रियाका करनेवाला हूं ऐसे प्राणव्रतकी धारणासे इस सूत्ररूप प्राणदेवताके सायुज्य कहिये एकात्मभावको और एकस्थानपनेको उपासनाकी उत्तमता और मन्दताके अनुसार पाता है ।

इति प्रथमाध्यायस्य पञ्चमं सप्तान्नं ब्राह्मणं समाप्तं ।

विस्तारसे कहेहुए अविद्याके कार्यका संक्षेपमें उपसंहार करनेके लिये उक्थ ब्राह्मणका आरम्भ होता है-

त्रयं वा इदं नाम रूपं कर्म तेषां नाम्नां वागित्येनदेषामुक्थमतो हि सर्वाणि नामान्युत्तिष्ठन्ति। एतदेषाᳫं सामैतद्धि सर्वैर्नामभिः सममेतदेषां ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि नामानि बिभर्त्ति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इदम्) यह (नाम) नाम (रूपम्) रूप (कर्म) कर्म (त्रयम्, वै) तीन ही हैं (तेषाम्) तिनमें (एषां, नाम्नाम्) इन नामोंका (वाक्, इति, एतत्) वाक् यह (उक्थम्) उपादान कारण है (हि) क्योंकि (अतः) इससे (सर्वाणि, नामानि) सब नाम (उत्तिष्ठन्ति) उत्पन्न होते हैं (एतत्) यह (एषाम्) इनका (साम) सामान्य है (हि) क्योंकि (एतत्) यह (सर्वैः, नामभिः) सब नामोंसे (समम्) समान है

(एतत्) यह (एषाम्) इनका (ब्रह्म) आत्मा है (हि) क्योंकि (एतत्) यह (सर्वाणि, नामानि) सब नामोंको (बिभर्त्ति) धारण करता है ॥ १ ॥

(भावार्थ)-यह व्याकृत और अव्याकृत रूप जगत् नाम रूप और कर्म इसप्रकार तीन स्वरूपोंवाला है। यह जड़ ही है, चेतन नहीं है,इसलिये मनुष्यको इसमें आसक्ति नहीं रखनी चाहिये। नाम रूप और कर्म इनमें यज्ञदत्त आदि नामोंका शब्दसामान्य जो वाक् वह उपादान कारण है,क्योंकि-इस शब्दसामान्य वाक्से सब नाम उत्पन्न होते हैं। यह शब्दसामान्य इन विशेषर नामोंका सामान्य है' क्योंकि-यह शब्दसामान्य अपने भेदरूप सब नामोंसे सम है अर्थात् समानभावसे पुरा हुआ है, इसलिये यह सामान्य है। यह शब्दसामान्य इन विशेष नामोंका आत्मारूप है, क्योंकि-यह शब्दसामान्य सब विशेष नामोंको स्वरूप देकर उनको धारण करता है। इसप्रकार कार्यकारणभावके संभवसे सामान्यविशेषके संभवसे और स्वरूपप्रदानके संभवसे नामविशेषोंका शब्दमात्रपना है ॥ १ ॥

नामोंकी व्याख्या करके अब रूपकी व्याख्या करते हैं-

अथ रूपाणां चक्षुरित्येतदेषामुक्थमतो हि सर्वाणि रूपाण्युत्तिष्ठन्त्येतदेषाꣳसामैतद्धि सर्वै रूपैः सममेतदेषां ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि रूपाणि बिभर्त्ति ॥२॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अब (एषाम्) इन (रूपाणाम्) रूपोंका (चक्षुः, इत्येतत्) चक्षु यह (उक्थम्) उपादान कारण है (हि) क्योंकि (अतः) इससे (सर्वाणि, रूपाणि) सब रूप (उत्तिष्ठन्ति) उत्पन्न

होते हैं (एतत्) यह (एषाम्) इनका (साम) सामान्य है (हि) क्योंकि (एतत्) यह (सर्वैः, रूपैः) सब रूपों करके (समम्) सम है (एतत्) यह (एषाम्) इनका (ब्रह्म) आत्मा है (हि) क्योंकि (एतत्) यह (सर्वाणि) सब (रूपाणि) रूपोंको (बिभर्त्ति) धारण करता है २

(भावार्थ)-नामोंकी व्याख्याके अनन्तर रूपोंकी व्याख्या होती है, कि-इन श्वेत कृष्ण आदि रूपोंका प्रकाश्यमात्र चक्षु उपादान कारण हैं, क्योंकि-इस प्रकाश्यमात्रसे सब रूप उत्पन्न होते हैं। यह प्रकाश्यमात्र इन विशेष २ रूपोंका सामान्य है, क्योंकि-यह प्रकाश्यमात्र अपने भेदरूप सब रूपोंमें समानभावसे पुराहुआ है, इसकारण यह सामान्य है । यह प्रकाश्यमात्र इन विशेष २ रूपोंका आत्मा (स्वरूप) है, क्योंकि-यह सब विशेष रूपोंको उनका स्वरूप देकर धारण किये हुए ॥२॥

(अब कर्मकी व्याख्या करते हैं-)

अथ कर्मणामात्मेत्येतदेषामुक्थमतो हि सर्वाणि कर्माण्युत्तिष्ठन्त्येतदेषाᳬंसामैतद्धि सर्वैःकर्मभिः सममेतदेषां ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि कर्माणि बिभर्त्ति तदेतत्त्रयᳬंसदेकमयमात्माऽऽत्मो एकः सन्नेतत्त्रयं तदेतदमृतᳬं सत्येनच्छन्नं प्राणो वा अमृतं नामरूपे सत्यं ताभ्यामयं प्राणश्छन्नः॥३॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अनन्तर (एषां, कर्मणाम्) इन कर्मोंका (आत्मा, इत्येतत्) यह शरीर (उक्थम्) उपादान है (हि) क्योंकि (अतः) इससे (सर्वाणि) सब (कर्माणि) कर्म (उत्तिष्ठन्ति) उत्पन्न होते हैं

(एतत्) यह (एषाम्) इनका (साम) सामान्य है (हि) क्योंकि (एतत्) यह (सर्वैः कर्मभिः) सब कर्मों करके (समम्) समानभावसे अनुस्यूत है (एतत्) यह (एषाम्) इनका (ब्रह्म) स्वरूप है (हि) क्योंकि (एतत्) यह (सर्वाणि, कर्माणि) सब कर्मोंको (बिभर्ति) धारण करता है (तत्) सो (एतत्) यह (त्रयम्, सत्) तीन होकर (एकम्) एक (अयम्) यह (आत्मा) शरीर है (आत्मा, उ) आत्मा भी (एकः, सन्) एक होता हुआ (एतत्) यह (त्रयम्) तीन है (तत्) सो (एतत) यह (अमृतम्) अमृत (सत्येन) सत्यके द्वारा (छन्नम्) ढकाहुआ है (प्राणः, वै) प्राण ही (अमृतम्) अमृत है (नामरूपे) नाम और रूप (सत्यम्) सत्य हैं (ताभ्याम्) तिनसे (अयम्) यह (प्राणः) प्राण (छन्नः) ढकाहुआ है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)—रूपोंकी व्याख्याके अनन्तर कर्मोंकी व्याख्या होती है इन मनन, दर्शन और चलनरूपकर्मों का शरीर उपादान कारण है, क्योंकि-कर्ममात्रका निर्वाह शरीरसे ही होता है और सब ही कर्म शरीरसे ही उत्पन्न होते हैं। यह क्रियामात्ररूप शरीर इन विशेष २ क्रियाओंका सामान्य है, क्योंकि-यह कर्मसामान्य अपने भेद रूप सब कर्मोंसे समानपने करके अनुस्यूत (पुराहुआ) है, इसकारण यह सामान्य है। यह क्रियासामान्य शरीर इन क्रिया विशेषोंका आत्मा-स्वरूप है। क्योंकि यह क्रियासामान्य सब विशेषक्रियाओंको उनका स्वरूप देकर धारण करता है। वे नाम, रूप और कर्म तीन होकर भी एक हैं, उन तीनोंकी एकता यह शरीर है। ऐसे ही यह शरीर भी एक होकर अध्यात्म, अधिभूत

और अधिदैव भावसे व्यवस्थित-नाम, रूप और कर्म ये तीन है। इसप्रकार यह अमृत सत्यसे ढका हुआ है। प्राण ही मोक्षपर्यन्त अविनाशी होनेके कारण अमृत है और नामरूप सत्य कहिये समष्टि स्थूलशरीर हैं। इन नामरूप कहिये विराटसे—समष्टिस्थूल शरीरसे यह प्राण सूत्रात्मा ढकाहुआ है, आत्मतत्त्व तो इस प्राणसे भी दुर्विज्ञेय है, अतः उसको जाननेके लिये बड़ा यत्न करना चाहिये, क्योंकि—उसको जानने पर ही मोक्ष होती है ॥ ३ ॥

प्रथमाध्याये षष्ठं ब्राह्मणं समाप्तम्

प्रथम अध्याय समाप्त

अथ द्वितीय अध्याय

इसप्रकार सूत्रात्माकी उपासनासे जिसको दोनों देहरूप जगत्से वैराग्य होगया है उसके प्रति "सर्वत्र यह आत्मा ही है ऐसी उपासना करे" इत्यादि वाक्योंसे कहे हुए सकल आत्मविद्याके विषय रूप आत्मतत्त्वका यथावत् निरूपण करनेके लिये इस अध्यायका आरम्भ होता है। तिसमें पहले अध्यायके अन्तमें कहे हुए सूत्रात्मा की ही आदित्य तथा चन्द्रमा आदिमें आत्मभावसे उपासना करके उसके रूपको प्राप्त हुआ बालाकी, जिसको सिद्धान्तरूपसे कहनेकी इच्छा है उस आत्मा का यथावत् निरूपण करनेके लिये पूर्वपक्षवादी को स्थापन करता है और मुख्य ब्रह्मात्मदर्शी अजातशत्रु तो सिद्धांत को कहनेवाला है अतः वह सिद्धान्ती रूपसे स्थापन कियाजाता है—

॥ ॐ ॥ दृप्तबालाकिर्हानूचानो गार्ग्य आस स होवाचाजातशत्रुं काश्यं ब्रह्म ते ब्रवाणीति स होवाचाजातशत्रुः सहस्रमेतस्यां वाचि दद्मो जनको जनक इति वै जना धावन्तीति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(किल) कहते हैं, कि (दृप्तबालाकिः) घमण्डी बलाकाका पुत्र (अनूचानः) वाचाल (गार्ग्यः) गर्गवंशी (आस) था (सः) वह (काश्यम्) काशी के राजा (अजातशत्रुम्) अजातशत्रु के प्रति (ते) तेरे अर्थ (ब्रह्म) ब्रह्मको (ब्रवाणि) कहता हूँ (इति) ऐसा (उवाच, ह) कहता हुआ (सः) वह (अजातशत्रुः) अजातशत्रु (उवाच,ह) बोला (एतस्यां, वाचि) इस बात पर (सहस्रम्) सहस्र (दद्मः) देता हूँ (वै) निश्चय (जनकः, जनकः) जनक जनक है (इति) ऐसा जानकर (जनाः) मनुष्य (धावन्ति) दौड़ कर आते हैं १

(भावार्थ)-पूर्ण ब्रह्मज्ञान न होने के कारण बड़े घमण्डमें भरा रहनेवाला और शास्त्रकी बातों पर बहुत बोलनेवाला एक बलाकाका पुत्र बालाकि नाम वाला गर्गवंशी ब्राह्मण था। वह एक समय काशीके राजा अजातशत्रुके पास आकर कहने लगा, कि-मैं आपको मुख्य ब्रह्मका स्वरूप सुनाना चाहता हूँ। यह बात सुन कर श्रद्धावान् राजा अजातशत्रुने कहा, कि-हे ब्राह्मण! तुम्हारे इतना कहने पर ही मैं तुम्हें एक सहस्र गौएं देता हूं। जनक दाता है और जनक ब्रह्मविद्याको सुनने की इच्छा रखता है, यह बात प्रसिद्ध थी, इस कारण धनकी इच्छा वाले और ब्रह्मविद्याकी व्याख्या करना चाहनेवाले ब्राह्मण राजा जनकके पास आया करते हैं,

यह समझकर यह बालाकि मेरे पास आया होगा, ऐसा विचार कर ब्रह्मका वर्णन करनेसे पहले ही उसके कथनमात्र से राजाने सहस्र गौएं देनेको कह दिया॥१॥

स होवाच गार्ग्यो स एवासावादित्ये पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतास्मिन् सम्वादिष्ठा अतिष्ठाः सर्वेषां भूतानां मूर्धा राजेति वा अहमेतमुपास इति स य एवमुपास्तेऽतिष्ठाः सर्वेषां भूतानां मूर्धा राजा भवति ॥२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (गार्ग्यः) गर्गवंशी (इति) ऐसा (उवाच, ह) बोला (यः, एव, असौ) जो यह (आदित्ये) आदित्य में (पुरुषः) पुरुष है (एतं, एव) इसको ही (अहम्) मैं (ब्रह्म, उपासे) ब्रह्म मान कर उपसना करता हूं (सः, अजातशत्रुः, उवाच ह) वह अजातशत्रु बोला (एतस्मिन्) इस विषय में (मा, मा) मत मत (सम्बदिष्ठाः) संवाद कर (अतिष्ठाः) सब भूतोंको लाँघकर स्थित (सर्वेषां भूतानां, मूर्धा) सब भूतों का पूजनीय (राजा, इति, वै) दीप्तिमान रूपसे प्रसिद्ध (एनम्) इसको (अहम्) मैं (उपासे) उपासना करता हूं (इति) इस कारण कि (यः) जो (एतम्) इसको (एवम्) इसप्रकार (उपास्ते) उपासना करता है (सः) वह (अतिष्ठाः) सबको लाँघकर स्थित होता है (सर्वेषां, भूतानाम्) सब भूतोंका (मूर्धा) पूजनीय (राजा) दीप्तिमान् (भवति) होता है ॥२॥

(भावार्थ)-सुननेके अभिलाषी राजासे उस गर्ग-

वंशी ब्राह्मणने कहा, कि-यह जो आदित्य और चक्षु का अधिष्ठाता, चक्षुके द्वारा हृदय में प्रविष्ट हुआ और कर्त्ता भोक्तापनेका अभिमानी पुरुष है इसको ही मैं ब्रह्म मानकर उपासना करता हूं, तुम भी इस ब्रह्म पुरुष की उपासना करो। यह सुनकर राजाने कहा, कि नहीं नहीं, ऐसे विज्ञेय ब्रह्मकी उपासना का उपदेश देना आरंभ न करो, इस ब्रह्मको मैं जानता हूं, इसलिये मेरी जानी हुई बात का उपदेश देना निरर्थक होगा और तुम जिस अतिष्ठाकी बात कहते हो अर्थात् तुम्हारे बताये हुए ब्रह्मकी जो विशेषता है और उसका जो अतिष्ठारूप फल है उसको भी मैं जानता हूँ। जोअपने प्रभाव आदिसे सबको दबा कर स्थित होता है वही अतिष्ठा कहलाता है। मस्तक शरीरका अतिष्ठा है। राजा सकल मनुष्योंका अतिष्ठा है, आदित्य सकल भूतोंका अतिष्ठा है। वैराज पुरुषकी तेजोराशिसे दीप्त इस आदित्य रूप ब्रह्मको इस स्थूल शरीरका कर्त्ता और भोक्ता मानकर मैं उपासना करता हूं। जो इस आदित्यरूप ब्रह्मकी उपासना करते हैं, वे सकल प्राणियों के ऊपर अधिकार रखने वाले पूज्य राजा होते हैं ॥१॥

स होवाच गार्ग्यो य एवासौ चन्द्रे पुरुष एत-
मेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा
मैतास्मिन् संवदिष्ठा बृहत्पाण्डरवासाः सोमो
राजेति वा अहमेतमुपास इति स य एत-
मेवमुपास्तेऽहरहर्ह सुतः प्रसुतो भवति ना-
स्यान्नं क्षीयते ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः, ह, गार्ग्यः, उवाच) वह प्रसिद्ध गार्ग्य बोला (यः, असौ) जो यह (चन्द्रे) चन्द्रमामें (वै) प्रसिद्ध (पुरुष) पुरुष है (एतं, एव) इसको ही (अहम्) मैं (ब्रह्म, इति, उपासे) ब्रह्म ऐसा मानकर उपासना करता हूँ (सः, अजातशत्रुः, उवाच, ह,) वह अजातशत्रु कहनेलगा (एतस्मिन्) इस विषयमें (मा, मा) मत मत (सम्वदिष्ठाः) संवाद कर (बृहत) बड़ा (पाण्डरवासाः) स्वेत वस्त्रवाला (सोमः) सोम (राजा) राजा है (इति) ऐसे (वै) प्रसिद्ध (एतम्) इसको (अहम्) मैं (उपासे) उपासना करता हूँ (इति) इसलिये कि (यः) जो (एतम्) इसको (एवम्) इस प्रकार (उपास्ते) उपासना करता है (सः) वह (अहरहः) प्रतिदिन (सुतः, प्रसुतः) सुत और प्रसुत (भवति) होता है (अस्य) इसका (अन्नम्) अन्न (न) नहीं (क्षीयते) क्षीण होता है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-राजाके इसप्रकार उत्तर देने पर गार्ग्य ने फिर कहा, कि-यह जो चन्द्रमाके अधिष्ठाम वाले मन और बुद्धिमें कर्त्तापने और भोक्तापनेका अभिमानी एक पुरुष रहता है मैं उसकी ही ब्रह्मबुद्धि से उपासना करता हूं। राजाने कहा, कि-नहीं नहीं, मुझे ऐसे ब्रह्मका उपदेश न करो,मैं इस महान्,जलरूप शुक्ल वस्त्रधारी सोमको सोमलताके साथ एकीभूत करके राजा मानकर उपासना करता हूं। जो ऐसे गुणवाले इस सोम राजाकी उपासना करते हैं उनके यज्ञमें प्रतिदिन इस सोमकी पूजा होती है और सोमरस निकाला जाता है तथा उनके यहाँ अन्नकी कमी नहीं होती है ३

स हावाच गार्ग्यो य एवासौ विद्युति पुरुष

एतमेवाऽहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजात-
शत्रुर्मा मैतस्मिन् सम्वदिष्ठास्तेजस्वीति वा
अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्ते
तेजस्वी ह भवति तेजस्विनी हास्य प्रजा भवति।४।

अन्वय और पदार्थ-(सः, गार्ग्यः, उवाच, ह) वह गार्ग्य कहने लगा (यः, असौ, विद्युति, एव पुरुषः) जो यह बिजली में प्रसिद्ध पुरुष है । (एतम् एव) इसको ही (अहम्) मैं (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा मानकर (उपासे) उपासना करता हूं (सः,अजातशत्रुः, उवाच ह,) वह अजातशत्रु कहने लगा (एतस्मिन्) इस विषयमें (मा, मा) मत मत (सम्बदिष्ठाः) सम्बाद कर (अहम्) मैं (तेजस्वी, इति) तेजस्वी है ऐसा मानकर (एतं, वै) इस प्रसिद्ध पुरुषको (उपासे) उपासना करता हूं (इति) इसलिये कि (यः) जो (एतं, एवं, उपास्ते) इसको ऐसा मानकर उपासना करता है (सः) वह (तेजस्वी,ह, भवति) प्रसिद्ध तेजस्वी होता है (अस्य) इसकी (प्रजा) सन्तान (तेजस्विनी, ह) प्रसिद्ध तेजस्वी (भवति] होती है ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-राजाके ऐसा उत्तर देने पर गार्ग्य फिर कहनेलगा, कि-जो यह विद्युत्से अधिष्ठित त्वचा और हृदयमें एक प्रसिद्ध पुरुष है, उसको ही मैं ब्रह्म मानकर उपासना करता हूँ, उस ब्रह्मका ही मैं तुम्हे उपदेश देता हूँ, तुम उसकी उपासना करो । राजाने कहा, कि-नहीं नहीं, मुझे ऐसे ब्रह्मका उपदेश न करो, मैं उसकी उपासनाके फलको जानता हूं और उसको तेजस्वी पुरुष मान कर उपासना करता हूँ, क्योंकि--जो इसको ऐसे गुणों-

वाला जानकर इसकी उपासना करताहै वह निःसन्देह तेजस्वी होताहै और उसकी संतान भी तेजवाली होती है

स होवाच गार्ग्यो य एवायमाकाशे पुरुष एत-
मेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा
मैतस्मिन् सम्वदिष्ठाः पूर्णमप्रवर्त्तीति वा अह-
मेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्ते पूर्यते प्रजया
पशुभिर्नास्यास्माल्लोकात्प्रजोद्वर्त्तते ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः, गार्ग्यः, उवाच, ह) वह गार्ग्य कहनेलगा (यः, अयं, आकाशे, एव, पुरुषः) जो यह आकाशमें ही प्रसिद्ध पुरुष है (एतं, एव, अहम्) इस को ही मैं (ब्रह्म, इति, उपासे) ब्रह्म है ऐसा मानकर उपासना करता हूं (सः, अजातशत्रुः, उवाच, ह) वह अजातशत्रु कहनेलगा (एतस्मिन्) इस विषयमें (मा, मा) मत मत (सम्वदिष्ठाः) संवाद कर (पूर्णम्) पूर्ण है (अप्रवर्त्ति) अक्रिय है (इति) ऐसा मानकर (वै) निश्चय (अहम्) मैं (एतम्) इसको (उपासे) उपासना करता हूं (इति) इसलिये कि-(यः) जो (एतम्) इसको (एवम्) ऐसा जानकर (उपास्ते) उपासना करता है (सः) वह (प्रजया) सन्तानसे (पशुभिः) पशुओंसे (पूर्यते) पूर्ण रहता है (अस्य) इसकी (प्रजा) सन्तान (अस्मात्, लोकात्) इसलोकसे (न) नहीं (उद्वर्त्तते) विच्छिन्न होती है ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-राजाका उत्तर सुनकर गार्ग्य फिर कहने लगा, कि -जो हृदयाकाश और बुद्धिमें एक प्रसिद्ध पुरुष स्थित रहता है उसको मैं ब्रह्म मानकर उपासना करता

हूं, और उसका ही आपको उपदेश देता हूं, आप उस की उपासना करिये। इस पर राजा अजातशत्रुने कहा, कि-नहीं नहीं, मुझे ऐसे ब्रह्मका उपदेश न करो, मैं इस को और इसकी उपासनाके फलको जानता हूं, तथा पूर्ण और अक्रिय मानकर इसकी उपासना करता हूँ, क्योंकि-जो इसको ऐसे गुणोंवाला जानकर उपासना करते हैं वे सन्तान और पशुओंसे भरेपुरे रहते हैं और उनकी सन्तानका इस लोकमें उच्छेद नहीं होता है ॥५॥

स होवाच गार्ग्यो य एवायं वायौ पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन् सम्वदिष्ठा इन्द्रो वैकुण्ठोऽपराजिता सेनेति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्ते जिष्णुर्हापराजिष्णुर्भवत्यन्यतस्त्यजायी ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः, गार्ग्यः, उवाच, ह) वह गार्ग्य कहनेलगा (यः, अयम्, वायौ, एव, पुरुषः) जो यह वायुमें प्रसिद्ध पुरुष है (एतं, एव) इसको ही (अहम्) मैं (ब्रह्म, इति, उपासे) ब्रह्म है ऐसा मानकर उपासना करता हूँ (सः, अजातशत्रुः, उवाच, ह) वह अजातशत्रु कहनेलगा (एतस्मिन्) इस विषयमें (मा, मा) मत मत (सम्वदिष्ठाः) संवाद कर (इन्द्रः) परमेश्वर (वैकुण्ठः) वशमें न होसके ऐसे बल वाला (अपराजिता, सेना) दूसरोंसे जीती न जासके ऐसी सेनारूप है (इति) ऐसे (वै) प्रसिद्ध (एतम्) इसको (अहम्) मैं (उपासे) उपासना करता हूं (इति) इसलिये कि (यः) जो (एतम्) इसको (एवम्) ऐसा जानकर

(उपास्ते) उपासना करता है (सः) वह (जिष्णुः) विजयके स्वभावाला (ह) प्रसिद्ध (अपराजिष्णुः) दूसरोंसे पराजय न पानेके स्वभाववाला (अन्यतस्त्यजायी) अन्यमातासे उत्पन्न होनेवालोंको जीतनेके स्वभाववाला (भवति) होता है ॥ ६ ॥

(भावार्थ)-राजाका उत्तर सुनकर गार्ग्य फिर कहने लगा, कि-जो यह वायु (प्राण और हृदय) में एक प्रसिद्ध पुरुष है उसको ही मैं ब्रह्म मानकर उपासना करता हूँ और उसका ही मैं आपको उपदेश देता हूं, कि-आप उसकी उपासना करिये, इस पर राजा अजातशत्रुने कहा, कि नहीं नहीं, इस विज्ञेय ब्रह्मके विषयमें कुछ न कहो, मैं इसको और इसकी उपासनाके फलको जानता हूँ, जिसके बलको कोई वशमें नहीं करसकता और जो किसीके जीतनेमें न आनेवाली सेनारूप है ऐसे इस इन्द्र (परमेश्वर) की मैं उपासना करता हूँ, क्योंकि-जो इसको ऐसे गुणोंवाला जान कर उपासना करता है वह निःसन्देह सदा विजय पाया करता है और उसको कोई दूसरा नहीं जीत सकता तथा वह विमातासे वा दूसरी माताओंसे जन्म लेनेवालोंको जीतनेके स्वभाववाला होता है ॥ ६ ॥

स होवाच गार्ग्यो य एवायमग्नौ पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन् संवदिष्ठा विषासहिरिति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्ते विषासहिर्ह भवति विषासहिर्हास्य प्रजा भवति ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः, गार्ग्यः, उवाच, ह) वह गार्ग्य कहनेलगा कि-(यः, एषः) जो यह (अग्नौ, एव, पुरुषः) अग्निमें प्रसिद्ध पुरुष है (एतं, एव) इसको ही (अहम्) मैं (ब्रह्म, इति, उपासे) ब्रह्म मानकर उपासना करता हूँ (सः, अजातशत्रुः, उवाच, ह) उस अजातशत्रुने कहा (एतस्मिन्) इस विषयमें (मा, मा) मत मत (सम्वदिष्ठाः) संवाद कर (विषासहिः) होमे हुएको भस्म करके सहनेवाला है (इति) ऐसा जानकर (अहम्) मैं (वै) प्रसिद्ध (एतम्) इसको (उपासे) उपासना करता हूँ (इति) इसलिये कि (यः) जो (एतम्) इसको (एवम्) ऐसा जानकर (उपास्ते) उपासना करता है (सः) वह (ह) निश्चय (विषासहिः) आक्षेपोंको सहनेवाला (भवति) होता है (अस्य) इसकी (प्रजा) सन्तान (हि) निश्चय (विषासहिः) आक्षेपोंको सहनेवाली (भवति) होता है ॥ ७ ॥

(भावार्थ)-इस उत्तरको सुनकर गार्ग्य फिर कहनेलगा, कि-जो इस अग्नि (वाणी और हृदय) में एक प्रसिद्ध पुरुष रहता है उसको ही मैं ब्रह्म मानकर उपासना करता हूँ, उस ब्रह्मका ही मैं तुम्हें भी उपदेश देता हूँ तुम उसकी उपासना करो, इस पर राजा अजातशत्रुने कहा, कि—नहीं नहीं, इस विज्ञेय ब्रह्मके विषयमें कुछ न कहो, मैं इसको और इसकी उपासनाके फलको जानता हूँ, यह होमेहुए हविको भस्म करके सहनेवाला है, ऐसे इस प्रसिद्ध पुरुषकी मैं उपासना करता हूँ, क्योंकि—जो इसकी उपासना करता है वह निःसन्देह सहनशील होता है और उसकी सन्तान भी क्षमाशील होती है ॥ ७ ॥

स होवाच गार्ग्यो य एवायमप्सु पुरुष एतमेवाऽहं ब्रह्मोपास इति सहोवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन् सम्वदिष्ठाः प्रतिरूप इति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्ते प्रतिरूपꣳहैवैनमुपगच्छति नाप्रतिरूपमथो प्रतिरूपोऽस्माज्जायते ८

अन्वय और पदार्थ-(सः, गार्ग्यः, उवाच, ह) वह गार्ग्य कहनेलगा (यः, एषः) जो यह (अप्सु) जलमें (वै) प्रसिद्ध (पुरुषः) पुरुष है (एतम्, एव) इसको ही (अहम्) मैं (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा मानकर (उपासे) उपासना करता हूँ (सः, अजातशत्रुः, उवाच, ह) वह अजातशत्रु कहनेलगा (एतस्मिन्) इस विषय में (मा, मा) मत मत (सम्वदिष्ठाः) सम्वाद कर (प्रतिरूपः, इति) अनुकूल है ऐसा जानकर (अहम्) मैं (वै) प्रसिद्ध (एतम्) इसको (उपासे)उपासना करता हूँ (इति) इसलिये कि (सः) वह (यः) जो (एतम्) इसको (एवम्) इसप्रकार (उपास्ते) उपासना करता है (एनम्) इसको (प्रतिरूपं, ह, एव) अनुकूल ही (उपगच्छति) प्राप्त होता है (अप्रतिरूपं, न) प्रतिकूल नहीं (अथो) और (अस्मात्) इससे (प्रतिरूपः) अनुकूल (जायते) उत्पन्न होता है ॥ ८ ॥

(भावार्थ)-राजाके उत्तरको सुनकर गार्ग्य फिर कहने लगा, कि-जो यह जल (वीर्य और हृदय) में प्रसिद्ध पुरुष है इसको ही मैं ब्रह्म मानकर उपासना करता हूँ उस ब्रह्मको ही मैं आपसे कहता हूँ आप उसकी उपासना करिये। इस पर राजा अजातशत्रुने कहा, कि नहीं नहीं, इस विज्ञेय ब्रह्मके विषयमें संवाद न करो,

मैं इसको और इसकी उपासनाके फलको जानता हूं, मैं इस श्रुति स्मृतिके अनुकूल पुरुषकी उपासना करता हूँ, क्योंकि-जो ऐसा जानकर इस पुरुषकी उपासना करता है उसको श्रुति स्मृतिमें कहा हुआ अनुकूल फल प्राप्त होता हैं, निःसन्देह उसके विपरीत फल नहीं प्राप्त होता है और उस उपासकसे जो सन्तान उत्पन्न होती है वह भी श्रुति स्मृतिके अनुकूल वर्त्ताव करनेवाली होती है॥८॥

स होवाच गार्ग्यो य एवायमादर्शे पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन् संवदिष्ठा रोचिष्णुरिति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्ते रोचिष्णुर्ह भवति रोचिष्णुर्हास्य प्रजा भवत्यथो यैः संनिगच्छति सर्वांस्तानतिरोचते ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः, गार्ग्यः उवाच, ह) वह गार्ग्य कहनेलगा (यः, अयम्) जो यह (आदर्शे) दर्पणमें (एव) प्रसिद्ध (पुरुषः) पुरुष है (एतं, एव) इसको ही (अहम्) मैं (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा मान कर (उपासे) उपासना करता हूँ (सः, अजातशत्रुः, उवाच ह) वह अजातशत्रु कहनेलगा (एतस्मिन्) इस विषय में (मा, मा) मत मत (संवदिष्ठाः) संवाद कर (रोचिष्णुः, इति) प्रकाश-स्वभाववाला है ऐसा जान कर (अहम्) मैं (एतं, वै) इस प्रसिद्ध पुरुषको (उपासे) उपासना करता हूँ (इति) इसलिये कि (यः) जो (एतम्) इसको (एवम्) इसप्रकार जानकर (उपास्ते) उपासना करता है (सः) वह (ह) निश्चय (रोचिष्णुः)

प्रकाश स्वभाववाला (भवति) होता है (अस्य) इस की (प्रजा) सन्तान (ह) निश्चय (रोचिष्णुः) प्रकाश स्वभाववाली (भवति) होती है (अथो) और (यैः, संनिगच्छति) जिनके साथ सम्यक् प्रकार निकलता है (तान्) उन (सर्वान्) सबको (अतिरोचते) लाँघ-कर प्रकाशित होता है ॥ ६ ॥

(भावार्थ)-राजाके उत्तरको सुनकर गार्ग्य फिर कहने लगा, कि-जो दर्पण (खड्ग आदि और अन्तःकरण) में प्रसिद्ध पुरुष स्थित है मैं उसको ही मैं ब्रह्म मान कर उपासना करता हूँ, उस ब्रह्मको ही तुमसे कहरहा हूँ तुम भी उसकी उपासना करो, इस पर राजा अजा-तशत्रुने कहा, कि-नहीं नहीं, इस विशेष ब्रह्मके विषय में कुछ मत कहो, इसको और इसकी उपासनाके फल को मैं जानता हूं, यह प्रकाश स्वभाववाला है ऐसा जानकर मैं इसकी उपासना करता हूं, क्योंकि-जो इस को ऐसे स्वभाववाला जानकर उपासना करता है वह निःसन्देह प्रकाश स्वभाववाला होता है और इसकी सन्तान निःसन्देह प्रकाश स्वभाववाली होती है और यह जिनके साथ बैठता उठता है उन सबको अपने प्रकाशसे दबालेता है ॥ ६ ॥

स होवाच गार्ग्यो य एवायं यन्तं पश्चाच्छब्दो-ऽनूदेत्येतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजा-तशत्रुर्मा मैतस्मिन् संवदिष्ठा असुरिति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्ते सर्वꣳ हैवास्मिन् लोक आयुरेति नैनं पुरा काला-त्प्राणो जहाति ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः, गार्ग्यः, उवाच, ह) वह गार्ग्य कहने लगा (यन्तम्, पश्चात्) जानेवालेके पीछे (यः, अयम्) जो यह (एव) प्रसिद्ध (शब्दः, अनूदेति) शब्द उत्पन्न होता है (एतं, एव) इसको ही (अहम्) मैं (ब्रह्म, इति, उपासे) ब्रह्म है ऐसा मानकर उपासना करता हूँ (सः, अजातशत्रुः, उवाच, ह) वह अजातशत्रु कहने लगा (एतस्मिन्) इस विषयमें (मा, मा) मत मत (सम्वदिष्ठाः) संवाद कर (प्राणः, इति, वै) प्राण इस नामसे प्रसिद्ध (एतम्) इसको (अहम्) मैं (उपासे) उपासना करता हू (इति) इसलिये कि (यः) जो (एतम्) इसको (एवं, उपास्ते) इसप्रकार उपासना करता है (सः) वह (अस्मिन्, लोके) इस लोकमें (ह) निश्चय (सर्व, एव, आयुः) सब आयुको (एति) पाता है (एतम्) इसको (कालात्, पुरा) कालसे पहले (प्राणः) प्राण (न) नहीं (जहाति) त्यागता है ॥ १० ॥

(भावार्थ)-राजाके उत्तरको सुनकर गार्ग्य फिर कहने लगा, कि-हे राजन् ! गमन करनेके पीछे जो यह प्रसिद्ध शब्द उत्पन्न होता है और जो जीवनका हेतु अध्यात्म प्राण है, इसको ही मैं ब्रह्म मानकर उपासना करता हूँ उसका ही उपदेश देता हूं, तुम भी उसकी ही उपासना करो। राजाने कहा, कि-नहीं नहीं, इस विज्ञेय ब्रह्म के विषयमें कुछ म कहो, मैं इसको और इसकी उपासना के फलको जानता हूँ, मैं प्राण नामसे प्रसिद्ध इस ब्रह्म की उपासना करता हूँ, क्योंकि-जो इसको ऐसा जान कर उपासना है वह निःसन्देह इस लोकमें कर्मानुसार पाये हुए सब आयुको भोगता है, कर्मके अनुसार नियत

हुए समयसे पहले रोग आदि की घोर पीड़ा होने पर भी प्राण इसको छोड़ कर नहीं जाता है ॥ १० ॥

स होवाच गार्ग्यो य एवायं दिक्षु पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन् संवदिष्ठा द्वितीयोऽनपग इति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्ते द्वितीयवान् ह भवति नास्माद् गणश्छिद्यते ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः, गार्ग्यः, उवाच, ह) वह गार्ग्य कहनेलगा (यः, अयम्) जो यह (दिक्षु) दिशाओंमें (एव) प्रसिद्ध (पुरुषः) पुरुष है (एतं, एव) इसको ही (अहम्) मैं (ब्रह्म, इति, उपासे) ब्रह्म है ऐसा मान कर उपासना करता हूं (सः, अजातशत्रुः, उवाच ह) वह अजातशत्रु कहने लगा (एतस्मिन्) इस विषय में (मा, मा) मत मत (संवदिष्ठाः) सम्वाद करो (द्वितीयः) द्वितीयवाला है (अनपगः) परस्पर वियोग को प्राप्त न होनेवाला है (इति, वै) ऐसे प्रसिद्ध (एतम्) इसको (अहम्) मैं (उपासे) उपासना करता हूं (इति) इसलिये कि (यः) जो (एतं, एवं, उपास्ते) इसको इस प्रकार उपासना करता है (द्वितीयवान् ह, भवति) निश्चय दूसरेवाला होता है (अस्मात्) इसमें (गणः) समूह (न) नहीं (छिद्यते) विच्छिन्न होता है ॥११॥

(भावार्थ)-राजाके उत्तरको सुनकर गार्ग्य फिर कहने लगा, कि-जो यह दिशाओंमें और हृदयमें वियोग रहित स्वभाववाला अश्विनीकुमाररूप प्रसिद्ध पुरुष रहता है इसको ही मैं ब्रह्म मान कर उपासना करता हूं, उस ही ब्रह्मका तुम्हें उपदेश देता हूं,

तुम भी इसकी ही उपासना करो। इसपर राजाने कहा, कि-नहीं नहीं, इस विज्ञेय ब्रह्मके विषयमें कुछ न कहो मैं इसको और इसकी उपासनाके फलको जानता हूं। यह सदा दूसरेके साथ रहता है और कभी उससे जुदा नहीं होता, ऐसा जान कर मैं इसकी उपासना करता हूं, क्योंकि-जो ऐसा जानकर इसकी उपासना करता है, उसको सदा सेवक आदि दूसरे मनुष्यों की सहायता रहती है तथा पुत्र कलत्र आदि परिवार रूप समूहसे उसका वियोग नहीं होता है ॥ ११ ॥

स होवाच गार्ग्यो य एवायं छायामयः पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन् संवदिष्ठा मृत्युरिति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्ते सर्वꣳ हैवास्मिँल्लोक आयुरेति नैनं पुरा कालान्मृत्युरागच्छति १२

अन्वय और पदार्थ-(सः, गार्ग्यः, उवाच, ह) वह गार्ग्य कहने लगा (यः, अयम्) जो यह (एव) प्रसिद्ध (छायामयः, पुरुषः) छायामय पुरुष है (एतं, एव) इसको ही (अहम्) मैं (ब्रह्म, इति, उपास्ते) ब्रह्म है ऐसा मानकर उपासना करता हूं (सः, अजातशत्रुः, उवाच, ह) वह अजातशत्रु कहनेलगा (एतस्मिन्) इस विषयमें (मा, मा) मत मत (सम्वदिष्ठाः) संवाद कर (मृत्युः) मृत्यु (इति, वै) इसप्रकार प्रसिद्ध (एतम्) इसको (अहम्) मैं (उपासे) उपासना करता हूं (इति) इसलिये कि (यः) जो (एनं, एवं, उपास्ते) इसको ऐसा जानकर उपासना करता है (सः) वह (अस्मिन् लोके) इस लोकमें (ह) निश्चय (सर्वं, एव) सब ही

(आयुः) आयुको (एति) पाता है (एनम्) इसको (कालात्, पुरा) समयसे पहिले (मृत्युः) मृत्यु (न) नहीं (आगच्छति) आता है ॥ १२ ॥

(भावार्थ)-राजाके उत्तरको सुन कर गार्ग्य फिर कहने लगा, कि-जो यह छाया कहिये बाहर अन्धकारमें और भीतर हृदयमें आवरणरूप अविद्या वा अज्ञानमें जो एक प्रसिद्ध छायापुरुष रहता है उसको ही मैं ब्रह्म मानकर उपासना करता हूं, उसका ही उपदेश देता हूं, तुम भी इसकी ही उपासना करो। इस पर राजाने कहा, कि नहीं नहीं, इस विज्ञेय ब्रह्मके विषयमें कुछ न कहो, इसको और इसकी उपासनाके फलको मैं जानता हूँ, इस मृत्यु नामसे प्रसिद्ध पुरुषकी मैं उपासना करता हूं, क्यों कि-जो इसको ऐसा जान कर उपासना करता है वह निःसन्देह इस लोकमें कर्मसे प्राप्त हुए पूर्ण आयुको भोगता है और कर्मफलसे नियत हुए समयसे पहले इसके पास मृत्यु नहीं आता है। शब्द-ब्रह्मोपासककी अपेक्षा इसमें इतनी विशेषता होती है, कि-मृत्यु आने से पहले इसको रोग आदिकी पीड़ा भी नहीं होती है १२

स होवाच गार्ग्यो य एवायमात्मनि पुरुष एत-मेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन् सम्वादिष्ठा आत्मन्वीति वा अहमेत-मुपास इति स य एतमेवमुपास्त आत्मन्वी ह भवत्यात्मन्विनी हास्य प्रजा भवति स ह तूष्णी-मास गार्ग्यः ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः, गार्ग्यः, उवाच, ह) वह गार्ग्य कहनेलगा (यः, अयम्) जो यह (आत्मनि) प्रजापति

में (एव) प्रसिद्ध (पुरुषः) पुरुष है (एतं, एव) इसको ही (अहम्) मैं (ब्रह्म,इति, उपासे) ब्रह्म है ऐसा मान कर उपासना करता हूं (सः, अजातशत्रुः, उवाच, ह) वह अजातशत्रु कहनेलगा (एतस्मिन्) इस विषयमें (मा, मा) मत मत (सम्वदिष्ठाः) सम्वाद करो (आत्मन्वी, इति, वै) स्वतन्त्र है ऐसे प्रसिद्ध (एतम्) इसको (अहम्) मैं (उपासे) उपासना करता हूं (यः) जो (एतम्) इसको (एवम्) इसप्रकार (उपास्ते) उपासना करता है (सः) वह (आत्मन्वी, ह) निश्चय स्वतन्त्र (भवति) होता है (अस्य) इसकी (प्रजा) सन्तान (आत्मन्विनी, ह) निश्चय स्वतन्त्र (भवति) होती है (सः, ह, गार्ग्यः) वह प्रसिद्ध गार्ग्य (तूष्णीम्, आस) चुप हो रहा ॥ १३ ॥

(भावार्थ)-राजाके इस उत्तरको सुनकर गार्ग्य फिर कहने लगा, कि-राजन्! यह जो प्रजापति (बुद्धि और हृदय) में एक प्रसिद्ध पुरुष है, इसको ही मैं ब्रह्म मान कर उपासना करता हूँ, उसका ही उपदेश देता हूं, तुम इसकी उपासना करो। राजाने कहा कि-नहीं नहीं, इस विषय आपके विषयमें कुछ न कहो, मैं इसको और इसकी उपासनाके फलको जानता हूँ तथा इसको आत्मा को वशमें रखनेवाला स्वतन्त्र मान कर इसकी उपासना करता हूँ, क्योंकि जो इसको ऐसा समझ कर इसकी उपासना करता है वह निःसन्देह स्वतन्त्र होता है और उसकी सन्तान भी स्वतन्त्र कहिये अपने आत्माको वशमें रखनेवाली होती है। इसप्रकार राजाने इन सबके विषयमें कहा कि मैं जानता हूं और गार्ग्यको इससे अधिक ब्रह्मज्ञान था नहीं, अतः और कुछ उत्तर न आसनेके कारण वह नीचेको मुख करके चुप होरहा १३

स होवाचाजातशत्रुरेतावन्नू ३ इत्येतावद्धीति नैतावता विदितं भवतीति स होवाच गार्ग्य उप त्वा यानीति ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः, अजातशत्रुः, उवाच, ह) वह अजातशत्रु कहनेलगा (एतावत्, नू ३) क्या इतना ही (इति) ऐसा कहने पर (एतावत्, हि इतना ही (इति) इसपर कहा (एतावता) इतनेसे (विदितं, न, भवति) जाना हुआ नहीं होता है (इति) इस पर (सः, गार्ग्यः) वह गार्ग्य (त्वा, उपयानि) तुम्हारी शरण लेता हूं (इति) ऐसा (उवाच,ह) कहता हुआ ॥१४॥

(भावार्थ)-उसको मौन हुआ देखकर राजा अजातशत्रुने कहा, कि—क्या तुमने इतने ही ब्रह्मको जाना है या इससे कुछ अधिक भी जानते हो ? गार्ग्यने उत्तर दिया. कि-मैं तो इतना ही जानता हूं, इससे अधिक नहीं जानता, इस पर अजातशत्रु कहनेलगा. कि-इतने से मुख्य ब्रह्मका ज्ञान नहीं होसकता, अभी तुम्हे कुछ और जानना शेष रहगया है, इस पर विना शरण लिये कोई गुरु ब्रह्मका उपदेश नहीं देता है, यह विचार कर गार्ग्यने कहा, कि—और अधिक जाननेके लिये मैं आप की शरण लेता हूँ ॥ १४ ॥

स होवाचाजातशत्रुः प्रतिलोमं चैतद्यद् ब्राह्मणः क्षत्रियमुपेयाद् ब्रह्म मे वक्ष्यतीति व्येव त्वा ज्ञपयिष्यामीति तं पाणावादायोत्तस्थौ तौ ह पुरुषँ सुप्तमाजग्मतुस्तमेतैर्नामभिरामंत्रयाञ्चक्रे बृहन्पाण्डरवासः सोम राजन्निति स नोत्तस्थौ तं पाणिनाऽऽपेषं बोधयाञ्चकार स होत्तस्थौ॥१५॥

अन्वय और पदार्थ-(सः, अजातशत्रुः, उवाच, ह) वह अजातशत्रु कहनेलगा (एतत्) यह (प्रतिलोमं, च) उलटा ही है (यत्) जो (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (मे, ब्रह्म वक्ष्यति) मुझे ब्रह्मका उपदेश देगा (इति) ऐसा विचार कर (क्षत्रियं, उपेयात्) क्षत्रियकी शरण लेय (त्वा, विज्ञपयिष्यामि, एव) तुझको ज्ञान करा ही दूँगा (इति) ऐसा कहकर (तं, पाणौ, आदाय) उसके हाथको पकड़ कर (उत्तस्थौ) उठ खड़ा हुआ (तौ) वे दोनो (सुप्तं, ह, पुरुषम्) सोये हुए पुरुषके समीप (आजग्मतुः) आये (तम्) उसको (एतैः,नामभिः) इन नामोंके द्वारा (आमन्त्रयाञ्चक्रे) पुकारता हुआ (बृहन्) हे महान् (पाण्डरवासः) हे श्वेत वस्त्रवाले (सोम) हे सोम (राजन्) हे राजन् (इति) ऐसा कहने पर (सः) वह (न) नहीं (उत्तस्थौ) उठा (तम्) उसको (पाणिना आपेषम्) हाथसे दबाकर (बोधयाञ्चकार) जगाता हुआ (सः, ह, उत्तस्थौ) वह निःसन्देह उठ बैठा ॥ १५ ॥

(भावार्थ)-यह सुनकर राजा अजातशत्रुने कहा, कि-यह तो उलटी बात है, कि-ब्राह्मण क्षत्रियकी शरण में जाकर कहे कि-आप मुझे ब्रह्मका उपदेश दीजिये, इसलिये हे गार्ग्य ! तुम आचार्यकोटिमें ही रहो, मैं तुम्हें जाननेयोग्य मुख्य ब्रह्मका ज्ञान अवश्य कराऊँगा, ऐसा कह कर अजातशत्रुने देखा कि—गार्ग्य कुछ लज्जितसा होता है, तब वह गार्ग्यको विश्वास दिलाने के लिये उसका हाथ अपने हाथमें पकड़ कर उठा और वे दोनोंजने राजमन्दिरके किसी बागमें सोयेहुए एक पुरुषके समीप आये और उसको इन नामोंसे पुकार कर जगाने लगे,कि-हे महान् ! हे श्वेत वस्त्रवाले ! हे सोम !

हे राजन्! इसप्रकार पुकारने पर भी वह सोया हुआ पुरुष नहीं उठा, तब उसको हाथसे हिलोड़कर जगाया तब तो वह उठबैठा। इसप्रकार महान् आदि प्राणरूप चन्द्रमाके नाम लेकर पुकारनेसे यह निश्चय कराया, कि- हे गार्ग्य! तेरे मानेहुए प्राण देवतासे भिन्न ही आत्मा इस शरीरमें कर्त्ता भोक्ता रूपसे रहता है, प्राण वह आत्मा नहीं है, यदि प्राण होता तो श्वास उच्छ्वासरूप व्यापारको करनेवाले प्राणको पुकारने पर वह सुनलेता और उठ बैठता। हिलोड़नेसे यह निश्चय कराया कि- यह संघात भोक्ता नहीं है, यदि होता तो छूते ही उठ बैठता, हिलोड़नेकी आवश्यकता नहीं थी ॥ १५ ॥

स होवाचाजातशत्रुर्यत्रैष एतत्सुप्तोऽभूद्य एष विज्ञानमयः पुरुषः क्वैष तदाऽभूत्कुत एतदागादिति तदु ह न मेने गार्ग्यः ॥ १६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः, अजातशत्रुः, उवाच, ह) वह अजातशत्रु कहनेलगा (यः, एषः) जो यह (विज्ञानमयः, पुरुषः) विज्ञानमय पुरुष (एषः) यह (यत्र) जिस समय (एतत्) इस शयनके लिये (सुप्तः, अभूत्) सोया हुआ था (तदा) उस समय (एषः) यह (क्व) कहाँ (अभूत्) था (कुतः) कहाँसे (एतत्) इस आगमनके लिये (आगात्) आया (इति) ऐसा पूछने पर (गार्ग्यः) गार्ग्य (तत्, उ) उसको (न, ह, मेने) नहीं जानता हुआ ॥ १६ ॥

(भावार्थ)-आत्माके स्वाभाविक स्वरूपका बोधकराने की इच्छासे राजा अजातशत्रुने कहा कि हे गार्ग्य! जो यह विज्ञानमय कहिये बुद्धिकी समान प्रतीत होनेवाला

पुरुष है, यह जिस समय हाथ दबाकर जगानेसे पहले बेखबर सो रहा था, उस समय यह कैसे स्वरूपमें था ? और कैसे स्वरूपसे प्रच्युत होकर यह हाथ दबाने पर आगया ? । ऐसा प्रश्न करने पर गार्ग्य इन दोनों अवस्थाओंके स्वरूपको समझा ही नहीं ॥ १६ ॥

स होवाचाजातशत्रुर्यत्रैष एतत्सुप्तोऽभूद्य एष विज्ञानमयः पुरुषस्तेषां प्राणानां विज्ञानेन विज्ञानमादाय य एषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिञ्छेते तानि यदा गृह्णात्यथ हैतत्पुरुषः स्वपिति नाम तद् गृहीत एव प्राणो भवति गृहीता वाग्गृहीतं चक्षुर्गृहीतं श्रोत्रं गृहीतं मनः ॥१७॥

अन्वय और पदार्थ-(सः, अजातशत्रुः, उवाच, ह) वह अजातशत्रु कहने लगा (यः, एषः) जो यह (विज्ञानमयः, पुरुषः) विज्ञानमय पुरुष है (एषः) यह (यत्र) जिस समय (एतत्) इस शयनके लिये (सुप्तः, अभूत्) सोया हुआ था (तत्) उस समय (एषां, प्राणानाम्) इन इन्द्रियोंके (विज्ञानम्) विज्ञानको (विज्ञानेन) चिदाभासके द्वारा (आदाय) लेकर (यः, एषः) जो यह (अन्तर्हृदये) हृदयके भीतर (आकाशः) आकाश है (तस्मिन्) उसमें (शेते) वर्त्तमान रहता है (यदा) जब (तानि) उनको (गृह्णाति) ग्रहण करता है (अथ) तब (पुरुषः) पुरुष (स्वपिति) सोता है (एतत्-नाम) इस नामवाला होता है (तत्) उस निद्राके समयमें (प्राणः) घ्राण (गृहीतः, एव) ग्रहण किया हुआ ही (वाक्) वाणी (गृहीता) ग्रहण की हुई (चक्षुः) चक्षु

(गृहीतम्) ग्रहण किया हुआ (श्रोत्रम्) कान (गृहीतम्) ग्रहण किया हुआ (मनः) मन (गृहीतम्) ग्रहण किया हुआ (भवति) होता है ॥ १७ ॥

(भावार्थ)-जाग्रत् आदिमें भी आत्माको कर्त्तापन वा भोक्तापन स्वाभाविक नहीं होता है, किन्तु वाणी आदि उपाधियोंके सम्बन्धका किया हुआ ही होता है, क्योंकि-हम देखते हैं, कि-जब सुषुप्तिमें इन उपाधियोंके साथ आत्माका संबंध नहीं होता है उस समय आत्मामें कर्त्तापन या भोक्तापन नहीं होता है। यही बात दिखाने के लिये राजा अजातशत्रुने कहा, कि-हे गार्ग्य! यह जो विज्ञानमय पुरुष है, यह जब इस नेत्रघर अवस्थामें सोता था, उस समय इन वाक् आदि इन्द्रियोंके विज्ञान कहिये अपने २ विषयको प्रकाशित करनेकी इनकी सामर्थ्यको चिदाभासके द्वारा ग्रहण करके हृदयके भीतर हृदयस्थ बुद्धिमें जो वेदांतप्रसिद्ध विद्वानोंका अनुभवसिद्ध आकाश (परमात्मा) जीवका स्वाभाविक स्वरूपभूत है उस परमात्मामें-उस असंसारी स्वभावमें उपाधिके कियेहुए अपने विशेष स्वभावको त्यागकर वर्त्तमान रहता है। दूसरी श्रुति भी यही कहती है "सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति" जिस समय यह वाक् आदि इन्द्रियोंको ग्रहण करलेता है, उस उससमय इस पुरुषका 'स्वपिति' (स्वमेवात्मानमपीत्य पिगच्छतीति व्युत्पत्तेः "स्वमपीतो भवति तस्मादेनꣳस्वपितीत्याचक्षते" इति श्रुत्यन्तरे) अर्थात् अपने स्वरूपको पाता है-सोता है, ऐसा नाम होता है, उस निद्रा की दशामें घ्राण, चक्षु, कर्ण, और मन पकड़ेहुए होजाते हैं और इन वाणी आदिके लीनवत्

होजाने पर क्रिया, कारक और फलका अभाव होजाता है, इसकारण आत्मा अपने रूपमें ही स्थित होता है १७

स्वप्नमें वाणी आदिका सम्बन्ध न होने पर भी कर्त्तापन आदि संसार देखनेमें आता है फिर तुम कैसे कहते हो कि उस समय कर्त्ता भोक्तापन नहीं होता ? इस शङ्का पर कहते हैं,कि स्वप्नमें भी जाग्रत्‌की वासना बनी रहती है, इसलिये और उनका कल्पना किया हुआ स्वप्नप्रपञ्च मिथ्या होता है, इसकारण हमारे कथनमें कुछ बाधा नहीं आती है, किन्तु आत्मा स्वतः शुद्धस्वभाव ही होता है, इस ही भावको श्रुति कहती है-

स यत्रैतत्स्वप्न्यया चरति ते हास्य लोकास्त-दुतेव महाराजो भवत्युतेव महाब्राह्मण उतेवो-च्चावचं निगच्छति स यथा महाराजो जानप-दान् गृहीत्वा स्वे जनपदे यथाकामं परिवर्त्तेत-वमेवैष एतत्प्राणान् गृहीत्वा स्वे शरीरे यथा-कामं परिवर्त्तते ॥ १८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (यत्र) जिस समय (एतत् जाग्रत्‌की समान (स्वप्न्यया) स्वप्नकी वृत्तिसे (चरति) वर्त्तमान होता है [तदा] उस समय (अस्य) इसके (ह) प्रसिद्ध (ते) वे (लोकाः) कर्मफल हैं (तत् उत) उस स्वप्नकालमें भी (महाराजः, इव) महाराज की समान (भवति) होता है (महा ब्राह्मणः, इव उत) महाब्राह्मणकी समान भी (उच्चावचं, इव, उत) उच्च नीचकी समान भी (निगच्छति) प्रतीत होता है (यथा) जैसे (सः) वह (महाराजः) महाराज (जानपदान्) सेवकोंको (गृहीत्वा) लेकर (स्वे, जनपदे) अपने देशमें

(यथाकामम्) इच्छानुसार (परिवर्त्तेत) चारों ओर विचरता है (एवमेव) ऐसे ही (एषः) यह (प्राणान्) इन्द्रियोंको (एतत्, गृहीत्वा) यह ग्रहण करके (स्वे, शरीरे) अपने शरीरमें (यथाकामम्) इच्छानुसार (परिवर्त्तते) विचरता है ॥ १८ ॥

(भावार्थ)-यह आत्मा जब स्वप्नवृत्तिसे स्थित होता है तब इसके ये प्रसिद्ध कर्मफल हैं-उस समय महाराजासा होजाता है, महाब्राह्मणसा भी होजाता है, देवता आदि उत्तमसा भी होजाता है और पशु पक्षी जैसा नीच प्रतीत होने लगता है, जैसे महाराज सेवकोंको लेकर अपने देशमें इच्छानुसार सर्वत्र विचरता है, ऐसे ही यह विज्ञानमय आत्मा इन्द्रियोंको जागरित स्थानोंमेंसे लेकर अपने शरीरमें ही इच्छानुसार सब ओर विचरता है, बाहर नहीं जाता है ॥ १८ ॥

स्वप्नमें आत्मा इच्छानुसार विचरनेकी इच्छा करता है इसलिये आत्माका द्रष्टा दृश्य और काम आदिका संबंध स्वाभाविक होगा, इस प्रकार की शङ्का का निवारण करती हुई श्रुति कहती है, कि-

अथ यदा सुषुप्तो भवति यदा न कस्यचन वेद हिता नाम नाड्यो द्वासप्ततिः सहस्राणि हृदयात्पुरीततमभिप्रतिष्ठन्ते ताभिः प्रत्यवसृप्य पुरीतति शेते स यथा कुमारो वा महाराजो वा महाब्राह्मणो वाऽतिघ्नीमानन्दस्य गत्वा शयीतैवमेवैष एतच्छेते ॥ १९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अनन्तर (यदा) जब (सुषुप्तः)

सुषुप्तिको पाया हुआ (भवति) होता है (यदा) जब (कस्यचन) किसी विषयको (न) नहीं (वेद) जानता है (द्वासप्ततिः, सहस्राणि) बहत्तर सहस्र (हिता, नाम) हित नामवाली (नाड्यः) नाड़ियें (हृदयात्) हृदयसे (पुरीततं, अभिप्रतिष्ठन्ते) सब शरीर की ओर को फैली हुई हैं (ताभिः) उनके द्वारा (प्रत्यवसृप्य) पीछेको खेंचकर (पुरीतति) शरीरमें (शेते) स्थित होता है (सः) वह (यथा) जैसे (कुमारः) अत्यन्त बालक (वा) या (महाराजः) महाराज (वा) या (महाब्राह्मणः) महाब्राह्मण (आनन्दस्य) सुखकी (अतिघ्नीम्) दुःखका अत्यन्त नाश करनेवाली दशाको (गत्वा) प्राप्त होकर (शयीत) स्थित होय (एवमेव) इसप्रकार ही (एषः) यह (एतत्) शयनपूर्वक (शेते) सुषुप्तिमें स्थित होता है ॥ १६ ॥

(भावार्थ)-स्वप्नको त्यागकर उसके अनन्तर जब यह विज्ञानमय पुरुष सुषुप्तिको प्राप्त होता है, उस समय जलकी समान दूसरेके संबन्धरूप मलिनताको त्याग कर अपने निर्मलरूप में रहता है, उस समय यह जाग्रत् अवस्थाके या स्वप्नावस्थाके शब्द स्पर्श आदि किसी विषयका अनुभव नहीं करता है, मनुष्यके पुरीतत् कहिये स्थूल शरीरमें बहत्तर हजार नाड़ियें हैं जो शरीरकी हितकारिणी होनेके कारण हिता नामसे पुकारी जाती हैं, ये पेट और छातीके मध्यमेंके कमलसमान आकारवाले मांसपिण्डरूप हृदयसे निकलकर पुरीतत् नामक स्थूल शरीरमें सर्वत्र फैलतीहुई बहिर्मुख होती हैं, सुषुप्तिकालमें विज्ञानमय पुरुष (आत्मा) इन नाड़ियोंके द्वारा जाग्रतको विषय करनेवाली जो बुद्धि उस

को खेंचकर पुरीतत् नामक हृदयवेष्टनमें शयन करता है अर्थात् उस समय इसकी बुद्धिवृत्ति बाहरी विषयोंको छोड़कर संकुचित दशामें स्थित होजाती है, इसप्रकार उपाधिके संकुचित होनेसे उपहित आत्माका भी उधर का संबन्ध छूटजाता है, उस समय यह सकल सांसारिक दुःखसे विलग होजाता है, जिसप्रकार अत्यन्त बालक या जिसके सेना आदि परम वशमें है ऐसा राजा अथवा अतिपरिपक्व विद्यावाला और विनययुक्त महाब्राह्मण दुःखका अत्यन्त हनन करनेवाली सुखकी अवस्थाको पाकर स्थित होता है, ऐसे ही सकल सांसारिक धर्मोंसे छूटकर शयन करता है, तात्पर्य यह है, कि-आत्मपुरुष सुषुप्तिकालमें बालककी, राजाकी या विद्वान् ब्राह्मणकी समान दुःखके संबन्धसे शून्य आनंदमय अवस्थाको पाकर अपने आश्रयभूत परमात्मामें ही शयन करता है, सुषुप्तिका सुख बालक आदिके सुखकी समान स्वाभाविक होता है ॥ १६ ॥

"उस समय यह कहाँ था ?" इस प्रश्नका उत्तर कह दिया और इस प्रश्नके निर्णयसे जीवकी स्वभावसे शुद्धता और असंसारीपना सिद्ध होगया, अब "यह कहाँसे आया?" इस प्रश्न का उत्तर देती हुई श्रुति कहती है, कि-

स यथोर्णनाभिस्तन्तुनोच्चरेद्यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्त्येवमेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति तस्योपनिषत सत्यस्य सत्यमिति प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम् ॥ २० ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (यथा) जैसे (ऊर्ण-

नाभिः) मकड़ी (तन्तुना) तन्तुके द्वारा (उच्चरेत्) ऊपरको जाती है (यथा) जैसे (अग्नेः) अग्निसे (क्षुद्राः) छोटे छोटे (विस्फुलिंगाः) पतङ्गे (व्युच्चरन्ति) विविध रीतिसे उड़ते हैं (एवमेव) ऐसे ही (अस्मात्) इस (आत्मनः) आत्मासे (सर्वे) सब (प्राणाः) इन्द्रियें (सर्वे) सब (लोकाः) लोक (सर्वे, देवाः) सब देवता (सर्वाणि, भूतानि) सकल प्राणी (व्युच्चरन्ति) उत्पन्न होते हैं (तस्य) उसका (सत्यस्य) सत्य का (सत्यम्) सत्य (उपनिषद्) उपनिषद् है (प्राणाः, वै) इन्द्रियें ही (सत्यम्) सत्य हैं (तेषाम्) उनका (एषः) यह आत्मा (सत्यम्) सत्य है ॥ २० ॥

(भावार्थ)-यह दृष्टान्त है, कि-जैसे मकड़ी और किसी वस्तुकी सहायताके विना ही तन्तुको रच कर उसको अपनेसे अलग न करती हुई बाहर फैलाती है और उसके द्वारा ऊपरको जाती है तथा जैसे एकरूप वाले एक अग्निसे छोटी २ चिनगारियें निकल कर चारों ओरको उड़ती हैं ऐसे ही असहाय और अविकारी इस आत्मासे वाक् आदि सब इन्द्रियें भू आदि सब लोक वा सुख दुःख आदि सकल कर्मफल, इन्द्रिय और लोकों के अधिष्ठाता अग्नि आदि सब देवता तथा ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त सकल प्राणी उत्पन्न होते हैं अर्थात् पानीके बबूलोंकी समान परमात्मामेंसे आते हैं और उसमें ही समाजाते हैं, उस आत्माका सत्य का सत्य यह उपनिषत् (उप समीपं नि निमरां सादयति गमयति विज्ञानात्मानमिति उपनिषत्) कहिये आत्माके समीप अच्छे प्रकारसे लेजानेवाला नाम है. तात्पर्य यह है कि-उस परमात्माका उपनिषत् (वाचक नाम) सत्यका सत्य है।

इन्द्रियेंही सत्य हैं उनमें यह आत्मा अबाध्य तत्त्व कहिये अटल रूप रह कर उनमें सत्यताका सम्पादक है ॥ २ ॥

द्वितीयाध्यायस्य प्रथमं ब्राह्मणं समाप्तम् ।

'इन्द्रियें ही सत्य हैं और उनमें यह आत्मा अबाध्यतत्त्व है' ऐसा जो कहा, इस अर्थको विशेष स्पष्ट करनेके लिये दूसरे और तीसरे ब्राह्मणका आरम्भ है, तिसमें 'इन्द्रियें ही सत्य हैं' इसकी व्याख्याके लिये शिशुब्राह्मणका आरम्भ होता है-

यो ह वै शिशुँ साधानँ सप्रत्याधानँ सस्थूणँ सदामं वेद सप्त ह द्विषतो भ्रातृव्यानवरुणद्धि । अयं वाव शिशुर्योऽयं मध्यमः प्राणस्तस्येदमेवाऽऽधानमिदं प्रत्याधानं प्राणः स्थूणान्नं दाम ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः, ह) जो प्रसिद्ध (साधानम्) अधिष्ठान सहित (सप्रत्याधानम्) प्रत्येकके अधिष्ठान सहित (सस्थूणम्) खूँटेसहित (सदामम्) डोरीसहित (शिशुम्, वै) बछड़ेको ही (वेद) उपासना करता है (सप्त, ह) प्रसिद्ध सात (द्विषतः) द्वेष करनेवाले (भ्रातृव्यान्) शत्रुओंको (अवरुणद्धि) रोकता है (अयं, वाव) यह ही (शिशुः) बछड़ा है (यः) जो (अयम्) यह (मध्यमः) मध्यमें रहनेवाला (प्राणः) प्राण है (तस्य) उसका (इदं, एव) यह शरीर ही (आधानम्) अधिष्ठान है (इदम्) यह मस्तक आदि (प्रत्याधानम्) प्रत्येकका अधिष्ठान है (प्राणः) बल (स्थूणा) खूँटा है (अन्नम्) अन्न (दाम) डोरी है ॥१॥

(भावार्थ)-जो अधिष्ठान (अधिकरण) प्रत्यधिष्ठान (प्रत्यधिकरण), खूँटा और रज्जु इन सबके सहित इस शरीरके भीतर रहनेवाले बछड़ेको जानकर उसकी उपासना करता है, वही दो नेत्र दो नासिकाके छिद्र, दो कानके छिद्र और एक मुखका छिद्र इनमें रहनेवाली प्रसिद्ध सात इन्द्रियें रूप, विषयासक्त होने के कारण द्वेष करनेवाले शत्रुओंको दबालेता है अर्थात् जितेन्द्रिय होता है। जो यह शरीरके मध्यमें रहनेवाला प्राण कहिये लिङ्गशरीरात्मा है यही अन्य इन्द्रियोंकी समान विषयोंमें आसक्त न होनेसे शिशु कहिये बछड़ा रूप है। उस शिशुरूप प्राण (करण) का यह (कार्य-रूप) शरीर ही आधान-अधिष्ठान-अधिकरण है। यह मस्तक श्रोत्र आदि प्रत्याधान प्रत्यधिकरण-प्रत्येक इन्द्रिय का अधिष्ठान है। जो शरीरको ठहराये हुए है ऐसा श्वास निःश्वास कर्मवाला शरीरमेंका प्राणवायु है, जिस का दूसरा नाम बल है जो कि-अन्न पान आदिसे उत्पन्न हुई एक शक्ति है वह ही खूँटा है, क्योंकि- बलके सहारेसे ही प्राण इस शरीरमें ठहर रहा है और भक्षण किया हुआ अन्न ही उस खूँटेमें बाँधनेकी डोरी है ॥ १ ॥

अब नेत्रमें स्थित जो प्राण तिसमें उपस्थान करके रहनेवालेदेवता और उसकी उपासनाका फल कहते हैं-

तमेताः सप्ताक्षितय उपतिष्ठन्ते तद्या इमा अक्षन्लोहिन्यो राजयस्ताभिरेनꣳ रुद्रोऽन्वायत्तोऽथ या अक्षन्नापस्ताभिः पर्जन्यो या कनीनका तयाऽऽदित्यो यत्कृष्णं तेनाग्निर्यच्छुक्लं तेनेन्द्रो-

अधरयैनं वर्त्तन्या पृथिव्यन्वायत्ता द्यौरुत्तरया नास्यान्नं क्षीयते य एवं वेद ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तम्) उसके प्रति (इमाः, सप्त) ये सात (अक्षितयः) देवता (उपतिष्ठन्ते) उपस्थिति करते हैं (तत्) तहाँ (अक्षन्) आँखमें (याः) जो (इमाः) ये (लोहिन्यः) लाल (राजयः) रेखा हैं (ताभिः) उनके द्वारा (एनम्) इसके प्रति (रुद्रः) रुद्र (अन्वायत्तः) अनुगत है (अथ) और (अक्षन्) आँखमें (याः) जो (आपः) जल हैं (ताभिः) उनसे (पर्जन्यः) पर्जन्य देवता (या) जो (कनीनका) देखने की शक्ति है (तया) उसके द्वारा (आदित्यः) आदित्य (यत्) जो (कृष्णम्) काला भाग है (तेन) उसके द्वारा (अग्निः) अग्नि (यत्, शुक्लम्) जो श्वेत भाग है (तेन, इन्द्रः) उसके द्वारा इन्द्र (अधरया, वर्त्तन्या) नीचेके पलकसे (एनम्) इसके प्रति (पृथिवी, अन्वायत्ता) पृथिवी अनुगत है (उत्तरया) ऊपरके पलकसे (द्यौः) स्वर्ग (यः, एवं, वेद) जो ऐसा जानता है (अस्य) इसका (अन्नम्) अन्न (न) नहीं (क्षीयते) क्षीण होता है ॥ २ ॥

(भावार्थ)-नेत्रमें रहनेवाला जो प्राण है उसमें सात देवता उपस्थित रहते हैं । आँखके भीतर स्पष्ट दीखनेवाली जो लाल २ रेखायें हैं इनके द्वारा रुद्र मुख्य प्राण का अनुगामी रहता है, आँखमें धुआँ आदि लगने से जो जल भर आता है उससे पर्जन्य देवता अनुगामी रहता है, आँखमें जो कनीनका नामकी देखनेवाली शक्ति है उसके द्वारा आदित्य देवता उपस्थित रहता है, आँख

में जो काला भाग चमकता है इसके द्वारा अग्नि प्राण का अनुयायी रहता है, इस आँखमें जो ऊपर आकाश है उससे इन्द्र उपस्थित रहता है, नीचे जो पलकें हैं, इनसे पृथिवी उपस्थित रहती है और ऊपरकी आँखमें जो पलक हैं उनसे स्वर्ग अनुयायी रहता है। जो मनुष्य अन्नरूप इन सात देवताओंको जानकर इनकी उपासना करता है उसके अन्नका कभी नाश नहीं होता है॥२॥

तदेष श्लोको भवति। अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम्। तस्याऽऽसत ऋषयः सप्त तीरे वागष्टमी ब्रह्मणा संविदानेति। अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्न इतीदं तच्छिर एष ह्यर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपमिति प्राणा वै यशो विश्वरूपं प्राणानेतदाह तस्यासत ऋषयः सप्त तीर इति प्राणा वा ऋषयः प्राणानेतदाह वागष्टमी ब्रह्मणा संविदानेति वाग्घ्यष्टमी ब्रह्मणा संवित्ते॥३॥

मन्त्र और ब्राह्मण-(तत्) उसमें (एषः) यह (श्लोकः) मंत्र (भवति) है (अर्वाग्बिलः) नीचे छिद्रवाला (ऊर्ध्वबुध्नः) ऊपर गोल (चमसः) चमस है (तस्मिन्) उसमें (विश्वरूपम्) अनेकों प्रकारका (यशः) यश (निहितम्) स्थित है (तस्य) उसके (तीरे) तट पर (सप्त, ऋषयः) सात ऋषि (आसते) रहते हैं (ब्रह्मणा, संविदाना) वेदके वाक्योंका उच्चारण करती हुई (वाक्) वाणी (अष्टमी) आठवीं है (इति) इसप्रकार (अर्वाग्बिलः, ऊर्ध्वबुध्नः, चमसः, इति) नीचेको छेद और

कहा सो श्रोत्र आदि इन्द्रियें तथा उसमें फैलाहुआ प्राणु ही चमसमेंके सोमलताके रसकी समान है। यह जो कहा कि-उसके तट पर सात ऋषि रहते हैं सो श्रोत्र आदि इंद्रियें ही सात ऋषिरूप हैं, यह मंत्र इंद्रियोंको ही कहता है। यह जो कहा, कि-वेदका उच्चारण करनेवाली वाणी आठवीं है सो भक्षण करनेवाली रसनासे भिन्न वाणी है, क्योंकि-वाणी ही वैदिक शब्दोंका उच्चारण करती है ॥ ३ ॥

इमावेव गोतमभरद्वाजावयमेव गोतमोऽयं भरद्वाज इमावेव विश्वामित्रजमदग्नी अयमेव विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरिमावेव वशिष्ठकश्यपावयमेव वशिष्ठोऽयं कश्यपो वागेवात्रिर्वाचा ह्यन्नमद्यतेऽत्तिर्ह वै नामैतद्यदत्रिरिति सर्वस्यात्ता भवति सर्वमस्यान्नं भवति य एवं वेद ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(इमौ, एव) ये ही (गोतमभरद्वाजौ) गोतम और भरद्वाज हैं (अयं, एव) यह ही (गोतमः) गोतम है (अयम्) यह (भरद्वाजः) भरद्वाज है (इमौ, एव) ये ही (विश्वामित्रजमदग्नी) विश्वामित्र और जमदग्नि हैं (अयं, एव) यह ही (विश्वामित्रः) विश्वामित्र है (अयम्) यह (जमदग्निः) जमदग्नि है (इमौ, एव) ये ही (वशिष्ठकश्यपौ) वशिष्ठ और कश्यप हैं (अयमेव) यही (वशिष्ठः) वशिष्ठ है (अयम्) यह (कश्यपः) कश्यप है (वाक्, एव) वाणी ही (अत्रिः) अत्रि है (हि) क्योंकि (वाचा) वाणीसे (अन्नम्) अन्न (अद्यते) खायाजाता है (अत्रिः, एतत्, ह, वै, नाम) अत्रि यह ही प्रसिद्ध नाम

है (यत्, अत्रिः, इति) जो अत्रि ऐसा [व्यपदिश्यते] कहाजाता है (यः, एवं, वेद) जो ऐसा जानता है (सर्वस्य, अत्ता, भवति) सबका भोक्ता होता है (सर्वम्) सब (अस्य) इसका (अन्नम्) अन्न (भवति) होता है ॥ ४ ॥

(भावार्थ)—ये प्रसिद्ध दोनों कान ही गोतम और भरद्वाज हैं, यही दाहिना कान गोतम है और बायाँ कान भरद्वाज है । ये दोनों आंखें ही विश्वामित्र तथा जमदग्नि हैं, यह दाहिनी आंख ही विश्वामित्र है और बाईं आँख जमदग्नि है । ये दानों नासापुट ही वशिष्ठ तथा कश्यप हैं, यह नासिकाका दाहिना छिद्र ही वशिष्ठ है तथा बायाँ छिद्र कश्यप है । रसके प्रकट होनेका हेतु जो चर्वण क्रिया उसको करनेवाली वाक् ही अत्रि है क्योंकि उस वाक्से ही अन्नका भक्षण करता है । भक्षण करनेवाली वाणीका अत्ति (भक्षण करती है) यह नाम है, अत्ति ही परोक्षसे अत्रि कहलाता है (परोक्ष-प्रिया इव हि देवाः इति श्रुतेः) जो ऐसे प्राणके स्वभाव को जानता है वह मुख्य प्राण होकर अधिष्ठानमें और प्रत्येकके अधिष्ठानमें रहनेवाले सब भोग्यसमूहका भोक्ता होता है और वह सब इसका अन्न होता है॥४॥

इति द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयं ब्राह्मणं समाप्तम् ।

ये प्राण किसप्रकार सत्य हैं ? और आत्मा जो इन का भी सत्य है सो किसप्रकार है ? इस जिज्ञासाको दूर करनेके लिये मूर्त्तामूर्त्त ब्राह्मणका प्रारम्भ होता है

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तञ्चैवामूर्त्तञ्च मर्त्यञ्चामृतञ्च स्थितञ्च यच्च सच्च त्यच्च ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ब्रह्मणः) ब्रह्मके (द्वे, वाव) दो ही (रूपे) रूप हैं (मूर्त्तं. च,अमूर्त्तं,च, एव) मूर्त्त और अमूर्त्त भी (मर्त्यं, च,अमृतं, च) मरणधर्मवाला और मरणधर्म रहित (स्थितं, च, यत्, च) परिच्छिन्न और व्यापक भी (सत, च, त्यं, च) सत् और त्य भी है ॥१॥

(भावार्थ)-जिस ब्रह्मको नेति नेति कहकर निषेध के द्वारा निरूपण करना चाहा है उस ब्रह्मके मायामय दो रूप हैं, जिन रूपोंसे अरूप ब्रह्मका निरूपण किया जाता है, वे दोनों रूप मूर्त्त और अमूर्त्त हैं। मूर्त्त शब्दका अर्थ है सावयव और अमूर्त्त शब्दका अर्थ है निरवयव। इनमें मूर्त्त रूप मर्त्य कहिये थोड़े समय रहनेवाला है और अमूर्त्त रूप अमृत अर्थात् चिरकाल तक रहनेवाला है। मूर्त्त रूपको स्थित अर्थात् परिच्छिन्न और सत् कहिये उद्भूत रूपवाला कहते हैं और अमूर्त्त रूपको यत् कहिये व्यापक एवं त्यत् कहिये सर्वदा परोक्ष कहने योग्य अनुद्भूत रूपवाला कहते हैं ॥ १ ॥

ये मूर्त्त अमूर्त्त कौन हैं और किसका कौन विशेषण है यह भेद प्रतीत नहीं होता, अतः श्रुति कहती है-

तदेतन्मूर्त्तं यदन्यद्वायोश्चान्तरिक्षाच्चैतन्मर्त्य मेतत्स्थितमेतत्सत्तस्यैतस्य मूर्त्तस्यैतस्य मर्त्यस्यै- तस्य स्थितस्यैतस्य सत एष रसो य एष तपति सतो ह्येष रसः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (वायोः) वायुसे (च) और (अन्तरिक्षात्, च) अन्तरिक्षसे भी (अन्यत्) भिन्न है (तत्) सो (एतत्) यह (मूर्त्तम्) मूर्त्त है (एतत्) यह (मर्त्यम्) मरणधर्म वाला है (एतत्,

स्थितम्) यह परिच्छिन्न है (एतत्, सत्) यह प्रत्यक्ष है (तस्य) तिस (एतस्य) इस (मूर्त्तस्य) मूर्त्तका (एतस्य, मर्त्यस्य) इस मर्त्यका (एतस्य, स्थितस्य) इस परिच्छिन्नका (एतस्य, सतः) इस सत्का (एषः, रसः) यह सार है (यः) जो (एषः) यह (तपति) तपता है (हि) क्योंकि (एषः) यह (सतः) सत्का (रसः) सार है ॥ २ ॥

(भावार्थ)—वायु तथा आकाशसे भिन्न जो पृथिवी आदि तीन भूत हैं ये मूर्त्त कहिये मूर्छित अर्थात् एक दूसरेमें प्रवेश पाये हुए अवयवोंवाले और घन हैं, इस लिये ही ये तीनों भूत मरणधर्मी हैं,इसलिये परिच्छिन्न हैं और इसकारणसे ही ये सत् कहिये उक्त लक्षणवाले वा प्रत्यक्ष हैं। इसप्रकार ये तोन मत मूर्त्त आदि चार विशेषणोंवाला ब्रह्मका मूर्त्त रूप है। इस मूर्त्तका, इस मर्त्यका, इस परिच्छिन्नका और इस सत्का (पृथिवी आदि तीन भूतोंका) यह सूर्यमण्डल सार है,जो कि-यह सूर्यमण्डल तपता है। क्योंकि-इन तीनों भूतोंमें इस मण्डलकी प्रधानता है, इसलिये यह सूर्यमण्डल सत् कहिये पृथिवी आदि तीनों भूतोंका सार है। यह आधिदैविक कार्यरूप ब्रह्मका रूप है ॥ २ ॥

अथामूर्त्तं वायुश्चान्तरिक्षं चैतदमृतमेतद्यदेतत्त्यं तस्यैतस्यामूर्त्तस्यैतस्यामृतस्यैतस्य यत एतस्य त्यस्यैष रसो य एष एतस्मिन् मण्डले पुरुषस्तस्य ह्येष रस इत्याधिदैवतम् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (वायुः) वायु (च) और (अन्तरिक्षं, च) अन्तरिक्ष भी (अमूर्त्तम्) अमू-

स्वरूप है (एतत्, अमृतम्) यह अविनाशी है (एतत्, यत्) यह अपरिच्छिन्न है (एतत्, त्यम्) यह परोक्षरूप से कहनेयोग्य है (तस्य) तिस (एतस्य, अमूर्त्तस्य) इस अमूर्त्तका (एतस्य, अमृतस्य) इस अविनाशी का (एतस्य, यतः) इस अपरिच्छिन्नका (एतस्य, त्यस्य) इस परोक्ष कहनेयोग्यका (एषः, रसः) यह सार है (यः, एषः) जो यह (एतस्मिन्, मण्डले) इस मण्डलमें (पुरुषः) पुरुष है (हि) क्योंकि (एषः) यह (त्यस्य) सदा परोक्ष कथन करनेयोग्यका (रसः) सार है (इति) इसप्रकार (अधिदैवतम्) अधिदैवत है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)—वायु और आकाश पृथिवी आदिकी अपेक्षा ब्रह्मका अमूर्त्त कहिये घनसे विपरीत रूप है, इसलिये यह पृथिवी आदिकी अपेक्षा अविनाशी है, इस कारण ही यह आपेक्षिक अपरिच्छिन्न है, और इसलिये ही यह सर्वदा परोक्ष कथन करनेयोग्य है,यह इस अमूर्त्त का, इस अविनाशीका, इस अपरिच्छिन्नका और इस सर्वदा परोक्ष कथन करनेयोग्यका सार है, जो कि-यह सूर्यमण्डलमें हिरण्यगर्भ पुरुष है । क्योंकि-वायु तथा आकाशसे यह पुरुष श्रेष्ठ है इसलिये यह पुरुष सदा परोक्ष कथन करने योग्य वायु और आकाशका सार है यह आधिदैविक करणरूप ब्रह्मका रूप है । इसप्रकार अधिदैवतकी व्याख्या है ॥ ३ ॥

अथाध्यात्ममिदमेव मूर्त्तं यदन्यत्प्राणाच्च यश्चा-
यमन्तरात्मन्नाकाश एतन्मर्त्यमेतत्स्थितमेतत्स-
त्तस्यैतस्त मूर्त्तस्यैतस्य मर्त्यस्यैतस्य स्थितस्यैतस्य
सत एष रसो यच्चक्षुः सतो ह्येष रसः ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अब (अध्यात्मम्) अध्यात्म कहाजाता है (प्राणात्) प्राणसे (च) और (यः) जो (अयम्) यह (अन्तरात्मन्) शरीरके भीतर (आकाशः) आकाश है [तस्मात्] तिससे (यत्, अन्यत्) जो भिन्न है (इदं, एव) यह ही (मूर्त्तम्) मूर्त्त है (एतत्,मर्त्यम्) यह मर्त्य है (एतत्, स्थितम्) यह परिच्छिन्न है (एतत्, सत्) यह प्रत्यक्ष है (तस्य) तिस (एतस्य, मूर्त्तस्य) इस मूर्त्तका (एतस्य, मर्त्यस्य) इस मर्त्यका (एतस्य, स्थितस्य) इस परिच्छिन्नका (एतस्य, सतः) इस प्रत्यक्ष का (एषः, रसः) यह सार है (यत् ,चक्षुः) जो चक्षु है। (हि) क्योंकि (एषः) यह (सतः) सत्का (रसः) सार है

(भावार्थ)-अब अध्यात्म--विभाग कहते हैं, कि-प्राणसे और जो इस शरीरके भीतर आकाश है, उससे भिन्न जो शरीरके आरम्भक पृथिवी आदि तीन भूत हैं ये ही मूर्त्त हैं, ये मर्त्य हैं,परिच्छिन्न हैं और ये सत् हैं, ये परिच्छिन्नका और इस ऐसे इस मूर्त्तका, इस मर्त्य का इस सत्का यह सार है, कि-जो चक्षु है । क्योंकि-शरीरके आरम्भक तीन भूतोंके कार्योंमें नेत्र श्रेष्ठ है,इस लिये शरीरके आरम्भक तीन भूतोंका यह नेत्र सार है॥

इसप्रकार अध्यात्मकार्यरूप ब्रह्मके रूपका निरूपण करके अब करणरूप ब्रह्मका निरूपण करते हैं-

अथामूर्त्तं प्राणश्च यश्चायमन्तरात्मन्नाकाश एतदमृतमेतद्यदेतत्त्यं तस्यैतस्यामूर्त्तस्यैतस्यामृतस्यैतस्य यत एतस्य त्यस्यैष रसो योऽयं दक्षिणेऽक्षन् पुरुषस्त्यस्य ह्येष रसः ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अब (प्राणः) प्राण (च)

और (यः अयम्) जो यह (अन्तरात्मन्) शरीरके भीतर (आकाशः) आकाश है (अमूर्त्तम्) अमूर्त्त है (एतत्, अमृतम्) यह अविनाशी है (एतत्, यत्) यह अपरिच्छिन्न है (एतत्, त्यम्) यह परोक्षरूपसे कहनेयोग्य है (तस्य) तिस (एतस्य, अमूर्त्तस्य) इस अमूर्त्तका (एतस्य, अमृतस्य) इस अविनाशीका (एतस्य, यतः) इस अपरिच्छिन्नका (एतस्य, त्यस्य) इस परोक्षरूपसे कहनेयोग्यका (एषः, रसः) यह सार है (यः, असौ) जो यह (दक्षिणे, अक्षन्) दक्षिण नेत्रमें (पुरुषः) पुरुष है (हि) क्योंकि (एषः) यह (त्यस्य) प्राण और अन्तराकाशका (रसः) सार है ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-अब प्राण तथा इस शरीरके भीतरका जो आकाश है वह अमूर्त्त है, आपेक्षिक अविनाशी है, आपेक्षिक अपरिच्छिन्न है और परोक्षरूपसे कहनेयोग्य है, ऐसे इस अमूर्त्त अविनाशी, अपरिच्छिन्न और परोक्षरूपसे कहनेयोग्यका यह सार है, जो कि-यह दाहिने नेत्रमें लिङ्गशरीररूप पुरुष है । क्योंकि-प्राण और शरीरके भीतरके आकाशसे लिङ्गशरीर श्रेष्ठ है, इसलिये प्राण और शरीरके भीतरके आकाशका यह पुरुष सार है ॥

अब इस करणरूपके वासनामय रूपको कहते हैं-

तस्य हैतस्य पुरुषस्य रूपं यथा माहारजनं वासो यथा पाण्ड्वाविकं यथेन्द्रगोपो यथाऽग्न्यर्चिर्यथा पुण्डरीकं यथा सकृद् विद्युत्तꣳसकृद् विद्युत्तेव ह वा अस्य श्रीर्भवति य एवं वेदाथात आदेशो नेति नेति नह्येतस्मादिति नेत्यन्य-

त्परमस्त्यथ नामधेयꣳसत्यस्य सत्यमिति प्राणा वै सत्यं तेषामेव सत्यम् ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्य, ह) तिस प्रसिद्ध (एतस्य, पुरुषस्य) इस पुरुषका (रूपम्) रूप है (यथा) जैसे (माहारजनम् वासः) हलदीसे रंगा हुआ वस्त्र होता है (यथा, पाण्डु, आविकम्) जैसे कुछ श्वेत ऊनका वस्त्र होता है (यथा, इन्द्रगोपः) जैसे इन्द्रगोप कीड़ा होता है (यथा, अग्न्यर्चिः) जैसे अग्निकी लपट होती है (यथा, पुण्डरीकम्) जैसे कमल होता है (यथा,सकृत्, विद्युत्तम्) जैसे एकबार बिजलीका कौंदा होता है (यः, एवं, वेद) जो ऐसा चिन्तवन करता है (सकृत्,विद्युत्ता, इव) एक बिजलीके कौंदेकी समान (अस्य, ह, श्रीः, भवति, वै) इसकी विदित प्रसिद्धि होती ही है (अथ, अतः) और इससे ही (नेति, नेति, आदेशः) ऐसा नहीं है, ऐसा नहीं है कथन है (हि) क्योंकि (न, इति, न, इति, एतस्मात्) नेति नेति इससे (अन्यत्, परम्) और श्रेष्ठ [न] नहीं (अस्ति) है (अथ) इससे (सत्यस्य, सत्यम्) सत्यका सत्य है (इति) ऐसा (नामधेयम्) नाम है (प्राणः, वै) प्राण ही (सत्यम्) सत्य है (तेषाम्) उनमें (एषः) यह (सत्यम्) सत्य है

(भावार्थ)-इस आधिदैविक तथा प्रसिद्ध इस आध्यात्मिक लिङ्गपुरुष (लिङ्गशरीरमें मुख्य मन) का यह वासनामय रूप है कि-जैसे हलदीमें रँगे हुए वस्त्रका रूप होता है ऐसे ही मनका, स्त्री आदि विषयोंका संयोग होने पर इस रङ्गका आकार होजाता है। जैसे कुछ एक श्वेत ऊनका वस्त्र होता है तैसे ही इस ऊनका दूसरा वासनारूप उत्पन्न होता है। जैसे चौमासेमें उत्पन्न होने

वाला इन्द्रगोप नामका कीड़ा अत्यन्त ही लाल होता है तैसे ही इसका वासनारूप होता है। कभी किसी विशेष विषयके कारणसे और कभी किसी मनुष्यके मनके सत्त्वादि गुणोंके परिणामवश रङ्गकी न्यूनाधिकता होती है। जैसे अग्निकी लपट प्रकाशमयी होती है ऐसा भी कहीं किसीके मनकी वासनाका रूप होता है। जैसे कमल श्वेत होता है किसीके मनकी वासनाका ऐसा भी रूप होता है।जैसे एक वारका बिजलीका कौंदा चारों ओर को प्रकाश करदेता है ऐसा ही ज्ञानरूप प्रकाश की वृद्धिके अनुसार हिरण्यगर्भ आदिके मनकी वासना का रूप होता है। जो इसप्रकारके हिरण्यगर्भके मनकी वासनाके रूपका चिन्तवन करता है, उसकी एकवारके बिजलीके कौंदेकी समान प्रसिद्धि होती है।इसप्रकार स्थूल सूक्ष्म प्रपञ्चरूप सत्यके स्वरूपको कहनेके अनन्तर, जो सत्यका सत्य है वही शेष रहता है,इसकारण ब्रह्मका 'नेति नेति-ऐसा नहीं है ऐसा नहीं है' इसप्रकार कथन किया जाता है। क्योंकि-नेति नेति इससे श्रेष्ठ ब्रह्मका और कथन नहीं है, इसकारण यही सबका निषेध करनेवाला ब्रह्मका कथन है, इसप्रकार सत्यका सत्य ब्रह्म है, अत- एव सत्यका सत्य यह ब्रह्मका नाम उचित ही है। प्राण ही सत्य है और उसमें यह परमात्मा सत्य है ॥ ६ ॥

द्वितीयाध्यायस्य तृतीयं ब्राह्मणं समाप्तम्।

इसप्रकार व्याख्यान की हुई ब्रह्मविद्याका संन्यास एक अङ्ग है, ऐसे संन्यासके विधानके लिये मैत्रेयी ब्राह्मणका आरम्भ होता है-

मैत्रेयीति होवाच याज्ञवल्क्य उद्यास्यन् वा अरे-

ऽहमस्मात्स्थानादस्मि हन्त तेऽनया कात्यायन्या-
ऽन्तं करवाणीति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(याज्ञवल्क्यः, ह) प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य (अरे, मैत्रेयि) अरी मैत्रेयी ! (इति) इसप्रकार (उवाच) कहता हुआ (अहम्, वै) मैं निश्चय (अस्मात्, स्थानात्) इस आश्रमसे (उद्यास्यन्, अस्मि) ऊपर जाना चाहता हूँ (हन्त) तेरी अनुमति माँगता हूँ (ते) तेरा (अनया, कात्यायन्या) इस कात्यायनीसे (अन्तम्) विच्छेद (करवाणि) करूँ (इति) इसमें ॥ १ ॥

(भावार्थ -प्रसिद्ध याज्ञवल्क्यने अपनी स्त्री मैत्रेयीसे कहा कि-अरी मैत्रेयी ! मैं अब इस गृहस्थाश्रमको छोड़ कर आगेके संन्यास नामक आश्रममें जाना चाहता हूँ, इसलिये तेरी संमति माँगता हूं कि-क्या तेरा इस दूसरी स्त्री कात्यायनीसे विभाग कर दूं ? जब तुम्हारा धनका विभाग होजाय तब मैं संन्यास लूँ ॥ १ ॥

सा होवाच मैत्रेयी यन्नु म इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात्कथं तेनामृता स्यामिति नेति होवाच याज्ञवल्क्यो यथैवोपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितꣳ स्यादमृतत्वस्य तु नाऽऽशास्ति वित्तेनेति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सा, ह, मैत्रेयी) वह प्रसिद्ध मैत्रेयी (उवाच) कहनेलगी (भगोः) हे भगवन् (नु) क्या (यत्) यदि (इयम्) यह (वित्तेन) धनसे (पूर्णा) भरी हुई (सर्वा) सब (पृथिवी) भूमि (मे) मेरी (स्यात्) होजाय [तर्हि] तो (कथम्) क्या (तेन) उससे

(अमृता) अमर (स्याम्) होजाऊँगी (न) नहीं (इति) ऐसा (याज्ञवल्क्यः) याज्ञवल्क्य (उवाच, ह) कहता हुआ (यथा) जैसे (एव) प्रसिद्ध (उपकरणवताम्) साधनसम्पदावालोंका (जीवितम्) जीवन [भवति] होता है (तथा, एव) वैसा ही (ते) तेरा (जीवितम्) जीवन (स्यात्) होगा (तु) परन्तु (वित्तेन) धनसे (अमृतत्वस्य) अविनाशीपनेकी (आशा) आशा (न, अस्ति) नहीं है (इति) ऐसा भी कहा ॥ २ ॥

(भावार्थ)-पतिकी बात सुनकर मैत्रेयीने कहा, कि हे भगवन् ! यदि मुझे धनसे भरीहुई यह सब पृथिवी मिलजाय तो क्या इससे मेरा अभीष्ट सिद्ध होजायगा? क्या मैं धनसाध्य कर्मसे अविनाशी पद पाजाऊँगी ? याज्ञवल्क्यने इसका उत्तर दिया, कि--नहीं इस धनके द्वारा अमृतत्व नहीं मिलसकता, अनेकों प्रकारके साधन होने पर जैसे विविध भाँतिके भोग प्राप्त होकर सुखका जीवन होता है,ऐसे ही धनसाध्य कर्मके द्वारा तेरा जीवन भी सुखसे बीत जायगा, धनके द्वारा अविनाशी पद मोक्षकी आशा कभी नहीं करनी चाहिये ॥ २ ॥

सा होवाच मैत्रेयी येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्यां यदेव भगवान् वेद तदेव मे ब्रूहीति ३

अन्वय और पदार्थ—(सा, ह, मैत्रेयी) वह प्रसिद्ध मैत्रेयी (इति) ऐसा (उवाच) कहनेलगी (येन) जिससे (अहम्) मैं (अमृता) अविनाशी (न, स्याम्) न होऊँ (तेन) उसके द्वारा (अहम्) मैं (किम्) क्या (कुर्याम्) करूँ (भगवान्) आप (यत्) जिसको (एव) निश्चय (वेद) जानते हैं (तत्, एव) वह ही (मे) मेरे अर्थ (ब्रूहि) कहो ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-याज्ञवल्क्यके ऐसा कहने पर मैत्रेयी ने फिर कहा, कि--हे भगवन् ! जिससे मैं अविनाशी नहीं होसकती उस धनको लेकर मैं क्या करूंगी ? आप जिसको निश्चयरूपसे मोक्षका साधन जानते हों, मुझे उसका ही उपदेश दीजिये ॥ ३ ॥

स होवाच याज्ञवल्क्यः प्रिया बतारे नः सती प्रियं भाषस एह्यास्स्व व्याख्यास्यामि ते व्याचक्षाणस्य तु मे निदिध्यासस्वेति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः, ह, याज्ञवल्क्यः) वह प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य (इति) इसप्रकार (उवाच) बोला (अरे) अरी मैत्रेयी ! (नः) हमारी (प्रिया, सती) प्रिया होती हुई (प्रियं, भाषसे) प्रिय भाषण कर रही है (बत) आनन्द होता है (एहि) आ (आस्स्व) बैठ (ते) तेरे अर्थ (व्याख्यास्यामि) कहूंगा (तु) परन्तु (व्याचक्षाणस्य) व्याख्या करते हुए (मे) मेरे [कथनम्] कथनको (निदिध्यासस्व) निश्चयपूर्वक ध्यान करनेकी इच्छा कर ॥ ४ ॥

(भावार्थ)--यह सुनकर याज्ञवल्क्य कृपा करके कहनेलगे, कि--अरे मैत्रेयी ! तू पहले भी मेरी प्रियकारिणी होकर प्रिया नामको सार्थक करती थी, तैसे ही अब भी मेरे चित्तकी वृत्तिके अनुकूल प्रिय वचन बोल रही है, इससे मुझे बड़ा आनन्द होता है, आओ बैठ, मैं तेरा इष्ट, मोक्षका साधन आत्मज्ञान कहता हूँ, परंतु मेरे वाक्योंको तू मन लगाकर उनके अर्थ पर ध्यान रखती हुई सुन ॥ ४ ॥

स होवाच न वा अरे पत्युः कामाय पतिः

प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति। न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति। न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति। न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति। न वा अरे ब्रह्मणः कामाय ब्रह्म प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय ब्रह्म प्रियं भवति। न वा अरे क्षत्रस्य कामाय क्षत्रं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय क्षत्रं प्रियं भवति। न वा अरे लोकानां कामाय लोकाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय लोकाः प्रिया भवन्ति। न वा अरे देवानां कामाय देवाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय देवाः प्रिया भवन्ति। न वा अरे भूतानां कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्त्यात्मनस्तु कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति। न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति। आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदꣳ सर्वं विदितम् ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः, ह उवाच) वह प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य बोला (अरे) मैत्रेयी ! (वै) प्रसिद्ध है कि (पत्युः, कामाय) पतिके प्रयोजन के लिये (पतिः, प्रियः, न, भवति) पति प्यारा नहीं होता है (तु) किन्तु (आत्मनः, कामाय) आत्माके प्रयोजनके लिये (पतिः, प्रियः भवति) पति प्यारा होता है (अरे) मैत्रेयी ! (वै) प्रसिद्ध है कि (जायायै, कामाय) स्त्रीके प्रयोजनके लिये (जाया,प्रिया,न, भवति) भार्या प्यारी नहीं होती है (तु) किन्तु (आत्मनः, कामाय) आत्माके प्रयोजनके लिये (जाया,प्रिया, भवति) भार्या प्यारी होती है । (अरे) मैत्रेयी (वै) प्रसिद्ध है, कि (पुत्राणां, कामाय) पुत्रोंके प्रयोजनके लिये (पुत्राः प्रिया न, भवन्ति) पुत्र प्यारे नहीं होते हैं (तु) किन्तु (आत्मनः, कामाय) आत्माके प्रयोजनके लिये (पुत्राः,प्रिया भवन्ति) पुत्र प्यारे होते हैं । (अरे) मैत्रेयी (वै) प्रसिद्ध है कि (वित्तस्य, कामाय) धनके प्रयोजनके लिये (वित्तं प्रियं, न, भवति) धन प्यारा नहीं होता है (तु) किंतु (आत्मनः, कामाय) आत्माके प्रयोजनके लिये (वित्तं प्रियं, भवति) धन प्यारा होता है (अरे) मैत्रेयी (वै) प्रसिद्ध है कि (ब्रह्मणः, कामाय) ब्राह्मणजातिके प्रयोजनके लिये (ब्रह्म, प्रियं, न, भवति) ब्राह्मण जाति प्यारी नहीं होती है (तु) किन्तु (आत्मनः, कामाय) आत्माके प्रयोजनके लिये (ब्रह्म, प्रियं, भवति) ब्राह्मण जाति प्यारी होती है । (अरे) मैत्रेयी (वै) प्रसिद्ध है कि (क्षत्रस्य, कामाय) क्षत्रिय जातिके प्रयोजनके लिये (क्षत्रं, प्रियं, न, भवति) क्षत्रियजाति प्यारी नहीं होती है (तु) किन्तु (आत्मनः, कामाय) आत्माके प्रयोजन

लिये (क्षत्रं, प्रियं, भवति) क्षत्रिय जाति प्यारी होती है। (अरे) मैत्रेयी ! (वै) प्रसिद्ध है कि (लोकानाम्, कामाय) लोकोंके प्रयोजनके लिये (लोकाः प्रियाः, न, भवन्ति) लोक प्यारे नहीं होते हैं (तु) किन्तु (आत्मनः, कामाय) आत्माके प्रयोजनके लिये (लोकाः, प्रियाः भवन्ति) लोक प्यारे होते हैं। (अरे) मैत्रेयी ! (वै) प्रसिद्ध है कि (देवानां, कामाय) देवताओंके प्रयोजनके लिए (देवाः प्रिया न भवन्ति) देवता प्यारे नहीं होते हैं) (तु) किंतु (आत्मनः कामाय) आत्माके प्रयोजनके लिये (देवाः, प्रियाः, भवन्ति) देवता प्यारे होते हैं। (अरे) मैत्रेयी ! (वै) प्रसिद्ध है कि (भूतानां, कामाय) भूतों के प्रयोजनके लिये (भूतानि, प्रियाणि, न, भवन्ति) भूत प्यारे नहीं होते हैं (तु) किन्तु (आत्मनः, कामाय) आत्माके प्रयोजनके लिये (भूतानि, प्रियाणि, भवन्ति) भूत प्यारे होते हैं। (अरे) मैत्रेयी ! (वै) प्रसिद्ध है कि (सर्वस्य, कामाय) सबके प्रयोजनके लिये (सर्वं, प्रियं, न, भवति) सब प्यारा नहीं होता है (तु) किन्तु (आत्मनः, कामाय) आत्माके प्रयोजनके लिये (सर्वं, प्रियं, भवति) सब प्यारा होता है (अरे) मैत्रेयी! (आत्मा. वै) आत्मा ही (द्रष्टव्यः) देखने योग्य है (श्रोतव्यः) श्रवण करनेयोग्य है (मन्तव्यः) मनन करने योग्य है (निदिध्यासितव्यः) निश्चयपूर्वक ध्यान करनेयोग्य है अरे, मैत्रेयी) अरी मैत्रेयी (आत्मनः, वै) आत्माके ही (दर्शनेन) दर्शनसे (श्रवणेन) श्रवणसे (मत्या) मननसे (विज्ञानेन) निदिध्यासनसे (इदम्) यह सर्वम्) सब (विदितम्) जाना हुआ [भवति] होता है ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-मोक्षके साधन आत्मज्ञानके अनुरूप वैरा-

यका उपदेश करनेकी इच्छासे वह प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य कहने लगे, कि-अरी मैत्रेयी ! जगत्में प्रसिद्ध है, कि-पतिको प्रीतिसाधनाके लिये पतिसे प्रेम नहीं किया जाता है, किन्तु केवल आत्माकी प्रीति साधनाके लिये ही पतिको प्यार किया जाता है । ऐसे ही पति जो स्त्रीको प्यार करता है वह भी उसके प्रयोजनके लिये नहीं, किन्तु केवल आत्माकी प्रीति साधनाके लिये । हे मैत्रेयी ! पुत्रोंके प्रयोजनके लिये पुत्र पिताको प्यारे नहीं होते हैं, किन्तु पिताके अपने आत्माके प्रयोजनके लिये पुत्र पिताको प्यारे होते हैं । हे मैत्रेयी ! धनके प्रयोजनके लिये धन प्यारा नहीं होता है । किन्तु अपने आत्माकी प्रीतिके लिये ही धन सब मनुष्योंको प्यारा होता हैं । ब्राह्मण जातिके प्रयोजनके लिये ब्राह्मणजाति प्यारी नहीं होती है किन्तु आत्माकी प्रीति साधनाके लिये ही सब लोग ब्राह्मण जातिको प्यार करते हैं । अरी ! क्षत्रिय जातिके प्रयोजनके लिये क्षत्रिय जाति प्यारी नहीं होती है, किन्तु आत्माके प्रयोजनके लिये क्षत्रिय जाति प्यारी होती है । अरी ! स्वर्गादि लोकोंके प्रयोजनके लिये स्वर्गादि लोक प्यारे नहीं होते हैं, किन्तु आत्माके प्रीति-साधनके लिये स्वर्गादि लोक प्यारे होते हैं । अरी ! देवताओंके लिये देवता प्यारे नहीं होते हैं, किन्तु आत्माके प्रयोजनके लिये देवता प्यारे होते हैं । अरी ! पृथिवी आदि भूतोंके प्रयोजनके लिये पृथिवी आदि भूत प्यारे नहीं होते हैं, किन्तु आत्माकी प्रीतिके लिये ही सकल भूत प्यारे होते हैं । अरी मैत्रेयी ! सबके प्रयोजनके लिये सब प्यारे नहीं होते हैं, किन्तु केवल आत्माकी प्रीति-साधनके लिये सब प्यारे होते हैं । इसप्रकार आत्मसुख

का साधन होनेसे अन्यत्र गौण प्रीति है परन्तु आत्मा में मुख्य प्रीति है इसकारण अरी मैत्रेयी ! आत्मसाक्षात्कारके लिये परमप्रेमका स्थान आत्मा ही साक्षात् रूपदर्शनका विषय करके अनुभव करनेयोग्य, गुरु और शास्त्रके वाक्योंसे श्रवण करनेयोग्य, युक्तियोंसे मननसे और निदिध्यासनसे यह सब स्थावर जङ्गमरूप अनात्मभूत अखिल कल्पित जगत् ज्ञात होजाता है आत्मसाक्षात्कार होता है और इस आत्मसाक्षात्काररूप अपरोक्ष ज्ञानके हो जानने पर फिर कुछ भी जाननेको शेष नहीं रहता ॥ ५ ॥

ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद । क्षत्रं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः क्षत्रं वेद । लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो लोकान् वेद । देवास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान् वेद । भूतानि तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो भूतानि वेद । सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेदेदं ब्रह्मेदं क्षत्रमिमे लोका इमे देवा इमानि भूतानीदꣳ सर्वं यदयमात्मा ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (आत्मनः) आत्मासे (अन्यत्र) पृथक् रूपसे (ब्रह्म) ब्राह्मण जातिको (वेद) जानता है (तम्) उसको (ब्रह्म) ब्राह्मणजाति (परादात्) दूर करती है (यः) जो (आत्मनः) आत्मा से (अन्यत्र) पृथक्रूपसे (क्षत्रम्) क्षत्रिय जातिको (वेद) जानता है (तम्) उसको (क्षत्रम्) क्षत्रियजाति

(परादात्) दूर करती है (यः, आत्मनः, अन्यत्र) आत्मासे अन्यत्र (लोकान्. वेद) लोकोंको जानता है (तं, लोकाः, परादुः) उसको लोक दूर करते हैं (यः, आत्मनः, अन्यत्र) आत्मासे अन्यत्र (देवान् वेद) देवताओंको जानता है (तं, देवाः, परादुः) उसको देवता दूर करते हैं (यः, आत्मनः. अन्यत्र) जो आत्मा से अन्यत्र (भूतानि, वेद) भूतोंको जानता है (तं, भूतानि, परादुः) उसको भूत दूर करते हैं (यः,आत्मनः, अन्यत्र) जो आत्मासे अन्यत्र (सर्वं, वेद) सबको जानता है (तं, सर्वं, परादात्) उसको सब दूर करते हैं (यत्) जो (इदं, ब्रह्म) यह ब्राह्मण जाति है (इदं, क्षत्रम्) यह क्षत्रिय जाति है (इमे, लोकाः) ये लोक हैं (इमे देवाः) ये देवता हैं (इमानि, भूतानि) ये भूत हैं (इदं सर्वम्) यह सब है (अयम्, आत्मा) यह आत्मा है ॥ ६ ॥

(भावार्थ)-जो ब्राह्मणजातिको आत्मा (अपने) से पृथक् जानता है, ब्राह्मणजाति उसको अपनेमेंसे अलग कर देती है ऐसे ही जो क्षत्रियजातिको आत्मा से पृथक् जानता है उसको क्षत्रियजाति अपनेसे दूर करदेती है, जो स्वर्गादि लोकोंको आत्मासे पृथक् जानता है उसको स्वर्गादि लोक अपनेसे दूर कर देते हैं, जो देवताओंको आत्मासे पृथक् जानता है उसको देवता अपनेसे दूर कर देते हैं, जो पृथिवी आदि भूतोंको आत्मासे पृथक् जानता है उसको पृथिवी आदि भूत अपने से दूर करदेते हैं और जो सबको ही आत्मासे पृथक् जानता है उसको सब ही अपनेसे दूर करदेते हैं। यह ब्राह्मण जाति, ये क्षत्रियजाति, ये स्वर्गादि लोक, ये

देवता, ये पृथिवी आदि भूत अर्थात् यह कहा हुआ और न कहा हुआ सब आत्ममय है, आत्मासे पृथक् कुछ नहीं है, यह जगत् आत्मासे उत्पन्न हुआ है, आत्मामें स्थित है और अन्तमें आत्मामें ही लीन हो-जाता है, जगत् आत्माकी ही शक्ति या विभूति है ॥६॥

यह सब आत्मा ही है यह बात कैसे जानी जासकती है? स्फुरणात्मक स्वरूपके विना कुछ भी ग्रहण नहीं कियाजासकता यह प्रसिद्ध है । जिसके विना जिसका ग्रहण नहीं होता वह तद्रूप ही होता है, इस पर तीन दृष्टान्त कहते हैं-

स यथा दुन्दुभेर्हन्यमानस्य न बाह्याञ्शब्दा-ञ्शक्नुयाद् ग्रहणाय दुन्दुभेस्तु ग्रहणेन दुन्दु-भ्याघातस्य वा शब्दो गृहीतः ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह दृष्टान्त (यथा) जैसे (हन्यमानस्य) ताड़ना कियेहुए (दुन्दुभेः) नगाड़ेके (बाह्यान्) बाहर निकलेहुए (शब्दान्) शब्दोंको (ग्रहणाय) ग्रहण करनेको (न, शक्नुयात्) समर्थ नहीं होता है (तु) परन्तु (दुन्दुभेः) दुन्दुभिके (ग्रहणेन) ग्रहणसे (वा) या (दुन्दुभ्याघातस्य) दुन्दुभिके आघातके [ग्रहणेन] ग्रहणसे (शब्दः) शब्द (गृहीतः) ग्रहण कियाहुआ [भवति] होता है ॥ ७ ॥

(भावार्थ)-जैसे दण्डे आदिसे बजाये हुए दुन्दुभि नामक बड़े नगाड़ेके बाहर निकले हुए ऊँचे नीचे शब्दों को पुरुष पहले ग्रहण नहीं करसकता, परन्तु दुन्दुभिके शब्द सामान्यको ग्रहण करनेसे अथवा दुन्दुभी को बजानेसे उत्पन्न हुए वीर आदि नौ रसोंमेंके एक रस-

वाले ध्वनिको ग्रहण करनेसे यह दुन्दुभिकी अमुक प्रकार की ध्वनि है, इसप्रकार दुन्दुभिका शब्दविशेष ग्रहण कियाजाता है । जैसे शब्दविशेष शब्द सामान्यसे वास्तवमें पृथक् नहीं हैं,ऐसे ही स्फुरणरूप ब्रह्मसामान्य से फुरेहुए पदार्थ वास्तवमें पृथक् नहीं हैं (यही बात नीचेके दोनों दृष्टान्तोंमें भी समझनी चाहिये) ॥ ७ ॥

स यथा शङ्खस्य ध्मायमानस्य न बाह्यान् शब्दान् शक्नुयाद् ग्रहणाय शङ्खस्य तु ग्रहणेन-शङ्खध्मस्य वा शब्दो गृहीतः ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह दृष्टान्त (यथा) जैसे (ध्मायमानस्य) बजायेहुए (शङ्खस्य) शङ्खको (बाह्यान्) बाहर निकले हुए (शब्दान्) शब्दोंको (ग्रहणाय) ग्रहण करनेको (न, शक्नुयात्) समर्थ नहीं होता है (तु) परन्तु (शङ्खस्य) शङ्खके (ग्रहणेन) ग्रहणसे (वा) या (शङ्खध्मस्य) शङ्खध्वनिके [ग्रहणेन] ग्रहणसे (शब्दः) शब्दविशेष (गृहीतः) ग्रहण किया हुआ [भवति] होता है

(भावार्थ)-दूसरा दृष्टान्त-जैसे बजायेहुए शङ्खमें से बाहर निकलेहुए ऊँचे नीचे शब्दोंको पुरुष ग्रहण नहीं करसकता, परन्तु शङ्खके शब्दसामान्यको ग्रहण करनेसे वा एक रसवाली शङ्खध्वनिको ग्रहण करनेसे शङ्खके शब्दविशेषका ग्रहण होजाता है ॥ ८ ॥

स यथा वीणायै वाद्यमानायै न बाह्याञ्शब्दा-ञ्शक्नुयाद् ग्रहणाय वीणायै तु ग्रहणेन वी-णावादस्य वा शब्दो गृहीतः ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह दृष्टान्त (यथा) जैसे

वाद्यमानायै, वीणायै) बजायी हुई वीणाके (वाह्यान्) शब्दान्) बाहर निकले हुए शब्दोंको (ग्रहणाय) ग्रहण करनेके लिये (न, शक्नुयात्) समर्थ नहीं होता है (तु) परन्तु (वीणायै, ग्रहणेन) वीणाके ग्रहणसे (वा) या (वीणावादस्य) वीणाकी ध्वनिके [ग्रहणेन] ग्रहण से (शब्दः) शब्द (गृहीतः) ग्रहण किया हुआ (भवति) होता है ॥ ९ ॥

(भावार्थ)-तीसरा दृष्टान्त जैसे बजायी हुई वीणा के बाहर निकले हुए ऊँचे नीचे शब्दोंको पहले पुरुष ग्रहण नहीं करसकता, परन्तु वीणाके शब्दसामान्यको ग्रहण करनेसे अथवा एक रनवाली वीणाकी ध्वनिको ग्रहण करनेसे वीणाके शब्दविशेषका ग्रहण होजाता है कई एक दृष्टान्त देकर यह जताया है, कि-चेतन अचेतनरूप सब पदार्थ स्थितिकालमें प्रज्ञानघन प्रत्यगात्मरूप एक ही सत्तावाले होते हैं ॥ ९ ॥

इसप्रकार स्थितिकालमें जगत्का ब्रह्मसे एकताका निश्चय करके, उत्पत्तिकालमें भी उसका निश्चय करनेके लिये कार्योंकी, उत्पत्तिसे पहले उनके कारणसे अभिन्न होनेमें दृष्टान्त कहते हैं, कि—

स यथाऽऽर्द्रैधाग्नेरभ्याहितात्पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्योपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि निश्वासितानि ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-(स) वह दृष्टान्त (यथा) जैसे (अभ्याहितात्) सामने धरे हुए (आर्द्रैधाग्नेः) गीले ईंधन वाले अग्निमेंसे (पृथग्धूमाः) नाना प्रकारके धुएँ (विनिश्चरन्ति) निकलते हैं (एवं,वै) इस प्रकार ही (अरे) हे मैत्रेयी ! (अस्य, महतः) इस अपरिच्छिन्न (भूतस्य) परमार्थ वस्तुका (एतत्) यह (निश्वसितम्) श्वास है (यत्) जो (ऋग्वेदः) ऋग्वेद (यजुर्वेदः) यजुर्वेद (सामवेदः) सामवेद (अथर्वाङ्गिरसः) अथर्वाङ्गिरस (इतिहासः) इतिहास (पुराणम्) पुराण (विद्या) विद्या (उपनिषदः) उपनिषद् (श्लोकाः) श्लोक (सूत्राणि) सूत्र (अनुव्याख्यानानि) अनुव्याख्यान (व्याख्यानानि) व्याख्यान हैं (एतानि) ये (अस्य) इसके (निःश्वसितानि, एव) श्वासरूप ही हैं ॥ १० ॥

(भावार्थ)-जिसप्रकार सामने स्थापन करके जिसमें गीला ईंधन डाल दिया है ऐसे अग्निमें से नाना प्रकार के धुएँ और चिनगारे निकलते हैं, इसप्रकार ही अरी मैत्रेयी ! उस अपरिच्छिन्न परमार्थ वस्तुका यह सब निश्वासकी समान बिना ही प्रयत्नके उत्पन्न हुआ है, जो कि—यह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वाङ्गिरस, उर्वशी, पुरूरवा आदिका संवादरूप इतिहास, जगत्की उत्पत्तिसे पहलेका और जगत्का उत्पत्तिके आदिका निरूपण करने वाला पुराण, नृत्य गीत आदिका निरूपण करने वाली विद्या उपनिषद् ब्राह्मण भागमेंके मन्त्ररूप श्लोक, आत्माकी इसप्रकार ही उपासना करे, इत्यादि वस्तुको संक्षेपमें कहने वाले वेदवचन रूप सूत्र, वस्तुको संक्षेपमें कहने वाले वचनोंके विवरण वाक्यरूप अनु-

व्याख्यान (जैसे कि " प्राणा वै सत्यम् , इत्यादि वाक्यों का शिशु और मूर्त्तामूर्त्त ब्राह्मणमें विवरण है) और ब्राह्मणभागमें आये हुए मंत्रोंके विवरणरूप व्याख्यान हैं । यह सब ही परमात्माका निश्वसित है, इसलिये वेद के अर्थमें और कोई प्रमाण नहीं होसकता ॥ १० ॥

अब प्रलयकालमें भी इस प्रपञ्चकी ब्रह्मरूपताका दृष्टान्त के साथ दिखाते हैं—

स यथा सर्वासामपाᳬ समुद्रमेकायनमेवᳬ सर्वेषाᳬ स्पर्शानां त्वगेकायनमेवᳬ सर्वेषाᳬ रसानां जिह्वैकायनमेवᳬ सर्वेषाᳬ गन्धानां नासिकेएकायनमेवᳬ सर्वेषाᳬ रूपाणां चक्षुरेकायनमेवᳬ सर्वेषाᳬ शब्दानाᳬ श्रोत्रमेकायनमेवᳬ सर्वेषाᳬ सङ्कल्पानां मन एकायनमेवᳬ सर्वासां विद्यानाᳬ हृदयमेकायनमेवᳬ सर्वेषां कर्मणाᳬ हस्तावेकायनमेवᳬ सर्वेषामानन्दानामुपस्थ एकायनमेवᳬ सर्वेषां विसर्गाणां पायुरेकायनमेवᳬ सर्वेषामध्वनां पादावेकायनमेवᳬ सर्वेषां वेदानां वागेकायनम् ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह दृष्टान्त (यथा) जैसे (सर्वासां, अपाम्) सब जलोंका (समुद्रः, एकायनम्) समुद्र एक आश्रय है (एवम्) ऐसे ही (सर्वेषां, स्पर्शानाम्) सब स्पर्शोंका (त्वक्, एकायनम्) त्वचा एक आश्रय है (एवम्) ऐसे ही (सर्वेषां रसानाम्) सब रसोंका (जिह्वा, एकायनम्) जिह्वा एक आश्रय है (एवम्)

ऐसे ही (सर्वेषां, गन्धानाम्) सब गन्धोंका (नासिके, एकायनम्) नासिका एक आश्रय है (एवम्) ऐसे ही (सर्वेषां, रूपाणाम्) सब रूपोंका (चक्षुः, एकायनम्) नेत्र एक आश्रय है (एवम्) ऐसे ही (सर्वेषां,शब्दानाम्) सब शब्दोंका (श्रोत्रं, एकायनम्) कर्ण एक आश्रय है (एवम्) ऐसे ही (सर्वेषां,सङ्कल्पानाम्) सब सङ्कल्पों का (मनः,एकायनम्) मन एक आश्रय है (एवम्) ऐसे ही (सर्वासां, विद्यानाम्) सब विद्याओंका (हृदयं, एकायनम्) हृदय एक आश्रय है (एवम्) ऐसे ही (सर्वेषाम्, कर्मणाम्) सब कर्मोंका (हस्तौ, एकायनम्) हाथ एक आश्रय है (एवम्) ऐसे ही (सर्वेषां, आनन्दानाम्) सब आनन्दोंका (उपस्थः- एकायनम्) उपस्थ इन्द्रिय एक आश्रय है (एवम्) ऐसे ही (सर्वेषां विसर्गाणां) सब त्यागोंका (पायुः) गुदा (एकायनम्) एक आश्रय है (एवम्) ऐसे ही (सर्वेषां, अध्वनाम्) सब मार्गोंका (पादौ, एकायनम्) चरण एक आश्रय है (एवम्) ऐसे ही (सर्वेषां, वेदानाम्) सब वेदोंका (वाक्, एकायनम्) वाणी एक आश्रय है ॥११॥

(भावार्थ) एक दृष्टान्त कहते हैं, कि--जिसप्रकार नदी आदिके जलोंका समुद्र एक सामान्य आश्रय है, अर्थात् जैसे जलके बुलबुले झाग आदि सब जलकी ही शक्तिका विभिन्न प्रकाश है ऐसे ही नाम रूपात्मक जगत् भी ब्रह्मकी ही पृथक् पृथक् शक्तिका प्रकाशमात्र है, ब्रह्मसे अतिरिक्त जगत्का होना असंभव है, ब्रह्म ही अपनी शक्तिके द्वारा जगत् होरहा है, अतः ब्रह्मके विज्ञानमें ही जगत्का ज्ञान सिद्ध होजाता है। जैसे बावड़ी कूप आदि सकल जलका समुद्र ही एक मात्र

आश्रय है, ऐसे ही कोमल कठोर आदि सब स्पर्शोंका त्वचाका विषयरूप स्पर्शसामान्य ही एकमात्र आश्रय है ऐसे ही सब रसोंका जीभका विषय रूप रससामान्य ही एक मात्र आश्रय है, ऐसे ही सब गन्धोंका नासिका रूप गन्धसामान्य ही एकमात्र आश्रय है ऐसे ही सब रूपोंका चक्षुःस्वरूप रूपसामान्य ही एक आश्रय है, ऐसे ही सब शब्दोंका कानरूप शब्दसामान्य ही एक आश्रय है, ऐसे ही (इन श्रोत्र आदि विषयोंके सामान्य मन के विषय सङ्कल्पमें अन्तर्भूत होते हैं) ऐसे ही सब सङ्कल्पोंका मनरूप सङ्कल्पसामान्य एक आश्रय है, ऐसे ही सब विद्याओंका बुद्धियोंका निश्चयोंका हृदयरूप निश्चयसामान्य एक आश्रय है (वह कारणरूप प्रज्ञान-घन ब्रह्ममें लीन होता है) ऐसे ही सब कर्मोंका हाथ रूप कर्मसामान्य एक आश्रय है, ऐसे ही सब आनन्दों का उपस्थरूप आनन्दसामान्य एक आश्रय है, ऐसे ही सब मल त्यागोंका गुदा रूप त्यागसामान्य एक आश्रय है ऐसे ही सब गतियोंका पैर रूप गतिसामान्य एक आश्रय है ऐसे ही सब वेदों (शब्दों) का वाणी रूप शब्द सामान्य एक आश्रय है, इन कर्म इन्द्रियों के सामान्योंका प्राणमें लय होता है उस प्राणका कारणरूप ब्रह्ममें लय होता है, इस कारण सकल जगत् का ब्रह्म ही एक मात्र आश्रय है ॥ ११ ॥

इस प्रकार प्राकृतिक प्रलयको दिखाकर सबके मूल कारणरूप अद्वितीय आत्मतत्त्वका निश्चय किया अब ब्रह्मविद्यासे अविद्याकी निवृत्तिके द्वारा जो आत्यन्तिक प्रलय होता है उसको दृष्टान्तके साथ दिखाते हैं-

स यथा सैन्धवखिल्य उदके प्रास्त उदकमेवा-
नुविलीयते न हास्योद्ग्रहणायेव स्यात् । यतो
यतस्त्वाददीत लवणमेवैवं वा अर इदं महद्-
भूतमनन्तमपारं विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः
समुत्थाय तान्येवानु विनश्यति न प्रेत्य संज्ञाऽ-
स्तीत्यरे ब्रवीमीति होवाच याज्ञवल्क्यः ॥१२॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह दृष्टान्त (यथा) जैसे (सैन्धवखिल्यः) सैंधेका टुकड़ा (उदके) जलमें (प्रास्तः) डालाहुआ (उदके, अनुविलीयते, एव) जलमें ही लीन होजाता है (अस्य, उद्ग्रहणाय,) इसके निकाल कर ग्रहण करनेको (न, ह, स्यात्) समर्थ कदापि नहीं होगा (तु) किन्तु (यतः, यतः) जहाँसे (आददीत) लेगा (लवणं, एव) लवण ही होगा (एवं, वै) ऐसे ही (अरे) हे मैत्रेयी ! (इदम्) यह (महत्) अपरिच्छिन्न (भूतम्) निर्विकार (अनन्तम्) कारण रहित (अपारम्) कार्य रहित (विज्ञानघनः, एव) विशुद्ध ज्ञानमात्र ही (एभ्यः भूतेभ्यः) इन भूतोंमेंसे (समुत्थाय) सम्यक्प्रकारसे उठ कर (तानि, अनु, एव) उनके पीछे ही (विनश्यति) अन्तर्धान होजाता है (अरे) हे मैत्रेयी ! (प्रेत्य) मरणको प्राप्त होकर (संज्ञा) ज्ञान (न, अस्ति) नहीं होता है (ब्रवीमि) कहता हूं (इति) ऐसा (ह) प्रसिद्ध (याज्ञवल्क्यः) याज्ञवल्क्य (उवाच) बोला ॥१२

(भावार्थ)-दृष्टान्त यह है कि-जैसे लवणका टुकड़ा जलमें डालाजाय तो वह जलमें ही लीन होजाता है, कोई परम चतुर पुरुष भी उस लवणकी डलीको पहले

की समान हाथमें नहीं पकड़ सकता, जहाँ जहाँ से लेकर चाखेगा तहां तहां वह जल नोनखरा ही प्रतीत होगा, परन्तु वह डली हाथमें नहीं आसकती, अरी मैत्रेयी ! इसप्रकार ही यह अपरिच्छिन्न निर्विकारी, कारण रहित कार्य रहित विशुद्ध ज्ञानमात्र ब्रह्म ही शरीर इन्द्रिय आदिके आकारसे परिणामको प्राप्त हुए इन भूतोंमें से सम्यक् प्रकार उठकर फिर उन भूतोंके विनाशके अनन्तर ही इस जीवरूपसे विनष्ट होजाता है। अरी मैत्रेयी ! कार्य कारणके संघात (शरीर इन्द्रियादि) से छूटे हुए ब्रह्मवेत्ताको शरीर त्यागके अनन्तर यह मेरा क्षेत्र है। मैं सुखी हूं ऐसा विशेष ज्ञान नहीं होता है ऐसा मैं कहता हूं इस प्रकार याज्ञवल्क्यने अपनी स्त्रीसे प्रसिद्ध परमार्थ दर्शन कहा था ॥ १२ ॥

सा होवाच मैत्रेय्यत्रैव मा भगवानमूमुहन्न प्रेत्य संज्ञाऽस्तीति स होवाच न वा अरेऽहं मोहं ब्रवीम्यलं वा अर इदं विज्ञानाय ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ (सा, ह, मैत्रेयी, उवाच) वह प्रसिद्ध मैत्रेयी कहने लगी (भगवान्) आपने (अत्र, एव) यहां ही (प्रेत्य) मरकर (संज्ञा, न, अस्ति) ज्ञान नहीं है (इति) इसप्रकार (मा, अमूमुहम्) मुझे मोह में डालते हुए (सः, उवाच, ह) वह प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य बोले (अरे, मोहं, न, वै, ब्रवीमि) अरी ! मैं मोह नहीं ही कहता हूँ (अरे, इदं, वै) अरी यह ही (विज्ञानाय, अलम्) जाननेके लिये पर्याप्त है ॥ १३ ॥

(भावार्थ)-इसप्रकार उपदेश करने पर मैत्रेयीने कहा, कि-आपने अभी यहाँ ही यह प्रतिज्ञाकी थी, कि

एक ब्रह्मात्मस्वरूप वस्तुमें विज्ञानघन ही है और फिर आपने कहा, कि-मरने पर विशेष ज्ञान नहीं रहता, यह परस्पर विरुद्ध दो बातें कह कर तो आपने मुझे मोहमें डालदिया ? इसके उत्तरमें याज्ञवल्क्यने कहा कि-अरी मैत्रेयी ! मैंने ऐसी कोई बात नहीं कही है जिससे तुझे मोह हो, मरनेके अनन्तर उपाधिसे होनेवाले नामरूप आदि विशेषज्ञान नहीं रहते हैं, परन्तु विज्ञानघनका नाश नहीं होता है, इसमें मैंने मोहमें डालनेवाली कोई बात नहीं कही है। अरी मैत्रेयी ! इस प्रज्ञानघनस्वरूप को ही स्वप्रकाशरूपसे जानलिया जाय तो पर्याप्त है १३

उस कहेहुए विशेष ज्ञानके अभावको अन्य व्यतिरेकके द्वारा दृढ करके कहते हैं कि—

यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं जिघ्रति तदितर इतरं पश्यति तदितर इतरꣳशृणोति तदितर इतरमभिवदति तदितर इतरं मनुते तदितर इतरं विजानाति यत्र वा अस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं जिघ्रेत्तत्केन कं पश्येत्तत्केन कं शृणुयात्तत्केन कमभिवदेत्तत्केन कं मन्वीत तत्केन कं विजानीयात्। येनेदꣳ सर्वं विजानाति तं केन विजानीयाद्विज्ञातारमरे केन विजानीयादिति ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्र) जब (हि) प्रसिद्ध (द्वैतमिव) द्वैतसा (भवति) होता है (तत्) उस समय (इतरः) अन्य (इतरम्) अन्यको (जिघ्रति) सूँघता है (तत्)

तब (इतरः, इतरं, पश्यति) अन्य अन्यको देखता है (तत्) तब (इतरः, इतरं, शृणोति) अन्य अन्यको सुनता है (तत्) उस समय (इतरः, इतरं, अभिवदति) अन्य अन्यको बोलता है (तत्) तब (इतरः, इतरं, मनुते) अन्य अन्यको मनन करता है (तत्) तब (इतरः, इतरं, विजानाति) अन्य अन्यको जानता है (यत्र) जब (वै) प्रसिद्ध (अस्य) इसको (सर्वम्) सब (आत्मा, एव) आत्मा ही (अभूत्) हुआ (तत्) तब (केन) किसके द्वारा (कम्) किसको (जिघ्रेत्) सूँघे (तत्) तब (केन, कं, पश्येत्) किसके द्वारा किस को देखे (तत) तब (केन, कं, शृणुयात्) किसके द्वारा किसको सुने (तत्) तब (केन, कं, अभिवदेत्) किसके द्वारा किसको बोले (तत्) तब (केन, कं मन्वीत) किस के द्वारा किसका मनन करे (तत्) तब (केन, कं, विजानीयात्) किसके द्वारा किसको जाने (येन) जिसके द्वारा (इदं, सर्वम्) इस सबको (विजानाति) जानता है (तम्) उसको (केन) किसके द्वारा (विजानीयात्) जाने (अरे) अरी मैत्रेयी ! (विज्ञातारम्) विज्ञाताको (केन) किसके द्वारा (विजानीयात्) जाने (इति) इस प्रकार ॥ १४ ॥

(भावार्थ)—जब अज्ञान कालमें अविद्या कल्पित कार्य करण संघातरूप उपाधिसे उत्पन्नहुए विशेष आत्मा का सद्भाव होता है उस समय एक ही आत्माकेसा भाव प्रतीत होने लगता है उस समय ही ब्रह्मसे भिन्न सूँघने वाला ब्रह्मसे भिन्न नासिकाके द्वारा ब्रह्मसे भिन्न गन्ध को सूँघता है, तब ही देखने वाला नेत्रसे रूपको देखता है तब ही सुनने वाला श्रोत्रसे शब्द आदिको सुनता है

तब ही बोलने वाला वाणीसे शब्द आदिको बोलता है तब ही मनन करने वाला मनसे मनन करने योग्यका मनन करता है और तब ही जानने वाला बुद्धि से जानने योग्यको जानता है । परन्तु जब ज्ञान कालमें ब्रह्मवेत्ताके लिये कर्ता,कर्म और कर्मका फल आदि सब आत्मा ही होगया, उस समय कौन किसके द्वारा किस को सूँघे ? कर्ता करण और कर्मका भेद न रहनेसे न कोई सूँघने वाला होता है, न कोई सूँघनेका साधन होता है और न कोई सूँघने योग्य ही होता है। उस समय कौन किसको देखे? कौन किससे किसको सुने ? कौन किससे किसको कहे! कौन किसके द्वारा किसका मनन करे? और कौन किसके किसको जाने ? इसप्रकार कैवल्यावस्थामें विशेष विज्ञानका अभाव अन्वयव्यतिरेककी रीति है उसको किस करणके द्वारा जाने ? अर्थात् उसको तो किसी करणके द्वारा जान ही नहीं सकता ॥ १४ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थं ब्राह्मणं समाप्तम् ।

इयं पृथिवी सर्वेषां भूतानां मध्वस्य पृथिव्यै सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्यां पृथिव्यां तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मꣳ शारीरस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्वम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इयं, पृथिवी) यह पृथिवी (सर्वेषां, भूतानाम्) सब भूतोंकी (मधु) मधु है (सर्वाणि, भूतानि) सब प्राणी (अस्यै, पृथिव्यै) इस पृथिवीका (मधु) कार्य है (च) और (अस्यां, पृथिव्याम्)

इस पृथिवीमें (यः, अयम्) जो यह (तेजोमयः) तेजोमय (अमृतमयः) अमरणधर्मी (पुरुषः) पुरुष है (च) और (अध्यात्मम्) अध्यात्मरूप (यः, अयम्) जो यह (शारीरः) शरीरका अभिमानी (तेजोमयः) तेजोमय (अमृतमयः) अमरणधर्मी (पुरुषः) पुरुष है (अयं, एव) यह ही (सः) वह है (यः, अयम्) जो यह (आत्मा) आत्मा है (इदम्) यह (अमृतम्) अविनाशी है (इदं, ब्रह्म) यह ब्रह्म है (इदं, सर्वम्) यह सब है ॥ १ ॥

(भावार्थ)-यह सर्वत्र प्रसिद्ध पृथिवीरूप मधुचक्र (शहदका छत्ता) ब्रह्मादि स्तम्बपर्यन्त सकल भूतरूप मधुकरोंका कार्यरूप मधु है। ऐसे ही सकल भूत भी इस पृथिवीका मधु कहिये कार्य हैं। और इस पृथिवीमें जो तेजोमय अमरणधर्मवाला आधिदैव पुरुष है तथा जो यह शरीरका अभिमानी तेजोमय अमरणधर्मी अध्यात्म-पुरुष है ये दोनों प्रकारके पुरुष उपकारक होनेके कारण सब भूतोंका कार्य हैं और सब भूत उपकार्य होनेसे इन इन पुरुषोंका कार्य हैं। पृथिवी, सकल भूत, पार्थिव पुरुष और शरीरका अभिमानी पुरुषरूप यह सब जगत् परस्पर उपकार्य और उपकारक होनेसे सिद्ध होता है, कि-इन सबका कारण एक ब्रह्म है। जिस आत्माका प्रसङ्ग चल रहा था यह वही ऊपर कहे चार प्रकारके कार्यरूप से प्रतीत होरहा है, यही अविनाशी है, यही ब्रह्म है, यही सब कुछ है ॥ १ ॥

इमा आपः सर्वेषां भूतानां मध्वासामपाᳬं सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमास्वप्सु तेजोमयो-

ऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मꣳरैतसस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳसर्वम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(इमाः, आपः) यह जल (सर्वेषां, भूतानाम्) सब भूतोंका (मधु) कार्य है (सर्वाणि, भूतानि) सब भूत (आसां, अपाम्) इस जलका (मधु) कार्य (च) और (आसु, अप्सु) इस जलमें (यः, अयम्) जो यह (तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः) तेजोमय अविनाशी पुरुष है (च) और (अध्यात्मम्) अध्यात्मरूप यः, अयम्) जो यह (रैतसः) वीर्यमेंसे उत्पन्न हुआ (तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः) तेजोमय अविनाशी पुरुष है (यः, अयं, आत्मा) जो यह आत्मा है (सः, अयं, एव वह यह ही (इदम्, अमृतम्) यह अविनाशी है (इदं, ब्रह्म) यह ब्रह्म है (इदम्, सर्वम्) यह सब है ॥ २ ॥

(भावार्थ)—यह जल सब भूतोंका कार्य है और सब भूत इस जलका कार्य हैं तथा इस जलमें जो यह तेजोमय अविनाशी पुरुष है और जलका अध्यात्मरूप जो यह रैतस कहिये वीर्यसे उत्पन्न हुआ तेजोमय अविनाशी पुरुष है, यह सब कार्यरूप होनेसे ब्रह्मरूप कारणवाला है, जिस आत्माका प्रसङ्ग चल रहा था यह वही आत्मा है, यही कार्यरूपसे प्रतीत होरहा है, यही अविनाशी है, यही ब्रह्म है और यही सब कुछ है ॥ २ ॥

अयमग्निः सर्वेषां भूतानां मध्वस्याग्नेः सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्नग्नौ तेजोमयोऽमृत-

मयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं वाङ्मयस्तेजोमयो-ऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृत-मिदं सर्वम् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अयं, अग्निः) यह अग्नि (सर्वेषां, भूतानां, मधु) सब भूतों कार्य है (सर्वाणि, भूतानि) सब भूत (अस्य अग्नेः मधु) इस अग्निका कार्य है (च) और (अस्मिन्, अग्नौ) इस अग्निमें (यः, अयम्) जो यह (तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः) तेजोमय अविनाशी पुरुष है (च) और (अध्यात्मम्) अध्यात्मरूप (यः, अयम्) जो यह (वाङ्मयः) वाणीकी अधिकता वाला (तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः) तेजोमय अविनाशी पुरुष है (यः, अयं, आत्मा) जो यह आत्मा है (सः, अयं एव) वह यह ही है (इदं, अमृतम्) यह अविनाशी है (इदं, ब्रह्म) यह ब्रह्म है (इदं, सर्वम्) यह सर्व है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)- यह अग्नि सब भूतोंका कार्य और सब भूत इस अग्निका कार्य है तथा अग्निमें जो यह तेजोमय अविनाशी पुरुष है और अग्निका अध्यात्म रूप जो यह वाणीकी बहुलता वाला तेजोमय अविनाशी पुरुष है यह सब कार्यरूप होने से ब्रह्मरूप कारण वाला है जिस आत्माका पहलेसे प्रसङ्ग चल रहा है यह वही आत्मा कार्य रूपसे प्रतीत हो रहा है, यही अविनाशी है, यही ब्रह्म है, यही सब कुछ है ॥ ३ ॥

अयं वायुः सर्वेषां भूतानां मध्वस्य वायोः सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन् वायौ तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं प्राणस्तेजोमयो-

मृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्वम् ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ (अयं, वायुः) यह वायु (सर्वेषाँ, भूतानाम्) सब भूतोंका (मधु) कार्य है (सर्वाणि, भूतानि) सब भूत (अस्य वायोः, मधु) इस वायुका कार्य है (च) और (अस्मिन् वायौ) इस वायुमें यः,- अयम्) जो यह (तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः) तेजोमय अविनाशी पुरुष है (च) और (अध्यात्मम्) अध्यात्म रूप (यः, अयम्) जो यह (प्राणः) प्राण नामक (तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः) तेजोमय अविनाशी पुरुष है (यः अयं, आत्मा) जो यह आत्मा है (सः,- अय एव) वह यह ही है (इदं, अमृतम्) यह अविनाशी है (इदं, ब्रह्म) यह ब्रह्म है (इदं, सर्वम्) यह सर्व है ॥ ४ ॥

(भावार्थ)- यह वायु सब भूतोंका कार्य है और सब भूत इस वायुका कार्य है तथा इस वायुमें जो यह तेजोमय अविनाशी पुरुष है, एवं वायुका अध्यात्मभूत जो यह प्राणरूप तेजोमय अविनाशी पुरुष है यह सब कार्यरूप होनेसे ब्रह्म रूप कारण वाला है जिस आत्मा का प्रसङ्ग चल रहा था यह वह आत्मा ही कार्य रूपमें प्रतीत होरहा है, यही अविनाशी है, यही ब्रह्म है, यही सब कुछ है ॥ ४ ॥

अयमादित्यः सर्वेषां भूतानां मध्वस्याऽऽदित्यस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्नादित्ये तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं चाक्षुष-

स्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमा-
त्मेदममृतमिदं ब्रह्मेद्ꣳ सर्वम् ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ (अयं, आदित्यः) यह सूर्य (सर्वेषां भूतानां, मधु) सब भूतोंका कार्य है (सर्वाणि, भूतानि अस्य आदित्यस्य, मधु) सब भूत इस सूर्यका कार्य हैं (च) और अस्मिन्, आदित्ये) इस सूर्यमें (यः, अयं तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः) जो यह तेजोमय अमृत-मय पुरुष है (च) और (अध्यात्मम्) अध्यात्मरूप (यः, अयम्) जो यह (चाक्षुषः) चक्षु में का (तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः) तेजोमय अविनाशी पुरुष है (यः, अयं, आत्मा) जो यह आत्मा है (सः, अयं, एव) वह यही है (इदं, अमृतम्) यह अविनाशी है (इदं, ब्रह्म) यह ब्रह्म है (इदं, सर्वम्) यह सब है ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-यह आदित्य सब भूतोंका कार्य है और सब भूत आदित्यका कार्य है एवं इस आदित्यमें जो यह तेजोमय अविनाशी पुरुष है तथा आदित्यका अध्यात्मरूप जो यह चक्षुमें रहनेवाला तेजोमय अविनाशी पुरुष है यह सब कार्यरूप होनेमें ब्रह्मरूप कारणवाला है, जिस आत्माका प्रसङ्ग चल रहा था यह वही आत्मा कार्यरूपमें वर्तमान होरहा है, यही अविनाशी है, यही ब्रह्म है और यही सब कुछ है ॥ ५ ॥

इमा दिशः सर्वेषां भूतानां मध्वासां दिशां सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमासु दिक्षु तेजो-मयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मꣳश्रौत्रः प्रातिश्रुत्कस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेद्ꣳ सर्वम् ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(इमाः, दिशः) ये दिशायें (सर्वेषां भूतानाम्) सब भूतोंका (मधु) कार्य है (सर्वाणि, भूतानि) सब भूत (आसां, दिशां, मधु) इन दिशाओंका कार्य है (च) और (आसु, दिक्षु) इन दिशाओंमें (यः, अयम्) जो यह (तेजोमयः, अमृतमयः पुरुषः) तेजोमय अविनाशी पुरुष है (च) और (अध्यात्मम्) अध्यात्मरूप (यः, अयम्) जो यह (प्रातिश्रुत्कः) प्रत्येक श्रवणके समय विशेष समीप होनेवाला (श्रौत्रः) श्रोत्रका निवासी (तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः) तेजोमय अविनाशी पुरुष है (यः, अयम्, आत्मा) जो यह आत्मा है (सः, अयं, एव) वह यही है (इदम्, अमृतम्) यही अविनाशी है (इदं, ब्रह्म) यही ब्रह्म है (इदं, सर्वम्) यही सब कुछ है ॥ ६ ॥

(भावार्थ)—ये दिशायें सब भूतोंका कार्य हैं, सब भूत इन दिशाओंका कार्य हैं और दिशाओंमें जो तेजोमय अविनाशी पुरुष रहता है तथा इन दिशाओंका अध्यात्मरूप जो यह प्रत्येक श्रवणके समय विशेष समीप होनेवाला श्रोत्रनिवासी तेजोमय अविनाशी पुरुष है यह सब कार्यरूप होनेसे ब्रह्मरूप कारणवाला है, जिस आत्माका प्रसङ्ग चल रहा था यह वही आत्मा कार्यरूप से प्रतीत होरहा है, यही अविनाशी है,यही ब्रह्म है और यही सब कुछ है ॥ ६ ॥

अयं चन्द्रः सर्वेषां भूतानां मध्वस्य चन्द्रस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिँश्चन्द्रे तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं मान-

सस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमा-
त्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳसर्वम् ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अयं, चन्द्रः) यह चन्द्रमा (सर्वे-षां, भूतानां, मधु) सब भूतोंका कार्य है (सर्वाणि, भूतानि) सब भूत (अस्य, चन्द्रस्य, मधु) इस चन्द्रमाका कार्य है (च) और (अस्मिन्, चन्द्रे) इस चन्द्रमामें (यः, अयम्) जो यह (तेजोमयः, अमृतमयः पुरुषः) तेजोमय अविनाशी पुरुष है (च) और (अध्यात्मम्) अध्यात्मरूप (यः, अयम्) जो यह (मानसः) मानस (तेजोमयः अमृतमयः, पुरुषः) तेजोमय अवि-नाशी पुरुष है (यः, अयं, आत्मा) जो यह आत्मा है (सः, अयं, एव) वह यही है (इदं, अमृतम्) यही अविनाशी है (इदं, ब्रह्म) यही ब्रह्म है (इदं सर्वम्) यही सब कुछ है ॥ ७ ॥

(भावार्थ)-यह चन्द्रमा सब भूतोंका कार्य है, सब भूत इस चन्द्रमाका कार्य है और चन्द्रमामें जो यह तेजोमय अविनाशी पुरुष है तथा चन्द्रमाका अध्यात्म-रूप जो यह मानस तेजोमय पुरुष है यह सब कार्यरूप होनेसे ब्रह्मरूप कारणवाला है, जिस आत्माका प्रसङ्ग चलरहा था यह वही आत्मा कार्यरूपसे प्रतीत हो रहा है, यही अविनाशी है, यही ब्रह्म है और यही सब कुछ है ॥ ७ ॥

इदं विद्युत्सर्वेषां भूतानां मध्वस्यै विद्युतः सर्वाणि
भूतानि मधु यश्चायमस्यां विद्युति तेजोमयो-
ऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं तैजसस्तेजो-

मयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदम-मृतमिदं ब्रह्मेदᳬ सर्वम् ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इयं विद्युत्) यह बिजली (सर्वेषां, भूतानां, मधु) सब भूतोंका कार्य है (सर्वाणि भूतानि) सब भूत (अस्यै, विद्युतः, मधु) इस बिजलीका कार्य हैं (च) और [illegible] विद्युति [illegible] [illegible] [illegible] तेजो-मय, अमृतमय, पुरुष) [illegible] अविनाशी पुरुष है (यः, अयं, आत्मा) जो यह आत्मा है (सः, अयं, एव) वह यही है (इदं, अमृतम्) यह अविनाशी है (इदं, ब्रह्म) यह ब्रह्म है (इदं, सर्वम्) यह सब है ॥ ८ ॥

(भावार्थ) यह बिजली सब भूतोंका कार्य है, सब भूत इस बिजलीका कार्य हैं और बिजलीमें जो तेजोमय अविनाशी पुरुष है तथा बिजलीका अध्यात्मरूप जो यह [illegible] तेजमें उत्पन्न हुआ तैजस तेजोमय अविनाशी पुरुष है, यह सब कार्यरूप होनेसे ब्रह्मरूप कारणवाला है, जिस आत्माका प्रसङ्ग चलरहा था यह वही आत्मा कार्यरूपमें प्रतीत होरहा है, यही अवि-नाशी है, यही ब्रह्म है और यही सब कुछ है ॥ ८ ॥

अयं स्तनयित्नुः सर्वेषां भूतानां मध्वस्य स्तन-यित्नोः सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन् स्तनयित्नौ तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चाय-

जिसकी प्रेरणासे ये पृथिवी आदि भूत और देवता शरीरियोंके साथ संबन्ध करके कार्यरूपसे उपकार करते हैं उस कथनीयको कहते हैं-

अयं धर्मः सर्वेषां भूतानां मध्वस्य धर्मस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन् धर्मे तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं धार्मस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳसर्वम् ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अयं, धर्मः) यह धर्म (सर्वेषां, भूतानां, मधु) सब भूतोंका कार्य है (सर्वाणि, भूतानि) सब भूत (अस्य, धर्मस्य, मधु) इस धर्मका कार्य हैं (च) और (अस्मिन्, धर्मे) इस धर्ममें (यः, अयं, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः) जो यह तेजोमय अमृतमय पुरुष है (च) और (अध्यात्मम्) अध्यात्मरूप (यः, अयम्) जो यह (धार्मः) धर्मसे उत्पन्न हुआ (तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः) तेजोमय अमृतमय पुरुष है (यः, अयं, आत्मा) जो यह आत्मा है (सः, अयं एव) वह यही है (इदं, अमृतम्) यह अविनाशी है (इदं, ब्रह्म) यह ब्रह्म है (इदं, सर्वम्) यह सब है ॥ ११ ॥

(भावार्थ)—यह धर्म सब भूतोंका कार्य है, सब भूत इस धर्मका कार्य हैं और इस धर्ममें जो यह तेजोमय अमृतमय पुरुष है तथा धर्मका अध्यात्मरूप जो यह धर्मसे उत्पन्न हुआ तेजोमय अमृतमय पुरुष है यह सब कार्यरूप होनेसे ब्रह्मरूप कारणवाला है, जिस आत्माका

प्रसङ्ग चल रहा था यह वही आत्मा कार्यरूपसे प्रतीत होरहा है, यही अविनाशी है, यही ब्रह्म है और यही सब कुछ है अपूर्व नामवाला धर्म सामान्य रूपसे और विशेषरूपसे कार्यका आरम्भ करता है, सामान्यरूपसे पृथिवी आदिका प्रेरक होता है और विशेषरूपसे सकल कार्यकारणका प्रेरक होता है ॥ ११ ॥

इदꣳ सत्यꣳसर्वेषां भूतानां मध्वस्य सत्यस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन् सत्ये तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मꣳ सात्यस्तेजोमयोऽमृतयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳसर्वम् ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इदं, सत्यम्) यह सत्य (सर्वेषां, भूतानां, मधु) सब भूतोंका कार्य है (सर्वाणि, भूतानि) सब भूत (अस्य, सत्यस्य, मधु) इस सत्यका कार्य हैं (च) और (अस्मिन्, सत्ये) इस सत्यमें (यः, अयं, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः) जो यह तेजोमय अमृतमय पुरुष है (च) और (अध्यात्मम्) अध्यात्मरूप (यः, अयम्) जो यह (सात्यः) सत्यसे उत्पन्न हुआ (तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः) तेजोमय अमृतमय पुरुष है (यः, अयं, आत्मा) जो यह आत्मा है (सः, अयं, एव) वह यही है (इदं, अमृतम्) यह अविनाशी है (इदं, ब्रह्म) यह ब्रह्म है (इदं, सर्वम्) यह सब है १२

(भावार्थ)-यह सत्य सब भूतोंका कार्य है, सब भूत इस सत्यका कार्य है और इस सत्यमें जो तेजोमय अमृतमय पुरुष है और सत्यका अध्यात्मरूप जो

सत्यसे उत्पन्न हुआ तेजोमय अमृतमय पुरुष है यह सब कार्यरूप होनेसे ब्रह्मरूप कारणवाला है, जिस आत्माका प्रसङ्ग चल रहा था यह वही आत्मा कार्यरूप में प्रतीत होरहा है, यही अविनाशी है, यही ब्रह्म है और यही सब कुछ है। धर्मकी समान सत्य भी दो प्रकारका है, सामान्यरूप सत्य पृथिवी आदिमें कारण-रूपसे भराहुआ है और विशेषरूप सत्य कार्यकरणसं-घातमें कारणभावसे पुराहुआ है ॥ १२ ॥

धर्म और सत्यका प्रेरणा कियाहुआ यह कार्य और करणका संघात मनुष्य आदि जाति वाला है, यह मनुष्य आदि जातिवाले सब प्राणियोंका समूह परस्पर एक दूसरेका उपकारक होकर वर्त्तमान दीख रहा है, इस लिये मनुष्य आदि जाति भी सब भूतोंका कार्य है,इस बातको दिखाते हैं-

इदं मानुषꣳ सर्वेषां भूतानां मध्वस्य मानुष-स्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन् मानुषे तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मे-दममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्वम् ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(इदं, मानुषम्) यह मनुष्यजाति (सर्वेषां, भूतानां, मधु) सब भूतोंका कार्य है (सर्वाणि, भूतानि) सब भूत (अस्य, मानुषस्य) इस मनुष्य जातिका (मधु) कार्य हैं (च) और (अस्मिन् मानुषे) इस मनुष्यजातिमें (यः, अयम्) जो यह (तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः) तेजोमय अमृतमय पुरुष है (यः, अयं, आत्मा) जो यह आत्मा है (सः, अयं, एव) वह

यही है (इदं, अमृतम्) यह अविनाशी है (इदं, ब्रह्म) यह ब्रह्म है (इदं, सर्वम्) यह सब है ॥ १३ ॥

(भावार्थ)-यह मनुष्यजाति सब भूतोंका कार्य है, सब भूत मनुष्यजातिका कार्य हैं और इस मनुष्यजाति में जो यह तेजोमय अमृतमय पुरुष है, यह बाह्य और आध्यात्मिक भेदसे दो प्रकारका प्रतीत होता है, कथन करनेवालेके शरीरसे भिन्नमें रहनेवाला बाह्य और कथन करनेवालेके शरीरमें रहनेवाला आध्यात्मिक है.यह सब कार्यरूप होनेसे ब्रह्मरूप कारणवाला है, जिस आत्माका प्रसङ्ग चल रहा था यह वही आत्मा कार्यरूपसे प्रतीत होरहा है, यही अविनाशी है, यही ब्रह्म है और यही सब कुछ है ॥ १३ ॥

अब मनुष्य आदि जातियोंके संघातका कार्यपना दिखाते हैं—

अयमात्मा सर्वेषां भूतानां मध्वस्याऽऽत्मनः सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्नात्मनि तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमात्मा तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्वम् ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अयं, आत्मा) यह आत्मा (सर्वेषां, भूतानां, मधु) सब भूतोंका कार्य है (सर्वाणि, भूतानि) सब भूत (अस्य, आत्मनः, मधु) इस आत्माका कार्य है (च) और (अस्मिन्, आत्मनि) इस आत्मामें (यः, अयम्) जो यह (तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः) तेजोमय अमृतमय पुरुष है (च) और (यः, अयम्)

जो यह (आत्मा) विज्ञानमय आत्मा (तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः) तेजोमय अमृतमय पुरुष है (यः, अयं, आत्मा) जो यह आत्मा है (सः, अयं, एव) वह यही है (इदं, अमृतम्) यह अविनाशी है (इदं, ब्रह्म) यह ब्रह्म है (इदं, सर्वम्) यह सब है ॥ १४ ॥

(भावार्थ)-यह कार्य करणका संघात देह सब भूतों का कार्य है और इस प्रकार इस कार्यकरणके संघातका कार्य हैं तथा इस कार्यकरणके संघात देहमें जो यह तेजोमय अमृतमय चेतन पुरुष है और जो यह विज्ञान-घन आत्मा तेजोमय अमृतमय पुरुष है यह सब कार्य होनेसे ब्रह्मरूप कारणवाला है, जिस आत्माका प्रसङ्ग चल रहा था यह वही आत्मा कार्यरूपमें प्रतीत हो रहा है, यह अविनाशी है, यही ब्रह्म है और यही सब कुछ है

ऊपर कहे हुए विज्ञानमयका स्वरूप कहते हैं—

स वा अयमात्मा सर्वेषां भूतानामधिपतिः सर्वेषां भूतानाᳪ राजा तद्यथा रथनाभौ च रथनेमौ चाराः सर्वे समर्पिता एवमेवास्मिन्नात्मनि सर्वाणि भूतानि सर्वे देवाः सर्वे लोकाः सर्वे प्राणाः सर्व एत आत्मनः समर्पिताः ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वै) प्रसिद्ध (सः) वह (अयं, आत्मा) यह आत्मा (सर्वेषां, भूतानां, अधिपतिः) सब भूतोंका स्वतंत्र स्वामी है (सर्वेषां, भूतानां, राजा) सब भूतोंका राजा है (तत्) उसमें (यथा) जैसे (रथनाभौ) रथकी नाभिमें (च) और (रथनेमौ, च) रथकी नेमिमें भी (सर्वे, अराः, समर्पिताः) सब अरे

लगायेहुए होते हैं (एवं, एव) ऐसे ही (अस्मिन्, आत्मनि) इस आत्मामें (सर्वाणि, भूतानि) सकल भूत (सर्वे, देवाः) सब देवता (सर्वे, लोकाः) सब लोक (सर्वे, प्राणाः) सब इन्द्रियें (एते) ये (सर्वे, आत्मनः) सब चिदाभास (समर्पिताः) स्थित किये हैं ॥ १५ ॥

(भावार्थ)-प्रसिद्ध आत्मा कहिये परमात्माके साथ तादात्म्य को प्राप्त हुआ विद्वान् सब भूतोंका स्वतंत्र स्वामी है और सब भूतोंका राजा है, इस सबके आत्मा रूप ब्रह्मवेत्ता विद्वानमें सब जगत् स्थित है। जैसे रथके पहियेकी नाभि (पुट्ठी) में और रथके पहियेकी नेमि (गोल घेर) में सब अरे लगे होते हैं ऐसे ही इस परमात्म भूत ब्रह्मवेत्तामें ब्रह्मादि स्तम्बपर्यन्त सकल भूत अग्नि आदि सब देवता, भू आदि सब लोक, वाक् आदि सब इन्द्रियें और ये सब जलमें प्रतिबिम्बित चन्द्रमाकी समान प्रतिशरीरमें प्रविष्ट अविद्याकल्पित चिदाभास (जीव) स्थित हैं ॥ १५ ॥

इसप्रकार कही हुई ब्रह्मविद्याकी प्रशंसा करनेवाली प्रवर्ग्य प्रकरणमेंकी आख्यायिकाके अर्थको संक्षेपमें दिखानेवाले दो मन्त्र ये हैं—

इदं वै तन्मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच तदेतदृषिः पश्यन्नवोचत्। तद्वां नरा सनये दꣳस उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम् दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्रयदीमुवाचेति ॥ १६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इदं, वै) यह ही (तत्, मधु) वह कार्य है [यत्] जिसको (आथर्वणः) अथर्वण गोत्र-

वाला (दध्यङ्) दध्यङ् ऋषि (अश्विभ्याम्) अश्विनीकुमारोंके अर्थ (उवाच) कहता हुआ (तत्) उस (एतत्) इसको (ऋषिः) ऋषि (पश्यन्) देखता हुआ (अवोचत्) कहता हुआ (नरा) हे नरो ! (सनये) लाभके लिये (तत्) उस (वाम्) तुम्हारे (उग्रम्) उग्र (दंसः) कर्मको (तन्यतुः) मेघ (वृष्टिं, न) वृष्टिको जैसे (आविष्कृणोमि) प्रकट करता हूं (आथर्वणः) अथर्वण गोत्रवाला (दध्यङ्) दध्यङ् (यत्) जो (मधु) आत्मज्ञान (अश्वस्य) अश्वके (शीर्ष्णा) शिर करके (वाम्) तुम्हारे अर्थ (उवाच) कहता हुआ (यत्) जो (प्र) कहता हुआ [इस मंत्र में 'ह' और 'ईम्' का कुछ अर्थ नहीं है] ॥ १६ ॥

(भावार्थ)-अथर्ववेदको जाननेवाले दधीचि नामक ऋषिने यह मधु नामक ब्राह्मण दोनों अश्विनीकुमारोंसे कहा था, दोनों अश्विनीकुमारोंके प्रार्थना करने पर ऋषिने यह मधुविद्या कही थी मैं "यह ब्रह्मविद्या दूसरेको देदूँ तो इन्द्र मेरा शिर काटलेगा, इन्द्रके काटेहुए शिर को जोड़नेका फिर कोई उपाय नहीं है, इसलिये मैं तुम्हे यह विद्या नहीं दे सकता, हाँ यदि तुम किसी उपायसे इन्द्रके हाथसे मेरी रक्षा करसको तो मैं तुम्हें इस प्यारी विद्याका उपदेश दे सकता हूँ।" यह बात सुनकर दोनों अश्विनीकुमारोंने कहा, कि-हम आपका यह मस्तक काटकर अन्यत्र रखदेंगे और एक घोड़ेका मुण्ड लाकर आपके देहमें जोड़देंगे, आप इस जोड़े हुए घोड़ेके मुख से कटेहुए शिरको जोड़ देनेवाली मधुविद्याका उपदेश दीजिये, इन्द्र आकर आपके इस घोड़ेके मुण्डको काटकर चला जायगा, तब हम आपका अन्यत्र धराहुआ

शिर लाकर आपके देहमें जोड़ेंगे, तब आप हमें परमात्माके विषयकी मधुविद्याका उपदेश देना ऋषिने इस बात पर संमत होकर उनको मधुविद्याका उपदेश दिया मंत्र ऋषिने दधीचि ऋषिकी बातको जानकर कहा था, कि—"हे नराकार अश्विनीकुमारों ! तुमने साधारण मनुष्यकी समान लाभके लिये जो क्रूर कर्म एकान्तमें गुप्तरूपसे किया है, उस तुम्हारे उग्र कर्मको मैं, जैसे मेघ गर्जनाके साथ वर्षा करता है तैसे प्रकट करता हूँ, अथर्वण गोत्रवाले दधीचि ऋषिने जो आत्मज्ञानरूप मधु अश्वके मुखके द्वारा तुमसे कहा है, उसको मैं प्रकट किये देता हूँ ॥ १६ ॥

इदं वै तन्मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच तदेतदृषिः पश्यन्नवोचत् । आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यꣳशिरः प्रत्यैरयतम् । स वां मधु प्रवोचदृतायन्त्वाष्ट्रं यद्दस्रावपि कक्ष्यं वामिति १७

अन्वय और पदार्थ—(इदं, वै) यह ही (तत्, मधु) वह मधु ही [यत्] जिसको (आथर्वणः) अथर्वण गोत्रवाला (दध्यङ्) दध्यङ् (अश्विभ्याम्) अश्विनीकुमारोंके अर्थ (उवाच) कहता हुआ (तत्) उस (एतत्) इसको (ऋषिः) ऋषि (पश्यन्) देखता हुआ (अवोचत्) कहता हुआ (अश्विना) हे अश्विनीकुमारों ! (आथर्वणाय) अथर्वण गोत्रवाले (दधीचे) दध्यङ्के लिये (अश्व्यं, शिरः) घोड़ेका मस्तक (प्रत्यैरयतम्) देतेहुए (सः) वह (ऋतायन्) सत्यका पालन करना चाहता हुआ (वाम्) तुम्हारे अर्थ (त्वाष्ट्रम्)

सूर्य संबन्धी (मधु) मधुविद्या (इति) इसप्रकार (प्रवोचत्) कहताहुआ (दस्रौ) हे शत्रुनाशकों (वाम्) तुम्हारे अर्थ (यत्) जिस (कक्ष्यं अपि) गोपनीयको भी (प्रत्यवोचत्) कहता हुआ ॥ १७ ॥

(भावार्थ)-यह वह मधुविद्या है जिसको अथर्वण गोत्रवाले दध्यङ्ने अश्विनीकुमारोंसे कहा था। उनके इस कर्मको ऋषिने देखकर कहा था, कि-हे अश्विनीकुमारों! तुमने अथर्वण गोत्रवाले दध्यङ्के लिये, घोड़े का शिर उस ब्राह्मणका शिर काटकर उसको दिया था, यह जो तुमने ब्राह्मणका और घोड़ेका शिर काटा यह बड़ा ही क्रूर कर्म किया, फिर उस दध्यङ्ने पहले जो प्रतिज्ञा करली थी उस सत्यका पालन करनेकी इच्छासे तुम्हें सूर्यसे सम्बन्ध रखनेवाली मधुविद्याका उपदेश दिया और हे शत्रुओंकी हिंसा करनेवाले अश्विनी कुमारों! जो परमात्मसंबंधी गोपनीय विज्ञान मधुब्राह्मण में कहा है उसका भी तुम्हें उपदेश दिया ॥ १७ ॥

इदं वै तन्मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच तदेतदृषिः पश्यन्नवोचत् । पुरश्चक्रे द्विपदः पुरश्चक्रेचतुष्पदः । पुरः स पक्षी भूत्वा पुरः पुरुष आविशदिति । स वा अयं पुरुषः सर्वासु पूर्षु पुरिशयो नैनेन किञ्चनानावृतं नैनेन किञ्चनासंवृतम् ॥ १८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इदं, वै) यह ही (तत् मधु) वह मधु है [यत्] जिसको (आथर्वणः) अथर्वण गोत्रवाला (दध्यङ्) दध्यङ् (अश्विभ्याम्) अश्विनी-

कुमारोंके अर्थ (उवाच) कहताहुआ (तत्) उस (एतत्) इसको (पश्यन्) देखताहुआ (ऋषिः) ऋषि (अवोचत्) कहता हुआ (द्विपदः) दो पैरवाले (पुरः) शरीरोंको (चक्रे) रचताहुआ (चतुष्पदः) चार पैरवाले (पुरः) शरीरोंको (चक्रे) रचता हुआ (सः) वह (पुरः) पहले (पक्षी, भूत्वा) लिङ्ग शरीर होकर (पुरुषः) पुरुषरूप हो (पुरः) शरीरोंमें (अविशत्) प्रवेश करता हुआ (इति) ऐसा है (सः, वै) वह ही (अयं, पुरुषः) यह पुरुष (सर्वासु) सब (पूर्षु) शरीरोंमें (पुरिशयः) पुरिशय है (अनेन) इसके द्वारा (अनावृतम्) अनाच्छादित (किञ्चन, न) कुछ भी नहीं है (अनेन) इसके द्वारा (असंवृतम्) अनुप्रवेश रहित (किञ्चन, न) कुछ भी नहीं है ॥ १८ ॥

(भावार्थ)—यही वह गोपनीय मधुविद्या है, जिस को अथर्वण गोत्रवाले दध्यङ्ने अश्विनीकुमारोंसे कहा था, इस कथनको जानकर ऋषिने कहा, कि—ईश्वरने भू आदि लोकोंको रचकर फिर मनुष्य आदि दो चरण वाले शरीरोंको रचा तथा पशु आदि चार पैरवाले शरीरों को रचा। इस प्रकार भाँति २ के शरीरोंको रचकर वह ईश्वर अपने अनुप्रवेशमें पहले लिङ्गशरीर होकर फिर पुरुष रूप हुआ शरीरोंमें प्रवेश करगया । अब श्रुति स्वयं ही इसका अर्थ करती है, कि-वही यह पुरुष सब शरीरोंमें पुरिशय कहिये स्थित होकर पुरुष कहलाता है, ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसको यह आच्छादन किये हुए न हो या जिसमें यह अनुप्रवेश किये हुए न हो, इसप्रकार कार्य कारणरूपसे भीतर बाहर स्थित है, उसके सिवाय और कुछ है ही नहीं ॥ १८ ॥

इदं वै तन्मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच। तदेतदृषिः पश्यन्नवोचत्। रूपꣳरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय। इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दशेति। अयं वै हरयोऽयं वै दश च सहस्राणि बहूनि चानन्तानि च तदेतद् ब्रह्मापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यमयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूरित्यनुशासनम् ॥ १९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इदं, वै) यह है (तत्, मधु) वह मधु है [यत्] जिसको (आथर्वणः) अथर्वण गोत्र-वाला (दध्यङ्) दध्यङ् (अश्विभ्याम्) अश्विनीकुमारों के अर्थ (उवाच) कहता हुआ (तत्) उस (एतत्) इसको (पश्यन्) देखता हुआ (ऋषिः) ऋषि (अवोचत्) कहता हुआ [सः] वह (रूपं, रूपं, प्रति) देह देहके प्रति (प्रतिरूपः) प्रतिबिम्ब (बभूव) होगया (अस्य) इसका (तत्) वह प्रतिबिम्बपना (रूपम्) स्वरूपको (प्रतिचक्षणाय) जनानेके लिये है (इन्द्रः) परमात्मा (मायाभिः) अज्ञानोंके द्वारा (पुरुरूपः) बहुतसे रूपोंवाला (ईयते) प्रतीत होता है (अस्य) इसकी (युक्ताः) जोड़ी हुई (हरयः) इन्द्रियें (शता) सौ (दश) दश [सन्ति] हैं (इति) यहाँ मन्त्र समाप्त है (अयं, वै) यह ही (हरयः) इन्द्रियें है (अयं, वै) यह ही (दश) दश (सहस्राणि) सहस्र (बहूनि) बहुत (अनन्तानि, च) अनन्त भी है (तत्) वह (एतत्,

ब्रह्म) यह ब्रह्म (अपूर्वम्) कारणरहित (अनपरम्) कार्यरहित (अनन्तरम्) अन्तररहित (अबाह्यम्) बाहर रहित [अस्ति] है (अयं, आत्मा) यह आत्मा (ब्रह्म) ब्रह्म (सर्वानुभूः) सबका अनुभव करनेवाला (इति) ऐसा (अनुशासनम्) उपदेश है ॥ १९ ॥

(भावार्थ)-यही वह औपनीय मधु है, जिसको अथर्वणगोत्रवाले दध्यङ्ने अश्विनीकुमारोंसे कहा था। इस कथनको जानकर ऋषिने कहा, कि वह परमात्मा देह देहमें प्रतिबिम्बरूपसे रूपान्तर होगया था। इस निरुपाधिक परमात्माका स्वरूप जतानेके लिये ही यह प्रतिबिम्बपना है, ऐसा न होनेसे इसके स्वरूपका प्रकाश ही नहीं होता। परमात्मा नाम रूपको विषय करनेवाले मिथ्याभिमानरूप अज्ञानोंके द्वारा अनेकों रूपोंवाला प्रतीत होता है। इस आत्माके रथकी समान शरीरमें जुड़ीहुई, आत्माको अपने २ विषयोंकी ओरको लेजाने वाली अश्वरूप इन्द्रियें प्राणियोंकी बहुतायतके कारण कारण दशों, सैकड़ों (अनेकों) हैं, इसलिये भी आत्मा अनेकों रूपोंवाला प्रतीत होता है। अविद्याके कारण इन्द्रियादिरूपसे इस आत्माकी ही प्रतीति होती है, इसलिये यह आत्मा ही इन्द्रियें है। यह आत्मा ही प्राणियोंके बहुत होनेके कारण दशों, सहस्रों, बहुत और अनन्त इन्द्रियरूप है। अब इस आत्माके पारमार्थिक स्वरूपको कहते हैं, कि-यह ब्रह्म कारण रहित, कार्यरहित, जिसके मध्यमें अन्य जातिकी कोई वस्तु नहीं ऐसा अनन्तर और जिसके बाहर भी कोई अन्य जातिका पदार्थ नहीं है ऐसा अबाह्य है यह आत्मा ब्रह्म तथा सबका दर्शन श्रवण मनन आदिके द्वारा अनुभव करने

वाला द्रष्टा वा साक्षी है, यह सकल वेद शास्त्रोंका उपदेश है ॥ १६ ॥

इति चतुर्दशाध्यायस्य पञ्चमं ब्राह्मणं समाप्तम् ।

इसप्रकार निरूपण कीहुई ब्रह्मविद्याकी स्तुतिके लिये उत्पत्तिके लिये, जपके लिये, असांप्रदायिकताकी शङ्का को दूर करनेके लिये तथा उसके अध्यापनके लिये इस वंश ब्राह्मणका आरम्भ होता है —

अथ वꣳशः । पौतिमाष्यो गौपवनाद्गौपवनः पौतिमाष्यात्पौतिमाष्यो गौपवनाद्गौपवनः कौशिकात्कौशिकः कौण्डिन्यात्कौण्डिन्यः शाण्डिल्याच्छाण्डिल्यः कौशिकाच्च गौतमाच्च गौतमः १

अन्वय और पदार्थ -(अथ) अब (वंशः) वंश [कथ्यते] कहाजाता है (पौतिमाष्यः) पौतिमाष्य (गौपवनात्) गौपवनसे (गौपवनः) गौपवन (पौतिमाष्यात्) पौतिमाष्यसे (पौतिमाष्यः) पौतिमाष्य (गौपवनात्) गौपवनसे (गौपवनः) गौपवन (कौशिकात्) कौशिक से (कौशिकः) कौशिक (कौण्डिन्यात्) कौण्डिन्यसे (कौण्डिन्यः) कौण्डिन्य (शाण्डिल्यात्) शाण्डिल्य से (शाण्डिल्यः) शाण्डिल्य (कौशिकात्) कौशिकसे (च) और (गौतमात्, च) गौतमसे भी (गौतमः) गौतम ॥ १ ॥

(भावार्थ)—अब वंश कहिये आचार्यपरम्पराका आरम्भ होता है—पौतिमाष्य गौपवनसे गौपवन अन्य पौतिमाष्यसे कौशिकसे अन्य गौपवनसे गौपवन कौशिकसे, कौशिक कौण्डिन्यसे, कौण्डिन्य, शाण्डिल्यसे शाण्डिल्य और कौशिकसे तथा गौतमसे गौतम ॥ १ ॥

आग्निवेश्यादाग्निवेश्यः शाण्डिल्याच्चानभि-
म्लाताच्चानभिम्लात आनभिम्लातादानभि-
म्लात आनभिम्लातादानभिम्लातो गौतमाद्गौ-
तमः सैतवप्राचीनयोग्याभ्याँ सैतवप्राचीन-
योग्यौ पाराशर्यात्पाराशर्यो भारद्वाजाद्भारद्वाजो
भारद्वाजाच्च गौतमाच्च गौतमो भारद्वाजाद्भार-
द्वाज पाराशर्यात्पाराशर्यो वैजवापायनाद्वैजवा-
पायनः कौशिकायनेः कौशिकायनिः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आग्निवेश्यात्) आग्निवेश्यसे (आग्निवेश्यः) आग्निवेश्य (शाण्डिल्यात्) शाण्डिल्यसे (च) और (आनभिम्लातात्, च) आनभिम्लातसे भी (आनभिम्लातः) आनभिम्लात (आनभिम्लातात्) आनभिम्लातसे (आनभिम्लातः) आनभिम्लात (आनभिम्लातात्) आनभिम्लातसे (आनभिम्लातः) आनभिम्लात (गौतमात्) गौतमसे (गौतमः) गौतम (सैतवप्राचीनयोग्याम्) सैतव और प्राचीनयोग्यसे (सैतवप्राचीनयोग्यौ) सैतव और प्राचीनयोग्य (पाराशर्यात्) पाराशर्यसे (पाराशर्यः) पाराशर्य (भारद्वाजात्) भारद्वाजसे (भारद्वाजः) भारद्वाज (भारद्वाजात्) भारद्वाजसे (च) और (गौतमात्, च) गौतमसे भी (गौतमः) गौतम (भारद्वाजात्) भारद्वाजसे (भारद्वाज) भारद्वाज (पाराशर्यात्) पाराशर्यसे (पाराशर्यः) पाराशर्य (वैजवापायनात्) वैजवापायनसे (वैजवापायनः) वैजवापायन (कौशिकायनेः) कौशिकायनिसे (कौशिकायनिः) कौशिकायनि ॥ २ ॥

(भावार्थ)-ऊपरोक्त गौतम आग्निवेश्यसे, आग्निवेश्य शाण्डिल्यसे और आनभिम्लातसे. आनभिम्लात दूसरे आनभिम्लातसे, वह आनभिम्लात, तीसरे आनभिम्लातसे, वह आनभिम्लात गौतमसे, गौतम सैतव से, सैतव प्राचीनयोग्यसे, प्राचीनयोग्य पाराशर्यसे पाराशर्य भरद्वाजसे, भारद्वाज अन्य भारद्वाजसे और गौतमसे, गौतम अन्य भारद्वाजसे, भारद्वाज पाराशर्य से, पाराशर्य बैजवापायनसे, बैजवापायन कौशिकायनि से, कौशिकायनि ॥ २ ॥

घृतकौशिकाद्घृतकौशिकः पाराशर्यायणात्पाराशर्यायणः पाराशर्यात्पाराशर्यो जातूकर्ण्याज्जातूकर्ण्य आसुरायणाच्च यास्काच्चाऽऽसुरायणस्त्रैवणेस्त्रैवणिरौपजन्धनेरौपजन्धनिरासुरेरासुरिर्भारद्वाजाद्भारद्वाज आत्रेयादात्रेयो माण्टेर्माण्टिर्गौतमाद्गौतमो गौतमाद्गौतमो वात्स्याद्वात्स्यः शाण्डिल्याच्छाण्डिल्यः कैशोर्यात्काप्यात्कैशोर्यः काप्यः कुमारहारितात्कुमारहारितो गालवाद्गालवो विदर्भीकौण्डिन्याद्विदर्भीकौण्डिन्यो वत्सनपातबाभ्रवाद्वत्सनपातबाभ्रवः पथःसौभरात्पन्थाः सौभरोऽयास्यादाङ्गिरसादयास्य आङ्गिरस आभूतेस्त्वाष्ट्रादाभूतिस्त्वाष्ट्रो विश्वरूपात्त्वाष्ट्राद्विश्वरूपस्त्वाष्ट्रोऽश्विभ्यामश्विनौ दधीच आथर्वणाद्दध्यङ्ङाथर्वणो-

थर्वणो दैवादथर्वा दैवो मृत्योःप्राध्वᳫँसनान्मृत्युः प्राध्वᳫँसनः प्रध्वᳫँसनात्प्रध्वᳫँसन एकर्षे-रेकर्षिर्विप्रचित्तेर्विप्रचित्तिर्व्यष्टेर्व्यष्टिः सनारोः सनारुः सनातनात्सनातनः सनातनात्सनगः परमेष्ठिनः परमेष्ठी ब्रह्मणो ब्रह्म स्वयंभु ब्रह्मणे नमः ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(घृतकौशिकात्) घृतकौशिकसे (घृत-कौशिकः) घृतकौशिक (पाराशर्यायणात्) पाराशर्यायणसे (पाराशर्यायणः) पाराशर्यायण (पाराशर्यात्) पाराशर्यसे (पाराशर्यः) पाराशर्य (जातूकर्ण्यात्) जातूकर्ण्यसे (जातूक-र्ण्यः) जातूकर्ण्य (आसुरायणात्) आसुरायणसे (च) और (यास्कात्, च) यास्कसे भी (आसुरायणः) आसुरा-यण (त्रैवणेः) त्रैवणिसे (त्रैवणिः) त्रैवणि (औप-जन्धनेः) औपजन्धनिसे (औपजन्धनिः) औपजन्धनि (आसुरेः) आसुरिसे (आसुरिः) आसुरि (भारद्वा-जात्) भारद्वाजसे (भारद्वाजः) भारद्वाज (आत्रे-यात्) आत्रेयसे (आत्रेयः) आत्रेय (माण्टेः) माण्टि से (माण्टिः) माण्टि (गौतमात्) गौतमसे (गौतमः) गौतम (गौतमात्) गौतमसे (गौतमः) गौतम (वा-त्स्यात्) वात्स्यसे (वात्स्यः) वात्स्य (शाण्डिल्यात्) शाण्डिल्यसे (शाण्डिल्यः) शाण्डिल्य (कैशोर्यात्, काप्यात्) कैशोर्य काप्यसे (कैशोर्यः काप्यः) कैशोर्य काप्य (कुमारहारितात्) कुमारहारित से (कुमार-हारितः) कुमारहारित (गालवात्) गालव से (गालवः) गालव (विदर्भीकौण्डिन्यात्) विदर्भीकौ-

ण्डिन्यसे (विदर्भीकौण्डिन्यः) विदर्भीकौण्डिन्य (वत्सनपातः, बाभ्रवात्) वत्सनपात् बाभ्रवसे (वत्सनपाद्बाभ्रवः) वत्सनपात बाभ्रव (पथः, सौभरात्) पन्था सौभरसे (पन्थाः, सौभरः) पन्था सौभर अयास्यात्, आङ्गिरसात्) अयास्य आङ्गिरससे (अयास्यः, आङ्गिरसः) अयास्य आङ्गिरस (आभूतेः, त्वाष्ट्रात्) आभूति त्वाष्ट्रसे (आभूतिः, त्वाष्ट्रः) आभूति त्वाष्ट्र (विश्वरूपात्, त्वाष्ट्रात्) विश्वरूप त्वाष्ट्रसे (विश्वरूपः,त्वाष्ट्रः) विश्वरूप त्वाष्ट्र (अश्विभ्याम्) अश्विनीकुमारोंसे (आश्विनौ) अश्विनीकुमार (दधीचः, आथर्वणात्) दध्यङ् आथर्वणसे (दध्यङ् आथर्वणः) दध्यङ् आथर्वण (अथर्वणः, दैवात्) अथर्वा दैवसे (अथर्वा, दैवः) अथर्वा दैव (मृत्योः, प्राध्वंसनात्) मृत्यु प्राध्वंसनसे (मृत्युः, प्राध्वंसनः) मृत्यु प्राध्वंसन (प्रध्वंसनात्) प्रध्वंसनसे (प्रध्वंसनः) प्रध्वंसन (एकर्षेः) एकर्षिसे (एकर्षिः) एकर्षि (विप्रचित्तेः) विप्रचित्तिसे (विप्रचित्तिः) विप्रचित्ति (व्यष्टेः) व्यष्टिसे (व्यष्टिः) व्यष्टि (सनारोः) सनारुसे (सनारुः) सनारु (सनातनात्) सनातनसे (सनातनः) सनातन (सनगात्) सनगसे (सनगः) सनग (परमेष्ठिनः) विराट्से (परमेष्ठी) विराट (ब्रह्मणः) हिरण्यगर्भसे (ब्रह्म) हिरण्यगर्भ (स्वयंभुः) नित्य है (ब्रह्मणे) ब्रह्मको (नमः) नमस्कार है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)—ऊपरोक्त कौशिकायनि घृतकौशिकसे, घृतकौशिक पाराशर्यायणसे, पाराशर्यायण पाराशर्यसे, पाराशर्य जातूकर्ण्यसे, जातूकर्ण्य आसुरायणसे और यास्कसे, आसुरायण त्रैवणिसे, त्रैवणि औपजंघनिसे,

औपजंघनि आसुरिसे, आसुरि भारद्वाजसे, भारद्वाज आत्रेयसे, आत्रेय मांटिसे, माण्टि गौतमसे, गौतम अन्य गौतमसे, वह गौतम वात्स्यसे, वात्स्य शाण्डिल्य से, शाण्डिल्य कैशोर्य काप्यसे, कैशोर्य काप्य कुमारहारितसे, कुमारहारित गालवसे, गालव विदर्भी कौण्डिन्य से, विदर्भीकौण्डिन्य वत्सनपात् बाभ्रवसे, वत्सनपात् बाभ्रव पन्था सौभरसे, पन्था सौभर अयास्य आङ्गिरस से, अयास्य आङ्गिरस आभूति-त्वाष्ट्रसे, आभूति-त्वाष्ट्र विश्वरूप-त्वाष्ट्रसे, विश्वरूप-त्वाष्ट्र अश्विनीकुमारोंसे, अश्विनीकुमार दध्यङ् आथर्वणसे, दध्यङ् आथर्वण अथर्वा दैवसे, अथर्वादैव मृत्यु प्राध्वंसनसे, मृत्यु प्राध्वंसन प्रध्वंसनसे, प्रध्वंसन एकर्षिसे, एकर्षि विप्रचित्ति से, विप्रचित्ति व्यष्टिसे, व्यष्टि सनारुसे सनारु सनातनसे, सनातन सनगसे, सनग विराट्से, और विराट हिरण्यगर्भसे विद्या पाता हुआ, हिरण्यगर्भको अन्तर्यामीके द्वारा वेदविद्या मिली. इसलिये आगेको आचार्यपरम्परा नहीं है, ब्रह्म वेदरूपसे स्थित है, इसकारण वेद नाम वाला ब्रह्म नित्य है, उस वेदरूप ब्रह्मको प्रणाम है

द्वितीयाध्यायस्य षष्ठं ब्राह्मणं समाप्तम् ।

॥ द्वितीय अध्याय समाप्त ॥

तृतीय अध्याय

इसप्रकार आगमप्रधान मधुकाण्डसे कहेहुए अर्थको युक्तिसे निरूपण करनेके लिये याज्ञवल्क्यीय काण्डका आरम्भ होता है। इसमें वाद और जल्परूप दो प्रकार की युक्तियें हैं, उनमेंसे पहले जल्पकथा नामकी युक्तियें दिखायी जायँगी। उन युक्तियोंका प्रसङ्ग उठानेके लिये, विज्ञानकी प्रशंसा करनेके लिये और विद्या प्राप्तिके उपाय दानको दिखानेके लिये श्रुति अश्वल ब्राह्मणकी आख्यायिकाको रचती है—

॥ ॐ ॥ जनको ह वैदेहो बहुदक्षिणेन यज्ञेनेजे तत्र ह कुरुपञ्चालानां ब्राह्मणा अभिसमेता बभूवुस्तस्य ह जनकस्य वैदेहस्य विजिज्ञासा बभूव कः स्विदेषां ब्राह्मणानामनूचानतम इति स ह गवाᳪं सहस्रमवरुरोध दश दश पादा एकैकस्याः शृङ्गयोराबद्धा बभूवुः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(वैदेहः) विदेह देशका (ह) प्रसिद्ध (जनकः) जनक (बहुदक्षिणेन) बहुत दक्षिणा वाले (यज्ञेन) यज्ञके द्वारा (ईजे) यजन करता हुआ (तत्र) उसमें (कुरुपञ्चालानाम्) कुरु और पञ्चाल देशोंके (ह) प्रसिद्ध (ब्राह्मणाः) ब्राह्मण (अभिसमेताः) चारों ओरसे इकट्ठे (बभूवुः) हुए (वैदेहस्य) विदेहदेशके (ह) प्रसिद्ध (जनकस्य) जनकको (एषाम्) इन (ब्राह्मणानाम्) ब्राह्मणोंमें (कः स्वित्) कौन

(अनूचानतमः) श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता है (इति) यह (विजिज्ञासा) विशेषरूपसे जाननेकी इच्छा (बभूव) हुई (सा, ह) वह प्रसिद्ध (गवाम्) गौओंके (सहस्रम्) हजारको (अवरुरोध) रोकता हुआ (एकैकस्याः) एक एकके (शृङ्गयोः) सींगोंमें (दश, दश, पादाः) दश दश पाद (बद्धाः, बभूवुः) बँधेहुए थे ॥ १ ॥

(भावार्थ)-विदेह देशके प्रसिद्ध राजा जनकने जिसमें ब्राह्मणोंको बहुतसी दक्षिणा दीजाती है ऐसा बहुदक्षिण नामका यज्ञ किया था । उस यज्ञमें कुरुदेशके और पञ्चाल देशके प्रसिद्ध २ बहुतसे ब्राह्मण निमंत्रित हो चारों ओरसे आकर इकट्ठे हुए थे उस प्रसिद्ध विदेहराज जनकको यह जाननेकी इच्छा हुई कि-इन सब ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता कौन है ? राजा जनकने इस बातको जाननेके लिये एक बाड़ेमें छोटी अवस्थाकी एक सहस्र गौएँ मँगवाकर श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणको देनेके लिये घेरकर खड़ी करदीं, उनमेंकी हरएक गौके दोनों सींगोंमें दश २ पाद सुवर्ण मँढा हुआ था । एक पलके चौथाईका नाम पाद है और तीन तोला दो मासे और आठ रत्ती का एक पल होता है ॥ १ ॥

तान् होवाच ब्राह्मणा भगवन्तो यो वो ब्रह्मिष्ठः स एता गा उदजतामिति । ते ह ब्राह्मणा न दधृषुरथ ह याज्ञवल्क्यः स्वमेव ब्रह्मचारिणमुवाचैताः सोम्योदज सामश्रवा३इति ता होदाचकार ते ह ब्राह्मणाश्चुक्रुधुः कथं नो ब्रह्मिष्ठो ब्रुवीतेत्यथ ह जनकस्य वैदेहस्य होताश्वलो

बभूव । स हैनं पप्रच्छ त्वं नु खलु नो याज्ञवल्क्य ब्रह्मिष्ठोऽसी ३ इति स होवाच नमो वयं ब्रह्मिष्ठाय कुर्मो गोकामा एव वयँ स्म इति तँ ह तत एव प्रष्टुं दध्रे होताऽश्वलः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध (तान्) उन ब्राह्मणोंके प्रति (इति) इसप्रकार (उवाच) कहताहुआ (भगवन्तः, ब्राह्मणाः) हे पूजनीय ब्राह्मणों ! (वः) तुममें (यः) जो (ब्रह्मिष्ठः) श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता [भवेत्] हो (सः) वह (एताः,गाः) इन गौओंको (उदजताम्) ले जाय (ते, ह, ब्राह्मणाः) वे प्रसिद्ध ब्राह्मण (न, दधृषुः) समर्थ नहीं हुए (अथ) अनन्तर (ह) प्रसिद्ध (याज्ञवल्क्यः) याज्ञवल्क्य (स्वम्, एव) अपने ही (ब्रह्मचारिणम्) ब्रह्मचारीके प्रति (इति) इसप्रकार (उवाच) बोला (सोम्य) हे प्रियदर्शन ! (सामश्रवा ३) हे सामकी विधिको सुननेवाले (एताः) इनको (उदज) लेजा (ताः) उनको (उदाचकार,ह) ले ही गया (ते, ह, ब्राह्मणाः) वे प्रसिद्ध ब्राह्मण (चुक्रुधुः) क्रोधमें भरगये (अथ) अब (वैदेहस्य, ह, जनकस्य) विदेहराज प्रसिद्ध जनकका (अश्वलः) अश्वल नामका (होता) याजक (बभूव) था (सः, ह) वह प्रसिद्ध (एनं, इति पप्रच्छ) इससे इसप्रकार बूझता हुआ (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (खलु) निःसन्देह (त्व, नु) तू ही (नः) हमारा (ब्रह्मिष्ठः, असि) श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता है (सः, ह) वह प्रसिद्ध (उवाच) बोला (वयम्) हम (ब्रह्मिष्ठाय) ब्रह्मिष्ठके अर्थ (नमः, कुर्मः) प्रणाम करते हैं (वयम्) हम (गोकामाः, एव) गौओंकी कामना करनेवाले ही

(स्मः) हैं (इति) ऐसा कहा (ततः, एव) तिससे ही (होता, अश्वलः) याजक अश्वल (तं, ह, प्रष्टुम्) उससे ही बूझनेको (दध्रे) मनमें रखता हुआ ॥ २ ॥

(भावार्थ)–फिर जनकने उन ब्राह्मणोंसे कहा, कि–हे पूजनीय ब्राह्मणो ! जो तुममें सबसे श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता हो वह इन गौओंको अपने घर लेजाय, इसपर उन ब्राह्मणोंमेंसे कोई ऐसा न करसका, तब प्रसिद्ध याज्ञवल्क्यने अपने शिष्यसे कहा, कि—हे सोम्य ! हे साम की विधिको सुननेवाले ! इन गौओंको हाँककर हमारे घर लेजा, यह सुनकर उनका शिष्य गौओंको लेगया इसप्रकार ब्रह्मवेत्ताके लिये नियत की हुई गौओंको लेजानेसे याज्ञवल्क्यने अपना ब्रह्मिष्ठपना दिखलाया इस पर वहां जो और ब्राह्मणपण्डित थे उनने अपना अपमान हुआ समझा और वे क्रोध करके कहने लगे कि—अरे ! हमारे सामने सो आ, तू अपनेको सब से श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता कैसे समझता है ? उस समय अश्वल नामवाले राजाके यज्ञ करानेवाले होताने याज्ञवल्क्यसे बूझा कि–हे याज्ञवल्क्य ! हम सबोंमें तुमने ही अपने को श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता कैसे समझा ? उद्धतपना न होना ब्रह्मवेत्ताका लक्षण है, इस बातको सूचित करती हुई श्रुति याज्ञवल्क्यका उत्तर दिखाती है—याज्ञवल्क्यने कहा, कि—मैं ब्रह्मवेत्ताको प्रणाम करता हूं, गौएँ लेने की मेरी इच्छा हुई, इसलिये मैंने गौएँ लेली हैं । मुनिने ऐसा कहा, इसलिये ही मानो उन्होंने यह बात मानली मैं श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता हूँ, इसलिये ही अश्वल होताने अपने मनमें याज्ञवल्क्यसे बूझनेका विचार किया ॥ २ ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदँसर्वं मृत्युनाप्तँ

सर्वं मृत्युनाऽभिपन्नं केन यजमानो मृत्यो-
राप्तिमतिमुच्यते इति होत्रर्त्विजाऽग्निना वाचा
वाग्वै यज्ञस्य होता तद्येयं वाक् सोऽयमग्निः
स होता स मुक्तिः साऽतिमुक्तिः ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (इति) ऐसा (उवाच, ह) कहता हुआ (यत्, इदम्) जो यह (सर्वम्) सब (मृत्युना) मृत्यु करके (आप्तम्) व्याप्त है (सर्वम्) सब (मृत्युना, अभिपन्नम्) मृत्यु करके ग्रस्त है (केन) किस साधनसे (यजमानः) यजमान (मृत्योः) मृत्युकी (आप्तिम्) प्राप्तिको (अतिमुच्यते) लांघकर छूटता है (इति) इसप्रकार (होत्रा, ऋत्विजा) होतारूप ऋत्विजसे (वाचा, अग्निना) वाणीरूप अग्निसे (यज्ञस्य) यजमानकी (वाक्, वै) वाणी ही (होता) ऋत्विक् है (तत्) वह (या) जो (इयम्) यह (वाक्) वाणी है (सः, अयम्) सो यह (अग्निः) अग्नि है (सः, होता) वह होता है (सः, मुक्तिः) वह मुक्ति है (सा, अतिमुक्तिः) वह अतिमुक्ति है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-वह अश्वल, हे याज्ञवल्क्य ! ऐसा संबोधन करके कहनेलगा, कि-ये जो ऋत्विक् अग्नि आदि कर्मके साधनोंका समूह है, यह सब, स्वाभाविक अज्ञानसे उत्पन्न हुई आसक्तिसहित कर्मरूप मृत्युसे व्याप्त है, केवल व्याप्त ही नहीं है, किन्तु यह सब काम्यकर्मरूप मृत्युसे ग्रसा हुआ है, अतः यह बताइये, कि-यजमान कौनसे साधनसे मृत्युके समीप लेजानेवाली बातों

से अलग रहकर मृत्युके चुङ्गलसे छूटजाता है ? अश्वल के ऐसा प्रश्न करने पर याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि—"होतारूप ऋत्विक् और वाणीरूप अग्निसे" इसके अर्थको श्रुति स्वयं ही कहती है, कि-यज्ञ कहिये यजमानकी वाणी ही अधियज्ञमें होतारूप ऋत्विक् है और वह जो इस यजमानकी वाणी है वह अधिदैवत रूप अग्नि है और वाणीके साथ एकताको प्राप्त हुआ वह अग्नि होता है। उस परिच्छिन्न होता और वाणी को अपरिच्छिन्न अग्निरूपसे चिन्तवन करने पर पूर्वोक्त मृत्युके अतिक्रमणरूप मुक्तिका साधन है, वह मुक्ति फलरूप अग्निमात्रकी प्राप्तिरूप अतिमुक्तिका साधन है ॥ ३ ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदꣳ सर्वमहोरात्राभ्यामाप्तꣳ सर्वमहोरात्राभ्यामभिपन्नं केन यजमानोऽहोरात्रयोराप्तिमतिमुच्यत इत्यध्वर्युणर्त्विजा चक्षुषादित्येन चक्षुर्वै यज्ञस्याध्वर्युस्तद्यदिदं चक्षुः सोऽसावादित्यः सोऽध्वर्युः स मुक्तिः सातिमुक्तिः ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध अश्वल (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य ! (इति) इसप्रकार (उवाच) बोला (यत्) जो (इदम्) यह है (सर्वम्) सब (अहोरात्राभ्याम्) अहोरात्रसे (आप्तम्) व्याप्त है (सर्वम्) सब (अहोरात्राभ्याम्) अहोरात्रसे (अभिपन्नम्) ग्रस्त है (केन किस साधनसे (यजमानः) यजमान (अहोरात्रयोः) अहोरात्र की (आप्तिम्) व्याप्तिको (अतिमुच्यते) अतिक्रमण

करके छूटता है (इति) ऐसा कहने पर (अध्वर्युणा) अध्वर्युरूप (ऋत्विजा) ऋत्विज्के द्वारा (चक्षुषा) चक्षुरूप (आदित्येन) आदित्यके द्वारा (यज्ञस्य) यजमानका (चक्षुः, वै) चक्षु ही (अध्वर्युः) अध्वर्यु है (तत्) सो (यत्) जो (इदम्) यह (चक्षुः) चक्षु है (सः) वह (असौ) यह (आदित्यः) आदित्य है (सः) वह (अध्वर्युः) अध्वर्यु है (सः) वह (मुक्तिः) मुक्ति है (सा) वह (अतिमुक्तिः) अतिमुक्ति है ॥४॥

(भावार्थ)—उस अश्वलने हे याज्ञवल्क्य ! ऐसा संबोधन करके कहा, कि—यह जो कर्मके सकल साधनोंका समूह है यह अहोरात्रसे व्याप्त है तथा जो यह सब अहोरात्रसे ग्रस्त होरहा है, यजमान कौनसे साधनसे इस अहोरात्रका विषय न होकर इसके युङ्गलसे छूटता है ? अश्वलके इस प्रश्नका उत्तर देतेहुए याज्ञवल्क्यने कहा, कि—"अध्वर्युरूप ऋत्विक् और चक्षुरूप आदित्य से" इसका तात्पर्य यह है, कि—यजमानकी आँख ही अधियज्ञमें अध्वर्यु है और वह यजमानकी आँख ही अधिदैवतरूप आदित्य है और नेत्रके साथ एकताको प्राप्त हुआ वह आदित्य अध्वर्यु है । वह परिच्छिन्न अध्वर्यु तथा नेत्र अपरिच्छिन्न आदित्यरूपसे चिन्तित होने पर अहोरात्रका अतिक्रमणरूप मुक्तिका साधन है और वह मुक्ति फलरूप आदित्यमात्रकी प्राप्तिरूप अतिमुक्तिका साधन है ॥ ४ ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदꣳसर्वं पूर्वपक्षापरपक्षाभ्यामाप्तं सर्वं पूर्वपक्षापरपक्षाभ्यामभिपन्नं केन यजमानः पूर्वपक्षापरपक्षयोराप्तिमतिमुच्यत

इत्युद्गात्रर्त्विजा वायुना प्राणेन प्राणो वै यज्ञ-
स्योद्गाता तद्योऽयं प्राणः स वायुः स उद्गाता
स मुक्तिः साऽतिमुक्तिः ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध अश्वल (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (इति) ऐसा (उवाच) बोला (यत्, इदं, सर्वम्) जो यह सब (पूर्वपक्षापरपक्षाभ्याम्) प्रथम पक्ष और द्वितीय पक्ष से (आप्तम्) व्याप्त है (सर्वम्) सब (पूर्वपक्षापरपक्षाभ्याम्) प्रथम पक्ष और द्वितीय पक्षसे (अभिपन्नम्)ग्रस्त है (यजमानः) यजमान (केन) किस साधन से (पूर्वपक्षापरपक्षयोः) पूर्व पक्ष और अपर पक्ष की (आप्तिम्) व्याप्तिको (अतिमुच्यते) लांघ कर छूटता है (इति) ऐसा प्रश्न करने पर (उद्गात्रा) उद्गाता रूप (ऋत्विजा) ऋत्विक् के द्वारा (वायुना, प्राणेन) वायुरूप प्राण के द्वारा (यज्ञस्य) यजमानका (प्राणः वै) प्राण ही (उद्गाता) उद्गाता है (तत्) सो (यः) जो (अयम्) यह (सः) वह (वायुः) वायु है (सः) वह (उद्गाता) उद्गाता है (सः) वह (मुक्तिः) मुक्ति है (सा) वह (अतिमुक्तिः) अतिमुक्ति है ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-उस अश्वलने कहा, कि-हे याज्ञवल्क्य यह सब कर्मके साधनोंका समूह कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष ! से व्याप्त है और केवल व्याप्त ही नहीं किन्तु ग्रस्त है, कौनसे साधन से यजमान इन दोनों पक्षोंका विषय नहीं होता और इनके चुङ्गल से छूटता है ! इसके उत्तरमें याज्ञवल्क्यने कहा, कि-"उद्गाता रूप ऋत्विक् और प्राण रूप वायुसे,, इसका तात्पर्य श्रुति स्वयं कहती है, कि—

यजमानका प्राण ही अधियज्ञमें उद्गाता है, वह प्राण ही अधिदैवत रूप वायु है और प्राणके साथ एकताको पाया हुआ वह वायु ही उद्गाता है, वे परिच्छिन उद्गाता और प्राण जब अपरिच्छिन्न वायुरूपसे चिन्तवन किये जाते हैं तब कृष्ण पक्ष और शुक्लपक्षके अतिक्रमणरूप मुक्तिका साधन होते हैं और यह मुक्ति फलरूप वायुभावकी प्राप्ति रूप अतिमुक्तिका साधन होती है ॥ ५ ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदमन्तरिक्षमनारम्बण मिव केनाऽक्रमेण यजमानः स्वर्गं लोकमाक्रमत इति ब्रह्मणर्त्विजा मनसा चन्द्रेण मनो वै यज्ञस्य ब्रह्मा तद्यदिदं मनः सोऽसौ चन्द्रः स ब्रह्मा स मुक्तिः सातिमुक्तिरित्यतिमोक्षा अथ सम्पदः॥६॥

अन्वय और पदार्थ—(ह) प्रसिद्ध अश्वल (याज्ञवल्क्य) याज्ञवल्क्य (इति) ऐसा (उवाच) बोला, (यत्) जो (इदम्) यह (अन्तरिक्षम्) आकाश (अनारम्बणं, इव) निरालम्बसा है (केन, आक्रमेण) किस आश्रय से (यजमानः) यजमान (स्वर्गं, लोकम्) स्वर्ग लोक को (आक्रमते) पाता है (इति) ऐसा कहने पर (ब्रह्मणा) ब्रह्मारूप (ऋत्विजा) ऋत्विजके द्वारा (मनसा, चन्द्रेण) मनोरूप चन्द्रमाके द्वारा (यज्ञस्य) यजमानका (मनः, वै) मन ही (ब्रह्मा) ब्रह्मा है (तत्) सो (यत्, इदम्) जो यह (मनः) मन है (सः असौ) सो यह (चन्द्रः) चन्द्रमा है (सः) वह (ब्रह्मा) ब्रह्मा है (सः) वह (मुक्तिः) मुक्ति है (सा) वह (अतिमुक्तिः) अतिमुक्ति है (इति) इसप्रकार (अतिमोक्षाः) अतिमुक्तियें हैं (अथ) अब (सम्पदः) सम्पत्ति नामके कर्म [उच्यन्ते] कहे जाते हैं ॥ ६ ॥

(भावार्थ)-उस अश्वलने कहा कि-हे याज्ञवल्क्य ! जो यह आकाश है यह आलम्बरहित प्रतीत होताहै फिर यजमान कौनसे आश्रयसे कर्मके फलरूप स्वर्ग लोकमें पहुंचता है ! अश्वलके इस प्रश्नका उत्तर देते हुए याज्ञवल्क्यने कहा, कि—"ब्रह्मारूप ऋत्विक् और मनोरूप चन्द्रमासे,, इसका अर्थ श्रुति स्वयं कहती है, कि यजमानका मन ही अधियज्ञमें ब्रह्मा है यह यजमानका मन ही अधिदैवतरूप चन्द्रमा है (ब्रह्मा) है। इन परिच्छिन्नरूप ब्रह्मा और मनका अपरिच्छिन्न चन्द्ररूपसे चिन्तवन करनेपर मुक्ति कहिये स्वर्ग लोकको पानेका आश्रय है यह मुक्ति ही अतिमुक्ति हैं। इसप्रकार त्वचा आदि में वायु आदिकी उपासनाके द्वारा काम्यकर्म रूप मृत्यु से अतिमुक्ति जाननी चाहिये। अब आगे सम्पत्कर्मको कहेंगे। उज्ज्वलता आदि सामान्य से व्रन आदिकी आहुतियोंसे देवलोकादिरूप फलका चिन्तवन करना अर्थात् इन आहुतियोंसे मैं देवलोक पाजाऊँगा ऐसा ध्यान करना अथवा कर्मत्व आदिरूप सामान्यसे अग्निहोत्रादिरूप छोटे२ कर्मोंमें अश्वमेधादि कर्मोंका उनके फल की कामनासे सम्पादन अर्थात् मैं यथाशक्ति अग्निहोत्र आदि कर्म करके अश्वमेधादि करता हूं ऐसा ध्यान करना सम्पत्कर्म कहलाता है ॥ ६ ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच कतिभिरयमद्यर्ग्भिर्होताऽस्मिन् यज्ञे करिष्यतीति तिसृभिरिति कतमास्तास्तिस्र इति पुरोऽनुवाक्या च याज्या च शस्यैव तृतीया किन्ताभिर्जयतीति यत्किञ्चेदं प्राणभृदिति ॥७॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध अश्वल (याज्ञवल्क्य)

हे याज्ञवल्क्य (इति) ऐसा संबोधन करके (उवाच) कहताहुआ (अयम्) यह (होता) होता (अद्य) अब (अस्मिन्, यज्ञे) इस यज्ञमें (कतिभिः) कितनी (ऋग्भिः) ऋचाओंसे [स्तुतिम्] स्तुतिको (करिष्यति) करेगा (इति) ऐसा पूछने पर (तिसृभिः) तीनसे (इति) यह उत्तर दिया (ताः) वे (तिस्रः) तीन (कतमाः) कौनसी हैं (इति) ऐसा पूछनेपर (पुरोऽनुवाक्या) पुरोऽनुवाक्या (च) और (याज्या) याज्या (च) और (तृतीया) तीसरी (शस्या, एव) शस्या भी (ताभिः) उनसे (किम्) क्या (जयति) जीतता है (इति) ऐसा पूछनेपर (यत्किञ्च) जो कुछ (इदम्) यह (प्राणभृत्) प्राणधारी है (इति) ऐसा उत्तर दिया ॥ ७ ॥

(भावार्थ)-अश्वलने कहा, कि-हे याज्ञवल्क्य ! आज होता इस आरम्भ किये हुए यज्ञमें कितनी ऋचाओंसे स्तुति करेगा ? ऐसा पूछने पर उत्तर दिया, कि-तीनसे । अश्वलने कहा वे तीन ऋचायें कौन २ सी हैं ? उत्तर दिया, कि-प्रयोगकालसे पहले होताकी प्रयोगकी हुई ऋचाओंकी जाति 'पुरोऽनुवाक्या' से, दूसरी याज्या कहिये यज्ञके लिये प्रयोग कीहुई ऋग्जातिसे और तीसरी शस्या कहिये स्तुतिके लिये प्रयोग की हुई ऋग्जातिसे अश्वलने कहा, कि-इन तीन प्रकारकी ऋचाओंसे यजमानको क्या फल मिलता है ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया कि—भूलोक आदि त्रिलोकीमें जितने भी प्राणधारी हैं उन सबको ही वशमें करलेता है ॥ ७ ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच कत्ययमद्याध्वर्युरस्मिन् यज्ञ आहुतीर्होष्यतीति तिस्र इति कतमास्तास्तिस्र

इति या हुता उज्ज्वलन्ति या हुता अतिनेदन्ते या हुता अधिशेरते किन्ताभिर्जयतीति या हुता उज्ज्वलन्ति देवलोकमेव ताभिर्जयति दीप्यत इव हि देवलोको या हुता अतिनेदन्ते पितृलोकमेव ताभिर्जयत्यतीव हि पितृलोको या हुता अधिशेरते मनुष्यलोकमेव ताभिर्जयत्यध इव हि मनुष्यलोकः ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ— (ह) प्रसिद्ध अश्वल (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य ! (इति) ऐसा (उवाच) बोला (अद्य) अब (अयं , अध्वर्युः) यह अध्वर्यु (अस्मिन,यज्ञे) इस यज्ञमें (कति, आहुतीः) कितनी आहुतियोंको (होष्यति) होमेंगे (इति) ऐसा पूछने पर (तिस्रः) तीन (इति) यह उत्तर दिया (कतमाः ताः तिस्रः) कौनसी हैं वे तीन (इति) ऐसा पूछने पर (याः) जो (हुताः) होमी हुई (उज्ज्वलन्ति) प्रकाश करती हैं (याः हुताः) जो होमी हुई (अतिनेदन्ते) अतीव शब्द करती हैं (याः हुताः) जो होमी हुई (अधिशेरते) नीचेको लेट जाती हैं [इति] ऐसा उत्तर दिया (ताभिः) उन से (किम्) क्या (जयति) जीतता है (इति) ऐसा पूछने पर (याः हुताः उज्ज्वलन्ति) जो होमी हुई प्रकाश करती हैं (ताभिः) उनसे (देवलोकं एव) देवलोक को ही (जयति) जीतता है (हि) क्यों कि [दीप्यते इव] मानो प्रकाशित होरहा है (इति) ऐसा (देवलोकः) देवलोक [भवति] होता है (याः हुताः अतिनेदन्ते) जो होमी हुई अत्यन्त शब्द करती है (ताभिः) उनसे (पितृलोकं, एव) पितृलोकको ही (जयति) जीतता है (हि)

क्योंकि (पितृलोकः) पितृलोक (अति, इव) अतिशयसा [भवति] होता है (याः हुताः) अधिशेरते) जो होमी हुई नीचे स्थित होती हैं (ताभिः) उनसे (मनुष्यलोकं एव) मनुष्यलोकको ही (जयति) जीतता है (हि) क्योंकि) मनुष्यलोकः) मनुष्यलोक (अधः इव) नीचसा [भवति] होता है ॥ ८ ॥

(भावार्थ) -उस राजपुरोहित अश्वलने कहा, कि हे याज्ञवल्क्य ! इस यज्ञमें अध्वर्यु कितनी आहुतियें होमेगा ! याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया कि—तीन आहुतियें, अश्वलने कहा कि वे आहुतियें कौनसी हैं याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि जो अग्निमें डालते ही प्रज्वलित हो जाती हैं वे समिदाज्याहुतियें कहिये समिधा और घी की आहुतियें और जो होमने पर अत्यन्त शब्द करती हैं वे दूसरी मांसाद्याहुतियें तथा जो होमने पर भूमिमेंको जाती हैं वे तीसरी दूध सोमरस आदिकी आहुतियें हैं। अश्वलने पूछा कि इन आहुतियोंसे यजमान क्या फल पाता है ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया कि-जो आहुतियें होमते ही प्रकाश करती हैं उनसे देवलोकको ही जीतता है (इनके द्वारा मैं साक्षात् देवलोक नामक फलको सिद्ध कर रहा हूँ ऐसे ध्यानसे संपादन करता है) क्यों कि-देवलोक उज्वलसा है । जो होमी हुई आहुतियें अत्यन्त शब्द करती हैं उन मांसादिकी आहुतियोंसे यमपुरीसे सम्बन्ध वाला पितृलोक ही मिलता है, क्यों कि जैसा मांस आदिका कुत्सित शब्द होता है ऐसे ही यमपुरीमें जिनको यमदूत यातना देते हैं वे "हायरे मैं मरा मरा, मुझे छोड़ो, छोड़ो" ऐसा कुत्सित शब्द करते

हैं और जो होमी हुई आहुतियें नीचे भूमि पर स्थित होती हैं, उनसे मनुष्यलोक ही मिलता है, क्योंकि—मनुष्यलोक ऊपरके लोकोंकी अपेक्षा नीचे है और यहाँ जो पाप करते हैं वे अधोगतिमें ही पड़ते हैं॥ ८॥

याज्ञवल्क्येति होवाच कतिभिरयमद्य ब्रह्मा यज्ञं दक्षिणतो देवताभिर्गोपायतीत्येकयेति कतमा सैकेति मन एवेत्यनन्तं वै मनोऽनन्ता विश्वे देवा अनन्तमेव स तेन लोकं जयति ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध अश्वल (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (इति) ऐसा (उवाच) बोला (अद्य) आज (अयं, ब्रह्मा) यह ब्रह्मा (दक्षिणतः) दक्षिण से (कतिभिः) कितने देवताओंके द्वारा (यज्ञं, गोपायति) यज्ञकी रक्षा करता है (इति) ऐसा पूछने पर (एकया) एकके द्वारा (इति) ऐसा उत्तर दिया (सा, एका) वह एक (कतमा) कौनसी है (इति) ऐसा पूछने पर (मनः एव) मन ही है (मनः) मन (अनन्तं वै) अनन्त ही है [इति] ऐसा उत्तर दिया (विश्वेदेवाः) विश्वेदेवा (अनन्ताः) अनन्त हैं (सः) वह (तेन) तिससे (अनन्तं, एव) अनन्त ही (लोकम्) लोकको (जयति) जीतता है ॥ ९ ॥

(भावार्थ)-राजपुरोहित अश्वलने फिर कहा, कि-हे याज्ञवल्क्य ! यह ब्रह्मा नामका ऋत्विक् आहवनीय अग्निसे दक्षिणकी ओर ब्रह्माके आसन पर बैठकर कितने देवताओंके द्वारा यज्ञकी रक्षा करता है ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया कि-एक देवताके द्वारा। अश्वलने

कहा वह एक देवता कौनसा है ? उत्तर दिया कि-मन ही एक देवता है यह मन वृत्तिभेदसे अनन्त है और उन वृत्तियोंके अभिमानी विश्वे देवा भी अनन्त हैं, इस लिये उपासक मन और उसके देवताओंकी अनन्तपने की दृष्टि रखकर अनन्त ही लोकको पाता है ॥ ९ ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच कत्ययमद्योद्गाताऽस्मिन् यज्ञे स्तोत्रियाः स्तोष्यतीति तिस्र इति कतमास्तास्तिस्र इति पुरोनुवाक्या च याज्या च शस्यैव तृतीया कतमास्ता या अध्यात्ममिति प्राण एव पुरोऽनुवाक्याऽपानो याज्या व्यानः शस्या किन्ताभिर्जयतीति पृथिवीलोकमेव पुरोऽनुवाक्यया जयत्यन्तरिक्षलोकं याज्यया द्युलोकꣳ शस्यया ततो ह होताऽश्वल उपरराम १०

अन्वय और पदार्थ- (ह) प्रसिद्ध अश्वल (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (इति) ऐसा (उवाच) बोला (अद्य) अब (अयं, उद्गाता) यह उद्गाता (अस्मिन्, यज्ञे) इस यज्ञमें (स्तोष्यति) स्तुति करेगा [ताः] वे (स्तोत्रियाः) गीतिवाली ऋचायें (कति) कितनी हैं (इति) इस प्रश्न पर (तिस्रः (तीन हैं (इति) यह उत्तर दिया (ताः, तिस्रः, कतमाः) वे तीन कौनसी हैं (इति) इस प्रश्न पर (पुरोऽनुवाक्या) पुरोनुवाक्या (च) और (याज्या) याज्या (च) और (तृतीया) तीसरी (शस्या, एव) शस्या भी (याः अध्यात्मम्) जो अध्यात्मविषयक हैं (ताः कतमाः) वे कौनसी हैं (इति) इस प्रश्न पर

(प्राणः, एव) प्राण ही (पुरोनुवाक्या) पुरोनुवाक्या है (अपानः) अपान (याज्या) याज्या है (व्यानः) व्यान (शस्या) शस्या है (ताभिः) उनसे (किम्) क्या (जयति) जीतता है (इति) इस प्रश्न पर (पुरोनुवाक्या) पुरोनुवाक्या से (पृथिवीलोकं, एव) पृथिवी लोकको ही (जयति) जीतता है (याज्या) याज्या से (अन्तरिक्ष-लोकम्) अन्तरिक्ष लोकको (शस्यया) शस्या से (द्युलो-कम्) द्युलोकको (ततः) तदनन्तर (ह) प्रसिद्ध (होता) होता (अश्वलः) अश्वल (उपरराम) मौन होगया १०

(भावार्थ)-अश्वलने कहा, कि—हे याज्ञवल्क्य इस यज्ञमें यह उद्गाता जिनसे स्तुति करेगा वे सामगानकी स्तोत्रिया कितनी ऋचायें हैं ? इसके उत्तरमें याज्ञवल्क्य ने कहा कि—तीन, अश्वलने पूछा वे तीन कौनसी हैं ? क्योंकि प्रगीत स्तोत्र और अप्रगीत शस्य सब तीन ही प्रकारकी ऋचाओंके अन्तर्गत हैं, अश्वलने पूछा वे तीन कौनसी हैं ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया पुरोनुवाक्या याज्या और शस्या ये अधियज्ञ नामवाली स्तोत्रिया हैं अब यह बताओ कि-अध्यात्मस्तोत्रिया कौनसी है ? याज्ञवल्कयने उत्तर दिया कि—'प' अक्षरकी तुल्यतासे प्राण ही पुरोनुवाक्या है प्राण और पुरोनुवाक्या के अनन्तरपनेकी समानतासे अपान याज्या है और प्राण तथा अपानको रोककर ऋचायें पढ़ीजाती हैं ऐसा श्रुतिमें कहा है, इसलिये व्यान शस्या है । अश्वलने कहा इन से यजमान क्या फल पाता है ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि-पुरोनुवाक्यासे पृथिवी लोकको जीतता है याज्यासे अन्तरिक्ष लोकको और शस्यासे स्वर्ग लोक

को जीतता है, इस उत्तरको सुनकर होता अश्वल यह समझ कर कि-मैं याज्ञवल्क्यको परास्त नहीं करसकूँगा मौन हो रहा उसने फिर कोई प्रश्न नहीं किया ॥१०॥

तृतीयाध्यायस्य प्रथमं ब्राह्मणं समाप्तम् ।

इसप्रकार कालकर्मरूप मृत्युसे अतिमुक्ति कही परन्तु यह वास्तविक मुक्ति नहीं है क्योंकि यह मृत्युसे ग्रस्त है इसका मृत्युसे ग्रस्तपना कहनेके लिये मृत्युका स्वरूप कहनेके लिये मृत्यु और अति मुक्तिके प्रतियोगी पदार्थों को आख्यायिकाके द्वारा श्रुति कहती है--

अथ हैनं जारत्कारव आर्त्तभागः पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच कति ग्रहाः इति कत्यतिग्रहाः। अष्टौ ग्रहा अष्टावतिग्रहा इति ये तेऽष्टौ ग्रहा अष्टावतिग्रहाः कतमे त इति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अनन्तर (एनं, ह) इन प्रसिद्ध याज्ञवल्क्यके प्रति (जारत्कारवः) जरत्कारुगोत्र वाला (आर्त्तभागः) आर्त्तभाग (पप्रच्छ) पूछता हुआ (ह) प्रसिद्ध आर्त्तभाग (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (इति) ऐसा कहकर (उवाच) पूछताहुआ (ग्रहाः कति) ग्रह कितने हैं (अतिग्रहाः, कति) अतिग्रह, कितने है (इति) इस प्रश्नपर (अष्टौ) आठ (ग्रहाः) ग्रह हैं (अष्टौ) आठ (अतिग्रहाः) अतिग्रह है (इति) यह उत्तर दिया (ये) जो (ते) वे (अष्टौ) आठ (ग्रहाः) ग्रह हैं (अष्टौ) आठ (अतिग्रहाः) अतिग्रह हैं (ते) वे (कतमे) कौनसे हैं (इति) यह प्रश्न किया ॥ १ ॥

(भावार्थ)-अश्वलके चुप होने पर याज्ञवल्क्यजीसे अरत्कारु गोत्रवाले आर्त्तभाग (ऋतभागके पुत्र) ने पूछा, उसने हे याज्ञवल्क्य ! ऐसा संबोधन कर कहा, कि-जो मुक्ति और अतिमुक्तिके प्रतिकूल हैं वे ग्रह कितने हैं और अतिग्रह कितने हैं ? इस पर याज्ञवल्क्यने कहा कि-आठ ग्रह (बन्धन करनेवाले और आठ अतिग्रह अत्यन्त बन्धन करनेवाले हैं । इस पर आर्त्तभागने फिर प्रश्न किया, कि-जो आठ ग्रह और अतिग्रह बतलाये वे कौनसे हैं ? ॥ १ ॥

प्राणो वै ग्रहः सोऽपानेनातिग्राहेण गृहीतोऽपानेन हि गन्धान् जिघ्रति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(प्राणः, वै) घ्राण ही (ग्रहः) ग्रह है (सः) वह (अपानेन) अपानरूप (अतिग्राहेण) अतिग्रहके द्वारा (गृहीतः) ग्रहण किया हुआ है (हि) क्योंकि (अपानेन) अपानसे (गन्धान्) गंधोंको (जिघ्रति) संूघता है ॥ २ ॥

(भावार्थ)-याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि-वायुसहित प्रसिद्ध प्राण इन्द्रिय ही ग्रह है, यह घ्राणरूप ग्रह अपान कहिये घ्राणेन्द्रियके विषय गन्धरूप अतिग्रहसे खिंचा करता है, क्योंकि—मनुष्य अन्तर्मुख श्वासरूप अपान के लायेहुए ही गन्धोंको सूँघा करता है ॥ २ ॥

वाग्वै ग्रहः स नाम्नाऽतिग्राहेण गृहीतो वाचा हि नामान्यभिवदति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वाक्, वै) वाणी ही (ग्रहः) ग्रह है (सः) वह नाम्ना) नामरूप (अतिग्राहेण) अतिग्रह

करके (गृहीतः) ग्रहण किया हुआ है (हि) क्योंकि (वाचा) वाणीके द्वारा (नामानि) नामोंको (अभिवदति) बोलता है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-वाणी ही ग्रह है, यह नामरूप कहिये वक्तव्य विषयरूप अतिग्रहसे ग्रहण की हुई है, क्योंकि-मनुष्य वाणीसे नामोंको बोला करता है ॥ ३ ॥

जिह्वा वै ग्रहः स रसेनातिग्राहेण गृहीतो जिह्वया हि रसान् विजानाति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(जिह्वा, वै) प्रसिद्ध जीभ (ग्रहः) ग्रह है (सः) वह (रसेन) रसरूप (अतिग्राहेण) अतिग्रहके द्वारा (गृहीतः) ग्रहण किया हुआ है (हि) क्योंकि (जिह्वया) जीभके द्वारा (रसान्) रसोंको (विजानाति) जानता है ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-जीभ भी एक ग्रह है, यह रसरूप अतिग्रहसे खिंचती रहती है, क्योंकि-मनुष्य जीभसे रसोंको जानता है ॥ ४ ॥

चक्षुर्वै ग्रहः स रूपेणातिग्राहेण गृहीतश्चक्षुषा हि रूपाणि पश्यति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(चक्षुः, वै) चक्षु ही (ग्रहः) ग्रह है (सः) वह (रूपेण, अतिग्राहेण) रूप अतिग्रहसे (गृहीतः) ग्रहण किया हुआ है (हि) क्योंकि (चक्षुषा) चक्षुके द्वारा (रूपाणि) रूपोंको (पश्यति) देखता है ॥ ५ ॥

(भावार्थ)—आँख एक ग्रह है, यह रूप नामक अतिग्रहसे खिंचती रहती है, क्योंकि—मनुष्य आँखसे रूपोंको देखता है ॥ ५ ॥

श्रोत्रं वै ग्रहः स शब्देनातिग्राहेण गृहीतः श्रोत्रेण हि शब्दाञ्शृणोति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(श्रोत्रं, वै) कान ही (ग्रहः) ग्रह है (सः) वह (शब्देन) शब्दरूप (अतिग्राहेण) अतिग्रहसे (गृहीतः) ग्रहण किया हुआ है (हि) क्योंकि (श्रोत्रेण) कानसे (शब्दान्) शब्दोंको (शृणोति) सुनता है ॥ ६ ॥

(भावार्थ)-कान एक ग्रह है, यह शब्द नामक अति ग्रहसे खिंचता रहता है, क्योंकि-मनुष्य कानसे शब्दोंको सुना करता है ॥ ६ ॥

मनो वै ग्रहः स कामेनातिग्राहेण गृहीतो मनसा हि कामान् कामयते ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(मनः, वै) मन ही (ग्रहः) ग्रह है (सः) वह (कामेन) कामरूप (अतिग्राहेण) अतिग्रह करके (गृहीतः) ग्रहण किया हुआ है (हि) क्योंकि (मनसा) मनके द्वारा (कामान्) कामनाओंको (कामयते) चाहता है ॥ ७ ॥

(भावार्थ)-मन भी एक ग्रह है, यह इच्छारूप अति ग्रहसे खिंचता रहता है, क्योंकि—मनुष्य मनसे इच्छाओंको करता है ॥ ७ ॥

हस्तौ वै ग्रहः स कर्मणाऽतिग्राहेण गृहीतो हस्ताभ्यां हि कर्म करोति ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(हस्तौ, वै) हाथ ही (ग्रहः) ग्रह है (सः) वह (कर्मणा) कर्मनामक (अतिग्राहेण) अतिग्रह करके (गृहीतः) ग्रहण किया हुआ है (हि)

क्योंकि (हस्ताभ्याम्) दोनों हाथोंसे (कर्म) कर्मको (करोति) करता है ॥ ८ ॥

(भावार्थ)-हाथ भी एक ग्रह है, यह कर्मरूप अतिग्रहसे खिंचता रहता है, क्योंकि—मनुष्य दोनों हाथोंसे कर्म किया करता है ॥ ८ ॥

त्वग्वै ग्रहः स्पर्शेणातिग्राहेण गृहीतस्त्वचा हि स्पर्शान् वेदयत इत्येतेऽष्टौ ग्रहा अष्टावतिग्रहाः ९

अन्वय और पदार्थ-(त्वक्,वै) त्वचा ही (ग्रहः) ग्रह है (सः) वह (स्पर्शेण, अतिग्राहेण) स्पर्शरूप अतिग्रहसे (गृहीतः) ग्रहण किया हुआ है (हि) क्योंकि (त्वचा) त्वचासे (स्पर्शान्) स्पर्शोंको (वेदयते) जानता है (इति) इसप्रकार (एते) ये (अष्टौ) आठ (ग्रहाः) ग्रह हैं (अष्टौ) अष्ट (अतिग्रहाः) अतिग्रह हैं ॥ ९ ॥

(भावार्थ)-त्वचा भी एक ग्रह है, यह स्पर्श नामक अतिग्रहसे खिंचता रहता है, क्योंकि—मनुष्य त्वचासे स्पर्शोंको जानता है । इसप्रकार ये आठ ग्रह और आठ अतिग्रह हैं ॥ ९ ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच यदिद सर्वं मृत्योरन्नं का स्वित्सा देवता यस्या मृत्युरन्नमित्यग्निर्वै मृत्युः सोऽपामन्नमयं पुनर्मृत्युं जयति ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध आर्त्तभाग (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (इति) ऐसा (उवाच) बोला (यत्) जो (इदम्) यह (सर्वम्) सब है (मृत्योः) मृत्युका (अन्नम्) भक्ष्य है (मृत्युः) मृत्यु (यस्याः) जिसका (अन्नम्) भक्ष्य है (सा) वह (कास्वित्) कौनसा (देवता) देवता है (इति) ऐसा पूछने पर (अग्निः,-

वै) अग्नि ही (मृत्युः) मृत्यु है (सः) वह (अपाम्) जलोंका (अन्नम्) भक्ष्य है (पुनः) फिर (मृत्युम्) मृत्युको (अपजयति) जीत लेता है ॥ १० ॥

(भावार्थ)-आर्त्तभागने कहा, कि—हे याज्ञवल्क्य ! यह जो नाम रूपके द्वारा प्रकट होने वाला जगत् है, यह सब ग्रह अतिग्रहरूप मृत्युका भक्ष्य है। उत्पत्ति विनाश वाला होनेके कारण मृत्यु से ग्रसा हुआ है। आर्त्तभाग ने कहा-- मृत्यु भी जिसका भक्ष्य है वह देवता कौनसा है ! याज्ञवल्क्यने इसका उत्तर दिया कि-प्रसिद्ध अग्नि (हिरण्यगर्भ) इसका मृत्यु है क्योंकि—जो कुछ भी अन्न करके खाया जा सकता है उस भक्षका ही भक्षक है। वह अग्नि (हिरण्यगर्भ) अध्यात्मरूप जलोंका भक्ष्य है और सबका मृत्यु ब्रह्मात्म साक्षात्कार है उस से विद्वान् पुनर्मरण (आवागमनरूप संसारचक्र) को जीतलेता है ॥ १० ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच यत्रायं पुरुषो म्रियत उदस्मात्प्राणाः क्रामन्त्याहो ३ नेति नेति । होवाच याज्ञवल्क्योऽत्रैव समवनीयन्ते स उच्छ्वयत्या ध्मायत्याध्मातो मृतः शेते ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ- (ह) प्रसिद्ध (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (इति) ऐसा (उवाच) बोला (यत्र) जब (अयं, पुरुषः) यह पुरुष (म्रियते) मरता है (अस्मात्) इसके शरीर से (प्राणाः) प्राण (उत्) ऊपरको (क्रामन्ति) गमन करते हैं (आहो) या (न) नहीं (इति) इस प्रश्न पर (न) नहीं (अत्र, एव) यहां ही (समवनीयन्ते) लीन होजाते हैं (सः) वह (उच्छ्वयति फूलता है (आध्मायति) मरजाता है (आध्मातः)

मरा हुआ (मृतः) मरकर (शेते) पड़ा रहता है (इति) इसप्रकार (याज्ञवल्क्यः, ह) प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य (उवाच) कहता हुआ ॥ ११ ॥

(भावार्थ)-आर्त्तभागने पुकार कर कहा, कि—हे याज्ञवल्क्य! ब्रह्मात्मसाक्षात्कार रूप महामृत्युके द्वारा कार्य सहित अज्ञान रूप मृत्युको जीत लेने पर यह मुक्त हुआ पुरुष जिस समय मरता है तब बीचमें रहकर मुक्तिमें बाधा डालने वाले वासनामय नाम आदि अति ग्रहों सहित वाणी आदि ग्रह इस विद्वान्के शरीरमेंसे निकल कर ऊपरको जाते हैं या नहीं? ऐसा प्रश्न करने पर याज्ञवल्क्यने कहा कि- उत्क्रमण नहीं करते, किन्तु जैसे समुद्र में तरङ्ग लीन हो जाती हैं इस प्रकार ही ब्रह्म में एकताको प्राप्त हुए इस विद्वान्में ही लीन होजाते हैं उस मुक्त पुरुषका देह फूलता है धोंकनीकी समान बाहरी वायुसे पूर्ण होजाता है और पूर्ण होकर निश्चेष्ट पड़ा रहता है, इसलिये देहका ही धर्म मरने का है ॥ ११ ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच यत्रायं पुरुषो म्रियते किमेनं न जहातीति नामेत्यनन्तं वै नामानन्ता विश्वे देवा अनन्तमेव स लोकं जयति ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (इति) ऐसा (उवाच) बोला (यत्र) जब (अयं, पुरुषः) यह पुरुष (म्रियते) मरता है (एनम्) इसको (किम्) क्या (न) नहीं (जहाति) त्यागता है (इति) इसपर (नाम) नाम (इति) यह उत्तर दिया, (नाम, वै) प्रसिद्ध नाम (अनन्तम्) नित्य है (विश्वेदेवाः) विश्वे देवा (अनन्ताः) अनन्त हैं (सः) वह

(तेन) उसके द्वारा (अनन्तं, एव) अनन्त ही (लोकम्) लोकको (जयति) जीतता है ॥ १२ ॥

(भावार्थ)-आर्त्तभागने कहा, कि—हे याज्ञवल्क्य यह विद्वान् पुरुष जब मरता है उस समय इसको कौन नहीं त्यागता है। इसके उत्तर में याज्ञवल्क्यने कहा कि—नाम इसको नहीं त्यागता है, वह व्यवहारिक रीतिसे शेष रहता है, वह प्रसिद्ध नाम व्यवहारिक रीति से नित्य है, उस नामके अनन्तपनेके अधिकार वाले विश्वेदेवा अनन्त हैं, 'मैं ब्रह्म हूँ'। ऐसी उपासनासे जो उन देवताओंको आत्मभाव से पाजाता है वह इस उपासनाके द्वारा अनन्त लोकको ही जीत लेता है ॥ १२ ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच यत्रास्य पुरुषस्य मृतस्याग्निं वागप्येति वातं प्राणश्चक्षुरादित्यं मनश्चन्द्रं दिशः श्रोत्रं पृथिवीᳩ शरीरमाकाशमात्मौषधीर्लोमानि वनस्पतीन् केशा अप्सु लोहितञ्च रेतश्च निधीयते क्वाऽयं तदा पुरुषो भवतीत्याहर सोम्य हस्तमार्त्तभागाऽऽवामेवैतस्य वेदिष्यावो न नावेतत्सजन इति तौ होत्क्रम्य मन्त्रयाञ्चक्राते तौ ह यदूचतुः कर्म हैव तदूचतुरथ यत्प्रशशᳩसतुः कर्म हैव तत्प्रशशᳩसतुः पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेनेति ततो ह जारत्कारव आर्त्तभाग उपरराम ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (इति) ऐसा (उवाच) बोला (यत्र) जब

(मृतस्य) मरणको प्राप्त हुए (अस्य, पुरुषस्य) इस पुरुषकी (वाक्) वाणी (अग्निं, अप्येति) अग्निमें लीन होती है (प्राणः) प्राण (वातम्) वायुको (चक्षुः) चक्षु (आदित्यम्) आदित्यको (मनः) मन (चन्द्रम्) चन्द्रमाको (श्रोत्रम्) कान (दिशः) दिशाओंको (शरीरम्) शरीर (पृथिवीम्) पृथिवीको (आत्मा) हृदयाकाश (आकाशम्) महाकाशको (लोमानि) रोम (ओषधीः) औषधोंको (केशाः) केश (वनस्पतीन्) वनस्पतियोंको [अपि, यन्ति] प्राप्त होकर लीन होते हैं (लोहितम्) रुधिर (च) और (रेतः, च) वीर्य भी (अप्सु) जलमें (निधीयते) स्थापन कियाजाता है (तदा)तब (अयं, पुरुषः) यह पुरुष (क्व) कहाँ (भवति) होता है (इति) ऐसा प्रश्न करने पर (सोम्य) हे प्रियदर्शन (आर्त्तभाग) हे आर्त्तभाग (हस्तम्) हाथको (आहर) ला (आवां, एव) हम दोनों ही (एतस्य, वेदिष्यावः) इसको जानेंगे (नौ) हम दोनों (सजने) लोकोंमें भरे स्थानमें (न) नहीं (इति) ऐसा कहने पर (तौ ,ह) वे दोनों ही (उत्क्रम्य) निकल कर (मन्त्रयाञ्चक्राते) संमति करते हुए (तौ,ह) वे दोनों ही (यत्) जो (ऊचतुः) कहतेहुए (तत्) तहां (ह) प्रसिद्ध (कर्म, एव) कर्म ही (ऊचतुः) कहतेहुए (अथ) अनन्तर (यत्) जो (प्रशशंसतुः) बखानते हुए (तत्) सो (कर्म,ह, एव) प्रसिद्ध कर्मको ही (प्रशशंसतुः) बखानते हुए (पुण्येन, कर्मणा) पुण्य कर्मसे (पुण्यः, वै) पुण्यात्मा ही (पापेन) पापसे (पापः) पापात्मा (भवति) होता है (इति) ऐसा उत्तरहोनेपर (जारत्कारवः) जरत्कारुगोत्रवाला (आर्त्तभागः) आर्त्तभाग (उपरराम) मौन हो रहा ॥ १३ ॥

(भावार्थ)-उस आर्तभागने कहा, कि-हे याज्ञवल्क्यजी ! जिस समय मरणको प्राप्त हुए इस अज्ञानी पुरुषकी वाणी (वाणीकी अधिष्ठात्री देवता)अपने कारण भूत अग्निमें लीन होजाती है, प्राणवायु बाहरी वायुमें लीन होजाता है, नेत्रका अधिष्ठात्री देवता आदित्यमें लीन होजाता है, मनका अधिष्ठात्री देवता चन्द्रमामें लीन होजाता है, कानोंका अधिष्ठात्री देवता दिशाओंमें लीन होजाता है, स्थूल शरीर पृथिवीमें लीन होजाता है हृदयाकाश महाकाशमें लीन होजाता है, त्वचासहित लोम ओषधियोंके अधिष्ठाता वायुमें लीन होजाते हैं, त्वचासहित केश वनस्पतियोंके अधिष्ठाता वायुमें लीन होजाते हैं और रुधिर तथा वीर्य जलमें लीन होजाता है उस समय यह पुरुष कहाँ स्थित रहता है किसका आश्रय लेकर कार्यकारणसंघातको ग्रहण करता है ? याज्ञवल्क्यने कहा, कि-हे प्रियदर्शन ! आर्त्तभाग ! यदि तू इस प्रश्नका ठीक २ उत्तर जानना चाहता है तो मेरे हाथमें अपना हाथ ला । याज्ञवल्क्यने आर्त्तभागका हाथ पकड़ कर कहा, कि-हे आर्त्तभाग ! चलो एकान्तमें चलकर हम इस जाननेयोग्य तत्त्व पर विचार करेंगे । अनेकों वादियोंके पूर्वपक्ष हैं, इसकारण इस वस्तुका हम ऐसे जनसमूहमें निर्णय नहीं करसकते, निर्जन स्थानमें हम तुम दोनों ही इस दुरूह प्रश्नका गोपनीय उत्तर स्थिर करेंगे और उस स्थिर किये हुए उत्तरको हम तुम दोनों ही जानेंगे । तदनन्तर याज्ञवल्क्य और आर्त्तभाग एकान्तस्थानमें चलेगये और पहले लौकिकवादियोंके सब मत उठाकर एक २ का विचार करनेमें प्रवृत्त हुए । उन दोनोंने पहले २ सब पक्षोंको छोड़कर जो २ उत्तर

पक्ष निश्चित किया था उसको सुनो—जीव जो वारंवार इस कार्य कारणसंघातरूप देहको धारण करता है उसका हेतुभूत कर्म ही जीवका आश्रय है। इसप्रकार उन्होंने कर्मको ही प्रशंसा की थी। क्योंकि-इसप्रकार कार्यकरण (देह इन्द्रियादि) का ग्रहण कर्मसे ही होता है, यह बात निश्चित है, इसकारण पुण्यकर्मसे देवता आदिमें उत्पन्न हुआ प्राणी पुण्यात्मा ही होता है और पापकर्मसे स्थावर आदिमें उत्पन्न हुआ प्राणी पापात्मा ही होता है। ऐसे अकाट्य युक्तिपूर्ण याज्ञवल्क्यके उत्तरको सुन कर जरत्कारुगोत्र वाला आर्त्तभाग 'इन याज्ञवल्क्यके पराजयका तो मनमें विचार करना भी नहीं बनता' इस अभिप्रायसे चुप होकर बैठ रहा और आगेको कोई प्रश्न नहीं किया ॥ १३ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य द्वितीयं ब्राह्मणं समाप्तम्।

जब पुण्य अधिक होता है तो उससे फल भी बहुत उत्तम मिलता है, परन्तु इससे यह न समझ लेना कि-किसी महापुण्यके करनेसे मुक्तिरूप फल भी मिल जायगा क्योंकि—पुण्यके उत्कर्षका फल तो संसारके भीतर हिरण्यगर्भ पदकी प्राप्ति पर्यन्त ही है। इस ही भावको दिखानेवाली आख्यायिकाका आरम्भ करता हुआ भुज्यु ब्राह्मण कहता है, कि—

अथ हैनं भुज्युर्लाह्यायनिः पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच मद्रेषु चरकाः पर्यव्रजाम ते पतञ्चलस्य काप्यस्य गृहानैम तस्याऽसीद् दुहिता गन्धर्वगृहीता तमपृच्छाम कोऽसीति सोऽब्रवीत्सुधन्वा आङ्गिरस इति तं यदा लोकानामन्तानपृच्छा

प्रशशंस तस्माद्वायुरेव व्यष्टिर्वायुः समष्टिरप पुनर्मृत्युं जयति य एवं वेदान्नतो ह भुज्युर्ला-ह्यायनिरुपरराम ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(ह) प्रसिद्ध (ततः) तदनन्तर याज्ञवल्क्य (उवाच) बोला [भुज्यो] हे भुज्यु ! (क्व) कहाँ अश्वमेध (वै) निश्चय [एवम्] इस प्रकार (उवाच) बोला (यत्र) जहाँ (अश्वमेधयाजिनः) अश्वमेध यज्ञ करनेवाले (गच्छन्ति) जाते हैं (तत्, वै) वहाँ ही (ते) वे (अगच्छन्) गये (इति) ऐसा कहने पर (अश्वमेध-याजिनः) अश्वमेध यज्ञ करनेवाले (क्व) कहाँ (गच्छन्ति) जाते हैं (इति) ऐसा पूछनेपर (अयं, लोकः) यह लोक (वै) प्रसिद्ध (द्वात्रिंशतम्) बत्तीस (देव-रथाह्न्यानि) देवरथाह्न्य है (तम्) उसको (समन्तम्) चारों ओरसे (द्विस्तावत्) उससे द्विगुण परिमाणवाली (पृथिवी) पृथिवी (पर्येति) घेर रही है (तां, पृथिवीम्) उस पृथिवीको (समन्तम्) चारों ओरसे (द्विस्तावत्) उससे द्विगुणा (समुद्रः) समुद्र (पर्येति) घेर रहा है (तत्) उस ब्रह्माण्डमें (यावती) जितनी (क्षुरस्य) छुरेकी (धारा) धार होती है (वा) या (यावत्) जितना (मक्षिकायाः) मक्खीका (पत्रम्) पर होता है (तावान्) उतना (अन्तरेण) मध्यमें (आकाशः) आकाश है (तान्) उन यज्ञ करनेवालोंको (इन्द्रः) इन्द्र (सुपर्णः, भूत्वा) पक्षी होकर (वायवे) वायुके अर्थ (प्रायच्छत्) देता हुआ (वायुः) वायु (तान्) उनको (आत्मनि) अपनेमें (धित्वा) स्थापन करके (तत्र) तहां (अगमयत्) पहुँचाता हुआ (यत्र)

जहाँ (अश्वमेधयाजिनः) अश्वमेध यज्ञ करनेवाले (अभवन्) थे (इति) ऐसा कहा (एवमिव) ऐसे ही (वै) प्रसिद्ध (सः) वह गन्धर्व (वायुं, एव) वायुको ही (प्रशशंस) प्रशंसा करता हुआ (तस्मात्) तिससे (वायुः,एव) वायु ही (व्यष्टिः) विभिन्न आकारोंवाला है (वायुः) वायु (समष्टिः) एक सूत्रात्मारूपसे स्थित है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (पुनः मृत्युम्) पुनर्मरणको (अपजयति) जीतता है (ततः) तदनन्तर (लाह्यायनिः) लाह्यका पुत्र (ह) प्रसिद्ध (भुज्युः) भुज्यु (उपरराम) उपरामको प्राप्त हुआ ॥

(भावार्थ)—याज्ञवल्क्यने कहा, कि-हे भुज्यो ! तुझ से उस गन्धर्वने निःसन्देह यह कहा था, कि- जहां अश्वमेध यज्ञ करने वाले जाते हैं वहां ही आजकल अश्वमेध करनेवाले भी गये, ऐसा कहने पर जब पूछा कि वे अश्वमेध करनेवाले कहां जाते हैं ? तो इसका उत्तर देनेमें पहले उसने भुवन कोशका परिमाण कहा, कि-सूर्यके रथकी प्रतीत होने वाली एक दिन रातकी गति के अनुसार जितना देश नपता है यह देवरथाह्नय कहलाता है [illegible] की कल्पना है, इसका ही दूसरा नाम लोकालोक गिरि है. इस सीमा तक ही सब प्राणियोंके भोग का हेतु यह लोक, इससे आगे अलोक है। यह लोकालोक गिरि ही [illegible]सागरा सप्तद्वीपा पृथिवीकी शेष सीमा है। इस पृथिवीकी रचनाका जितना परिमाण है उससे बत्तीस गुणा स्थान सूर्यकी किरणोंसे व्याप्त रहा करता है इस सूर्यकी किरणोंसे व्याप्त स्थानका नाम त्रिलोकी है त्रिलोकी ही त्रिभुवन कहलाती है, यह त्रिभुवन लोकालोक नामक पर्वतसे घिरा हुआ है। लोकालोक पर्वतके

माथैनमब्रूम क्व पारिक्षिता अभवन्निति क्व पारिक्षिता अभववन्स त्वा पृच्छामि याज्ञवल्क्य क्व पारिक्षिता अभवन्निति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(**अथ**) अनन्तर (ह) प्रसिद्ध (एनम्) इनके प्रति (लाह्यायनिः) लह्यका पोता (भुज्युः) भुज्यु (ह) प्रसिद्ध (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (इति) इसप्रकार (उवाच) कहता हुआ (मद्रेषु) मद्र देशोंमें (चरकाः) विद्याप्रिद्धयार्थ वा ऋत्विजरूपमें (पर्यव्रजाम) चारों ओर घूमते थे (ते) वे [वयम्] हम (काप्यस्य) कपिगोत्रवाले (पतञ्चलस्य) पतञ्चलके (गृहान्, ऐम) घरों पर पहुँचे (तस्य) उस की (दुहिता) पुत्री (गन्धर्वगृहीता) किसी अमानुष जीव करके ग्रहण की हुई (आसीत्) थी (तम्) उसके प्रति (कः, असि) कौन है तू (इति) ऐसा (अपृच्छाम) पूछते हुए, (सः) वह (आङ्गिरसः) अंगिरागोत्रवाला (सुधन्वा) सुधन्वा हूं (इति) ऐसा (अब्रवीत्) कहता हुआ (तम्) उसके प्रति (यदा) जब (लोकानाम्) लोकोंके (अन्तान्) अन्तोंको (अपृच्छाम) पूछते हुए (अथ) फिर (एनम्) इसके प्रति (पारिक्षिताः) अश्व-मेध यज्ञ करनेवाले (क्व) कहाँ (अभवन्) थे (इति) ऐसा (अब्रूम) कहते हुए (पारिक्षिताः, क्व, अभवन्) अश्वमेध यज्ञ करनेवाले कहाँ थे (सः) वह [अहम्] मैं (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (पारिक्षिताः, क्व, अभवन्) अश्वमेध यज्ञ करनेवाले कहाँ थे (इति) ऐसा (त्वा पृच्छामि) तुझसे पूछता हूँ ॥ १ ॥

(भावार्थ)—आर्त्तभागके चुप होने लह्यका पोता

भुज्यु याज्ञवल्क्यसे प्रश्न करनेलगा, कि-हे याज्ञवल्क्य! हम एक समय पढ़नेके लिये या यज्ञकर्म करानेके लिये मद्रदेशमें पहुँच कर तहाँ विचरते २ कपिवंशी पतञ्चलके घर जा पहुँचे। उस पतञ्चलकी कन्याके ऊपर गन्धर्वका आवेश था। हमने उससे प्रश्न किया, कि—तू कौन है? तो उस गन्धर्वने उत्तर दिया था, कि—मैं अङ्गिरागोत्रमें उत्पन्न हुआ सुधन्वा हूँ, फिर जिस समय हमने उससे ब्रह्माण्डके अन्तके विषयमें प्रश्न किया था उस समय भुवनकोशका परिमाण जाननेके लिये कुतूहलवश हमने उससे कहा, कि-अगले पहले अश्वमेध करनेवाले लोग कहाँ और कैसे रहते थे? गन्धर्वने हमारे इस प्रश्नका यथार्थ उत्तर दे दिया था और हमने भी उस उत्तरको ठीक २ समझ लिया था इस समय हमने आपसे भी फिर वही प्रश्न बूझते हैं, कहिये इस समय वे सब अश्वमेध करनेवाले लोग कहां चलेगये हैं ॥ १ ॥

स होवाचोवाच वै सोऽगच्छन्वै ते तद्यत्राश्व-मेधयाजिनो गच्छन्तीति क्व न्वश्वमेधयाजिनो गच्छन्तीति द्वात्रिँशतं वै देवरथाह्न्यान्ययं लोकस्तँ समन्तं पृथिवी द्विस्तावत्पर्येति ताँ समन्तं पृथिवीं द्विस्तावत्समुद्रः पर्येति तद्यावती क्षुरस्य धारा यावद्वा मक्षिकायाः पत्रं तावानन्त-रेणाकाशस्तानिन्द्रः सुपर्णो भूत्वा वायवे प्राय-च्छत्तान् वायुरात्मनि धित्वा तत्रागमयद्यत्रा-श्वमेधयाजिनोऽभवन्नित्येवमिव वै स वायुमेव

(आत्मा) आत्मा (सर्वान्तरः) सबके भीतर है (यः) जो (अपानेन)अपानसे (अपानीति) अपानकी चेष्टाको करता है (सः, ते, आत्मा, सर्वान्तरः) वह तेरा आत्मा सबके अन्तर्वर्त्ती है (यः) जो (व्यानेन) व्यानके द्वारा (व्यानीति) व्यानकी चेष्टाको करता है (सः, ते, आत्मा सर्वान्तरः) वह तेरा आत्मा सबके अन्तर्वर्त्ती है (यः) जो (उदानेन) उदानके द्वारा (उदानिति) उदानकी चेष्टा करता है (सः, ते, आत्मा, सर्वान्तरः) वह तेरा आत्मा सबके भीतर है (एषः) यह (ते, आत्मा) तेरा आत्मा (सर्वान्तरः) सबके भीतर है ॥ १ ॥

(भावार्थ)-भुज्युके चुप होजाने पर चक्रके पुत्र उषस्त ने प्रश्न किया, कि—हे याज्ञवल्क्य ! जो किसी वस्तुसे रुकावट न पाकर प्रत्यक्ष स्वरूप ब्रह्म है, जो मन आदि की समान गौण ब्रह्म नहीं है और जो प्रत्यगात्मा सब के भीतर है उस ब्रह्मसे अभिन्न प्रत्यगात्माका स्वरूप मुझसे कहिये। याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि-यह तेरे भीतर जो व्यापक आत्मा है वही सबके भीतर है। उप-स्तने कहा, कि-हे याज्ञवल्क्य ? स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर और बुद्धिका जो साक्षी है इनमेंसे कौनसा आत्मा सबके भीतर है ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया कि-जिसके प्रभाव से अचेतन प्राण वायु मुख नासिकाके द्वारा बाहर निकलता है वह तेरे भीतरका आत्मा ही सबके भीतर है, जिसके प्रभावसे अचेतन अपानवायु नीचेको जानेकी क्रिया करता है वह तेरे भीतर वाला आत्मा ही सर्वा-न्तर्यामी है। सब शरीरमें व्यापक अचेतन व्यान जिसके प्रभावसे कार्य कारण संघातरूप शरीरादिमें को सब

किया करता है वह तेरे भीतर वर्त्तमान आत्मा ही सर्वा-न्तर्वर्त्ती है और अचेतन उदान वायु जिसके प्रभाव से अपनी उत्क्रमण क्रियाको करता है वह तेरे भीतर वर्त्त-मान आत्मा ही सर्वान्तर्यामी है अर्थात् जो प्राण आदि अचेतनोंको कठपुतलियोंकी समान क्रियायुक्त करता है वह तेरे संघातका आत्मा ही सर्वान्तर्यामी विज्ञानमय आत्मा है ॥ १ ॥

स होवाचोषस्तश्चाक्रायणो यथा विब्रूयादसौ गौरसावश्व इत्येवमेवैतद् व्यपदिष्टं भवति यदेव साक्षादपरोक्षाद ब्रह्म य आत्मा सर्वान्तरस्तं मे व्याचक्ष्वेत्येष त आत्मा सर्वान्तरः कतमो याज्ञवल्क्य सर्वान्तरः । न दृष्टेर्द्रष्टारं पश्येत् श्रुतेः श्रोतारꣳ शृणुया न मतेर्मन्तारं मन्वीथा न्न विज्ञातेर्विज्ञातारं विजानीयाः॥ एष त आत्मा सर्वान्तरोऽतोऽन्यदार्त्तं ततो होषस्तश्चाक्रायण उपरराम ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (चाक्रायणः) चक्रका पुत्र (ह) प्रसिद्ध (उषस्तः) उषस्त (उवाच बोला (यथा) जैसे (असौ, गौः) यह बैल है (असौ, अश्वः) यह घोड़ा है (इति) ऐसा (विब्रूयात्) बतावे (एव मेव) ऐसे ही (एतत्) वह (व्यपदिष्टम्) कथन (भवति) होता है (यत्, ब्रह्म) जो ब्रह्म (साक्षात्, अपरोक्षात् एव) साक्षात् अपरोक्ष ही है (यः) जो (आत्मा) प्रत्य-गात्मा (सर्वान्तरः) सबके भीतर है (तं, मे, व्याचक्ष्व) उसको मेरे अर्थ कहिये (इति) इसपर (एषः, ते,

एक भागमें लोक अर्थात् त्रिलोकी है और दूसरे भागमें अलोक अर्थात् महर आदि सकल लोक स्थित हैं। लोक वा त्रिलोकी सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशित हुआ करती है, अलोक वा महर आदि लोकमें सूर्यकी किरणें प्रवेश नहीं करसकती। लोक और अलोक दोनों इकट्ठे होकर पृथिवी अर्थात् भुवन कोश है। आवरण सहित भुवनकोशके बाहर उससे द्विगुण अमृत समुद्र जिसको कि पुराणोंमें घनोद नामसे भी कहा है उस भुवनकोशको वेष्टन कर रहा है। इसके आगे अण्डकटाहान्तगति आकाश है, यह आकाश छुरेकी धारा वा मक्खीके परकी समान अर्थात बहुत ही सूक्ष्म है। अश्वमेधका विराटरूप अग्नि स्थूल होनेके कारण उस अति सूक्ष्म छिद्रमेंको निकल कर बाहर नहीं जासकता, इसलिये पक्षीरूपधारी उस अग्नि ने इन अश्वमेधयाजियोंको वायुके अर्पण करदिया, वायुने इनको अपने शरीरमें धारण करके जहां पहले अश्वमेधयाजी गये थे तहां पहुँचा दिया, हे भुज्यो! उस गन्धर्व ने इसप्रकार सूत्रात्मा वायुको ही अश्वमेधयाजियोंका गन्तव्यस्थान बताकर उस की प्रशंसा की थी। वायु ही स्थावर जंगमोंके भीतर बाहर व्याप रहा है, इस कारण वायु ही व्यष्टि अर्थात् अध्यात्म अधिभूत और अधिदैव भावसे अनेकों रूपोंमें स्थित है और वायु ही समष्टि अर्थात् सूत्रात्मा होकर एक आकारमें स्थित है। जो इस प्रकार वायुको व्यष्टि और समष्टिरूप जानकर उपासना करता है वह पुनर्मरण कहिये आवागमनसे छूटजाता है लाह्यका पुत्र भुज्यु अपने प्रश्नका इसप्रकार निर्णयरूप उत्तर सुनकर चुप होरहा अर्थात् उसने फिर कुछ प्रश्न नहीं किया ॥ २ ॥

तृतीयाध्यायस्य तृतीयं ब्राह्मणं समाप्तम्

जिसको न जाननेसे प्राणी संसारमें चक्कर काटा करता है, उस आत्माका स्वरूप वास्तवमें देह इन्द्रियादिसे भिन्न और ब्रह्मसे अभिन्न प्रत्यगात्मा है, उस आत्माके स्वरूप का निर्णय करने के लिये इस उषस्त ब्राह्मण का आरम्भ है-

अथ हैनमुषस्तश्चाक्रायणः पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच यत्साक्षादपरोक्षाद् ब्रह्म य आत्मा सर्वान्तरस्तं मे व्याचक्ष्वेत्येष त आत्मा सर्वान्तरः कतमो याज्ञवल्क्य सर्वान्तरो यः प्राणेन प्राणिति स त आत्मा सर्वान्तरो योऽपानेनापानीति स त आत्मा सर्वान्तरो यो व्यानेन व्यानीति स त आत्मा सर्वान्तरो य उदानेनोदानिति स त आत्मा सर्वान्तर एष त आत्मा सर्वान्तरः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अनन्तर (ह) प्रसिद्ध (एनम्) इसके प्रति (चाक्रायणः) चक्रका पुत्र (उषस्तः) उषस्त (पप्रच्छ) पूछता हुआ (ह) प्रसिद्ध (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (इति) ऐसा (उवाच) बोला (यत्, ब्रह्म) जो ब्रह्म (साक्षात्) व्यवधानरहित (साक्षात्) मुख्य है (यः) जो (आत्मा) प्रत्यगात्मा सबके भीतर है (तम्) उसको (मे) मेरे अर्थ (व्याचक्ष्व) स्पष्टरूपसे कहो (इति) ऐसा प्रश्न करने पर (एषः) यह (ते) तेरा (आत्मा) आत्मा (सर्वान्तरः) सबके भीतर है (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (कतमः) कौनसा (सर्वान्तरः) सबके भीतर है (यः) जो (प्राणेन) प्राणके द्वारा (प्राणिति) चेष्टा करता है (सः) वह (ते) तेरा

आत्मा) यह तेरा आत्मा (सर्वान्तरः) सबके भीतर है (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (कतमः) कौन (सर्वान्तरः) सबके भीतर है, (दृष्टेः) दृष्टिके (द्रष्टारम्) द्रष्टाको (न, पश्येः) नहीं देख सकेगा (श्रुतेः) श्रवण वृत्तिके (श्रोतारम्) श्रोता को (न, शृणुयाः) नहीं सुनसकेगा (मतेः) मनोवृत्तिके (मन्तारम्) मनन करने वालेको (न, मन्वीथाः) मनन नहीं करसकेगा (विज्ञातेः) बुद्धि वृत्तिके (विज्ञातारम्) जानने वालेको (न, विजानीयाः) न जानसकेगा (एषः) यह (ते) तेरा (आत्मा) आत्मा (सर्वान्तरः) सबके भीतर है (अतः) इससे (अन्यत्) भिन्न (आर्त्तम्) मिथ्याभूत है (ततः) तदनन्तर (चाक्रायणः) चक्रका पुत्र (ह) प्रसिद्ध (उषस्तः) उषस्त (उपरराम) मौन हो रहा ॥ २ ॥

(भावार्थ)-चक्रके पुत्र उषस्तने कहा, कि-यदि कोई 'मैं गौ और घोड़ा प्रत्यक्ष दिखाता हूँ' ऐसी प्रतिज्ञा करके फिर जो चलता है वह बैल है और जो दौड़ता है वह घोड़ा है, ऐसा कहकर बैल और घोड़ेको बताता है, इसप्रकार ही तुम भी 'मैं आत्माको प्रत्यक्ष दिखाता हूँ' मेरे प्रश्नके अनुसार ऐसी प्रतिज्ञा करके प्राणचेष्टा आदि हेतुओंसे परम्पराके द्वारा उस आत्मस्वरूपको कहते हो, परन्तु अब आप व्यवहारके साथ न कहकर जो ब्रह्म साक्षात् अपरोक्ष है, जो प्रत्यगात्मा सबके भीतर है उसको मुझसे कहिये । इसप्रकार उषस्तने अपने प्रश्नको दुहराया तब मैं, अपनी की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार उत्तर देता हूँ, ऐसा कहकर याज्ञवल्क्यजी भी अपने उत्तरको प्रकारान्तरसे कहने लगे, कि-यह तेरा आत्मा

सबके भीतर है। उषस्तने कहा, कि-मेरा प्रश्न तो यह है, कि-यह गौ है, यह घोड़ा है इसके अनुसार प्रत्यक्ष रूपसे आत्माको दिखाओ, इस प्रश्नके अनुसार ही उत्तर दीजिये, हे याज्ञवल्क्यजी ! कौनसा आत्मा सबके भीतर है ? इसके उत्तरमें याज्ञवल्क्यजीने कहा कि— आत्मा किसीका विषयरूप होकर तो जाननेमें आही नहीं सकता, दृष्टिके द्रष्टाको तू कभी भी नहीं देखसकेगा, श्रवणवृत्तिके श्रोताको तू कभी नहीं सुनसकेगा, मनोवृत्तिके मनन करनेवालेको तू कदापि मनन नहीं करसकेगा और बुद्धिवृत्तिके जाननेवालेको तू कदापि नहीं जानसकेगा, यह तेरा कार्यकरणसमूहका आत्मा (कार्यकरण) सबके भीतर है, इस आत्मासे भिन्न स्थूल सूक्ष्म सब मिथ्या-नाशवान् हैं। एकमात्र आत्मा ही अविनाशी कूटस्थ वस्तु है, इसप्रकार अपने प्रश्नका उत्तर होजानेपर चाक्रायण उषस्त चुप होरहा ॥ २ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य चतुर्थं ब्राह्मणं समाप्तम्।

अथ हैनं कहोलः कौषीतकेयः पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच यदेव साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म य आत्मा सर्वान्तरस्तं मे व्याचक्ष्वेत्येष त आत्मा सर्वान्तरः। कतमो याज्ञवल्क्य सर्वान्तरो योऽशनायापिपासे शोकं मोहं जरां मृत्युमत्येति एतं। वै तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति या ह्येव पुत्रैषणा सा वित्तैषणा या वित्तै-

षणा सा लोकैषणोभे ह्येते एषणे एव भवतः ।
तस्माद् ब्राह्मणः पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन
तिष्ठासेत् । बाल्यं च पाण्डित्यं च निर्विद्याथ
मुनिरमौनञ्च मौनञ्च निर्विद्याथ ब्राह्मणः स
ब्राह्मणः केन स्याद्येन स्यात्तेनेदृश एवाऽतोऽन्य-
दार्त्तं ततो ह कहोलः कौषीतकेय उपरराम ॥१॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) अनन्तर (ह) प्रसिद्ध (एनम्) इनके प्रति (कौषीतकेयः) कुषीतकका पुत्र (कहोलः) कहोल (पप्रच्छ) पूछता हुआ (ह) प्रसिद्ध कहोल (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (इति) ऐसा (उवाच) कहता हुआ (यत्) जो (ब्रह्म) ब्रह्म (साक्षात् अपरोक्षात्, एव) साक्षात् अपरोक्ष ही है (यः, आत्मा, सर्वान्तरः) जो आत्मा सबके भीतर है (तम्) उसको (मे) मेरे अर्थ (व्याचक्ष्व) कहिये (इति) ऐसा पूछने पर (एषः, ते, आत्मा) यह तेरा आत्मा (सर्वान्तरः) सबके भीतर है (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (कतमः) कौनसा (सर्वान्तरः) सबके भीतर है (यः) जो (अशनायापिपासे) भूख प्यासको (शोकम्) शोकको (मोहम्) मोहको (जराम्) बुढ़ापेको (मृत्युम्) मृत्युको (अत्येति) लाँघता है (एतम्, वै) उसी (एतं, आत्मानम्) इस आत्माको (विदित्वा) जानकर (ब्राह्मणाः) ब्रह्मनिष्ठावाले (पुत्रैषणायाः, च) पुत्रकी एषणासे भी (वित्तैषणायाः, च) धनकी एषणासे भी (लोकैषणायाः, च) लोकैषणासे भी (व्युत्थाय) विपरीतपनेसे उठकर (अथ) फिर (भिक्षाचर्यं, चरन्ति) भिक्षाके लिये विचरण करते

है (या) जो (हि) प्रसिद्ध (पुत्रैषणा) पुत्रकी एषणा है (सा, एव) वह ही (वित्तैषणा) धनकी एषणा है (या) जो (वित्तैषणा) धनकी एषणा है (सा) वह (लोकैषणा) लोककी एषणा है (हि) क्योंकि (एते) ये (उभे) दोनों (एषणे, एव) इच्छायें ही (भवतः) हैं (तस्मात्) तिससे (ब्राह्मणः) ब्रह्मवेत्ता (पाण्डित्यं, निर्विद्य) श्रवणको निःशेष करके (बाल्येन, तिष्ठासेत्) मननसे स्थित होनेकी इच्छा करे (बाल्यम्) मनन को (च) और (पाण्डित्यञ्च) श्रवणको भी (निर्विद्य) निःशेष करके (अथ) फिर (मुनिः) मुनि [भवेत्] होय (अमौनम्) श्रवण मननको (च) और (मौनञ्च) निदिध्यासनको भी (निर्विद्य) निःशेष करके (अथ) फिर (ब्राह्मणः) ब्रह्मवेत्ता [भवेत्] होय (सः) वह (ब्राह्मणः) ब्रह्मवेत्ता (केन) किस साधनसे (स्यात्) होगा (येन) जिससे (स्यात्) होगा (तेन) उससे (ईदृशः, एव) ऐसा ही [स्यात्] होगा (अतः, अन्यत्) इससे भिन्न (आर्त्तम्) असार है (ततः) तदनन्तर (कौषीतकेयः) कुषीतकका पुत्र (ह) प्रसिद्ध (कहोलः) कहोल (उपरराम) मौन होगया ॥ १ ॥

(भावार्थ)-तदनन्तर कुषीतकका पुत्र कहोल याज्ञवल्क्यसे प्रश्न करताहुआ कहनेलगा, कि—हे याज्ञवल्क्य ! जो प्रत्यक्ष स्वरूप ब्रह्म है तथा जो प्रत्यगात्मा सबके भीतर है उसको मुझसे स्पष्ट कहो। याज्ञवल्क्य ने कहा. कि-यह तेरा आत्मा कार्यकरण शरीर इन्द्रियादि सबके भीतर है। कहोलने कहा ऐसा सर्वान्तर आत्मा कौन है ? याज्ञवल्क्यने कहा, कि-जो भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा और मृत्युके पार है वही तेरा

आत्मा सबके भीतर है । इस आत्माको 'मैं सब संसार से रहित नित्य तृप्त हूँ' ऐसा श्रुति और गुरुके उपदेश से जानकर ब्रह्मनिष्ठावाले पुरुष, पुत्रोत्पत्तिके लिये स्त्री का ग्रहणरूप पुत्रैषणासे, उपासना और गौ आदि दैव तथा मानुषी द्रव्यका ग्रहणरूप वित्तैषणासे एवं यह लोक पितृलोक और देवलोककी प्राप्तिके साधनोंका अनुष्ठान करनेकी इच्छारूप लोकैषणासे विपरीतभावके साथ हट कर अर्थात् संन्यास लेकर शेषकालमें शरीरयात्राके निर्वाहार्थ भिक्षाके लिये विचरे । जो पुत्रकामना है वही वित्तकामना है और जो वित्तकामना है वह लोककामना है, क्योंकि—दोनों ही कामना हैं । कामना पुत्रादि भेदसे तीन प्रकारकी होने पर भी कामनारूपमें एक ही है । इस कारण ब्रह्मवेत्ता शास्त्र और आचार्यसे आत्मतत्त्वको सम्यक् प्रकार जान कर कामनाका त्याग करते हैं वेदान्तवाक्यके विचाररूप श्रवणको निःशेष करके मनन करनेकी दशामें स्थित होना चाहिे । तदनन्तर श्रवण और मनन दोनोंको निःशेष करके निदिध्यासन वाला मुनि होजाय, फिर श्रवण, मनन, निदिध्यासन तीनोंको निःशेष करके दृढ़ ब्रह्मवेत्ता वा कृतार्थ होजाय । ऐसा ब्रह्मवेत्ता किस साधनसे होता है ? जिस साधनसे होता है ? उस साधनसे ऐसा ही ब्रह्मवेत्ता होता है । आत्माका अपरोक्षज्ञान (साक्षात्कार) ही ब्रह्मिष्ठ होनेका एकमात्र उपाय है और कोई इसका साधन नहीं है, इसलिये सब प्रकारकी कामनाओं को त्याग कर आत्माके ध्यानमें तत्पर रहने वाला स्वप्रकाश आत्माका साक्षात्कार पाजाता है, इस आत्मस्व-

रूपसे भिन्न और सब मृगतृष्णाके जलकी समान असार मिथ्या है। इसप्रकार अपने प्रश्नका उत्तर होजाने पर कहोल मौन होगया ॥ १ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य पञ्चमं ब्राह्मणं समाप्तम्.

अथ हैनं गार्गी वाचक्नवी पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदꣳ सर्वमप्स्वोतञ्च प्रोतञ्च कस्मिन्नु खलु वायुरोतञ्च प्रोतश्चेत्यन्तरिक्षलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खल्वन्तरिक्षलोका ओताश्च प्रोताश्चेति गन्धर्वलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु गन्धर्वलोका ओताश्च प्रोताश्चेत्यादित्यलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खल्वादित्यलोका ओताश्च प्रोताश्चेति चन्द्रलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु चन्द्रलोका ओताश्च प्रोताश्चेति नक्षत्रलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु नक्षत्रलोका ओताश्च प्रोताश्चेति देवलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु देवलोका ओताश्च प्रोताश्चेतीन्द्रलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खल्विन्द्रलोका ओताश्च प्रोताश्चेति प्रजापतिलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु प्रजापतिलोका ओताश्च प्रोताश्चेति ब्रह्मलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु ब्रह्मलोका ओताश्च प्रोताश्चेति स होवाच गार्गि माऽति प्राक्षीर्मा ते

मूर्धा व्यपप्तदनतिप्रश्न्यां वै देवतामतिपृच्छसि गार्गि माऽतिप्राक्षीरिति ततो ह गार्गी वाचक्नव्युपरराम ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अनन्तर (ह) प्रसिद्ध (एनम्) इनके प्रति (वाचक्नवी) वचक्नुकी पुत्री (गार्गी) गार्गी (पप्रच्छ) पूछती हुई (ह) प्रसिद्ध (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (इति) ऐसा (उवाच) बोली (यत्, इदं, सर्वम्) जो यह सब है (अप्सु) जलमें (ओतश्च, प्रोतश्च) ओतप्रोत हो रहा है (खलु, आपः) प्रसिद्ध जल (कस्मिन् नु) किसमें (ओताश्च, प्रोताश्च) ओत प्रोत हैं (इति) ऐसा प्रश्न करने पर (गार्गि) हे गार्गी (वायौ) वायुमें (इति) ऐसा उत्तर दिया (खलु, वायुः) प्रसिद्ध वायु (कस्मिन्, नु) किसमें (ओतश्च प्रोतश्च) ओत प्रोत है (इति) इस प्रश्न पर (गार्गि) हे गार्गी ! (अन्तरिक्षलोकेषु) अन्तरिक्ष लोकमें (इति) यह उत्तर दिया (खलु, अन्तरिक्षलोकाः (प्रसिद्ध अन्तरिक्ष लोक (कस्मिन्नु) किसमें (ओताश्च, प्रोताश्च) ओतप्रोत हैं (इति) इस प्रश्न पर (गार्गि) हे गार्गी ! (गन्धर्वलोकेषु) गन्धर्वलोकोंमें (इति) यह उत्तर दिया (खलु, गन्धर्वलोकाः) प्रसिद्ध गन्धर्व लोक (कस्मिन्नु) काहेमें (ओताश्च, प्रोताश्च) ओत प्रोत हैं (इति) इस प्रश्न पर (गार्गि) हे गार्गी ! (आदित्यलोकेषु) आदित्यलोकोंमें (इति) यह उत्तर दिया (खलु, आदित्यलोकाः) प्रसिद्ध आदित्य लोक (कस्मिन्नु) काहेमें (ओताश्च, प्रोताश्च) ओतप्रोत हैं (इति) इस प्रश्न पर (गार्गि) हे गार्गी ! (चन्द्रलोकेषु) चन्द्रलोकमें

(इति) यह उत्तर दिया (खलु, चन्द्रलोकाः) प्रसिद्ध चन्द्रलोक (कस्मिन्नु) काहेमें (ओताश्च, प्रोताश्च) ओत प्रोत हैं (इति) इस प्रश्न पर (गार्गि) हे गार्गी! (नक्षत्रलोकेषु) नक्षत्रलोकोंमें (इति) यह उत्तर दिया (खलु, नक्षत्रलोकाः) प्रसिद्ध नक्षत्रलोक (कस्मिन्नु) किसमें (ओताश्च, प्रोताश्च) ओत प्रोत हैं (इति) इस प्रश्न पर (गार्गि) हे गार्गि ! (देवलोकेषु) देवलोकोंमें (इति) यह उत्तर दिया (खलु, देवलोकाः) प्रसिद्ध लोक (कस्मिन्नु) किसमें (ओताश्च, प्रोताश्च) ओत प्रोत हैं (इति) इस प्रश्न पर (गार्गि) हे गार्गी ! (इन्द्रलोकेषु) इन्द्रलोकोंमें (इति) यह उत्तर दिया (खलु, इन्द्रलोकाः) प्रसिद्ध इन्द्रलोक (कस्मिन्नु) किस में (ओताश्च, प्रोताश्च) ओत प्रोत हैं (इति) इस प्रश्न पर (गार्गि) हे गार्गी ! (प्रजापतिलोकेषु) प्रजापतिके लोकोंमें (इति) यह उत्तर दिया (खलु, प्रजापतिलोकाः) प्रसिद्ध प्रजापतिलोक (कस्मिन्नु) किसमें (ओताश्च प्रोताश्च) ओतप्रोत हैं (इति) इस प्रश्न पर (गार्गि) हे गार्गी ! (ब्रह्मलोकेषु) ब्रह्मलोकमें (इति) यह उत्तर दिया (खलु, ब्रह्मलोकाः) प्रसिद्ध ब्रह्मलोक (कस्मिन्नु) किसमें (ओताश्च, प्रोताश्च) ओत प्रोत हैं (इति) इस प्रश्न पर (ह) प्रसिद्ध (सः) वह (उवाच) बोला (गार्गि) हे गार्गि ! (मा, अतिप्राक्षीः) अतिप्रश्न न कर (ते) तेरा (मूर्धा) मस्तक (मा, व्यपप्तत्) न गिरे (अनतिप्रश्न्याम्) केवल आगमगम्य (देवतां, वै) देवताको ही (अतिपृच्छसि) अतिप्रश्नसे पूछती है (गार्गि) हे गार्गी ! (मा, अतिप्राक्षीः) अतिप्रश्न न कर (इति) ऐसा कहनेपर (ततः)

तदनन्तर (वाचक्नवी) वचक्नुकी पुत्री (ह) प्रसिद्ध (गार्गी) गार्गी (उपरराम) मौन हो रही ॥ १ ॥

भावार्थ-याज्ञवल्क्यजीसे वचक्नु ऋषिकी पुत्री गार्गी ने प्रश्न किया, कि—हे याज्ञवल्क्यजी ! यह सब पार्थिव जगत् उस अपने कारणरूप जलमें ताने बानेकी समान ओत प्रोत हो रहा है, यदि ऐसा न होता तो मुट्ठीमेंके सत्तुओंकी समान बिखरजाता, जैसे यह पञ्चीकृत पृथिवी कार्यरूपसे अपने कारणरूप पञ्चीकृत जलमें ओतप्रोत है, ऐसे ही जल भी कार्य है अतः यह जल किसमें ओत प्रोत है ? ऐसे अनुमानके साथ प्रश्न करने पर याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि-हे गार्गी ! जल और अग्निके कारणरूप पञ्चीकृत -मूल- वायुमें ओतप्रोत है । गार्गीने कहा-वायु किसमें ओतप्रोत है ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि-हे गार्गी ! पक्षी आदिकी गतिके हेतु पञ्चीकृत भूतरूप अन्तरिक्ष कहिये आकाशमें । गार्गीने कहा वे अन्तरिक्ष लोक किसमें ओतप्रोत हैं ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि हे गार्गी ! गन्धर्वलोकोंमें । गार्गीने कहा, कि—हे याज्ञवल्क्य ! गन्धर्वलोक किसमें ओतप्रोत हैं । याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि—हे गार्गी ! आदित्यलोकोंमें । गार्गीने कहा, कि-हे याज्ञवल्क्य ! आदित्यलोक किसमें ओतप्रोत है ? याज्ञवल्क्यने कहा, कि—हे गार्गी ! चन्द्रलोकोंमें । गार्गीने कहा, कि-हे याज्ञवल्क्य चन्द्रलोक किसमें ओतप्रोत हैं ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि-हे गार्गी ! नक्षत्रलोकोंमें । गार्गीने कहा, कि—नक्षत्रलोक किसमें ओतप्रोत हैं ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि-हे गार्गी ! देवलोकोंमें । गार्गीने कहा कि—

देवलोक किसमें ओतप्रोत हैं ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया कि-हे गार्गी ! इन्द्रलोकोंमें । गार्गीने कहा कि-इन्द्रलोक किसमें ओतप्रोत हैं ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि-हे गार्गी ! प्रजापतिलोकोंमें । गार्गीने कहा, कि-विराटके शरीरके आरम्भक पञ्चीकृत पञ्चमहाभूतरूप प्रजापति लोक किसमें ओतप्रोत हैं ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि-हे गार्गी ! ब्रह्माण्डके आरम्भक पञ्चभूतरूप ब्रह्म-लोकोंमें ओतप्रोत हैं । गार्गीने कहा-वे ब्रह्मलोक किसमें ओतप्रोत हैं ? इसप्रकार ब्रह्मलोकके आश्रय सूत्रात्माके विषयमें प्रश्न करने पर याज्ञवल्क्यने कहा, कि-हे गार्गी ! अतिप्रश्न न कर, शास्त्रसे जानने योग्य देवताको अनु-मानसे न पूछ, ब्रह्मलोकके आगे इसप्रकार प्रश्न करना उचित नहीं है, इससे आगेको अतिप्रश्न करेगी तो निःसन्देह तेरा फिर धड़परसे गिरपड़ेगा । तूने जिस देवताके विषयमें प्रश्न किया है वह देवता प्रष्टव्य तो है तथापि तूने उस आगमके द्वारा पूछनेयोग्य देवताका अतिक्रम करके अनुमान करके प्रश्न किया है । यदि तुझे मरनेकी अभिलाषा नहीं है तो मर्यादाको लाँघकर प्रश्न न कर । यह बात सुनकर वचक्नुकी पुत्री गार्गी चुप हो रही, उसने फिर प्रश्न नहीं किया ॥ १ ॥

तृतीयाध्यायस्य षष्ठं ब्राह्मणं समाप्तम्

अथ हैनमुद्दालक आरुणिः पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच मद्रेष्ववसाम पतञ्चलस्य काप्यस्य गृहेषु यज्ञमधीयानास्तस्याऽऽसीद्भार्या गन्धर्वगृहीता तमपृच्छाम कोऽसीति सोऽब्रवीत्कबन्ध आथर्वण इति सोऽब्रवीत्पतञ्चलं काप्यं याज्ञिकाँश्च

वेत्थ नु त्वं काप्य तत्सूत्रं येनाऽयं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि संदृब्धानि भवन्तीति सोऽब्रवीत्पतञ्चलः काप्यो नाऽहं तद्भगवन् वेदेति सोऽब्रवीत्पतञ्चलं काप्यं याज्ञिकाꣳश्च वेत्थ नु त्वं काप्य तमन्तर्यामिणं य इमं च लोकं परं च लोकꣳ सर्वाणि च भूतानि योऽन्तरो यमयतीति सोऽब्रवीत्पतञ्चलः काप्यो नाऽहं तं भगवन् वेदेति सोऽब्रवीत्पतञ्चलं काप्यं याज्ञिकाꣳश्च यो वै तत्काप्य सूत्रं विद्यात्तं चान्तर्यामिणमिति स ब्रह्मवित्स लोकवित्स देववित्स वेदवित्स भूतवित्स आत्मवित्स सर्वविदिति तेभ्योऽब्रवीत्तदहं वेद तच्चेत्त्वं याज्ञवल्क्य सूत्रमविद्वाꣳस्तं चान्तर्यामिणं ब्रह्मगवीरुदजसे मूर्धा ते विपतिष्यतीति वेद वा अहं गौतम तत्सूत्रं तं चान्तर्यामिणमिति यो वा इदं कश्चिद् ब्रूयाद्वेद वेदेति यथा वेत्थ तथा ब्रूहीति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) फिर (ह) प्रसिद्ध (एनम्) इसके प्रति (आरुणिः) अरुणका पुत्र (उद्दालकः) उद्दालक (पप्रच्छ) पूछता हुआ (ह) प्रसिद्ध (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (इति) ऐसा (उवाच) बोला (मद्रेषु) मद्रदेशमें (काप्यस्य) कपिगोत्रवाले (पतञ्चलस्य) पतञ्चलके (गृहेषु) घर (यज्ञम्) यज्ञविद्याको (अधीयानाः) पढ़ते हुए (अवसाम) रहते थे (तस्य) उसकी

(भार्या) स्त्री (गन्धर्वगृहीता) गन्धर्वके आवेशवाली (आसीत्) थी (तम्) उस गन्धर्वको (कः, असि) कौन है (इति) ऐसा (अपृच्छाम) पूछते हुए (सः) वह (आथर्वणः) अथर्वणका पुत्र (कबन्धः) कबन्ध हूँ (इति) ऐसा (अब्रवीत्) कहताहुआ (सः) वह (काप्यम्) कपिगोत्रवाबाले (पतञ्चलम्) पतञ्चलको (च) और (याज्ञिकान्) याज्ञिकोंको (अब्रवीत्) कहता हुआ (काप्य) हे काप्य (येन) जिससे (अयं, लोकः) यह जन्म (च) और (परः, लोकः) पर जन्म (च) और (सर्वाणि, भूतानि, च) सकल भूत भी (सन्दृब्धानि, भवन्ति) पुरे हुए रहते हैं (तत्सूत्रं, नु) उस सूत्रको क्या (त्वं, वेत्थ) तू जानता है ? (इति) ऐसे प्रश्न पर (सः, काप्यः, पतञ्चलः) वह कपिगोत्री पतञ्चल (भगवन्) हे भगवन् (अहं, न, वेद) मैं नहीं जानता (इति) ऐसा (अब्रवीत्) बोला (सः) वह (काप्यं, पतञ्चलम्) कपिगोत्री पतञ्चलको (च) और (याज्ञिकान्) यज्ञशास्त्रका अध्ययन करने वालोंके प्रति (अब्रवीत) बोला (काप्य) हे कपिगोत्र वाले (यः) जो (इमं, लोकम्) इस जन्मको (च) और [परं, लोकम्) पर जन्म को (च) और (सर्वाणि, भूतानि, च) सकल भूतोंको भी (यमयति) नियममें रखता है (यः) जो (अन्तरः) भीतर है (तं, अन्तर्यामिणम्) उस अन्तर्यामीको (नु, त्वं, वेत्थ) क्या तू जानता है ? (इति) इसपर (सः, काप्यः, पतञ्चलः) वह कपिगोत्र वाला पतञ्चल (भगवन्, अहं, तं न, वेद) हे भगवन् ! मैं उसको नहीं जानता (इति) ऐसा (अब्रवीत) बोला (सः) वह (काप्यं, पतञ्चलम्) कपि-

गोत्री पतञ्चलको (च) और (याज्ञिकान्) यज्ञविद्या का अध्ययन करने वालोंको (अब्रवीत्) बोला (काप्य) हे कपिगोत्र वाले (यो, वै) जो प्रसिद्ध पुरुष (तत्, सूत्रम्) उस सूत्रको (वेद) जानता है (च) और (तं, अन्तर्यामिणम्) उस अन्तर्यामीको (इति) इसप्रकार [वेद] जानता है (सः) वह (ब्रह्मवित्) ब्रह्मको जानने वाला है (सः) वह (लोकवित्) भू आदि लोकोंको जानने वाला (सः) वह (देववित्) अग्नि आदि देवताओंको जाननेवाला (सः) वह (वेदवित्) वेदोंको जानने वाला (सः) वह (भूतवित्) भूतोंको जानने वाला (सः) वह (आत्मवित) जीवात्माको जानने वाला (सः) वह सर्ववित्) सबको जानने वाला [अस्ति] है (इति) ऐसा (तेभ्यः) उनके अर्थ (अब्रवीत्) कहता हुआ (तत्) उसको (अहम्) मैं (वेद) जानता हूं (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (चेत्) जो (त्वम्) तुम (तत्) उस (सूत्रम्) सूत्रात्माको (च) और (तं, अन्तर्यामिणम्) उस अन्तर्यामीको (अविद्वान्) न जानते हुए (ब्रह्मगवीः) ब्रह्मवेत्ताओंकी गौओंको (उदजसे) लिये जाते हो [तर्हि] तो (ते) तुम्हारा (मूर्धा) मस्तक (विपतिष्यति) गिर जायगा (इति) इसपर [याज्ञवल्क्यः, उवाच] याज्ञवल्क्यने कहा (गौतम) हे गोतम गोत्रवाले (अहम्) मैं (तत्, सूत्रम्) उस सूत्रात्माको (च) और (तं, अन्तर्यामिणम्) उस अन्तर्यामीको (वै) निश्चय (वेद) जानता हूं (इति) इसपर [उद्दालकः, उवाच] उद्दालक ने कहा (इदम्) इसको (वेद) जानता हूँ (वेद) जानता हूँ (इति) ऐसा (सः कश्चित्) जो कोई भी (ब्रूयात्, वै) कह ही देगा (यथा) जैसा (वेत्थ) जानते हो (तथा) जैसा (ब्रूहि) कहो (इति) यह कहा ॥ १ ॥

(भावार्थ) फिर उन याज्ञवल्क्यसे अरुणके पुत्र उद्दालकने बूझा, कि—हे याज्ञवल्क्य ! हम पहिले यज्ञशास्त्र पढ़नेके लिये मद्रदेशमें कपिवंशी पतञ्चलके यहां जाकर रहे थे उस पतञ्चलकी स्त्रीके ऊपर गन्धर्वका आवेश था हमने उस गन्धर्वसे बूझा, कि—तू कौन है ! तो उसने उत्तर दिया, कि-मैं अथर्वणका पुत्र कबन्ध हूं । तदनन्तर उस गन्धर्वने पतञ्चलसे और उसके शिष्योंसे पूछा, कि क्या तुम उस सूत्रात्माको जानते हो कि-जिसमें डोरेमें गुथे हुए फूलोंकी समान यह लोक परलोक और सकल भूत गुथे हुए हैं । पतञ्चलने कहा, कि—हे भगवन् ! मैं उस सूत्रात्माको नहीं जानता गन्धर्वने फिर कहा कि क्या तुम उस अन्तर्यामी को जानते हो कि—जो यह लोक परलोक और सकल भूतोंके भीतर विराजमान रहकर सबको प्रेरणा करता है इसके उत्तरमें पतञ्चलने कहा, कि हे भगवन् ! मैं उस अन्तर्यामीको भी नहीं जानता। गन्धर्वने उनसे फिर कहा कि—जो उस सूत्रात्माको और उस अन्तर्यामीको जानता है वह ब्रह्मवेत्ता लोकोंका ज्ञाता देवताओंका ज्ञाता वेदोंका ज्ञाता सकल भूतोंका ज्ञाता जीवात्माका ज्ञाता अधिक क्या कहें वह सबका ज्ञाता होता है । जब गन्धर्वने इसप्रकार सूत्रात्मा और अन्तर्यामीके विज्ञानकी प्रशंसाकी तब पतञ्चल और हम सब उस तत्त्वको सुननेके लिये उत्कण्ठित हो उठे, गन्धर्वने भी हमें उत्कण्ठित देखकर सूत्रात्मा और अन्तर्यामीके विषयमें जो कुछ भी जानना चाहिये वह सब कह दिया । मैंने गन्धर्वके मुखसे उस सब विषयको सुनकर जानलिया है । तुम यदि उस सूत्रात्मा और अन्तर्यामीके स्वरूपको न जानकर ब्रह्म-

वेश्याओंके पाने योग्य इन गौओंको अन्यायसे लेजाओगे तो निःसन्देह तुम्हारा मस्तक गिरपड़ेगा। उद्दालककी इस बातको सुनकर याज्ञवल्क्यने कहा, कि—हे गौतम मैं निःसन्देह जानता हूँ उस गन्धर्वने तुमसे सूत्रात्मा और अन्तर्यामीके विषयमें जो कुछ कहा था उस सबको मैं जानता हूं। गौतमने कहा, कि—हे याज्ञवल्क्य! लोग बहुतसी बातोंको न जानकर भी हम जानते हैं ऐसा कहते हैं और अभिमान करते हैं तुम यदि यथार्थमें इस विषयको जानते हो तो जैसा जानते हो वैसा कहो॥१॥

स होवाच वायुर्वै गौतम तत्सूत्रं वायुना वै गौतम सूत्रेणायञ्च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि संदृब्धानि भवन्ति तस्माद्वै गौतम पुरुषं प्रेतमाहुर्व्यस्रꣳसिषतास्याङ्गानीति वायुना हि गौतम सूत्रेण संदृब्धानि भवन्तीत्येवमेवैत-द्याज्ञवल्क्यान्तर्यामिणं ब्रूहीति॥ २॥

अन्वय और पदार्थ—(सः, ह) वह प्रसिद्ध (उवाच) बोला (गौतम) हे गौतमगोत्रवाले (तत्, सूत्रम्) वह सूत्र (वायुः, वै) वायु ही है (गौतम) हे गौतम (वायुना, वै, सूत्रेण) वायुरूप प्रसिद्ध सूत्रात्माके द्वारा ही (अयं, लोकः) यह जन्म (च) और (परलोकः, च) पर जन्म भी (सर्वाणि, भूतानि, च) सकल भूत भी (संदृब्धानि, भवन्ति) सम्यक् प्रकारसे गुथेहुए हैं (तस्मात्, वै) तिस कारणसे ही (गौतम) हे गौतम (अस्य) इसके (अङ्गानि) अङ्ग (व्यस्रंसिषत) ढीलेहोगए (इति) ऐसा (प्रेतम्) मरेहुए (पुरुषम्) शरीरको

(आहुः) कहते हैं (गौतम्) हे गौतम (सूत्रेण, वायुना हि) सूत्रात्मारूप वायु करके ही (संदृब्धानि, भवन्ति) सम्यक् प्रकारसे गुथे हुए रहते हैं (इति) यह ठीक है (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य ! (एतत्) यह (एवमेव) ऐसा ही है (अन्तर्यामिणम्) अन्तर्यामीको (ब्रूहि) कहिये (इति) यह कहा ॥ २ ॥

(भावार्थ)—याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि—गन्धर्व ने जिस सूत्रात्माकी बात कही थी वह सूत्रात्मा वायु ही है, वायुरूप सूत्रात्माके द्वारा ही यह जन्म, परजन्म और सकल भूत अच्छे प्रकारसे गुथे हुए हैं, क्योंकि-सूत्रात्मा वायु सबको धारण किये हुए है सकल भूत वायुकी सहायतासे ही जीवन धारण करते हैं, इसलिये वायुके निकल जाने पर पुरुषको कहते हैं कि-यह मरगया इसके सब अङ्ग ढीले (वायुशून्य) होगये । जैसे सूत्र (डोरा) निकलजाने पर मालाकार (पटवे) की पोयी हुई सब मणियें इधर उधरको बिखरने (गिरने) लगती हैं ऐसे ही यह शरीर भी प्राणवायुके निकलजाने पर बिखरे हुए अवयवों वाला होजाता है, इसलिये वायुरूप सूत्रमें ही ये सब भूत एकत्र मालाकी समान गुथे हुए हैं यह बात अवश्य स्वीकार करनी चाहिये । याज्ञवल्क्यकी इस बातको सुनकर उद्दालकने कहा, कि हे याज्ञवल्क्य तुम जो कुछ कहते हो सो ठीक है, परन्तु अब इस सूत्रात्मामें रहने वाले अन्तर्यामीका स्वरूप कहो ॥ २ ॥

याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि—

यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी

न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (पृथिव्याम्) पृथिवीमें (तिष्ठन्) स्थित होता हुआ (पृथिव्याः, अन्तरः) पृथिवीके भीतर है (यम्) जिसको (पृथिवी) पृथिवी (न) नहीं (वेद) जानती है (पृथिवी) पृथिवी (यस्य) जिसका (शरीरम्) शरीर है (यः) जो (अन्तरः) भीतर रहता हुआ (पृथिवीम्) पृथिवीको (यमयति) प्रेरणा करता है (एषः) यह (ते) तेरा (आत्मा) आत्मा (अन्तर्यामी) अन्तर्यामी है (अमृतः) मरणधर्म रहित है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-जो पृथिवीमें स्थित होकर पृथिवीके भीतर है, जिसको पृथिवीकी अभिमानिनी देवता 'मेरे भीतर और कोई है, इस प्रकार' नहीं जानती, जिसका पृथिवी शरीर है अन्य नहीं अर्थात् पृथिवीकी अभिमानिनी देवताके शरीर कहिये स्थूल सूक्ष्म करण (भोग के द्वार) हैं वे ही जिसके शरीररूप भोगद्वार हैं और पृथक् नहीं हैं, जो भीतर रहकर सूत्रात्मारूपसे पृथिवीकी अधिष्ठात्री देवताको उसके कर्मका साक्षीरूप होकर नियमसे उसको अपने व्यापारमें प्रवृत्त किया करता है वह तेरा कार्यकारणसंघातका आत्मा ही मरणधर्मरहित नित्यस्वरूप अन्तर्यामी पुरुष है ॥ ३ ॥

योऽप्सु तिष्ठन्नद्भ्योऽन्तरो यमापो न विदुर्यस्यापः शरीरं योऽपोऽन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः, अप्सु, तिष्ठन्) जो जलमें स्थित होताहुआ (अद्भ्यः, अन्तरा) जलसे अन्तर है (यं, आपः न, विदुः) जिसको जल नहीं जानता (यस्य आपः शरीरम्) जिसका जल शरीर है (यः, अन्तरः) जो भीतर रहता हुआ (अपः, यमयति) जलको प्रेरणा करता है (एषः, ते, आत्मा) यह तेरा आत्मा (अमृतः अन्तर्यामी) मरणरहित अन्तर्यामी है ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-जो जलमें रह कर जलके भीतर समाया हुआ है, जिसको जलका अभिमानी देवता नहीं जानता जल जिसका शरीर है, जो जलके भीतर रहता हुआ जलके अभिमानी देवताको अपने व्यापारमें प्रवृत्त करता है वही तेरा अन्तर्यामी अमर आत्मा है ॥ ५ ॥

योऽग्नौ तिष्ठन्नग्नेरन्तरो यमग्निर्न वेद यस्याग्निः शरीरं योऽग्निमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः, अग्नौ, तिष्ठन्) जो अग्निमें स्थित होता हुआ (अग्नेः, अन्तरः) अग्निसे अन्तर है (यं, अग्निः, न, वेद) जिसको अग्नि नहीं जानता (यस्य, अग्निः, शरीरम्) जिसका अग्नि शरीर है (यः अन्तरः) जो भीतर रहता हुआ (अग्निम्, यमयति) (अग्निको प्रेरणा करता है (एषः, ते, आत्मा) यह तेरा आत्मा (अमृतः, अन्तर्यामी) मरणरहित अन्तर्यामी है ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-जो अग्निमें रह कर अग्निके भीतर समाया हुआ है, जिसको अग्नि नहीं जानता जिसका अग्नि शरीर है, जो अग्निके भीतर रहता हुआ अग्नि

के अभिमानी देवताको अपने व्यापारमें प्रवृत्त करता है वही तेरा जिज्ञासित अन्तर्यामी अमर आत्मा है ॥५॥

योऽन्तरिक्षे तिष्ठन्नन्तरिक्षादन्तरो यमन्तरिक्षं न वेद यस्यान्तरिक्षꣳ शरीरं योऽन्तरिक्षमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः, अन्तरिक्षे, तिष्ठन्) जो अन्तरिक्षमें स्थित होता हुआ (अन्तरिक्षात्, अन्तरः) अन्तरिक्षसे अन्तर है (यं, अतरिक्षं, न,वेद) जिसको अन्तरिक्ष नहीं जानता है (यस्य, अन्तरिक्षं, शरीरम्) जिसका अन्तरिक्ष शरीर है (यः, अन्तरः) जो भीतर रहता हुआ (अन्तरिक्षं, यमयति) अन्तरिक्षके अभिमानी देवताको अपने व्यापारमें प्रवृत्त करता है (एषः, ते, आत्मा) यह तेरा आत्मा (अमृतः, अन्तर्यामी) मरण रहित अन्तर्यामी है ॥ ६ ॥

(भावार्थ)-जो अन्तरिक्षमें रह कर अन्तरिक्षके भीतर समाया हुआ है, जिसको अन्तरिक्ष नहीं जानता अन्तरिक्ष जिसका शरीर है जो अन्तरिक्षके भीतर रहता हुआ अन्तरिक्षके अभिमानी देवताको उसके व्यापारमें प्रवृत्त करता है वही तेरा जिज्ञासित अन्तर्यामी अमर आत्मा है ॥ ६ ॥

यो वायौ तिष्ठन् वायोरन्तरो यं वायुर्न वेद यस्य वायुः शरीरं यो वायुमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ— (यः, वायौ, तिष्ठन्) जो वायुमें स्थित होता हुआ (वायोः, अन्तर) वायुसे अन्तर है

(यं, वायुः, न, वेद) जिसको वायु नहीं जानता (वायुः यस्य, शरीरम्) वायु जिसका शरीर है (यः, अन्तरः,) जो भीतर रहता हुआ (वायुं, यमयति) वायुको प्रेरणा करता है (एषः, ते, आत्मा) यह तेरा आत्मा (अमृतः अन्तर्यामी) मरणरहित अन्तर्यामी है ॥ ७ ॥

(भावार्थ)-जो वायुमें रहकर वायुके भीतर समाया हुआ है, जिसको वायु नहीं जानता, वायु जिसका शरीर है, जो वायुके भीतर रहता हुआ वायुके अभिमानी देवताको उसके व्यापारमें प्रवृत्त करता है वही तेरा जिज्ञासित मरणधर्मरहित अन्तर्यामी आत्मा है ॥ ७ ॥

यो दिवि तिष्ठन् दिवोऽन्तरो यं द्यौर्न वेद यस्य द्यौः शरीरं यो दिवमन्तरो यमयत्येष त आत्मा न्तर्याम्यमृतः ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः दिवि, तिष्ठन्) जो स्वर्गमें रहता हुआ (दिवः अन्तरः) स्वर्गके अन्तर है (यं द्यौः न वेद) जिसको स्वर्ग नहीं जानता (यस्य द्यौः शरीरम्) जिसका स्वर्ग शरीर है (यः, अन्तरः) जो भीतर रहता हुआ (दिवं, यमयति) स्वर्ग प्रेरणा करता है (एषः, ते, आत्मा) यह तेरा आत्मा (अमृतः अन्तर्यामी) मरण रहित अन्तर्यामी है ॥ ८ ॥

(भावार्थ)-जो स्वर्गमें रहकर स्वर्गमें समाया हुआ, है, जिसको स्वर्ग नहीं जानता, स्वर्ग जिसका शरीर है, जो भीतर रहकर स्वर्गके अभिमानी देवताको उसके कार्य में प्रवृत्त करता है वही तेरा जिज्ञासित मरणधर्म रहित अन्तर्यामी आत्मा है ॥ ८ ॥

य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरो यमादित्यो न

वेद यस्यादित्यः शरीरं य आदित्यमन्तरो यमयत्येष त अन्तर्याम्यमृतः॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः, आदित्ये, तिष्ठन्) जो सूर्यमें स्थित होता हुआ (आदित्यात्, अन्तरः) सूर्यसे अन्तर है (यं, आदित्यः न, वेद (जिसको सूर्य नहीं जानता (यस्य, आदित्यः, शरीरम्) जिसका सूर्य शरीर है (यः अन्तरः) जो भीतर रहता हुआ (आदित्यं, यमयति) सूर्यको प्रेरणा करता है (एषः, ते, आत्मा) यह तेरा आत्मा (अमृतः अन्तर्यामी) मरणरहित अन्तर्यामी है ९

(भावार्थ)—जो सूर्यमें रहकर सूर्यके भीतर समाया हुआ है सूर्य जिसको नहीं जानता, सूर्य जिसका शरीर है, जो सूर्यके भीतर स्थित होकर सूर्यके अभिमानी देवताको उसके व्यापारमें प्रवृत्त करता है वही तेरा जिज्ञासित अन्तर्यामी अमर आत्मा है ॥ ९ ॥

यो दिक्षु तिष्ठन् दिग्भ्योऽन्तरो यं दिशो न विदुर्यस्य दिशः शरीरं यो दिग्भ्योऽन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः, दिक्षु, तिष्ठन्) जो दिशाओंमें स्थित होता हुआ (दिग्भ्यः,अन्तरः) दिशाओंसे अंतर है (यं,दिशः,न,विदुः) जिसको दिशायें नहीं जानतीं(यस्य, दिशः शरीरम्) जिसका दिशायें शरीर हैं (यः दिग्भ्यः अन्तरः) जो भीतर रहता हुआ (दिशः यमयति) दिशाओंको प्रेरणा करता है (एषः,ते,आत्मा) यह तेरा आत्मा (अमृतः अन्तर्यामी) मरणरहित अन्तर्यामी है ॥ १० ॥

(भावार्थ)—जो दिशाओंमे रहकर दिशाओंके भीतर समाया हुआ है जिसको दिशायें नहीं जानतीं, दिशायें

जिसका शरीर हैं, जो दिशाओंके भीतर रहकर दिशाओं के अभिमानी देवताको उसके व्यापारमें प्रवृत्त करता है ऐसा यह तेरा आत्मा ही मरण रहित अन्तर्यामी है १०

यश्चन्द्रतारके तिष्ठँश्चन्द्रतारकादन्तरो यं चन्द्रतारकं न वेद यस्य चन्द्रतारकꣳशरीरं यश्चन्द्रतारकमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ११

अन्वय और पदार्थ (यः, चन्द्रतारके, तिष्ठन्) जो चन्द्रमा तथा तारागणमें स्थित होता हुआ (चन्द्रतारकात्, अन्तरः) चन्द्रमा तथा तारागणसे अन्तर है (यं, चन्द्रतारकं, न, वेद) जिसको चन्द्रमा और तारागण नहीं जानते (चन्द्रतारकं, यस्य, शरीरम्) चन्द्रमा और तारागण जिसका शरीर है (यः, अन्तरः) जो भीतर रहता हुआ (चन्द्रतारकं, यमयति) चन्द्रमा और तारागणको प्रेरणा करता है (एषः, ते, आत्मा) यह तेरा आत्मा (अमृतः, अन्तर्यामी) मरणरहित अन्तर्यामी है ११

(भावार्थ)-जो चन्द्रमा और तारागणमें स्थित होकर इनके भीतर समाया हुआ है, चन्द्रमा और तारागण जिसको नहीं जानते और चन्द्रमा तथा तारागण जिसका शरीर हैं, जो चन्द्रमा और तारागणके भीतर रहकर इनके अभिमानी देवताओंको उनको अपने २ व्यापारमें लगाये रखता है, यही तेरा जिज्ञासित अन्तर्यामी अमर आत्मा है ॥ ११ ॥

य आकाशे तिष्ठन्नाकाशादन्तरो यमाकाशो न वेद यस्याकाशः शरीरं य आकाशमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः, आकाशे, तिष्ठन्) जो आकाश में स्थित होता हुआ (आकाशात्, अन्तरः) आकाशसे अन्तर है (यं, आकाशः, न, वेद) जिसको आकाश नहीं जानता (यस्य, आकाशः, शरीरम्) जिसका आकाश शरीर है (यः, अन्तरः) जो भीतर रहता हुआ (आकाशं, यमयति) आकाशको प्रेरणा करता है (एषः ते, आत्मा) यह तेरा आत्मा (अमृतः, अन्तर्यामी) मरण धर्मरहित अन्तर्यामी है ॥ १२ ॥

(भावार्थ)-जो आकाशमें स्थित होकर आकाशके भीतर समाया हुआ है, जिसको आकाश नहीं जानता और आकाश जिसका शरीर है, जो आकाशमें रहकर आकाश के अभिमानी देवता को उसके व्यापार में प्रवृत्त करता है वही तेरा जिज्ञासित अन्तर्यामी अमर आत्मा है ॥ १२ ॥

यस्तमसि तिष्ठंस्तमसोऽन्तरो यं तमो न वेद यस्य तमः शरीरं यस्तमोऽन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः, तमसि, तिष्ठन्) जो अन्धकार में स्थित होता हुआ (तमसः, अन्तरः) अन्धकारसे अन्तर है (यं, तमः, न वेद) जिसको अन्धकार नहीं जानता (यस्य, तमः शरीरम्) जिसका अन्धकार शरीर है (यः, अन्तरः) जो भीतर रहता हुआ (तमः, यमयति) अन्धकारको प्रेरणा करता है (एषः, ते, आत्मा) यह तेरा आत्मा (अमृतः, अन्तर्यामी) मरण रहित अन्तर्यामी है ॥ १३ ॥

(भावार्थ)-जो अन्धकारमें स्थित होकर अन्धकार

के भीतर समाया हुआ है, जिसको अन्धकार नहीं जानता, अन्धकार जिसका शरीर है, जो अन्धकारके भीतर रहकर अन्धकारके अभिमानी देवताको उसके व्यापारमें प्रवृत्त करता है वही तेरा जिज्ञासित अन्तर्यामी अमर आत्मा है ॥ १३ ॥

यस्तेजसि तिष्ठन् तेजसोऽन्तरो यं तेजो न वेद यस्य तेजः शरीरं यस्तेजोऽन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृत इत्यधिदैवतमथाधिभूतम् ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ- (यः, तेजसि, तिष्ठन्) जो तेजमें स्थित होता हुआ (तेजसः, अन्तरः) तेजसे अन्तर है, (यं, तेजः, न, वेद) जिसको तेज नहीं जानता (यस्य तेजः शरीरम्) जिसका तेज शरीर है (यः, अन्तरः) जो भीतर स्थित होता हुआ (तेजः यमयति) तेजको नियममें चलाता है (एषः, ते आत्मा) यह तेरा आत्मा (अमृतः, अन्तर्यामी) मरण रहित अन्तर्यामी है (इति) इसप्रकार (अधिदैवतम्) देवता विषयक वर्णन हुआ (अथ) अब (अधिभूतम्) अधिभूत कहेंगे ॥ १४ ॥

(भावार्थ)—जो तेजमें स्थित होकर तेजके भीतर समाया हुआ है जिसको तेज नहीं जानता । जिसका तेज शरीर है जो भीतर रहकर तेजके अभिमानी देवताको उसके व्यापारमें लगाता है, यह तेरा आत्मा अन्तर्यामी तथा अविनाशी है । इस प्रकार देवताओंमें अन्तर्यामीके विषयकी उपासना कही अब ब्रह्मासे लेकर स्तम्ब पर्यन्त सब भूतोंमें अन्तर्यामीकी उपासना कहते हैं १४

यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन् सर्वेभ्यो भूतेभ्योऽन्तरो यं सर्वाणि भूतानि न विदुर्यस्य सर्वाणि

भूतानि शरीरं यः सर्वाणि भूतान्यन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृत इत्याधिभूतमथाध्यात्मम् १५

अन्वय और पदार्थ—(यः, सर्वेषु, भूतेषु, तिष्ठन्) जो सब भूतोंमें स्थित होता हुआ (सर्वेभ्यः भूतेभ्यः, अन्तरः) सब भूतोंसे अन्तर है (यं, सर्वाणि, भूतानि, न, विदुः) जिसको सकल भूत नहीं जानते (यस्य, सर्वाणि, भूतानि, शरीरम्) जिसके सकल भूत शरीर हैं (यः अन्तरः) जो भीतर स्थित होकर (सर्वाणि, भूतानि, यमयति) सकल भूतोंको नियममें चलाता है (एषः, ते आत्मा) यह तेरा आत्मा (अमृतः, अन्तर्यामी) अमर अन्तर्यामी है ॥ १५ ॥

(भावार्थ)-सब प्राणियोंमें स्थित होकर जो सब प्राणियोंमें समाया हुआ है, सब प्राणी जिसको नहीं जानते, सब प्राणी जिसका शरीर हैं, जो भीतर रहकर सब प्राणियोंको अपने २ व्यापारमें लगाये रहता है, वह तेरा आत्मा अन्तर्यामी और अविनाशी है । इसप्रकार अधिभूत उपासना कही अब अध्यात्म उपासनाको कहते हैं ॥ १५ ॥

यः प्राणे तिष्ठन् प्राणादन्तरो यं प्राणो न वेद यस्य प्राणः शरीरं यः प्राणमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ १६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः, प्राणे, तिष्ठन्) जो प्राणमें स्थित होता हुआ (प्राणात्, अन्तरः) प्राणसे अन्तर है (यं, प्राणः, न, वेद) जिसको प्राण नहीं जानता (यस्य, प्राणः, शरीरम्) जिसका प्राण शरीर है (यः,

अन्तरः) जो भीतर रहता हुआ (प्राणं, यमयति) प्राणको नियममें रखता है (एषः, ते, आत्मा) यह तेरा आत्मा (अमृतः, अन्तर्यामी) अमर अन्तर्यामी है १६

(भावार्थ)-जो प्राणवायुसहित प्राणमें स्थित होकर प्राणके भीतर है, जिसको प्राण नहीं जानता, जिसका प्राण शरीर है, जो भीतर रहकर प्राणको उसके व्यापार मेंलगाये रहता है यह तेरा आत्मा अन्तर्यामी और अविनाशी है ॥ १६ ॥

यो वाचि तिष्ठन् वाचोऽन्तरो यं वाङ् न वेद यस्य वाक् शरीरं यो वाचमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ १७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः, वाचि, तिष्ठन्) जो वाणीमें स्थित होता हुआ (वाचः, अन्तरः) वाणीसे अन्तर है (यं, वाक्, न, वेद) जिसको वाणी नहीं जानती (यस्य वाक्, शरीरम्) जिसका वाणी शरीर है (यः, अन्तरः) जो भीतर रहकर (वाचं, यमयति) वाणीको नियममें चलाता है (एषः, ते, आत्मा) यह तेरा आत्मा (अमृतः अन्तर्यामी) अमर अन्तर्यामी है ॥ १७ ॥

(भावार्थ)—जो वाणीमें स्थित होकर वाणीके भीतर समाया हुआ है, जिसको वाणी नहीं जानती, वाणी जिसका शरीर है, जो भीतर रहकर वाणीको उसके व्यापारमें लगाये रहता है, यह तेरा आत्मा अन्तर्यामी और अविनाशी है ॥ १७ ॥

यश्चक्षुषि तिष्ठँश्चक्षुषोऽन्तरो यं चक्षुर्न वेद यस्य चक्षुः शरीरं यश्चक्षुरन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ १८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः, चक्षुषि, तिष्ठन्) जो चक्षुमें स्थित होता हुआ (चक्षुषः, अन्तरः) चक्षुसे अन्तर है (यं, चक्षुः, न, वेद) जिसको चक्षु नहीं जानता (यस्य चक्षुः, शरीरम्) जिसका चक्षु शरीर है (यः, अन्तरः) जो भीतर रहकर (चक्षुः, यमयति) चक्षुको प्रेरणा करता है (एषः, ते, आत्मा) यह तेरा आत्मा (अमृतः, अन्तर्यामी) अमर अन्तर्यामी है ॥ १८ ॥

(भावार्थ)-जो चक्षुमें रहकर चक्षुके भीतर समाया हुआ है, चक्षु जिसको नहीं जानता, चक्षु जिसका शरीर है, जो भीतर रहकर चक्षुको नियममें चलाता है वही तेरा पूछा हुआ नित्य अन्तर्यामी आत्मा है ॥ १८ ॥

यः श्रोत्रे तिष्ठन् श्रोत्रादन्तरो यꣳ श्रोत्रं न वेद यस्य श्रोत्रꣳ शरीरं यः श्रोत्रमन्तरो यमय-त्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ १९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः, श्रोत्रे, तिष्ठन्) जो श्रोत्रमें स्थित होता हुआ (श्रोत्रात्, अन्तरः) श्रोत्रसे अन्तर है (यं, श्रोत्रं, न, वेद) जिसको श्रोत्र नहीं जानता (यस्य, श्रोत्रं, शरीरम्) जिसका श्रोत्र शरीर है (यः, अन्तरः) जो भीतर रहकर (श्रोत्रं, यमयति) श्रोत्रको नियम में चलाता है (एषः, ते, आत्मा) यह तेरा आत्मा (अमृतः अन्तर्यामी) अमर अन्तर्यामी है ॥ १९ ॥

(भावार्थ)—जो श्रोत्रमें रहकर श्रोत्रके भीतर समा रहा है, जिसको श्रोत्र नहीं जानता श्रोत्र जिसका शरीर है, जो भीतर रहकर श्रोत्रको उसके व्यापारमें लगाये रहता है, यही तेरा बूझा हुआ नित्य अन्तर्यामी आत्मा है ॥ १९ ॥

यो मनसि तिष्ठन् मनसोऽन्तरो यं मनो न वेद यस्य मनः शरीरं यो मनोऽन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ २० ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः, मनसि, तिष्ठन्) जो मनमें स्थित होता हुआ (मनसः, अन्तरः) मनसे अन्तर है (यं, मनः, न, वेद) जिसको मन नहीं जानता (यस्य, मनः, शरीरम्) जिसका मन शरीर है, (यः, अन्तरः) जो भीतर रहकर (मनः, यमयति) मनको प्रेरणा करता है (एषः, ते, आत्मा) यह तेरा आत्मा (अमृतः अन्तर्यामी) अमर अन्तर्यामी है ॥ २० ॥

(भावार्थ)—जो मनमें रहकर मनका अन्तर्वर्त्ती है, जिसको मन नहीं जानता, मन जिसका शरीर है और जो भीतर मनको उसके व्यापारमें नियमसे लगाये रहता है वही तेरा बूझा हुआ अमर अन्तर्यामी आत्मा है ॥ २० ॥

यस्त्वचि तिष्ठँस्त्वचोऽन्तरो यं त्वङ् न वेद यस्य त्वक् शरीरं यस्त्वचन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ २१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः, त्वचि, तिष्ठन्) जो त्वचामें स्थित होता हुआ (त्वचः, अन्तरः) त्वचासे अन्तर है (यं, त्वक्, न, वेद) जिसको त्वचा नहीं जानती (यस्य त्वक्, शरीरम्) जिसका त्वचा शरीर है (यः, अन्तरः) जो भीतर रह कर (त्वचं, यमयति) त्वचाको प्रेरणा करता है (एषः, ते, आत्मा) यह तेरा आत्मा (अमृतः अन्तर्यामी) अमर अन्तर्यामी है ॥ २१ ॥

(भावार्थ)-जो त्वचामें रह कर त्वचाके भीतर समा रहा है, जिसको त्वचा नहीं जानती, जिसका त्वचा शरीर है, जो भीतर रह कर त्वचाको उसके व्यापारमें लगाये रहता है वही तेरा बूझा हुआ अमर अन्तर्यामी आत्मा है ॥ २१ ॥

यो विज्ञाने तिष्ठन् विज्ञानादन्तरो यं विज्ञानं न वेद यस्य विज्ञानꣳ शरीरं यो विज्ञानमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ २२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः, विज्ञाने, तिष्ठन्) जो विज्ञानमें स्थित होता हुआ (विज्ञानात्, अन्तरः) विज्ञानसे अन्तर है (यं, विज्ञानं, न वेद) जिसको विज्ञान नहीं जानता (यस्य, विज्ञानं, शरीरम्) जिसका विज्ञान शरीर है (यः, अन्तरः) जो भीतर रह कर (विज्ञानं, यमयति) विज्ञानको नियममें रखता है (एषः, ते, आत्मा) यह तेरा आत्मा (अमृतः, अन्तर्यामी) अमर अन्तर्यामी है ॥ २१ ॥

(भावार्थ)-जो बुद्धिमें स्थित होकर बुद्धिमें समाया हुआ है जिसको बुद्धि नहीं जानती, बुद्धि जिसका शरीर है, जो भीतर रह कर बुद्धिको अपने व्यापारमें लगाये रहता है, यही तेरा जिज्ञासित अविनाशी अन्तर्यामी आत्मा है ॥ २२ ॥

यो रेतसि तिष्ठन् रेतसोऽन्तरो यꣳ रेतो न वेद यस्य रेतः शरीरं यो रेतोऽन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतोऽदृष्टो द्रष्टाऽश्रुतः श्रोताऽमतो मन्ताऽविज्ञातो विज्ञाता नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा

नान्योऽतोऽस्ति श्रोता नान्योऽतोऽस्ति मंता नान्योऽतोऽस्ति विज्ञातैष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतोऽन्यदार्त्तं ततो होद्दालक आरुणिरुपरराम॥२३॥

अन्वय और पदार्थ-(यः, रेतसि, तिष्ठन्) जो वीर्यमें स्थित होता हुआ (रेतसः, अन्तरः) वीर्यसे अन्तर है (यं, रेतः, न, वेद) जिसको वीर्य नहीं जानता (रेतः यस्य, शरीरम्) वीर्य जिसका शरीर है (यः, अन्तरः) जो भीतर रहता हुआ (रेतः, यमयति) वीर्यको नियम में चलाता है (एषः, ते आत्मा) यह तेरा आत्मा (अमृतः, अंतर्यामी) अमर अन्तर्यामी है (अदृष्टः द्रष्टा) किसीका देखा हुआ न होकर देखने वाला है (अश्रुतः श्रोता) श्रोत्रका विषय न होकर सुननेवाला है (अमतः मन्ता) मनका विषय न होकर मनका ज्ञाता है (अविज्ञातः, विज्ञाता) बुद्धिका विषय न होकर विज्ञाता है (अतः अन्यः, न, अस्ति) इससे अन्य द्रष्टा नहीं है (अतः अन्य, श्रोता, न, अस्ति) इससे अन्य श्रोता नहीं है (अतः, अन्यः, मन्ता, न, अस्ति) इससे अन्य मन्ता नहीं है (अतः अन्यः, विज्ञाता, नास्ति) इससे अन्य विज्ञाता नहीं है (एषः, ते, आत्मा) यह तेरा आत्मा (अमृतः, अन्तर्यामी) अमर अंतर्यामी है (अतः, अन्यत्, आर्त्तम्) इससे अन्य विनाशी है (ततः) तदनन्तर (आरुणिः) अरुणका पुत्र (उद्दालकः) उद्दालक (उपरराम) मौन होरहा॥२३॥

(भावार्थ)- जो वीर्य (उपस्थेन्द्रिय) में रहकर वीर्य में समा रहा है, जिसको वीर्य नहीं जानता, वीर्य जिस का शरीर है जो भीतर रह कर वीर्यको उसके व्यापारमें

जुदागे रखता है, यही तेरा जिज्ञासित अविनाशी अन्त-र्यामी आत्मा है । बड़ीभारी सामर्थ्यवाले पृथिवी आदि के अभिमानी देवता मनुष्य आदिकी समान अपने नियं-ता इस अंतर्यामीको क्यों नहीं जान सकते ? इस शङ्का का उत्तर देते हैं, कि-यह किसीके नेत्रका विषय नहीं होता परंतु यह सबके नेत्रोंमें समाया हुआ रह कर सबका द्रष्टा है, यह किसीके कानका विषय न होकर स्वयं सबका श्रोता है, यह सङ्कल्पसे दूर है अतः किसी के मनका विषय न होकर सबके मनोंको जानता है, यह सुख आदिकी समान किसीकी बुद्धिका विषय न होकर स्वयं सबका विज्ञाता है, यही तेरा बूझा हुआ अन्तर्यामी अमर आत्मा है । इसप्रकार एकको और पृथिवी आदि को नियंत्रित माननेसे तथा द्रष्टा और दृष्टव्योंको भिन्न२ माननेसे तो द्वैत होने की शङ्का होने लगेगी ? इस पर कहते हैं, कि- इस अंतर्यामीके सिवाय और कोई द्रष्टा श्रोता, मन्ता वा विज्ञाता नहीं है, यह तेरा जिज्ञासित, कार्य करणसंघातका आत्मा अंतर्यामी तथा अविनाशी है, इसप्रकार अपने प्रश्नका यथावत् उत्तर होजाने पर अरुणपुत्र उद्दालक मौन होरहा ॥ २३ ॥

तृतीयाध्यायस्य सप्तमं ब्राह्मणं समाप्तम् ॥

पहले ब्राह्मणमें सूत्रात्मा और अंतर्यामीका निर्णय किया, वे दोनों आत्माके सोपाधिक रूप हैं अब भूख प्यास आदि संसारके सब धर्मोंसे रहित निरुपाधिको कहनेके लिये इस अक्षरब्राह्मणका आरम्भ होता है-

अथ ह वाचक्नव्युवाच ब्राह्मणा भगवन्तो हन्ताहमिमं द्वौ प्रश्नौ प्रवक्ष्यामि तौ चेन्मे

वक्ष्यति न वै जातु युष्माकमिमं कश्चिद् ब्रह्मोद्यं जेतेति पृच्छ गार्गीति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) फिर (ह, वाचक्नवी) प्रसिद्ध वचक्नुकी पुत्री (उवाच) कहती हुई (भगवन्तः, ब्राह्मणाः) हे पूज्य ब्राह्मणों ! (हन्त) अनुमति हो तो (अहम्) मैं (इमम्) इनके प्रति (द्वौ प्रश्नौ) दो प्रश्न (प्रवक्ष्यामि) कहूँगी (चेत्) जो (तौ) उन को (मे) मेरे अर्थ (वक्ष्यति) कहेंगे (युष्माकम्) तुममेंसे (कश्चित्) कोई भी (इमम्) इस (ब्रह्मोद्यम्) ब्रह्मवादीको (जातु) कदाचित् (न, वै, जेता) नहीं जीतेगा (इति) इस पर (गार्गि) हे गार्गी ! (पृच्छ) प्रश्न कर (इति) ऐसा कहा ॥ १ ॥

(भावार्थ)-तदनन्तर वचक्नुकी पुत्री गार्गीने कहा, हे पूजनीय ब्राह्मणों ! आप कृपा करके मेरी बात सुनिये आपकी आज्ञा होय तो मैं इनसे और दो प्रश्न करूं, यदि यह मेरे इन दोनों प्रश्नोंका उत्तर देदें तो निःसन्देह समझ लीजिये, कि--आपमें ऐसा कोई भी ब्रह्मज्ञानी नहीं है कि-जो इन ब्रह्मज्ञानी याज्ञवल्क्यको जीत सके गार्गीकी इस बातको सुनकर ब्राह्मणोंने कहा कि— गार्गि ! तू निर्भय होकर इनसे प्रश्न कर ॥ १ ॥

सा होवाचाऽहं वै त्वा याज्ञवल्क्य काश्यो वा वैदेहो वोग्रपुत्र उज्ज्यं धनुरधिज्यं कृत्वा द्वौ वाणवन्तौ सपत्नातिव्याधिनौ हस्ते कृत्वोपोत्तिष्ठे-देवमेवाऽहं त्वा द्वाभ्यां प्रश्नाभ्यामुपोदस्थां तौ मे ब्रूहीति पृच्छ गार्गीति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सा, ह) वह प्रसिद्ध गार्गी (उवाच) बोली (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (अहम्) मैं (त्वाम्) तुमसे (यथा) जैसे (उग्रपुत्रः) शूरका पुत्र (काश्यः) काशीका राजा (वा) या (वैदेहः) विदेह का राजा (उज्ज्यम्) उतारी हुई प्रत्यश्चावाले (धनुः) धनुषको (अधिज्यम्) चढ़ीहुई प्रत्यश्चावाला (कृत्वा) करके (सपत्नातिव्याधिनौ) शत्रुको अत्यन्त पीड़ा देने वाले (बाणवन्तौ) शरोंको (हस्ते, कृत्वा) हाथमें लेकर (उपोत्तिष्ठेत्) शत्रुके समीपमें अपनेको दिखावे (एव-मेव) ऐसे ही (अहम्) मैं (द्वाभ्यां, प्रश्नाभ्याम्) दो प्रश्नोंके साथ (त्वा, उपोदस्थाम्) आपके समीप उपस्थित हुई हूँ (तौ) उनको (मे) मेरे अर्थ (ब्रूहि) कहिये (इति) इस पर (गार्गि) हे गार्गी ! (पृच्छ) पूछ (इति) ऐसा कहा ॥ २ ॥

(भावार्थ)—गार्गीने कहा, कि—हे याज्ञवल्क्य ! मैं तुमसे दो प्रश्न पूछना चाहती हूँ, जैसे शूरका पुत्र काशीका राजा या विदेहका राजा उतारी हुई डोरीवाले धनुष पर फिर डोरी चढ़ा शत्रुको पीड़ा देनेवाले दो बाण हाथमें लेकर शत्रुके पास जा पहुँचे, ऐसे ही मैं दो प्रश्न लेकर आपके पास उपस्थित हुई हूँ, आप यदि ब्रह्मवेत्ता हैं तो मुझे मेरे उन दोनों प्रश्नोंके उत्तर दीजिये यह सुनकर याज्ञवल्क्यने कहा, कि—हे गार्गी ! अपने प्रश्न पूछ ॥ २ ॥

सा होवाच यदूर्ध्वं याज्ञवल्क्य दिवो यदर्वाक् पृथिव्या यदन्तरा द्यावापृथिवी इमे यद् भूतञ्च

भवच्च भविष्यच्चेत्याचक्षते कस्मिꣳस्तदोतञ्च प्रोतञ्चेति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सा, ह) वह प्रसिद्ध (उवाच) बोली (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (यत्) जो (दिवः) स्वर्गसे (ऊर्ध्वम्) ऊपर है (यत्) जो (पृथिव्याः, अर्वाक्) पृथिवीसे नीचे है (यदन्तरा) जिसके मध्यमें (इमे) ये (द्यावापृथिवी) स्वर्ग और पृथिवी हैं (यत्) जो (भूतञ्च) भूतकाल भी है (भवत्, च) वर्त्तमान भी है (भविष्यत्, च) आगे होनेवाला भविष्यत् भी है (इति) ऐसा (आचक्षते) कहते हैं (तत्) वह (कस्मिन्) किसमें (ओतञ्च, प्रोतञ्च) ओत और प्रोत भी है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-गार्गीने कहा, कि-हे याज्ञवल्क्य ! जो स्वर्गके ऊपर है और पृथिवीसे नीचे है, पृथिवी और स्वर्गलोक जिसके भीतर हैं। जो भूतकालमें था, वर्त्त-मानमें है और भविष्यत्कालमें होगा वह विद्वानोंकी कही हुई वस्तु किसमें ओतप्रोत है ? ॥ ३ ॥

स होवाच यदूर्ध्वं गार्गि दिवो यदर्वाक् पृथिव्या यदन्तरा द्यावापृथिवी इमे यद्भूतञ्च भवच्च भवि-ष्यच्चेत्याचक्षते आकाशे तदोतञ्च प्रोतञ्चेति ४

अन्वय और पदार्थ—(सः, ह) वह प्रसिद्ध (उवाच) बोला (गार्गि) हे गार्गी ! (यत्, दिवः, ऊर्ध्वम्) जो स्वर्गसे ऊपर है (यत् पृथिव्याः, अर्वाक्) जो पृथिवीसे नीचे है (इमे) ये (द्यावापृथिवी) स्वर्ग और पृथिवी (यदन्तरा) जिसके भीतर हैं (यत्) जो (भूतञ्च,

भवत् च, भविष्यत् च) जो भूत, वर्त्तमान और भविष्यत् है (इति) ऐसा (आचक्षते) कहते हैं (तत्) वह (आकाशे) आकाशमें (ओतञ्च, प्रोतञ्च) ओतप्रोत है ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-याज्ञवल्क्यने कहा, कि-हे गार्गी ! जो स्वर्ग के ऊपर और पृथिवीके नीचे है और ये स्वर्ग तथा पृथिवी जिसके मध्यमें हैं । जो पहले था, अब है और आगेको रहेगा, ऐसा शास्त्रवेत्ता कहते हैं वह व्याकृत जगत्रूप सूत्र, अन्तर्यामी नारायणरूप आकाशमें सदा ओतप्रोत है ॥ ४ ॥

सा होवाच नमस्तेऽस्तु याज्ञवल्क्य यो म एतं व्यवोचोऽपरस्मै धारयस्वेति;पृच्छ गार्गीति ॥५॥

अन्वय और पदार्थ-(सा, ह) वह प्रसिद्ध (उवाच) बोली (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (यः) जो (मे) मेरे (एतम्) इसको (व्यवोचः) स्पष्ट कहता हुआ (ते) तुम्हारे अर्थ (नमः) प्रणाम (अस्तु) हो (अपरस्मै) दूसरेके लिये (धारयस्व) अपनेको दृढ़ करो (इति) इस पर (गार्गि) हे गार्गी (पृच्छ) पूँछ (इति) यह कहा ५

(भावार्थ)-गार्गीने कहा, कि-हे याज्ञवल्क्य ! तुमने मेरे दुर्ज्ञेय प्रश्नका उत्तर दिया है, मैं आपको प्रणाम करती हूँ, अब आप मेरे दूसरे प्रश्नका उत्तर देनेके लिये अपनेको सावधान करिये, यह सुनकर याज्ञवल्क्यने कहा, कि-हे गार्गी ! दूसरा प्रश्न भी बूझो ॥ ५ ॥

पहले ही अर्थको दृढ़ करनेके लिये उसने फिर कहा-

सा होवाच यदूर्ध्वं दिवो यदर्वाक् पृथिव्या यद-

न्तरा द्यावापृथिवी इमे यद् भूतञ्च भवच्च भवि-
ष्यच्चेत्याचक्षते कस्मिꣳस्तदोतञ्च प्रोतञ्चेति ६

अन्वय और पदार्थ-(सा, ह) वह प्रसिद्ध (उवाच) बोली (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (यत्, दिवः, ऊर्ध्वम्) जो स्वर्ग से ऊपर है (यत्, पृथिव्याः, अवाक्) जो पृथिवीसे नीचे है (इमे, द्यावापृथिवी) ये स्वर्ग और पृथिवी (यदन्तरा) जिसके मध्यमें हैं (यत, भूतञ्च भवत् च, भविष्यत् च) जो भूत भी है, वर्त्तमान भी है और भविष्यत् भी है (इति, आचक्षते) ऐसा कहते हैं (तत्, कस्मिन्, ओतञ्च, प्रोतञ्च) वह किसमें ओतप्रोत है ॥ ६ ॥

(भावार्थ)-गार्गीने कहा, कि-हे याज्ञवल्क्यजी ! जो स्वर्गके ऊपर है, पृथिवीसे नीचे है, ये स्वर्ग और पृथिवी जिसके मध्यमें हैं, जो पहले था, अब है और आगे भी रहेगा वह किसमें ओतप्रोत है ॥ ६ ॥

स होवाच यदूर्ध्वं गार्गि दिवो यदवाक् पृथिव्या यदन्तरा द्यावापृथिवी इमे यद् भूतञ्च भवच्च भविष्यच्चेत्याचक्षत आकाश एतदोतञ्च प्रोतञ्चेति कस्मिन्नु खल्वाकाश ओतश्च प्रोतश्चेति ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः, ह, उवाच) वह प्रसिद्ध बोला (गार्गि) हे गार्गी ! (यत्, दिवः, ऊर्ध्वम्) जो स्वर्ग से ऊपर है (यत् पृथिव्याः, अवाक्) जो पृथिवीसे नीचे है (इमे, द्यावापृथिवी, यदन्तरा) ये स्वर्ग और पृथिवी जिसके मध्यमें हैं (यत्, भूतञ्च, भवत् च, भविष्यत्, च) जो भूत वर्त्तमान और भविष्यत् है (इति, आच-

चते) ऐसा कहते हैं (एतत्) यह (आकाशे) आकाशमें (ओतश्च , प्रोतश्च) ओत प्रोत है (खलु, आकाशः) प्रसिद्ध आकाश (कस्मिन्, नु) किसमें (ओतश्च, प्रोतश्च ओतप्रोत है ॥ ७ ॥

(भावार्थ)—याज्ञवल्क्यने कहा, हे गार्गी ! जो स्वर्ग के ऊपर और पृथिवीके नीचे है, ये स्वर्ग पृथिवी जिसके भीतर हैं और जो पहले था, अब है तथा आगे भी रहेगा वह व्याकृत जगत्रूप सूत्रात्मा अन्तर्यामीरूप आकाशमें ओत प्रोत है । याज्ञवल्क्यके ऐसा कहने पर गार्गीने कहा, कि-तो वह आकाश किसमें ओतप्रोत है ॥ ७ ॥

स होवाचैतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणममुखममात्रमनन्तरमबाह्यं न तदश्नाति किञ्चन न तदश्नाति कश्चन ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः, ह, उवाच) वह प्रसिद्ध बोला (गार्गि) हे गार्गी ? (तत्) उस (एतत्) इस (वै) प्रसिद्ध (अक्षरम्) अक्षरको (ब्राह्मणाः) ब्रह्मवेत्ता (अभिवदन्ति) कहते हैं (अस्थूलम्) स्थूलसे भिन्न है (अनणु) अणु से भिन्न है (अह्रस्वम्) ह्रस्व नहीं है (अदीर्घम्) दीर्घ नहीं है (अलोहितम्) लाल नहीं है (अस्नेहम्) जलके गुण स्नेहसे भिन्न है (अच्छायम्) छायासे भिन्न है (अतमः) अन्धकार नहीं है (अवायुः) वायु से भिन्न है (अनाकाशम्) आकाश नहीं है

(असङ्गम्) सङ्गरहित है (अरसम्) रसरहित है (अग-न्धम्) गन्धसे भिन्न है (अचक्षुष्कम्) चक्षुसे भिन्न है (अश्रोत्रम्) श्रोत्रशून्य है (अवाक्) वाणी रहित है (अमनः) मनसे भिन्न है (अतेजस्कम्) तेजोभिन्न है (अप्राणम्) प्राणवायु से रहित है (अमुखम्) मुख-रहित है (अमात्रम्) प्रमाण रहित है (अनन्तरम्) छिद्र रहित है (अबाह्यम्) अपरिच्छिन्न है (तत्) वह (किञ्चन) कुछ भी (न) नहीं (अश्नाति) खाता है (कश्चन) कोई (तत्) उसको (न) नहीं (अश्नाति) खाता है ॥ ८ ॥

(भावार्थ)-याज्ञवल्क्यने कहा, कि-हे गार्गी ! ब्रह्म वेत्ताओंने उस आकाशका आधार अक्षर पुरुषको कहा है, यह अक्षर पुरुष न स्थूल है, न छोटा है न बड़ा है, न उसमें अग्निकी लालिमा है, न उसमें जलका स्नेह है, न वह छाया है, न अन्धकार है न वह वायु है न आकाश है, वह असङ्ग है, उसमें रसगन्धरूप आदि नहीं है, उसके चक्षु कान मुख वाणी और मन नहीं है, वह दृप्ति रूप प्रकाश से जुदा है, उसको कोई नाप तोल नहीं सकता, न उसमें छिद्र है और न वह परिच्छिन्न है, वह किसी भी विषयको नहीं भोगता है और उस अक्षर पुरुषको भी कोई विषयरूपसे नहीं भोग सकता ॥ ८ ॥

एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्र-मसौ विधृतौ तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशा-सने गार्गि द्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि निमेषा मुहूर्त्ता अहोरात्राण्यर्धमासा मासा ऋतवः सम्वत्सरा

इति विधृतास्तिष्ठन्त्येतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राच्योऽन्या नद्यः स्यन्दन्ते श्वेतेभ्यः पर्वतेभ्यः प्रतीच्योऽन्या यां यां च दिशमन्वेतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि ददतो मनुष्याः प्रशꣳसन्ति यजमानं देवा दर्वीं पितरोऽन्वायत्ताः ॥९॥

अन्वय और पदार्थ- (गार्गि) हे गार्गी ! (एतस्य, वै) इस प्रसिद्ध (अक्षरस्य) अविनाशीकी (प्रशासने) आज्ञा में (सूर्यचन्द्रमसौ) सूर्य और चन्द्रमा (विधृतौ) नियम में रहते हुए (तिष्ठतः) वर्त्ताव करते हैं (गार्गि) हे गार्गि ! (एतस्य, वै) इस ही (अक्षरस्य) अविनाशीकी (प्रशासने) आज्ञामें (द्यावापृथिव्यौ) स्वर्ग और पृथिवी (विधृतौ) धारण किये हुए (तिष्ठतः) स्थित रहते हैं (गार्गि)हे गार्गि (एतस्य, वै) इस ही (अक्षरस्य, प्रशासने) अविनाशीकी आज्ञामें (निमेषाः) पल, (मुहूर्त्ताः) मुहूर्त्त (अहोरात्राणि) रात दिन(अर्धमासाः)पक्ष(मासाः) महीने (ऋतवः) ऋतुएँ (सम्वत्सराः) वर्ष (इति) ये (विधृताः तिष्ठन्ति) नियमित वर्त्ताव करते हैं (गार्गि) हे गार्गी (एतस्य, वै) इस ही (अक्षरस्य, प्रशासने) अविनाशी की आज्ञामें (प्राच्याः) पूर्वकी ओरको जाने वाली (अन्याः) दूसरी (नद्यः) नदियें (श्वेतेभ्यः) श्वेत (पर्वतेभ्यः) पर्वतोंसे (स्यन्दन्ते) बहती हैं (प्रतीच्यः) पश्चिमकी ओर जाने वालीं (स्यन्दन्ते) बहती हैं (च) और (अन्याः) दूसरी (यां याम्) जिस जिस (दिशम्, अनु) दिशाकी ओरको [प्रवृत्ताः] प्रवृत्त हैं (गार्गि) हे गार्गी ! (एतस्य, वै) इस ही (अक्षरस्य, प्रशासने)

अविनाशीकी आज्ञामें (मनुष्याः) मनुष्य (ददतः) देते हुओंको (प्रशंसन्ति) प्रशंसा करते हैं (देवाः) देवता (यजमानम्) यजमानको (पितरः) पितर (दर्वीम्) दर्वी होमको (अन्वायत्ताः) अनुगत हैं ॥ ९ ॥

(भावार्थ)-हे गार्गि ! इस अविनाशी परमात्माकी आज्ञा से ये सूर्य और चन्द्रमा दासकी समान नियमसे अपना काम किया करते हैं । स्वर्ग और पृथिवी हाथ पर रक्खे हुए पत्थरकी समान जहांके तहां स्थित रहते हैं, पल, घड़ी, रात, दिन, पखवाड़े, महीने, ऋतु, और वर्ष ये कालके अवयव गिनती करने वाले सेवककी समान नियमसे वर्त्तते रहते हैं, इसके शासनमें ही पूर्व दिशा की गङ्गा आदि नदियें हिमालय आदि श्वेत पर्वतोंमेंसे बहती रहती हैं, पश्चिम दिशाकी नर्मदा आदि नदियें बहती रहती हैं और अन्य भी जिस२ दिशाकी नदियें हैं वे अपनी२ मर्यादामें बहती रहती हैं हे गार्गि ! इस अविनाशीकी आज्ञामें मनुष्य सुवर्ण आदि दान करने वालोंकी प्रशंसा करते हैं, इन्द्रादि देवता यजमानसे यज्ञभाग न पाकर भी जीवित रहसकते हैं, परन्तु इस अविनाशीकी आज्ञा से अपने जीवनके निमित्त यज्ञभागको देने वाले असमर्थ यजमानकी आशा किया करते हैं, और अर्यमा आदि पितर दर्वी नामके होमको अथवा पुत्रके दिये हुए श्राद्धके अन्नकी आशा किया करते हैं ।

यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्मिँल्लोके जुहोति यजते तपस्तप्यते बहूनि वर्षसहस्राण्यन्तवदेवास्य तद्भवति यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणोऽथ य एतदक्षरं गार्गि विदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मणः॥१०॥

अन्वय और पदार्थ—(गार्गि) हे गार्गी ! (यः) जो (एतत्, वै) इस प्रसिद्ध (अक्षरम्) अक्षरको (अविदित्वा) न जानकर (अस्मिन्) इस (लोके) लोकमें (बहूनि) बहुतसे (वर्षसहस्राणि) सहस्रों वर्ष पर्यन्त (जुहोति) होम करता है (यजते) यजन करता है (तपः, तप्यते) तपका अनुष्ठान करता (अस्य) इसका (तत्) वह (अन्तवत्, एव) अन्तवाला ही (भवति) होता है (गार्गि) हे गार्गी (यः) जो (एतत् वै) इस प्रसिद्ध (अक्षरम्) अविनाशीको (अविदित्वा) न जानकर (अस्मात्) इस (लोकात्) लोकसे (प्रैति) चलाजाता है (सः) वह (कृपणः) दीन है (अथ) और (गार्गि) हे गार्गी (यः) जो (एतत्) इस (अक्षरम्) अविनाशीको (विदित्वा) जानकर (अस्मात्) इस (लोकात्) लोकसे (प्रैति) जाता है (सः) वह (ब्राह्मणः) ब्रह्मवेत्ता है ॥ १० ॥

(भावार्थ)—याज्ञवल्क्यने कहा, कि—हे गार्गी ! जो मनुष्य इस अक्षर पुरुषको न जानकर इस लोकमें बहुतसे सहस्रों वर्ष पर्यन्त जो देवताओंके लिये संकल्प कियेहुए पदार्थका अग्निमें होम करता है, देवताका पूजन करता है, तपश्चर्या आदि भी करता है, इन सबके अनुष्ठानका फल अन्तवाला (नाशवान्) ही होता है । हे गार्गी ! जो मनुष्य इस अक्षर पुरुषको न जानकर इस लोकसे मरकर चलाजाता है वह दीन है और जो मनुष्य इसको जानकर इस लोकसे जाता है वह ब्रह्मज्ञानी (मुक्त) होता है ॥ १० ॥

तद्वा एतदक्षरं गार्ग्यदृष्टं द्रष्टृश्रुतं श्रोत्रमतं मन्तृ-

ज्ञातं विज्ञातृ नान्यदतोऽस्ति द्रष्टृ नान्यदतोऽस्ति श्रोतृ नान्यदतोऽस्ति मंतृ नान्यदतोऽस्ति विज्ञात्रेतास्मिन्नु खल्वक्षरे गार्ग्याकाश ओतश्च प्रोतश्चेति ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ—(गार्गि) हे गार्गी ! (तत्) वह (एतद्, वै) यह प्रसिद्ध (अक्षरम्) अक्षर पुरुष (अदृष्टम्) न देखाहुआ (द्रष्टृ) द्रष्टा (अश्रुतम्) न सुना हुआ (श्रोतृ) श्रोता (अमतम्) मनके विषय न हुआ (मन्तृ) मन्ता (अविज्ञातम्) बुद्धिका विषय न होता हुआ (विज्ञातृ) विज्ञाता (अतः) इससे (अन्यत्) और (द्रष्टृ) द्रष्टा (न) नहीं (अस्ति) है (अतः) इससे (अन्यत्) और (श्रोतृ) श्रोता (न, अस्ति) नहीं है (अतः, अन्यत्) इससे अन्य (मन्तृ) मनन करनेवाला (न, अस्ति) नहीं है (अतः, अन्यत्) इससे अन्य (विज्ञातृ) विज्ञाता (न अस्ति) नहीं है (गार्गि) हे गार्गी ! (एतस्मिन, नु) इस ही (खलु) प्रसिद्ध (अक्षरे) अक्षरमें (आकाशः) आकाश (ओतश्च प्रोतश्च) ओत प्रोत है (इति) यह उत्तर दिया ॥ ११ ॥

(भावार्थ)-हे गार्गि ! यह अक्षर पुरुष चक्षुका विषय न होनेसे किसीने देखा नहीं है परन्तु यह दृष्टिरूप होने से सबको देखता है कानका विषय न होनेसे इसको किसीने नहीं सुना परन्तु यह सदा सबको सुनता है, मनका विषय न होनेसे इसको किसीने मनन नहीं किया परन्तु यह सबका मन्ता है, बुद्धिका विषय न होनेसे इसको किसीने नहीं जाना है, परन्तु यह सबका विज्ञाता है, इससे भिन्न कोई द्रष्टा नहीं है, यही सर्वत्र द्रष्टा

है, इससे भिन्न श्रोता, इससे भिन्न मन्ता और इससे भिन्न विज्ञाता नहीं है, यही सर्वत्र श्रोता, मन्ता और विज्ञाता है, हे गार्गी ! इस अक्षर पुरुषमें ही आकाश ओतप्रोत है ॥ ११ ॥

सा होवाच ब्राह्मणा भगवन्तस्तदेव बहु मन्येध्वं यदस्मान्नमस्कारेण मुच्येध्वं न वै जातु युष्माकमिमं कश्चिद् ब्रह्मोद्यं जेतेति ततो ह वाचक्नव्युपरराम ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सा, ह) वह प्रसिद्ध (उवाच) बोली (भगवन्तः, ब्राह्मणाः) हे पूजनीय ब्राह्मणों ! (यत्) जो (अस्मात्) इससे (नमस्कारेण) नमस्कारके द्वारा (मुच्येध्वम्) छूटो (एतत् एव) इसको ही (बहु) बहुत (मन्येध्वम्) मानो (युष्माकम्) तुममेंका (कश्चित्, वै) कोई भी (इमम्) इनको (ब्रह्मोद्यम्) ब्रह्मवादमें (जातु) कभी भी (न) नहीं (जेता) जीतेगा (इति) ऐसा कहा था (ततः) तदनन्तर (वाचक्नवी) वचक्नुकी पुत्री (उपरराम) चुप हो रही थी ॥ १२ ॥

(भावार्थ) तदनन्तर गार्गीने कहा, कि-हे पूजनीय ब्राह्मणों ! मेरी बात सुनो—इन याज्ञवल्क्यको प्रणाम करके आज्ञा लेलो और इनसे पीछा छुटा कर चलेजाओ। इसको ही बहुत समझो, इनके पराजयका तो मनमें विचार भी नहीं किया जा सकता। मैंने तुमसे पहले ही कहा था, कि-यदि यह मेरे दो प्रश्नोंका उत्तर दे सकेंगे तो तुममेंसे कोई भी इन याज्ञवल्क्यको ब्रह्मवाद में कदापि नहीं जीतसकेगा। उस मेरी बातको तुम

सत्य मानो। ऐसा कह कर ब्राह्मणोंको हितकारी उपदेश दिया और फिर वह वचक्नुकी पुत्री गार्गी चुप हो रही, उसने और कोई प्रश्न नहीं किया ॥ १२ ॥

तृतीयाध्यायस्य अष्टमं ब्राह्मणं समाप्तम् ॥

अथ हैनं विदग्धः शाकल्यः पप्रच्छ कति देवा याज्ञवल्क्येति स हैतयैव निविदा प्रतिपेदे यावन्तो वैश्वदेवस्य निविद्युच्यन्ते त्री च शता त्रयश्च त्री च सहस्रेत्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति त्रयस्त्रिंशदित्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति षडित्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति त्रय इत्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति द्वावित्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येत्यध्यर्ध इत्येवमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येत्येक इत्येवोमिति होवाच कतमे ते त्रयश्च त्री च शता च त्रयश्च त्री च सहस्रेति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अनन्तर (एनं, ह) इस याज्ञवल्क्यके प्रति (शाकल्यः) शकलका पुत्र (विदग्धः) विदग्ध (पप्रच्छ) पूछता हुआ (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (देवाः) देवता (कति) कितने हैं (इति) इस प्रश्न पर (सः, ह) वह प्रसिद्ध (यावन्तः) जितने (वैश्वदेवस्य) वैश्वदेवकी (निविदि) निवित्में (उच्यन्ते) कहेजाते हैं (एतया) इस (निविदा, एव) निवित्के द्वारा ही (प्रतिपेदे) जानता हुआ (त्रयः) तीन (च) और (त्री, शता)

तीन सौ (च) और (त्रयः) तीन (च) और (त्री, सहस्रा) तीन सहस्र (इति) इस पर (ओम्, इति) ठीक है ऐसा (ह) वह (प्रसिद्ध (उवाच) कहता हुआ (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (कति) कितने (देवा, एव) निश्चित (देवाः)देवता हैं (इति) ऐसा बूझने पर (त्रयस्त्रिंशत्) तैंतीस हैं (इति) ऐसा कहा (ओम्) ठीक है (इति) ऐसा (ह) वह प्रसिद्ध (उवाच) कहता हुआ (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (कति) कितने (एव) निश्चत (देवाः) देवता हैं (इति) ऐसा बूझने पर (षट्) छः हैं (इति) ऐसा कहा (ओम्) ठीक है (इति) ऐसा (ह) वह प्रसिद्ध (उवाच) कहताहुआ (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (कति) कितने (एव) निश्चित (देवाः) देवता हैं (इति) ऐसा बूझने पर (त्रयः) तीन हैं इति) ऐसा कहा (ओम्) ठीक है (इति) ऐसा (ह) वह प्रसिद्ध (उवाच) कहता हुआ (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (कति) कितने (एव) निश्चित (देवाः) देवता हैं (इति) ऐसा बूझने पर (द्वौ) दो (इति) ऐसा कहा (ओम्) ठीक है (इति) ऐसा (ह) वह प्रसिद्ध (उवाच) कहता हुआ (याज्ञवल्क्य)हे याज्ञवल्क्य(कति) कितने (एव) निश्चित (देवाः) देवता हैं (इति) ऐसा बूझने पर (अध्यर्धः) डेढ़ (इति) ऐसा कहा (ओम्) ठीक है (इति) ऐसा (ह) वह प्रसिद्ध (उवाच) कहता हुआ (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्य (कति) कितने (एव) निश्चित (देवाः) देवता हैं (इति) ऐसा बूझने पर (एकः) एक है इति) ऐसा कहा (ओम्) ठीक है (इति) ऐसा (ह) वह प्रसिद्ध (उवाच) कहता हुआ (ते) वे (त्रयः) तीन (च) और (त्री, शता) तीनसौ (च) तथा (त्रयः)

तीन (च) और (त्री, सहस्रा) तीन सहस्र (कतमे) कौनसे हैं (इति) ऐसा बूझा ॥ १ ॥

(भावार्थ)-तदनन्तर शकलके पुत्र विदग्धने कहा कि—हे याज्ञवल्क्य ! इस देवताओंकी कितनी संख्या है ? याज्ञवल्क्यने आगे कही जानेवाली निविद् अर्थात् देवताओंकी संख्या बतानेवाले मंत्रसे इस प्रश्नका उत्तर दिया, उन्होंने कहा कि-वैश्वदेव नामक निविद्में देवताओंकी जो संख्या कही है वही देवताओंकी ठीक संख्या है । वह संख्या एक स्थान पर तीन सौ तीन और दूसरे स्थान पर तीन सहस्र तीन कही है । परन्तु यह मध्यम संख्या है, उत्तम संख्या तो अनन्त है । शाकल्यने कहा हां आप ठीक कहते हैं और फिर कहा, कि उनकी संकुचित संख्या क्या है ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि—तैंतीस विदग्धने कहा कि—और संकोच करने पर कितने हैं ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया कि-छः विदग्धने कहा—हां ठीक है परन्तु और संकोच करने पर कितने हैं ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया कि—तीन । विदग्धने कहा, कि-हां ठीक है, परन्तु और संकोच करने पर कितने हैं ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया कि-दो विदग्धने उत्तर दिया, कि-हां ठीक है, और संकोच करने पर कितने हैं ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि-डेढ़ विदग्धने कहा हां ठीक है और सङ्कोच करने पर कितने हैं याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया कि एक परन्तु वे तीनसौ तीन तथा तीन सहस्र तीन देवता कौनसे हैं ॥ १ ॥

स होवाच महिमान एवैषामेते त्रयस्त्रिꣳशत्त्वेव इति कतमे ते त्रयस्त्रिꣳशदित्यष्टौ वसव एका-

दश रुद्रा द्वादशाऽऽदित्यास्त एकत्रिꣳशदिन्द्र-श्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिꣳशाविति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध (सः) वह (उवाच) बोला (एषाम्) इनकी (एते) ये (महिमानः, एव) विभूतियें ही हैं (देवाः, तु) देवता तो (त्रयस्त्रिंशत्, एव) तैंतीस ही हैं (इति) ऐसा कहने पर (ते) वे (त्रयस्त्रिंशत्) तैंतीस (कतमे) कौनसे हैं (इति) यह बूझा (अष्टौ) आठ (वसवः) वसुः (एकादश) ग्यारह (रुद्राः) रुद्र (द्वादश) बारह (आदित्याः) आदित्य (ते) वे (एकत्रिंशत्) इकतीस (च) और (इन्द्रः, एव) इन्द्र भी (प्रजापतिः, च) प्रजापति भी (इति) ये (त्रयस्त्रिंशौ) तैंतीसको पूर्ण करनेवाले हैं ॥ २ ॥

(भावार्थ)—याज्ञवल्क्यने कहा, कि-देवता तो वास्तवमें तैंतीस ही हैं और ये तीन सहस्र तीन सौ छः देवता जो कहे ये उन ही देवताओंकी विभूतियें हैं, शाकल्यने कहा वे तैंतीस देवता कौनसे हैं ? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, कि-आठ वसु ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य तथा इन्द्र और प्रजापति ये ही तैंतीस देवता हैं ॥ २ ॥

कतमे वसव इत्यग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्त-रिक्षञ्चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसव एतेषु हीदꣳसर्वꣳहितमिति तस्मा-द्वसव इति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(कतमे) कौनसे (वसवः) वसु हैं (इति) ऐसा बूझने पर (अग्निः) अग्नि (च) और (पृथिवी) पृथिवी (च) और (वायुः) वायु (च)

और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (च) और (आदित्यः) आदित्य (च) और (द्यौः) स्वर्ग (च) और (चंद्रमाः) चन्द्रमा (च) और (नक्षत्राणि, च) नक्षत्र भी (एते) ये वसवः) वसु हैं (हि) क्योंकि (एतेषु) इनमें (सर्वम्) सब (हितम्) स्थित है (इति) ऐसा है (तस्मात्) तिससे (वसवः) वसु हैं (इति) यह उत्तर दिया ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-वसु कौनसे हैं ? ऐसा पूछने पर कहा कि अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, स्वर्ग, चन्द्रमा और नक्षत्र ये ही आठ वसु हैं; क्योंकि इन अग्नि आदिकोंमें यह सब जगत्-सकल प्राणियोंके शरीर, इन्द्रियें तथा कर्मफल स्थित हैं अर्थात् बसते हैं, इसलिये वसु कहलाते हैं ॥ ३ ॥

कतमे रुद्रा इति दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदाऽस्माच्छरीरान्मर्त्यादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(रुद्राः) रुद्र (कतमे) कौनसे हैं (इति) ऐसा पूछने पर (पुरुषे) शरीरमें (इमे) ये (दश) दश (प्राणाः) प्राण (एकादशः) ग्यारहवाँ (मनः) मन (ते) वे (यदा) जब (अस्मात्) इस (मर्त्यात्) मरणको प्राप्त होते हुए (शरीरात्) शरीरमें से (उत्क्रामन्ति) निकलते हैं (अथ) तब (रोदयन्ति) रुलाते हैं (यत्) क्योंकि- (तत्) उस समय (रोदयन्ति) रुलाते हैं (तस्मात्) तिससे (रुद्राः) रुद्र हैं (इति) यह उत्तर दिया ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-शाकल्यने बूझा, कि—ग्यारह रुद्र कौन से हैं ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि-पांच कर्मेन्द्रिय और पाँच ज्ञानेन्द्रियें तथा ग्यारहवां मन ये ग्यारह रुद्र हैं, क्योंकि-जब मरणको प्राप्त होते हुए इस शरीरमेंसे ये ग्यारहों निकलते हैं तो संबंधी पुरुषोंको रुलाते हैं । निकलनेके समय रुलाते हैं इसलिये ही रुद्र कहलाते हैं ॥ ४ ॥

कतम आदित्या इति द्वादश वै मासाः सम्वत्सरस्यैत आदित्या एते हीदꣳ सर्वमाददाना यन्ति ते यदिदं सर्वमाददाना यन्ति तस्मादादित्या इति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आदित्याः) आदित्य (कतमे) कौनसे हैं (इति) ऐसा बूझने पर (सम्वत्सरस्य) वर्षके (वै) प्रसिद्ध (एते) ये (द्वादश) बारह (मासाः) महीने (आदित्याः) आदित्य हैं (हि) क्योंकि (एते) ये (इदम्) इस (सर्वम्) सबको (आददानाः) ग्रहण करते हुए (यन्ति) जाते हैं (ते) वे (यत्) जो (इदं, सर्वम्) इस सबको (आददानाः) ग्रहण करते हुए (यन्ति) जाते हैं (तस्मात्) तिससे (आदित्याः) आदित्य हैं (इति) यह उत्तर दिया ॥ ५ ॥

(भावार्थ)—शाकल्यने बूझा, कि-बारह आदित्य कौनसे हैं ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि-संवत्सरके अवयवरूप प्रसिद्ध बारह महीने अपने अभिमानी देवताओं सहित बारह आदित्य हैं, क्योंकि-ये आदित्य कहिये बारह महीनोंके अभिमानी देवता बार २ लौट २ कर आते हुए इन सब प्राणियोंकी आयु आदिको लेकर

चलेजाते हैं, क्योंकि-वे आयु कर्मफल आदि सबको लेकर चले जाते हैं, इसलिये आदित्य कहलाते हैं॥ ५ ॥

कतम इन्द्रः कतमः प्रजापतिरिति स्तनयित्नुरे-वेन्द्रो यज्ञः प्रजापतिरिति कतमः स्तनयित्नुरित्य-शनिरिति कतमो यज्ञ इति पशव इति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इन्द्रः) इन्द्र (कतमः) कौनसा है (प्रजापतिः) प्रजापति (कतमः) कौनसा है (इति) ऐसा बूझने पर (स्तनयित्नुः, एव) मेघके गरजनेका अभिमानी ही (इन्द्रः) इन्द्र है (यज्ञः) यज्ञ (प्रजापतिः) प्रजापति है (इति) यह उत्तर दिया (स्तनयित्नुः) मेघके गरजनेका अभिमानी (कतमः) कौनसा है (इति) ऐसा बूझने पर (अशनिः) जिसका दूसरा नाम वज्र है वह बल (इति) यह उत्तर दिया (यज्ञः) यज्ञ (कतमः) कौनसा है (इति) ऐसा बूझने पर (पशवः) पशु (इति) यह उत्तर दिया ॥ ६ ॥

(भावार्थ)—शाकल्यने बूझा कि-इन्द्र कौनसा है? और प्रजापति कौनसा है? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि-मेघके गरजनेका अभिमानी स्तनयित्नु देवता ही इन्द्र है, और यज्ञ ही प्रजापति है। शाकल्यने बूझा, कि-स्तनयित्नु कौन सा है और यज्ञ कौनसा है? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि-मेघ गरजनेके अभिमानी इंद्र में जिसका दूसरा नाम वज्र है वह बल रहता है इस लिये बल ही स्तनयित्नु है और यज्ञका साधन होनेसे पशु ही यज्ञ है ॥ ६ ॥

कतमे षडित्यग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरि-क्षञ्चादित्यश्च द्यौश्च षडेते हीदꣳसर्वꣳषडिति ७

अन्वय और पदार्थ—(षट्) छः (कतमे) कौनसे हैं (इति) ऐसे प्रश्न पर (अग्निः) अग्नि (च) और (पृथिवी) पृथिवी (च) और (वायुः) वायु (च) और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (च) और (आदित्यः) आदित्य (च) और (द्यौः, च) स्वर्ग भी (एते) ये (षट्) छः हैं (हि) क्योंकि (इदम्) यह (सर्वम्) सब (एते) ये (षट्) छः हैं (इति) यह उत्तर दिया ॥ ७ ॥

(भावार्थ)-शाकल्यने बूझा, कि–छः देवता कौनसे हैं ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया कि–अग्नि, पृथिवी, वायु अन्तरिक्ष, आदित्य और स्वर्ग लोक ये छः देवता हैं, क्योंकि–तेतीस आदि जो कुछ कहा है वह सब देव-समूह इन अग्नि आदि छः के ही अन्तर्गत है ॥ ७ ॥

कतमे ते त्रयो देवा इतीम एव त्रयो लोका एषु हीमे सर्वे देवा इति कतमौ तौ द्वौ देवावित्यन्नं चैव प्राणश्चेति कतमोऽध्यर्ध इति योऽयं पवत इति ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ते) वे (त्रयः) तीन (देवाः) देवता (कतमे) कौनसे हैं (इति) इस प्रश्न पर (इमे) ये (त्रयः) तीन (लोकाः, एव) लोक ही हैं (हि) क्योंकि (एषु) इनमें (इमे) ये (सर्वे) सब (देवाः) देवता हैं (इति) यह उत्तर दिया (तौ) वे (द्वौ) दो (देवौ) देवता (कतमौ) कौनसे हैं (इति) इस प्रश्न पर (अन्नम्) अन्न (च) और (प्राणः, एव, च) प्राण भी (इति) यह उत्तर दिया (अध्यर्धः) डेढ (कतमः)

कौनसा है (इति) इस प्रश्न पर (यः) जो (अयम्) यह (पवते) चलता है (इति) ऐसा उत्तर दिया ॥८॥

(भावार्थ)-शाकल्य बूझा, कि—तीन देवता कौनसे हैं ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि—पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग ये तीन लोक ही तीन देवता हैं, क्योंकि-इन तीन देवताओंमें अग्नि, वायु और आदित्य इन सब देवताओंका अन्तर्भाव है, पृथिवीमें अग्नि, अन्तरिक्षमें वायु और स्वर्गमें आदित्य इसप्रकार तीन देवताओंमें तीन देवताओंका अन्तर्भाव है। शाकल्यने बूझा, कि-वे दोनों देवता कौनसे हैं ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि अन्न और प्राण ही दो देवता हैं, इनमें ही तीनों देवताओंका अन्तर्भाव है। शाकल्यने बूझा, कि-डेढ़ देवता कौनसा है ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि—यह जो बाहरी वायु चलता है यही डेढ़ देवता है ॥ ८ ॥

तदाहुर्यदयमेक इवैव पवतेऽथ कथमध्यर्ध इति यदस्मिन्निदꣳसर्वमध्यार्ध्नोत्तेनाध्यर्ध इति कतम एको देव इति प्राण इति स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ--(तत्) उसमें (आहुः) कहते हैं (यत्) जो (अयम्) यह (एकः, एव) एक ही (पवते) चलता है (अथ) तब (कथं, इव) किसप्रकार (अध्यर्धः) डेढ़ है (इति) इस प्रश्न पर (यत्) जो (अस्मिन्) इसके चलने पर (इदम्) यह (सर्वम्) सब (अधि) अधिक (आर्ध्नोत्) वृद्धि पाता है (तेन) तिससे (अध्यर्धः) डेढ़ कहलाता है (इति) यह उत्तर दिया (एकः) एक (देवः) देवता (कतमः)

कौनसा है (इति) इस प्रश्न पर (प्राणः) प्राण है (इति) यह उत्तर दिया (सः) वह (ब्रह्म) ब्रह्म है (त्यत्, इति) त्यत् ऐसा (आचक्षते) कहते हैं ॥ ९ ॥

(भावार्थ)-इस पर वादी शङ्का करता है, कि-वायु तो एक ही चलता है फिर वह अध्यर्ध (डेढ़) कैसे है ? इसका उत्तर यह है, कि--वायुके चलने पर स्थावर जंगम रूप यह सब अधिक वृद्धि पाता है, इसलिये वायु डेढ़ देवता कहलाता है । शाकल्यने कहा, कि--एक देवता कौनसा है ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि--प्राण ही एक देवता है । प्राण सर्वदेवरूप बृहत् सूत्रात्मा होनेसे ब्रह्म कहलाता है और परोक्ष होनेके कारण त्यत् पदसे कहाजाता है ॥ ९ ॥

पृथिव्येव यस्यायतनमग्निर्लोको मनो ज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः परायणꣳ स वै वेदिता स्याद्याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुषꣳ सर्वस्याऽऽत्मनः परायणं यमात्थ य एवायꣳ शारीरः पुरुषः स एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेत्यमृतमिति होवाच ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ—(पृथिवी, एव) पृथिवी ही (यस्य) जिसका (आयतनम्) शरीर है (अग्निः) अग्नि (लोकः) देखनेका साधन है (मनः) मन (ज्योतिः) ज्ञान है (सर्वस्य) सब (आत्मनः) शरीरका (परायणम्) परम आश्रय है (तं पुरुषम्) उस पुरुषको (यः) जो (वै) निश्चित रूपसे (विद्यात्) जाने (सः, वै) वह ही (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (वेदिता) जानने

वाला (स्यात्) है (यम्) जिसको (सर्वस्य) सब (आत्मनः) शरीरका (परायणम्) परम आश्रय (आत्थ) कहते हो (तम्) उस (पुरुषम्) पुरुषको (अहम्) मैं (वै) निश्चय (वेद) जानता हूं (यः) जो (अयम्) यह (एव) प्रसिद्ध (शरीरः) पार्थिव अंशरूप (पुरुषः) पुरुष है (सः)वह (एषः)यह पूछा है (शाकल्य) हे शाकल्य (वद) बूझो (तस्य) उसका (का, देवता) कौन देवता है (इति) यह बूझा (अमृतम्) अमृत (इति) ऐसा (ह) वह प्रसिद्ध (उवाच) कहता हुआ ॥ १० ॥

(भावार्थ)-पृथिवी ही जिस देवताका शरीर है, अग्नि ही जिसका देखनेका साधन चक्षु है और मन ही जिस का ज्ञान (सङ्कल्पविकल्पके प्रति हेतु) है वह पृथिवीके अंश का अभिमानी पुरुष सब शरीर कहिये बीजस्थानीय पितासे उपजे हुए अस्थि मज्जा और वीर्यरूप कारणका परम आश्रय है उस पुरुषको जो जानता है हे याज्ञवल्क्य वही विद्वान् होता है। इसके उत्तरमें याज्ञवल्क्यने कहा कि जिस पुरुषको तुम सब शरीरका परम आश्रय कहते हो उस पुरुषको मैं निश्चय जानता हूं । इस पर शाकल्य ने कहा, कि- यदि जानते हो तो कहो उसके कौन॰ से विशेषण हैं ! इसके उत्तरमें याज्ञवल्क्यने कहा, कि— जो यह शरीर कहिये पार्थिव अंश अर्थात् मातासे उत्पन्न हुए त्वचा मांस और रुधिर इन तीन कोशोंके रूपवाला पुरुष है, इसको ही तो तुमने बूझा है ? यदि इसमें बूझने योग्य कोई और बात जानते हो तो हे शाकल्य ! उसको भी अवश्य बूझो, याज्ञवल्क्यके ऐसा कहने पर शाकल्यने आवेशमें भरकर कहा, कि-माताके शरीरसे

उत्पन्न हुए तीन कोशरूप शरीरकी उत्पत्तिका कारण कौनसा देवता है? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि-वह अमृत है अर्थात् माताके खाये हुए अन्नका रस ही रुधिर आदिका कारण है ॥ १० ॥

काम एव यस्याऽऽयतनꣳ हृदयं लोको मनो ज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्याऽऽत्मनः परायणꣳ स वै वेदिता स्याद्याज्ञवल्क्य वेदवा अहं तं पुरुषꣳ सर्वस्याऽऽत्मनः परायणं यमात्थ य एवाऽयं काममयः पुरुषः स एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेति स्त्रिय इति होवाच ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ—(कामः, एव) काम ही (यस्य) जिसका (आयतनम्) शरीर है (हृदयम्) बुद्धि (लोकः) देखनेका साधन है (मनः) मन (ज्योतिः) ज्ञानका साधन है (सर्वस्य) सब (आत्मनः) शरीरके (परायणम्) परम आश्रय रूप (तम्) उस (पुरुषम्) पुरुष को (यः) जो (वै) निश्चयरूपसे (विद्यात्) जाने (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (सः) वह (वै) निश्चय (वेदिता) विद्वान् (स्यात्) होय (यम्) जिसको (सर्वस्य) सब (आत्मनः) शरीरका (परायणम्) परम आश्रय (आत्थ) कहते हो (तं, पुरुषम्) उस पुरुषको (अहम्) मैं (वै) निश्चय (वेद) जानता हूं (यः) जो (अयम्) यह (वै) प्रसिद्ध (काममयः) काममय (पुरुषः) पुरुष है (सः) वह (एषः) यह तुमने बूझा है (शाकल्य) हे शाकल्य (वद, एव) अवश्य बूझो (तस्य) उसका (का, देवता) कौन देवता है (इति) यह बूझा (स्त्रियः)

स्त्रियें [इति] ऐसा (ह) वह प्रसिद्ध (उवाच) कहता हुआ ॥ ११ ॥

[भावार्थ]--काम कहिये स्त्रीके समागमकी अभिलाषा ही जिस देवताका शरीर है, बुद्धि जिसका नेत्र है और मन जिसका ज्ञान कहिये सङ्कल्प विकल्पका साधन है, सब शरीरके परम आश्रय रूप उस पुरुषको जो जान लेय हे याज्ञवल्क्य ! वही पण्डित होजाय। ऐसा कहने पर उसके उत्तरमें याज्ञवल्क्य कहते हैं, कि जिस पुरुषको तुम शरीरका परम आश्रय कहते हो। उस पुरुषको तो मैं जानता हूं इस पर शाकल्यने कहा, कि-यदि जानते हो तो बताओ, उसके कौन२ विशेषण है, याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया कि—जो यह कामरूप शरीर वाला काममय पुरुष है उसको ही तुमने बूझा है, हे शाकल्य ! इसके विषयमें यदि तुम कुछ और बूझना चाहो तो बूझलो, तब शाकल्यने बूझा, कि-उस अध्यात्मिक काममय पुरुषकी उत्पत्तिका कारण कौन है ? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, कि-स्त्रियें ॥ ११ ॥

रूपाण्येवं यस्याऽऽयतनं चक्षुर्लोको मनो ज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्याऽऽत्मनः परायणꣳ स वै वेदिता स्याद्याज्ञवल्क्य वेदवा अहं तं पुरुषꣳ सर्वस्यात्मनः परायणं यमात्थ य एवासावादित्ये पुरुषः स एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेति सत्यमिति होवाच ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ- (रूपाणि, एव) रूप हो (यस्य) जिसका (आयतनम्) शरीर है (चक्षुः) नेत्र (लोकः)

देखने का साधन है (मनः) मन (ज्योतिः) ज्ञान है (सर्वस्य) सब (आत्मनः) शरीरके (परायणम्) परम आश्रयरूप (तं. पुरुषम्) उस पुरुषको (यः) जो (वै) निश्चय (विद्यात्) जाने (सः) वह (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (वै) निश्चय (वेदिता) विद्वान् (स्यात्) होय (यम्) जिस को (सर्वस्य, आत्मनः) सब शरीरका (परायणम्) परम आश्रय (आत्थ) कहते हो (तं, पुरुषम्) उस पुरुषको (अहम्) मैं (वै) निश्चय (वेद) जानता हूँ (यः) जो (असौ) यह (आदित्ये) आदित्यमें (एव) प्रसिद्ध (पुरुषः) पुरुष है (सः) वह (एषः, एव) यही है (शाकल्य) हे शाकल्य (वद, एव) अवश्य बूझ (तस्य) उसका (का, देवता) कौन देवता है (इति) इस प्रश्नपर (सत्यम्) सत्य है (इति) ऐसा (ह) वह प्रसिद्ध (उवाच) कहता हुआ ॥ १२ ॥

(भावार्थ)-शुक्ल कृष्ण आदि रूप ही जिसका शरीर है नेत्र जिसका देखनेका साधन है और मन जिसका सङ्कल्प विकल्प करनेका साधन ज्ञान है, ऐसे सब शरीरके परम आश्रयरूप उस पुरुषको जाने, हे याज्ञवल्क्य! वही पण्डित होजाय, याज्ञवल्क्यने इसका उत्तर दिया, कि-जिस पुरुषको तुम सब शरीरका परम आश्रय कहते हो उस पुरुषको मैं जानता ही हूँ। शाकल्य ने कहा कि--यदि जानते हो तो बताओ उसके कौन २ विशेषण हैं? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि-इस आदित्यमें जो पुरुष है उसको ही तुमने बूझा है, यदि तुम इस विषयमें कुछ और बूझना चाहो तो बूझो तब शाकल्यने कहा, कि-इस आदित्यमें रहनेवाले पुरुष

की उत्पत्तिका कारण क्या है ? इसके उत्तरमें याज्ञवल्क्य ने कहा, कि-अभिमानीका नेत्रके साथ सम्बन्ध होनेके कारण आदित्य का प्रत्यक्ष होता है, इसलिये सत्य नाम से कहा जानेवाला आध्यात्मिक चक्षु उसका कारण है, अन्यत्र श्रुतिमें भी कहा है—"चक्षोः सूर्यो अजायत ॥

आकाश एव यस्याऽऽयतनꣳ श्रोत्रं लोको मनो ज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः परायणꣳ स वै वेदिता स्याद्याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुषꣳ सर्वस्याऽऽत्मनः परायणं यमात्थ एवायꣳ श्रौत्रः प्रातिश्रुत्कः पुरुषः स एव वदैव शाकल्य तस्य का देवतेति दिश इति होवाच ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ (आकाशः, एव) आकाश ही (यस्य) जिसका (आयतनम्) शरीर है (श्रोत्रम्) कान (लोकः) सुननेका साधन है (मनः) मन (ज्योतिः) ज्ञान है (सर्वस्य, आत्मनः) सब शरीरके (परायणम्) परम आश्रय (तं, पुरुषम्) उस पुरुषको (यः) जो (वै) निश्चितरूपसे (विद्यात्) जाने (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञ वल्क्य (सः, वै) वह ही (वेदिता) विद्वान् (स्यात्) होय (यम्) जिसको (सर्वस्य) सब (आत्मनः) शरीरका (परायणम्) परम आश्रय (आत्थ) कहते हो (तं, पुरुषम्) उस पुरुषको (अहम्) मैं (वेद वै) जानता ही हूँ (यः) जो (अयम्) यह (वै) प्रसिद्ध (प्रातिश्रुत्कः) प्रतिश्रवणकालमें विशेषरूपसे उत्पन्न होनेवाला (श्रौत्रः, पुरुषः) श्रोत्रगत पुरुष है (सः)

वह (एषः) यह है (शाकल्य) हे शाकल्य (वद, एव) अवश्य बूझो (तस्य) उसका (का) कौन (देवता) उत्पत्तिका कारण है (इति) इस प्रश्न पर (दिशः) दिशायें (इति) ऐसा (ह) वह प्रसिद्ध (उवाच) कहता हुआ ॥ १३ ॥

(भावार्थ)-आकाश ही जिसका शरीर है, श्रोत्र जिसका सुननेका साधन है और मन जिसके सङ्कल्प विकल्परूप ज्ञानका साधन है उस सब शरीरके परम आश्रय रूप पुरुषको जो जाने हे याज्ञवल्क्य ! वही पंडित होय । इस पर याज्ञवल्क्यने कहा, कि-जिस पुरुषको तुम सब शरीरका परम आश्रय कहते हो, उस पुरुषको मैं अवश्य ही जानता हूँ, इस पर शाकल्यने कहा, कि-यदि जानते हो तो बताओ, कि-वह कौन है ? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, कि—जो प्रत्येक श्रवण कालमें विशेष रूपसे उत्पन्न होता है उस श्रोत्रगत पुरुषको तुमने बूझा है, यदि इस विषयमें और कुछ बूझनेकी इच्छा हो तो वह भी बूझो । इस पर शाकल्यने कहा, कि-उस श्रोत्र गत पुरुषकी उत्पत्तिका कारण कौन है ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि—दिशायें ॥ १३ ॥

तम एव यस्याऽऽयतनꣳ हृदयं लोको मनो ज्योतिर्यो वै तं विद्यात्सर्वस्याऽऽत्मनः परायणꣳ स वै वेदिता स्याद्याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुषꣳ सर्वस्यात्मनः परायणं यमात्थ य एवा ऽयं छायामयः पुरुषः स एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेति मृत्युरिति होवाच ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तमः, एव) अन्धकार ही (यस्य) जिसका (आयतनम्) शरीर है (हृदयम्) हृदय (लोकः) जाननेका साधन है (मनः) मन (ज्योतिः) ज्ञान है (सर्वस्य, आत्मनः, परायणम्) सब शरीरके परम आश्रयरूप (तं, पुरुषम्,) उस पुरुषको (यः) जो (वै) निश्चित रूपसे (विद्यात्) जाने (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (सः, वै) वह ही (वेदिता, स्यात्) विद्वान् होय (यम्) जिसको (सर्वस्य, आत्मनः परायणम्) सब शरीरके परम आश्रय (आत्थ) कहते हो (तं, पुरुषम्) उस पुरुषको (अहम् मैं (वेद, वै) जानता ही हूं (यः) जो (अयम्) यह (छायामयः) अज्ञानमय (पुरुषः) पुरुष है (सः, एव) वह ही (एषः) यह है (शाकल्य) हे शाकल्य (वद, एव) अवश्य बूझो (तस्य) उसका (देवता) उत्पत्तिका कारण (का) कौन है (इति) इस प्रश्न पर (मृत्युः)मृत्यु (इति) ऐसा (ह) वह प्रसिद्ध (उवाच) बोला ॥ १४ ॥

(भावार्थ)-अन्धकार ही जिसका शरीर है, बुद्धि जिस का जाननेका साधन है और मन जिसके सङ्कल्प विकल्प रूप ज्ञानका साधन है, सकल शरीरके परम आश्रयरूप उस पुरुषको जो जाने हे याज्ञवल्क्य ! वही पण्डित होय इस पर याज्ञवल्क्यने कहा, कि-जिसको तुम सब शरीर का परम आश्रय कहते हो उस पुरुषको मैं अवश्य जानता हूँ, शाकल्यने कहा, कि—यदि जानते हो तो बताओ वह कौन है ! याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि-जो अज्ञानमय प्रसिद्ध पुरुष है उसको ही तुमने बूझा है, हे शाकल्य ! इसके विषयमें यदि कुछ और बूझना चाहो तो बूझो । शाकल्यने कहा—उस अज्ञानमय पुरुषकी

उत्पत्तिका कारण कौन है ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि मृत्यु ॥ १४ ॥

रूपाण्येव यस्याऽऽयतनं चक्षुर्लोको मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्याऽऽत्मनः परायणꣳ स वै वेदिता स्याद्याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुषꣳ सर्वस्याऽऽत्मनः परायणं यमात्थ य एवाऽयमादर्शे पुरुषः स एव वदैव शाकल्य तस्य का देवतेत्यसुरिति होवाच ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ- (रूपाणि, एव) रूप ही (यस्य) जिसका (आयतनम्) शरीर है (चक्षुः) नेत्र (लोकः) देखनेका साधन है (मनः) मन (ज्योतिः) ज्ञान है (सर्वस्य) सब (आत्मनः) शरीरके (परायणम्) परम आश्रय (तं पुरुषम्) उस पुरुषको (यः) जो (विद्यात्) जाने (सः, वै) वह ही (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (वेदिता) विद्वान् (स्यात्) होय (यम्) जिसको (सर्वस्य, आत्मनः) सब शरीरका (परायणम्) परम आश्रय (आत्थ) कहते हो (तं, पुरुषम्) उस पुरुषको (अहम्) मैं (वेद, वै) जानता ही हूं (यः, अयम्) जो यह (एव) प्रसिद्ध (आदर्शे) दर्पणमें (पुरुषः) पुरुष है (सः) वह (एषः, एव) यह ही है (शाकल्य) हे शाकल्य (वद) कहो (तस्य) उसका (देवता) उत्पत्तिका कारण (का) कौन है (इति) इस प्रश्न पर (असुः) प्राण (इति) ऐसा (ह) प्रसिद्ध (उवाच) कहता हुआ ॥ १५ ॥

(भावार्थ)—शाकल्यने कहा, कि-हे याज्ञवल्क्य स्वच्छ आदर्श आदि प्रकाशक रूप ही जिसका शरीर है, चक्षु जिसका देखनेका साधन है और मन जिसका सङ्कल्प विकल्पका साधनरूप ज्ञान है, सकल शरीरके परम आश्रय उस पुरुषको जो जाने वही पण्डित होय। याज्ञवल्क्यने कहा, कि-तुमने जिस पुरुषकी बात कही उस को मैं निश्चय जानता हूँ जो यह दर्पणमें स्थित प्रतिबिम्ब पुरुष है उसको तो तुमने बूझा है यदि और कुछ बूझना चाहो तो बूझलो। शाकल्यने कहा कि--इस दर्पणमेंके प्रतिबिम्ब पुरुषकी उत्पत्तिका कारण कौन है याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया कि प्राण, क्योंकि—प्राणरूप शरीर बलके द्वारा दर्पण देखने पर ही प्रतिबिम्बका उदय होता है ॥ १५ ॥

आप एव यस्यायतनᳫं हृदयं लोको मनो ज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्याऽऽत्मनः परायणᳫं स वै वेदिता स्याद्याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुषᳫं सर्वस्यात्मनः परायणं यमात्थ य एवायमप्सु पुरुषः स एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेति वरुण इति होवाच ॥ १६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आपः, एव) जल ही (यस्य) जिसका (आयतनम्) शरीर है (हृदयम्) बुद्धि (लोकः) देखनेका साधन है (मनः) मन (ज्योतिः) ज्ञान है (सर्वस्य) सब (आत्मनः) शरीरके (परायणम्) परम आश्रयः (तं, पुरुषम्) उस पुरुषको (यः) जो (वै) निश्चय (विद्यात्) जाने (सः, वै) वह ही

(याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (वेदिता) विद्वान् (स्यात्) होय (यम्) जिसको (सर्वस्य, आत्मनः) सब शरीर-का (परायणम्) परम आश्रय (आत्थ) कहते हो (तं, पुरुषम्) उस पुरुषको (अहम्) मैं (वेद, वै) जानता ही हूं (यः) जो (अयम्) यह (एव) प्रसिद्ध (अप्सु) जलोंमें (पुरुषः) पुरुष है (सः) वह (एषः, एव) यह ही है (शाकल्य) हे शाकल्य (वद) कहो (तस्य) उस का (देवता) उत्पत्तिका कारण (का) कौन है (इति) इस प्रश्न पर (वरुणः) वरुण (इति) ऐसा (ह) प्रसिद्ध (उवाच) बोला ॥ १६ ॥

(भावार्थ)—नदी आदिमेंका जल ही जिसका शरीर है, बुद्धि जिसका देखनेका साधन है और मन जिसका सङ्कल्प विकल्पका साधन है, सब शरीरके परम आश्रयरूप उस पुरुषको जो जाने वही विद्वान् होय । याज्ञवल्क्य ने कहा कि-जिस पुरुषकी बात तुम कहरहे हो उस पुरुष को मैं निश्चय जानता हूँ तुमने इस जलके अन्तवर्त्ती पुरुषको ही तो बूझा है, तुमको और कुछ कहना हो तो वह भी कहो । शाकल्यने बूझा, कि—इन जलोंमेंके पुरुषको उत्पत्तिका कारण कौन है ! याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि -वरुण वर्षाके द्वारा भूमि पर पड़ने वाला जल ॥ १६ ॥

रेत एव यस्याऽऽयतनं हृदयं लोको मनो ज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः परायणꣳ स वै वेदिता स्याद्याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुषꣳ सर्वस्यात्मनः परायणं यमात्थ य एवायं

पुत्रमयः पुरुषः स एव वदैव शाकल्य तस्य का देवतेति प्रजापतिरिति होवाच ॥ १७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(रेतः, एव) वीर्य ही (यस्य) जिस का (आयतनम्) शरीर है (हृदयम्) बुद्धि (लोकः) देखनेका साधन है (मनः) मन (ज्योतिः) ज्ञान है (सर्वस्य) सब (आत्मनः) शरीरके (परायणम्) परम आश्रय (तं, पुरुषम्) उस पुरुषको (यः) जो (विद्यात्) जाने (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (सः) वह (वै) निश्चय (वेदिता) विद्वान् (स्यात्) होय (यम्) जिस को (सर्वस्य, आत्मनः) सब शरीरका (परायणं, आत्थ) परम आश्रय कहते हो (तं, पुरुषम्) उस पुरुषको (अहं, वेद वै) मैं जानता ही हूं (यः, अयम्) जो यह (एव) प्रसिद्ध (पुत्रमयः, पुरुषः) पुत्रमय पुरुष है (सः, एषः एव) वह यही है (शाकल्य) हे शाकल्य (वद) कहो (तस्य) उसका (देवता) उत्पत्तिका कारण (का) कौन है (इति) इस प्रश्न पर (प्रजापतिः) प्रजापति (इति) ऐसा (ह) प्रसिद्ध (उवाच) बोला ॥ १७ ॥

(भावार्थ)-शाकल्यने कहा, कि — हे याज्ञवल्क्य ! वीर्य जिसका शरीर है, जो बुद्धिसे देखता है और जो मनसे सङ्कल्प विकल्प करता है उस सब शरीरके परम आश्रयरूप पुरुषको जो जान लेय, वही पण्डित होय, याज्ञवल्क्यने कहा, कि-हे शाकल्य ! तुम जिस पुरुष की बात कहते हो उसको मैं निश्चय जानता हूं । जो यह पुत्रमय कहिये पितासे उपजा हड्डी मज्जा और वीर्यरूप पुरुष है इसको ही तो तुम बूझ रहे हो इस विषयमें यदि इच्छा हो तो कुछ और बूझो । शाकल्यने

कहा कि—इस पुत्रमय पुरुषकी उत्पत्तिका कारण कौन है। याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया कि-प्रजापति (पिता) क्योंकि वह अस्थि आदिका उत्पादक है ॥ १७ ॥

शाकल्येति होवाच याज्ञवल्क्यस्त्वा५स्विदिमे ब्राह्मणा अङ्गारावक्षयणमक्रता३इति ॥ १८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(शाकल्य) हे शाकल्य (इति) इस प्रकार (ह) प्रसिद्ध (याज्ञवल्क्यः) याज्ञवल्क्य (उवाच) बोला (इमे) ये (ब्राह्मणाः) ब्राह्मण (त्वाम्) तुझको (स्वित्) ही (अङ्गारावक्षयणम्) अङ्गारे पकड़नेकी सँडासी (अक्रता ३) करते हुए (इति) ऐसा है ॥ ८ ॥

(भावार्थ)-याज्ञवल्क्यने शाकल्यको कुछ मौनसा होते हुए देखकर कहा, कि—हे शाकल्य ! इन ब्राह्मणोंने तुझे निःसन्देह अङ्गारा पकड़नेकी सँडासी बना लिया था, तुझ अङ्गाररूपके तेजमें दह्यमान होकर भी तू इनकी चातुरीको समझा या नहीं ? ॥ १८ ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच शाकल्यो यदिदं कुरुपञ्चालानां ब्राह्मणानत्यवादीः किं ब्रह्म विद्वानिति दिशो वेद सदेवाः सप्रतिष्ठा इति यद् दिशो वेत्थ सदेवाः सप्रतिष्ठाः ॥ १९ ॥

किं देवतोऽस्यां प्राच्यां दिश्यसीत्यादित्यदेवत इति स आदित्यः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति चक्षुषीति कस्मिन्नु चक्षुः प्रतिष्ठितमिति रूपेष्विति चक्षुषा हि रूपाणि पश्यति कस्मिन्नु रूपाणि प्रतिष्ठितानीति हृदय इति होवाच हृदयेन हि

रूपाणि जानाति हृदयेन ह्येव रूपाणि प्रतिष्ठितानि भवन्तीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ॥ २० ॥

अन्वय और पदार्थ-(शाकल्यः, ह) प्रसिद्ध शाकल्य (याज्ञवल्क्य, इति) हे याज्ञवल्क्य इसप्रकार (उवाच) बोला (यत्) जो (इदम्) यह (कुरुपाञ्चालानाम्) कुरु तथा पञ्चालके (ब्राह्मणान्, अत्यवादीः) ब्राह्मणोंका तिरस्कार किया (ब्रह्म) ब्रह्मको (विद्वान्) जाननेवाला (इति) ऐसा (किम्) क्यों करता है (सदेवाः) देवताओं सहित (सप्रतिष्ठाः) प्रतिष्ठाओं सहित (दिशः) दिशाओंको (वेद) जानता हूं (इति) इस पर (यत्) जो (सदेवाः) देवताओं सहित (सप्रतिष्ठाः) प्रतिष्ठाओं सहित (दिशः) दिशाओंको (वेत्थ) जानते हो [तोहिं] तो (अस्याम्) इस (प्राच्यां, दिशि) पूर्वदिशामें (किंदेवतः) किस देवतावाले (असि) हो (इति) ऐसा कहने पर (आदित्यदेवतः) आदित्य देवतावाला (इति) यह उत्तर दिया (सः) वह (आदित्यः) आदित्य (कस्मिन्) किस में (प्रतिष्ठितः) स्थित है (इति) ऐसा कहने पर (चक्षुषि) चक्षुमें (इति,) यह उत्तर दिया (चक्षुः) चक्षु (कस्मिन्, नु) किसमें (प्रतिष्ठितं) स्थित है (इति) ऐसा पूछने पर (रूपेषु) रूपोंमें (इति) यह उत्तर दिया (हि) क्योंकि (चक्षुषा) चक्षुके द्वारा (रूपाणि) रूपोंको (पश्यति) देखता है (रूपाणि) रूप (कस्मिन्, नु) किसमें (प्रतिष्ठितानि) स्थित हैं (इति) ऐसा कहने पर (हृदये) हृदयमें (इति) ऐसा (ह) प्रसिद्ध (उवाच) कहा (हि) क्योंकि (हृदयेन) हृदयके द्वारा (रूपाणि) रूपोंको (जानाति) जानता है (हि) क्योंकि (रूपाणि)

रूप (हृदये, एव) हृदयमें ही (प्रतिष्ठितानि) स्थित (भवन्ति) होते हैं (इति) इसप्रकार (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (एतत्) यह (एवमेव) इसप्रकार ही है ॥१९-२०॥

(भावार्थ)—शाकल्यने फिर कहा, कि-हे याज्ञवल्क्य तुम जो यह कुरुपञ्चाल देशके ब्राह्मणों पर आक्षेप कर रहे हो क्या यह काम तुम सरीखे एक ब्रह्मज्ञानीको शोभा देता है ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया कि-मैं सब दिशाओंको, दिशाओंके अधिष्ठात्री देवताओंको और उन सबके अधिष्ठानोंको भी ब्रह्मरूप जानकर उनकी उपासना करता हूँ, इसप्रकार मुझे दिशाओंके संबन्ध का ब्रह्मज्ञान है । इस पर शाकल्यने कहा, कि-यदि तुम यह सब जानते हो तो बताओ कि-तुम इस पूर्वदिशामें किस देवताके साथ पूर्वदिशारूप हुए हो ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया कि-मैं आदित्य देवताके साथ पूर्वदिशारूप हुआ हूँ, शाकल्यने बूझा कि—वह आदित्य किसमें स्थित है ? याज्ञवल्यने उत्तर दिया, कि-अपनी उत्पत्तिके कारण चक्षुमें स्थित है । शाकल्यने फिर बूझा, कि-वह चक्षु किसमें स्थित है ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि-रूपोंमें, क्योंकि-मनुष्य चक्षुसे रूपोंको देखता है । शाकल्यने बूझा-रूप किसमें स्थित हैं? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि-बुद्धिमें, क्योंकि पुरुष बुद्धिके द्वारा ही वासनात्मक रूपोंको स्मरण करता है, इसलिये बुद्धिमें ही रूप स्थित हैं। यह सुनकर शाकल्यने कहा, कि-हे याज्ञवल्क्य ! आपका कथन ठीक है ॥ १९ ॥ २० ॥

किं देवतोऽस्यां दक्षिणायां दिश्यसीति यमदे-

वत इति स यमः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति यज्ञ इति कस्मिन्नु यज्ञः प्रतिष्ठित इति दक्षिणाया-मिति कस्मिन्नु दक्षिणा प्रतिष्ठितेति श्रद्धाया-मिति यदा ह्येव श्रद्धत्तेऽथ दक्षिणां ददाति श्रद्धायाᳬ ह्येव दक्षिणा प्रतिष्ठितेति कस्मिन्नु श्रद्धा प्रतिष्ठितेति हृदय इति होवाच हृदयेन हि श्रद्धां जानाति हृदये ह्येव श्रद्धा प्रतिष्ठिता भवतीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ॥ २१ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अस्याम्) इस (दक्षिणायां दिशि) दक्षिणदिशामें (किंदेवतः) किमदेवतावाले (असि) हो (इति) ऐसा कहने पर (यमदेवतः) यमदेवतावाला (इति) यह उत्तर दिया (सः, यमः) वह यम (कस्मिन्) किसमें (प्रतिष्ठितः) स्थित है (इति) ऐसा कहने पर (यज्ञे) यज्ञमें (इति) यह उत्तर दिया (यज्ञः) यज्ञ (कस्मिन्नु) किसमें (प्रतिष्ठितः) स्थित है (इति) ऐसा कहने पर (दक्षिणायाम्) दक्षिणामें (इति) यह उत्तर दिया (दक्षिणा) दक्षिणा (कस्मिन्नु) किसमें (प्रतिष्ठिता) स्थित है (इति) ऐसा कहने पर (श्रद्धायाम्) श्रद्धामें (इति) यह उत्तर दिया (हि) क्योंकि (यदा) जब (श्रद्धत्ते) श्रद्धा करता है (अथ, एव) तब ही (दक्षिणाम्) दक्षिणाको (ददाति) देता है (हि) इसकारण (श्रद्धायां, एव) श्रद्धामें ही (दक्षिणा) दक्षिणा (प्रतिष्ठिता) स्थित है (इति) ऐसा उत्तर दिया (श्रद्धा) श्रद्धा (कस्मिन्नु) किसमें (प्रति-

ष्ठिता) स्थित है (इति) ऐसा कहने पर (हृदये) हृदयमें (इति) ऐसा (हि) प्रसिद्ध (उवाच) कहता हुआ (हि) क्योंकि (हृदयेन) हृदयके द्वारा (श्रद्धाम्) श्रद्धाको (जानाति) जानता है (हि) इस कारण (हृदये, एव) हृदयमें ही (श्रद्धा) श्रद्धा (प्रतिष्ठिता, भवति) स्थित है (इति) ऐसा उत्तर देने पर (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (एतत्) यह (एवमेव) ऐसे ही है ॥ २१ ॥

(भावार्थ)-हे याज्ञवल्क्य ! तुम किस देवताके साथ दक्षिण दिशारूप हुए हो ? उत्तर-मैं यम देवताके साथ दक्षिणदिशाके रूपमें आया हूं। प्रश्न-यम देवता किसमें स्थित है ? उत्तर-यज्ञमें स्थित है, क्योंकि-यजमान यज्ञके द्वारा यम देवतामण्डित दक्षिणदिशाको जीत लेता है। प्रश्न-यज्ञ किसमें स्थित है ? उत्तर-यज्ञ दक्षिणामें स्थित है, क्योंकि-यजमान दक्षिणाके द्वारा यज्ञको मानो ऋत्विजोंसे बिकता हुआ खरीदता है। प्रश्न-दक्षिणा किसमें स्थित है ?। उत्तर-दक्षिणा आस्तिकताकी बुद्धि रूप श्रद्धामें स्थित है, क्योंकि-जब श्रद्धा करता है तब ही दक्षिणा देता है। प्रश्न श्रद्धा किसमें स्थित है ? उत्तर-श्रद्धा बुद्धिमें स्थित है, क्योंकि—बुद्धिसे ही श्रद्धाको जानता है। इस पर शाकल्यने कहा, कि—हे याज्ञवल्क्य ! तुम्हारा यह कहना ठीक है ॥ २१ ॥

किं देवतोऽस्यां प्रतीच्यां दिश्यसीति वरुणदेवत इति स वरुणः कस्मिन्प्रतिष्ठित इत्यप्स्विति कस्मिन्न्वापः प्रतिष्ठिता इति रेतसीति कस्मिन्नु रेतः

प्रतिष्ठितमिति हृदय इति तस्मादपि प्रतिरूपं जातमाहुर्हृदयादिव सृप्तो हृदयादिव निर्मित इति हृदये ह्येव रेतः प्रतिष्ठितं भवतीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ॥ २२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अस्याम्) इस (प्रतीच्याम्) पश्चिम (दिशि) दिशामें (किंदेवतः) किस देवतावाला (असि) है (इति) ऐसा बूझने पर (वरुणदेवतः) वरुण देवतावाला (इति) यह उत्तर दिया (सः) वह (वरुणः) वरुण (कस्मिन्नु) किसमें (प्रतिष्ठितः) स्थित है (इति) ऐसा बूझने पर (अप्सु) जलमें (इति) यह उत्तर दिया (आपः) जल (कस्मिन्नु) किसमें (प्रतिष्ठिताः) स्थित हैं (इति) ऐसा बूझने पर (रेतसि) वीर्यमें (इति) यह उत्तर दिया (रेतः) वीर्य (कस्मिन्नु) किसमें (प्रतिष्ठितम्) स्थित है (इति) ऐसा बूझने पर (हृदये) बुद्धिमें (इति) यह उत्तर दिया (तस्मात् अपि) तिससे ही (प्रतिरूपम्) रूपके अनुसार ही (जातम्) उत्पन्न हुएको (आहुः) कहते हैं (हृदयात्) बुद्धिमेंसे (सृप्तः, इव) मानो निकला है (हृदयात्) बुद्धिसे (निर्मितः, इव) मानो बनाया है (इति) इस कारण (हृदये, एव, हि) बुद्धिमें ही (रेतः) वीर्य (प्रतिष्ठितम् भवति) स्थित है (इति) ऐसा उत्तर देने पर (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (एतत्) यह (एवमेव) ऐसा ही है ॥ २२ ॥

(भावार्थ)—प्रश्न-याज्ञवल्क्य ! किस देवताके साथ तुम पश्चिमदिशाके रूपमें आये हो ? उत्तर-वरुणदेवताके साथ प्रश्न-वरुण किसमें स्थित है ? उत्तर-अपनी

उत्पत्तिके कारण जलोंमें । प्रश्न—जल किसमें स्थित हैं ? उत्तर—वीर्यमें । प्रश्न—वीर्य किसमें स्थित है ? उत्तर-वीर्य बुद्धिमें स्थित है, क्योंकि—वीर्य कामवृत्तिसे उत्पन्न होता है और वह कामवृत्ति बुद्धिमें रहती है । इसलिये ही पिताकी समान रूपवाले उत्पन्न हुए पुत्रको देखकर लोग कहते हैं, कि—मानों यह पुत्र पिताकी बुद्धि (हृदय) मेंसे निकला है, मानो इस पुत्रको इसके पिताने अपनी बुद्धिसे बनाया है, इसलिये वीर्य बुद्धिमें ही स्थित है । यह सुनकर शाकल्यने कहा, कि-याज्ञवल्क्य ! आपका यह कहना ठीक है ॥ २२ ॥

किं देवतोऽस्यामुदीच्यां दिश्यसीति सोमदेवत इति स सोमः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति दीक्षाया-मिति कस्मिन्नु दीक्षा प्रतिष्ठितेति सत्य इति तस्मादपि दीक्षितमाहुः सत्यं वदेति सत्ये ह्येव दीक्षा प्रतिष्ठितेति कस्मिन्नु सत्यं प्रतिष्ठितमिति हृदय इति होवाच हृदयेन हि सत्यं जानाति हृदये ह्येव सत्यं प्रतिष्ठितं भवतीत्येवमेवैतद्या-ज्ञवल्क्य ॥ २३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अस्याम्) इस (उदीच्याम्) उत्तर (दिशि) दिशामें (किंदेवतः) किस देवतावाला (असि) है (इति) ऐसा बूझने पर (सोमदेवतः) सोमदेवता वाला (इति) यह उत्तर दिया (सः, सोमः) वह सोम (कस्मिन्) किसमें (प्रतिष्ठितः) स्थित है (इति) ऐसा बूझने पर (दीक्षायाम्) दीक्षामें (इति) यह उत्तर दिया (दीक्षा) दीक्षा (कस्मिन्नु) किसमें (प्रति-

ष्ठिता) स्थित है (इति) ऐसा बूझने पर (सत्ये) सत्यमें (इति) यह उत्तर दिया (तस्मात्, अपि) तिस से ही (दीक्षितम्) दीक्षितके प्रति (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं (सत्यं, वद) सत्य बोल (हि) इससे (सत्ये, एव) सत्यमें ही (दीक्षा) दीक्षा (प्रतिष्ठिता) स्थित है (इति) ऐसा उत्तर दिया (सत्यम्) सत्य (कस्मिन्नु) किसमें (प्रतिष्ठितम्) स्थित है (इति) ऐसा बूझने पर (हृदये) बुद्धिमें (इति) यह (ह) प्रसिद्ध (उवाच) बोला (हि) क्योंकि (हृदयेन) बुद्धिके द्वारा (सत्यम्) सत्यको (जानाति) जानता है (हि) इससे (हृदये, एव) बुद्धिमें ही (प्रतिष्ठितं, भवति) स्थित है (इति) ऐसा उत्तर देने पर (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (एतत्) यह (एवमेव) ऐसा ही है ॥ २३ ॥

(भावार्थ)—प्रश्न--हे याज्ञवल्क्य ! तुम किस देवता के साथ इस उत्तर दिशाके रूपमें आये हो ? उत्तर-सोम देवताके साथ यह उत्तर सोम और चन्द्रमाको एक मान कर दिया है (प्रश्न--वह सोममें स्थित है ? उत्तर–सोम दीक्षामें स्थित है, क्योंकि—दीक्षा पाया हुआ यजमान ही सोमको खरीदा करता है। प्रश्न दीक्षा किसमें स्थित है ? उत्तर--दीक्षा सत्यमें स्थित है, इस लिये ही कारणके नाशसे कार्यका नाश न होजाय ऐसे अभिप्रायवाले पण्डित दीक्षा लेनेवालेसे कहते हैं कि-सत्य बोल । प्रश्न-सत्य कहाँ रहता है ? उत्तर—सत्य बुद्धिमें रहता है, क्योंकि-बुद्धिसे ही सत्य जानाजाता है। सुनकर शाकल्यने कहा, कि--हे याज्ञवल्क्य ! आप का यह कहना यथार्थ है ॥ २३ ॥

किं देवतोऽस्यां ध्रुवायां दिश्यसीत्यग्निदेवत इति सोऽग्निः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति वाचीति कस्मिन्नु वाक्प्रतिष्ठितेति हृदय इति कस्मिन्नु हृदयं प्रतिष्ठितमिति ॥ २४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अस्याम्) इस (ध्रुवायां, दिशि) ऊपरकी दिशामें (किंदेवतः) किस देवतावाला (असि) है (इति) यह बूझने पर (अग्निदेवतः) अग्नि देवतावाला हूं (इति) यह उत्तर दिया (सः) वह (अग्निः) अग्नि (कस्मिन्) किसमें (प्रतिष्ठितः) स्थित है (इति) ऐसा बूझने पर (वाचि) वाणीमें (इति) यह उत्तर दिया (वाक्) वाणी (कस्मिन्, नु) किसमें (प्रतिष्ठिता) स्थित है (इति) ऐसा बूझने पर (हृदये) बुद्धिमें (इति) यह उत्तर दिया (हृदयम्) बुद्धि (कस्मिन्) किसमें (प्रतिष्ठिता) स्थित है (इति) यह बूझा ॥२४॥

भावार्थ)—शाकल्यने बूझा-ऊर्ध्व दिशामें तुम्हारा देवता कौन है ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि—ऊर्ध्व दिशामें प्रकाशकी अधिकता है और प्रकाशरूप अग्नि है इसलिये ऊर्ध्वदिशामें मैं अग्नि देवताके साथ हूं । प्रश्न वह अग्नि किसमें स्थित है ? उत्तर-वाणीमें। प्रश्न-वाणी किसमें स्थित है उत्तर बुद्धिमें । प्रश्न-बुद्धि किस में स्थित है ? ॥ २४ ॥

अहल्लिकेति होवाच याज्ञवल्क्यो,यत्रैतदन्यत्रास्मन्मन्यासै यद्ध्येतदन्यत्रास्मत्स्याच्छ्वानो वैनदद्युर्वयाॐसि वैनद्विमथ्नीरन्निति ॥ २५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहल्लिक) हे प्रेत (इति) ऐसा

कहकर (ह) प्रसिद्ध (याज्ञवल्क्यः) याज्ञवल्क्य (उवाच) बोला (यत्र) जब (एतत्) यह (अस्मत्) मुझसे (अन्यत्र) अन्य स्थानमें [अस्ति] है [इति] ऐसा (मन्यासै) माने (यत्) जो (एतत्) यह (अस्मत्) मुझसे (अन्यत्र, हि) अन्यस्थानमें ही (स्यात्) हो [तदा] तब (एतत्) इसको (वा) या (श्वानः) कुत्ते (अद्युः) खाजायँ (वा) या (एतत्) इसको (वयांसि) पक्षी (विमथ्नीरन) विलोडन करडालें (इति) यह उत्तर दिया ॥ २५ ॥

(भावार्थ)-इसप्रकार याज्ञवल्क्यने पाँचों दिशा, देवता और प्रतिष्ठाका बुद्धिरूप सूत्रात्मासे अभेद कहा, इन दिशाओंमें ही नाम रूप और कर्मका भी अन्तर्भाव होता है तथा इस सूत्रात्मासे अपना भी अभेद है, क्योंकि-यह सब जगत् मनका विलास रूप होने से मनके द्वारा हृदयमें रहता है। इसपर शाकल्यने बूझा, कि—यह सर्वात्मक हृदय कहिये बुद्धिरूप सूत्रात्मा किसमें स्थित है ? इसका उत्तर देते हुए याज्ञवल्क्यने कहा, कि—अरे प्रेतकी समान बोलनेवाले शाकल्य ? शरीरका आत्मारूप यह बुद्धि इस शरीरसे अन्यत्र रहती है यदि ऐसा मानो तो शरीर मर ही जाय, यदि यह हृदय (बुद्धि) शरीरसे अन्यत्र होय तो इस शरीरको या तो कुत्ते खाजांय अथवा इस शरीरको पक्षी अपनी चोंचोंसे छिन्न भिन्न करडालें हृदयके न होने पर शरीरका ऐसा परिणाम होता है इस लिये यह शरीरमें ही स्थित है और शरीर भी नाम रूप कर्मात्मक होनेसे बुद्धिमें स्थित है ॥ २५ ॥

कस्मिन्नु त्वं चात्मा च प्रतिष्ठितौ स्थ इति प्राण

इति कास्मिन्नु प्राणः प्रतिष्ठित इत्यपान इति कस्मिन्नपानः प्रतिष्ठित इति व्यान इति कस्मिन्नु व्यानः प्रतिष्ठित इत्युदान इति कस्मिन्नुदानः प्रतिष्ठित इति समान इति स एष नेति नेतीत्यात्मानद्दिगृह्योऽशीर्यो न हि शीर्यतेऽसङ्गो न हि सज्यतेऽसितो न व्यथते न रिष्यति । एतान्यष्टावायतनान्यष्टौ लोका अष्टौ देवा अष्टौ पुरुषाः स यस्तान्पुरुषान्निरुह्य प्रत्युह्यात्यक्रात्तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि तं चेन्मे न विवक्ष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति । तꣳह न मेने शाकल्यस्तस्य ह मूर्धा विपपातापि हास्य परिमोषिणोऽस्थीन्यपजह्रुरन्यन्मन्यमानाः ॥ २६ ॥

अन्वय और पदार्थ— (त्वम्) तू (च) और (आत्मा, च) बुद्धि भी (कस्मिन्) किसमें, (प्रतिष्ठितौ) स्थित (स्थः) हो (इति) ऐसा बूझने पर (प्राणे) प्राणमें (इति) यह उत्तर दिया (प्राणः) प्राण (कस्मिन्नु) किसमें (प्रतिष्ठितः) स्थित है (इति) ऐसा बूझने पर (अपाने) अपानमें (इति) यह उत्तर दिया (अपानः) अपान (कस्मिन्नु) किसमें (प्रतिष्ठितः) स्थित है (इति) ऐसा बूझने पर (व्याने) व्यानमें (इति) यह उत्तर दिया (व्यानः) व्यान (कस्मिन्नु) किसमें (प्रतिष्ठितः) स्थित है (इति) ऐसा बूझने पर (उदाने) उदानमें (इति) यह

उत्तर दिया (उदानः) उदान (कस्मिन्नु) किसमें (प्रतिष्ठितः) स्थित है (इति) ऐसा बूझने पर (समाने) समानमें (इति) यह उत्तर दिया (सः) वह (एषः) यह (नेति नेति) निषेधके द्वारा कहा हुआ (आत्मा) आत्मा (अगृह्यः) इन्द्रियों का अगोचर है (नहि) नहीं (गृह्यते) ग्रहण किया जाता है (अशीर्यः) क्षयधर्मसे रहित है (नहि) नहीं (शीर्यते) क्षीण होता है (असङ्गः) सङ्गीपनेके धर्मसे रहित है (नहि) नहीं (सज्यते) सङ्ग को प्राप्त होता है (असितः) बँधा हुआ नहीं है (न, व्यथते) व्यथा नहीं पाता है (न, रिष्यति) विनष्ट नहीं होता है (एतानि) ये (अष्टौ) आठ (आयतनानि) शरीर (अष्टौ आठ (लोकाः) देखनेके साधन (अष्टौ) आठ (पुरुषाः) पुरुष (सः) वह (यः) जो (तान्) तिन (पुरुषान्) पुरुषोंको (निरुह्य) निश्चय पृथक् जान कर (प्रत्युह्य) संकुचित करके (अत्यक्रामत्) उल्लङ्घन करता हुआ (तम्) उस (औपनिषदम्) उपनिषदोंमें वर्णन किये हुए (पुरुषम्) पुरुषको (त्वा) तुमसे (पृच्छामि) बूझता हूं (तम्) उसको (चेत्) जो (मे) मेरे अर्थ (न) नहीं (विवक्ष्यसि) स्पष्टरूपसे नहीं कहेगा [तर्हि] तो (ते) तेरा (मूर्धा) मस्तक (विपतिष्यति) गिर- जायगा (इति) यह कहा (शाकल्यः) शाकल्य (तम्) उसको (न, ह) नहीं (मेने) जानता था (तस्य, ह) उस शाकल्यका (मूर्धा) मस्तक (विपपात) गिरगया (अस्य) इसकी (अस्थीनि, ह) हड्डियोंको भी (अन्यत्) और कुछ (मन्यमानाः) मानते हुए (परिमोषिणः) चोर (अपजह्रुः) छीन लेगे हुए ॥ २६ ॥

(भावार्थ)-शाकल्यने बूझा, कि-स्थूल शरीर और

आत्मा (बुद्धि) किसमें स्थित है ? उत्तर ऊर्ध्व वृत्तिरूप प्राणमें स्थित है । प्रश्न—प्राण किसमें स्थित है ! उत्तर जिसकी चेष्टा नीचेको होती है ऐसे अपानमें । प्रश्न अपान किसमें स्थित है ? उत्तर—मध्यस्थवृत्ति व्यानमें प्रश्न-व्यान किसमें स्थित है ! उत्तर तीनोंको बन्धनमें रखने वाले उदानमें । प्रश्न-उदान किसमें स्थित है, उत्तर सूत्रात्मारूप समानमें, वह अन्तर्यामीमें और अन्तर्यामी ब्रह्ममें स्थित है, उस परमात्म रूप ब्रह्मके स्वरूपको श्रुति भगवती कहती है, कि सूत्रात्माके भीतर रहने वाले अन्तर्यामीका अधिष्ठान रूप यही परमात्मा है । स्थूल शरीर बुद्धि और प्राण आदि सब वायु अन्योन्यप्रतिष्ठ हैं अर्थात् परस्परमें एक दूसरेके आश्रयसे स्थित है । ये सब जिसके शासनके अधीन होकर जीवके भोगकी साधना करनेके लिये आपसमें मिलकर कार्य करते हैं वह परमात्मा सबकी ही प्रतिष्ठा है सबका परम आश्रय है । जिसका मूर्त्तामूर्त्त ब्राह्मणमें "नेति, "नेति, इसप्रकार उपाधिका निषेध करके वर्णन किया है वह परमात्मा ही यह आत्मा है । यह किसी इन्द्रियका विषय नहीं है, इस लिये इसको ग्रहण नहीं किया जासकता । यह क्षय होने के स्वभावसे रहित है इसलिये इसका अपक्षय नहीं होता यह असङ्ग है इसलिये इसको किसीके सङ्गका सम्बन्ध नहीं होता है । यह बन्धनसे रहित है इसलिये न इसको व्यथा होती है और न इसका नाश होता है । याज्ञवल्क्य शाकल्यसे बूझते हैं, कि-ये पृथिवी आदि आठ शरीर अग्नि आदि आठ लोक कहिये देखनेके साधन अन्न रस आदि आठ उत्पत्तिके कारण और शरीर आदि आठ पुरुष हैं जो कोई इन शरीर आदि आठ पुरुषोंको कहे हुए, चार

वेदोंसे निश्चयपूर्वक जानकर फिर पूर्वदिशा आदिके द्वारा बुद्धिमें सङ्कोच करके उपाधिके धर्मोंके पार होजाय अर्थात् सम्यक् प्रकार आत्मरूपसे स्थित होजाय, उस उपनिषदोंमें वर्णन किये हुए क्षुधा आदि धर्मोंसे रहित पुरुषको हे शाकल्य ! मैं तुमसे बूझता हूँ, यदि मुझसे उस पुरुषको स्पष्टरूपसे नहीं कहसकोगे तो तुम्हारा मस्तक गिर पड़ेगा । उपनिषदोंमें वर्णन किये हुए उस पुरुषको शाकल्य जानता ही नहीं था इसलिये उसका मस्तक गिर गया ब्रह्मज्ञानीके द्वेष करने पर प्राणान्त ही नहीं होता किन्तु परलोक भी बिगड़ता है, देखो, उस शाकल्यका प्रेतसंस्कार करनेके लिये उसके शिष्य उस की हड्डियें वस्त्रमें बाँधकर घरको लिये आते थे सो चोरों ने उनको धन समझकर छीन लिया ॥ २६ ॥

अथ होवाच ब्राह्मणा भगवन्तो यो वः काम- यते स मा पृच्छतु सर्वे वा मा पृच्छत यो व कामयते तं वः पृच्छामि सर्वान् वा वः पृच्छा- मीति ते ह ब्राह्मणा न दधृषुः ॥ २७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) इसके अनन्तर (ह) प्रसिद्ध (उवाच) बोला (भगवन्तः) पूजनीय (ब्राह्मणाः) ब्राह्मणों ! (वः) तुममें (यः) जो (कामयते) चाहता है (सः) वह (माम्) मेरे प्रति (पृच्छतु) बूझलेय (वा) अथवा (सर्वे) सब (मा) मेरे प्रति (पृच्छत) बूझो (वः) तुममें (यः) जो (कामयते) चाहता है (वः) तुममेंसे (तम्) उसके प्रति (पृच्छामि) बूझूँ (वा) अथवा (वः) तुम (सर्वान्) सबके प्रति (पृच्छामि) बूझूँ (ते) वे (ह) प्रसिद्ध (ब्राह्मणाः) ब्राह्मण (न,दधृषुः) साहसको धारण न करसके ॥ २७ ॥

(भावार्थ)—शाकल्यके मस्तकको गिरा हुआ देख कर ब्राह्मणोंके मौन होजानेके अनन्तर याज्ञवल्क्यने कहा, कि-हे भगवन् ब्राह्मणों ! तुममेंसे जो कोई मुझ से प्रश्न करना चाहे अथवा तुम सब ही मुझसे प्रश्न करना चाहो तो प्रश्न करो । अथवा तुममेंसे जो कोई यह चाहे, कि-याज्ञवल्क्य मुझसे प्रश्न करे अथवा तुम सबोंकी ऐसी इच्छा हो तो तुम्हारे मध्यमें बैठा हुआ ही मैं प्रश्न करूं ? ऐसा कहने पर भी उन ब्राह्मणोंको कुछ उत्तर देनेका साहस नहीं हुआ ॥ २७ ॥

तान् हैतैः श्लोकैः पप्रच्छ । यथा वृक्षो वनस्पतिस्तथैव पुरुषोऽमृषा । तस्य लोमानि पर्णानि त्वगस्योत्पाटिका बहिः ॥ १ ॥ त्वच एवास्य रुधिरं प्रस्यन्दि त्वच उत्पटः । तस्मात्तदा तृण्णात्प्रैति, रसो वृक्षादिवाऽऽहतात् ॥ २ ॥ मांसान्यस्य शकराणि किनाटꣳ स्नाव, तत्स्थिरम् अस्थीन्यन्तरतो दारूणि मज्जा मज्जोपमा कृता ॥ ३ ॥ यद् वृक्षो वृक्णो रोहति मूलान्नवतरः पुनः । मर्त्यः स्विन्मृत्युना वृक्णः कस्मान्मूलात्प्ररोहति ॥ ४ ॥ रेतस इति मा वोचत जीवतस्तत्प्रजायते । धानारुह इव वै वृक्षोऽञ्जसा प्रेत्य सम्भवः ॥ ५ ॥ यत्समूलमावृहेयुर्वृक्षं न पुनराभवेत् । मर्त्यः स्विन्मृत्युना वृक्णः कस्मान्मूलात्प्ररोहति ॥ ६ ॥ जात एव न जायते

को न्वेनं जनयेत्पुनः । विज्ञानमानन्दं ब्रह्म रातिर्दातुः परायणं तिष्ठमानस्य तद्विद इति)॥७॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य (तान्) उनके प्रति(एतैः) इन (श्लोकैः) श्लोकोंके द्वारा (प्रपच्छ) बूझता हुआ (यथा) जैसे (वनस्पतिः) वनस्पतिरूप (वृक्षः) वृक्ष है (तथा-एव) तैसे ही (पुरुषः) पुरुष (अमृषः) सत्य है (तस्य) उसके (लोमानि) रोम (पर्णानि) पत्ते हैं (अस्य) इसकी (त्वक्) त्वचा (बहिः) बाहरकी (उत्पाटिका) छाल है (त्वचः एव) त्वचामेंसे ही (अस्य) इसका (रुधिरम्) रुधिर (प्रस्यन्दि) बहता है (त्वचः) छालमेंसे (उत्पटः) गोंद (तस्मात्) तिस से (आहतात्) कटेहुए (वृक्षात्) वृक्षमेंसे (रसः, इव) रस जैसे (तृण्णात्) कटेहुए मनुष्यमेंसे (तत्) वह रुधिर (प्रैति) निकलता है (अस्य) इसके (मांसानि) मांस (शकराणि) वृक्षके गूदे हैं (स्नावः) स्नायु (कीनाटम्) वृक्षकी भीतरी छाल है (तत्) वह (स्थिरम्) दृढ होता है (अन्तरतः) उसके भीतर के (दारूणि) काष्ठ (अस्थीनि) हड्डियोंके स्थानमें हैं (मज्जा) उसके भीतरका स्नेहमय पदार्थ (मज्जोपमा) मज्जाकी उपमावाला (कृता) किया है (यत्) जो (वृक्षः) वृक्ष (वृक्णः) काटाहुआ (पुनः) फिर (मूलात्) मूलमेंसे (नवतरः) और नया (प्ररोहति) प्रकट होजाता है (मर्त्यः, स्वित्) मनुष्य तो (मृत्युना) मृत्यु करके (वृक्णः) मारा हुआ (कस्मात्) किस (मूलात्) कारणसे (प्ररोहति) प्रकट होता है (रेतसः) वीर्यसे होता है (इति) ऐसा (मा वोचत) मत कहो (तत्)

यह (जीवतः) जीवितसे (प्रजायते) होता है (वृक्षः) वृक्ष (प्रेत्य) मरकर (धानारुहः) बीजसे उत्पन्न होने वाला है (इव) ऐसा (अञ्जसा) साक्षात् (अन्यतः) उत्पन्न होनेवाला (वै) प्रसिद्ध है (यत्) जो (समूलम्) जड़ सहित (वृक्षम्) वृक्षको (आवृहेयुः) उखाड़डालें [तदा] तो (पुनः) फिर (न) नहीं (आभवेत्) आकर उत्पन्न होय (मर्त्यः, स्वित्) मनुष्य तो (मृत्युना) मृत्यु करके (वृक्णः) माराहुआ (पुनः) फिर (कस्मात्) किस (मूलात्) कारणसे (प्ररोहति) उत्पन्न होता है (जातः, एव) जन्माहुआ ही (न) नहीं (जायते) जन्मता है (एतम्) इसको (पुनः) फिर (कः, नु) कौन (जनयेत्) उत्पन्न करता है ? (विज्ञानम्) चिन्मात्र रूप (आनन्दम्) आनन्दस्वरूप (ब्रह्म) ब्रह्म (रातिर्दातुः) धन देनेवालेकी (परायणम्) परम गति है (तिष्ठमानस्य) स्थित हुए की (तद्विदः) उसको जाननेवालेकी [परायणम्] परम गति है (इति) इसप्रकार यह ब्राह्मण समाप्त हुआ १—७

(भावार्थ)—याज्ञवल्क्यजीने इन श्लोकोंके द्वारा प्रश्न किया, कि—जैसा वनस्पति रूप वृक्ष है उसीके समान ही मनुष्य है, यह सत्य है, इस लिये मनुष्यके रोम हैं सो उसके स्थानमें वृक्षके पत्ते हैं, मनुष्यका चमड़ा है सो वृक्षकी बाहरकी नीरस छाल है, चमड़ेमेंसे मनुष्यका रुधिर निकलता है सो वृक्षकी छालमेंसे रस (गोंद) निकलता है । क्योंकि—वृक्षका और मनुष्यका रूप समान है, इसलिये काटेहुए वृक्षमेंसे रस निकलनेकी समान काटेहुए मनुष्यमेंसे रुधिर निकलता है । इस मनुष्यका मांस और वृक्षका गाढ़ा रसका पटल है । मनुष्यकी नसें हैं सो वृक्षकी

भीतरी छालकी तय है, दोनों दृढ़ हैं और स्नायुके भीतर हड्डियें हैं और वृक्षकी भीतरी छालके भीतर काठ है। दोनोंकी मज्जा कहिये हड्डी और काठमें रहनेवाले तेल की समान चिकना पदार्थ मज्जाकी ही उपमावाली है, उसमें और कुछ विशेष नहीं है। यदि वृक्षको छाँटदिया जाय तो फिर जड़मेंसे नया निकल कर प्रकट होजाता है,(अब यह बताओ कि मनुष्य मर कर कौनसे कारण मेंसे उत्पन्न होता है ? परन्तु हे ब्राह्मणों! यह न कहना कि-वीर्यमेंसे मनुष्य उत्पन्न होता है, क्योंकि-वह वीर्य तो जीवित पुरुषमेंसे उत्पन्न होता है मरे हुए मनुष्यमें से उत्पन्न नहीं होता है। वृक्ष मरकर जड़मेंसे उत्पन्न होनेवाला तथा बीजमेंसे उत्पन्न होनेवाला है, ऐसी वृक्षकी उत्पत्ति प्रत्यक्ष देखनेमें आती है, यदि जड़सहित या बीजसहित वृक्षको उखाड़ डालें तो फिर उत्पन्न ही न होय, परन्तु जब तक जड़ या बीज रहता है तबतक फिर उत्पन्न होजाता है, ऐसे ही यहां मनुष्य जब मृत्यु से मरजाता है तब फिर कौनसे कारणसे उत्पन्न होता है, यह बात मैं तुम सबोंसे बूझता हूं। मनुष्य जन्मा हुआ ही है, इसलिये उसके मूलका विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है, यदि ऐसा कहो तो यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि-मराहुआ फिर भी उत्पन्न होता है। यदि ऐसा न माने तो कृतनाश-अकृताभ्या-गम प्रसङ्ग होजाय अर्थात् करेहुए कर्मका नाश और न करेहुए कर्मका फल प्राप्त होनारूप दोष आ पड़े, इस लिये मैं तुमसे बूझता हूं, कि यह मरा हुआ पुरुष फिर कौनसे कारणमेंसे उत्पन्न होजाता है ? क्योंकि-मरा हुआ पुरुष फिर उत्पन्न होता है। इसप्रकार बूझेहुए

जगत्के मूलको वे ब्राह्मण नहीं जानसके । इसकारण ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ होनेसे याज्ञवल्क्यने ब्राह्मणोंको परास्त कर दिया और गौएँ लेलीं । इसप्रकार आख्यायिका को समाप्त करके जगत्के मूलको विधिमुखसे कहनेवाले शब्दोंसे श्रुतिभगवती अपने आप मुमुक्षुओंको उपदेश देती है, कि- कूटस्थ चिन्मात्ररूप तथा आनन्दरूप कहिये दुःखके संबन्धसे रहित, जिसमें विकार नहीं होने पाता ऐसा सुखस्वरूप ब्रह्म नानाप्रकारके परिच्छेदोंसे शून्य है, धनका दान करनेवाले कर्मकर्त्ता यजमानकी परम-गति है और जगत्का उपादान कारण है तथा सकल वासनाओंका निःशेष रूपसे त्याग करके मोहातीत ब्रह्म में स्थित हुए तथा उस ब्रह्मको जाननेवालोंकी भी परमगति है ॥ १—७ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य नवमं ब्राह्मणं समाप्तम् ।

तृतीय अध्याय समाप्त

अथ चतुर्थ अध्याय

॥ ॐ ॥ इसप्रकार तीसरे अध्यायमें जल्पकी रीतिसे ब्रह्मका निर्णय किया अब हम चौथे अध्यायमें वादकी रीति पर ब्रह्मका निर्णय आरम्भ करते हैं । तीसरे अध्यायके अन्तमें जो कूटस्थ-चिन्मात्ररूप तथा आनन्द रूप ब्रह्म कहा था उसका ही वाणी आदिके अधिष्ठाता अग्नि आदि देवताओंमें ब्रह्मदृष्टिके द्वारा निर्णय करनेके लिये पहले चक्राचार्य और कूर्च नामके दो ब्राह्मण हैं । विद्याको प्राप्त करनेके उपायरूप आचार आदिकी शिक्षा के लिये यह आख्यायिका है ।

ॐ जनको ह वैदेह आसाञ्चक्रेऽथ ह याज्ञवल्क्य आवव्राज । तꣳ होवाच याज्ञवल्क्य किमर्थमचारीः पशूनिच्छन्नण्वन्तानिति । उभयमेव सम्राडिति होवाच ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वैदेहः) विदेहका राजा (ह) प्रसिद्ध (जनकः) जनक (आसाञ्चक्रे) बैठा था (अथ) अनन्तर (ह) प्रसिद्ध (याज्ञवल्क्यः) याज्ञवल्क्य (आवव्राज) आया (तम्) उनके प्रति (ह) प्रसिद्ध (उवाच) बोला (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (किमर्थम्) किसलिये (अचारीः) पधारे हो ? (पशून्) पशुओंको (इच्छन्) चाहते हुए [अथवा] या (अण्वन्तान्) सूक्ष्म वस्तुओंका निर्णय करनेवाले प्रश्नोंको [मत्तः, श्रोतुम्] मुझसे सुननेको (इति) ऐसा कहने पर (सम्राट्) हे राजन् (उभयमेव) दोनों ही हेतु हैं (इति) ऐसा (ह) प्रसिद्ध (उवाच) बोला ॥ १ ॥

(भावार्थ)-विदेहराज जनक अपनी राजसभामें बैठा था, उसी समय अनुग्रह करनेके लिये याज्ञवल्क्य मुनि आगये । उनका यथाविधि पूजन करके जनकने उन से कहा, कि-हे मुने ! आप यहाँ किस इच्छासे पधारे हैं ? क्या आप फिर कुछ गौएँ लेनेकी इच्छासे पधारे हैं अथवा मुझसे सूक्ष्म वस्तुओंका निर्णय करनेवाले प्रश्न सुनकर उनका उत्तर देनेके लिये पधारे हो ? यह सुनकर मुनिने कहा, कि-हे राजन् ! मेरे आनेके ये दोनों ही कारण हैं ॥ १ ॥

अब राजाको जो ज्ञान अज्ञान हो उसका उपदेश

देनेकी इच्छासे मुनि बूझते हैं और राजा जनक उत्तर देता है—

यत्ते कश्चिदब्रवीत्तच्छृणवामेत्यब्रवीन्मे जित्वा शैलिनिर्वाग्वै ब्रह्मेति यथा मातृमान् पितृमानाचार्यवान् ब्रूयात्तथा तच्छैलिनिरब्रवीद्वाग्वै ब्रह्मेत्यवदतो हि किꣳ स्यादित्यब्रवीत्तु ते तस्याऽऽयतनं प्रतिष्ठां न मेऽब्रवीदित्येकपाद्वा एतत्सम्राडिति स वै नो ब्रूहि याज्ञवल्क्य वागेवायतनमाकाशः प्रतिष्ठा प्रज्ञेत्येनदुपासीत का प्रज्ञता याज्ञवल्क्य वागेव सम्राडिति होवाच वाचा वै सम्राड्बन्धुः प्रज्ञायत ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीष्टꣳ हुतमाशितं पायितमयञ्च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि वाचैव सम्राट् प्रज्ञायन्ते वाग्वै सम्राट् परमं ब्रह्म नैनं वाग्जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति देवो भूत्वा देवानप्येति य एवं विद्वानेतदुपास्ते हस्त्यृषभꣳ सहस्रं ददामीति होवाच जनको वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यः पिता मेऽमन्यत नाननुशिष्य हरेतेति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ते) तेरा (कश्चित्) कोई (यत्) जो (अब्रवीत्) कहता हुआ (तत्) उसको (शृणवाम) सुनना चाहते हैं (इति) ऐसा कहने पर (शैलिनिः) शिलिनका पुत्र (जित्वा) जित्वानामक (मे) मेरे अर्थ (वै) प्रसिद्ध (वाक्) वाणी (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (अब्रवीत्) कहता हुआ (मातृमान्) माता वाला (पितृमान्) पिता वाला (आचार्यवान्) आचार्यवाला (यथा) जैसा (ब्रूयात्) कहे (तथा) तैसे (शैलिनिः) शिलिनका पुत्र (वाक्-वै) प्रसिद्ध वाणी (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) इसप्रकार (तत) उस वचनको (अब्रवीत्) कहता हुआ (हि) क्योंकि (अवदतः) गूँगेका (किम्) क्या (स्यात्) हो (तु) फिर (तस्य) उसके (आयतनम्) शरीरको (च) और (प्रतिष्ठाम्) आश्रयको (ते) तेरे अर्थ (अब्रवीत्) कहा (इति) ऐसा बूझने पर (मे) मेरे अर्थ (न) नहीं (अब्रवीत्) कहता हुआ (इति) यह उत्तर दिया (सम्राट्) हे राजन् ! (एतत्) यह (एकपाद्, वै) एक पादवाला ही है (इति) ऐसा कहा (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (सः) वह तू (नः) हमारे अर्थ (ब्रूहि वै) अवश्य कहो (वाक्-एव) वाणी ही (आयतनम्) शरीर है (आकाशः) अन्तर्यामी (प्रतिष्ठा) आश्रय है (एतत्) इसको (प्रज्ञा-इति) प्रज्ञा इस नामसे (उपासीत) उपासना करे (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (प्रज्ञता, का) प्रज्ञता क्या है ? (सम्राट्) हे राजन् (वाक-एव) वाणी ही (इति) ऐसा (ह) प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य (उवाच) कहता हुआ (सम्राट्) हे राजन् ! (वाचा-वै) वाणीके द्वारा ही (बन्धुः)

बन्धु (प्रज्ञायते) जानाजाता है (ऋग्वेदः) ऋग्वेद (यजुर्वेदः) यजुर्वेद (सामवेदः) सामवेद (अथर्वाङ्गिरसः) अथर्वाङ्गिरस (इतिहासः) इतिहास (पुराणम्) पुराण (विद्याः) विद्यायें (उपनिषदः) उपनिषद् (श्लोकाः) श्लोक (सूत्राणि) सूत्र (अनुव्याख्यानानि) संक्षिप्त व्याख्यान (व्याख्यानानि) विवरण (इष्टम्) कूपतड़ाग आदि बनवाना रूप धर्म (हुतं) होम किया हुआ (आशितम्) अन्न भोजन करानारूप धर्म (पायितम्) पीने योग्य वस्तुको पिलानारूप धर्म (अयं, लोकः) यह जन्म (च) और (परः, लोकः, च) आगेका जन्म भी (च) और (सर्वाणि) सब (भूतानि) भूत (सम्राट्) हे राजन् (वाचा-एव) वाणीके द्वारा ही (प्रज्ञायन्ते) जानेजाते हैं (सम्राट्) हे राजन् (वाक्-वै) वाणी ही (परमं, ब्रह्म) परम ब्रह्म है (एवं, विद्वान्) ऐसा जानने वाला (यः) जो (एतत्) इसको (उपास्ते) उपासना करता है (एनम्) इसको (वाक्) वाणी (न) नहीं (जहाति) त्यागती है (सर्वाणि) सब (भूतानि) भूत (एनम्) इसको (अभिक्षरन्ति) भेट अर्पण करते हैं (देवः, भूत्वा) देवता होकर (देवान्) देवताओंको (अप्येति) प्राप्त होता है (वैदेहः) विदेहराज (ह) प्रसिद्ध (जनकः) जनक (हस्त्यृषभम्) जिनमें हाथीसे सांड हैं ऐसी (सहस्रम्) सौ गौएँ (ददामि) देता हूं (इति) ऐसा (उवाच) कहता हुआ (सः) वह (ह) प्रसिद्ध (याज्ञवल्क्यः) याज्ञवल्क्य (उवाच) बोला (अननुशिष्य) शिक्षा बिना दिये (न) नहीं (हरेत्) धन लेय (इति) ऐसा (मे) मेरे (पिता) पिता (अमन्यत) मानते थे ॥ २ ॥

(भावार्थ)—याज्ञवल्क्यने कहा कि—हे राजन् जनक ! आपने अनेकों आचार्योंसे अनेकों उपदेश पाये हैं, उन उपदेशोंके सत् असत्की परीक्षा करनेके लिये मैं सुनना चाहता हूं, कहो तुमने किस आचार्यसे क्या उपदेश पाया है ? राजा जनकने कहा, कि-हे ब्रह्मन् ! शिलिनके पुत्र जित्वाने मुझे उपदेश दिया था, कि—वाणी अर्थात् वाणीका अभिमानी देवता अग्नि ही ब्रह्म है, उनका यह उपदेश मिथ्या नहीं होसकता, क्योंकि--वे ज्ञानी थे। याज्ञवल्क्यने कहा कि—जो मातृवान् है अर्थात् जिसको बालकपनमें मातासे शिक्षा मिली है, जो पितृमान् है अर्थात् उसके अनन्तर जिस को पितासे शिक्षा मिली है तथा जो आचार्यवान् अर्थात् उपनयन होनेके समयसे समावर्त्तन पर्यन्त जिसको आचार्यसे शिक्षा मिली है ऐसी आप्तपनेकी हेतुरूप तीन शुद्धियोंवाला कोई आचार्य जैसे अपने किसी शिष्यसे कहे तैसे ही शिलिनके पुत्रने तुमको वाणी (अग्नि) ही ब्रह्म है, यह उपदेश दिया है और उपदेश देकर तुमको आचार्यवान् बनादिया है, उनका उपदेश कभी मिथ्या नहीं हो सकता, वाणी ही ब्रह्म है यह बात निश्चित है क्योंकि-जिसको बोलने की शक्ति नहीं है वह गूंगा मनुष्य इस लोक या परलोक किसी प्रयोजनको सिद्ध नहीं कर सकता, याज्ञवल्क्यने कहा, कि-हे राजन् ! क्या जित्वाने इसके अनन्तर तुम्हें वाणीके अभिमानी अग्निरूप ब्रह्मके शरीरका और उसके त्रिकालके आश्रय मूलकारणका भी उपदेश दिया था ? राजाने कहा कि-नहीं उन्होंने मुझे इस विषयका उपदेश नहीं दिया था। याज्ञवल्क्यने कहा, हे राजन ! यह ब्रह्म तो एक पादमात्र

है। चार पादवाले ब्रह्मके एक पादमात्रकी उपासनासे कोई फल नहीं हो सकता। राजाने कहा कि—हे मुने! इस विषयको यदि आप जानते हों तो कहिये। याज्ञवल्क्यने कहा, कि-हे राजन्? गुण वा उपाधिके भेदसे विकाशकी न्यूनाधिकताके अनुसार ब्रह्मका भेद होते हुए भी स्वरूपतः ब्रह्मका कोई भेद नहीं है, वह निरन्तर एक रूप है। वाक्यका देवता अग्नि है। अध्यात्मिक राज्यमें व्यष्टि भावसे जो वाक्शक्ति है आधिदैविक राज्यमें समष्टिभावसे वही अग्नि नामसे कही जाती है वह अग्नि ही प्राणीके देहमें वाक्शक्तिरूपसे प्रकट हुई है। इस वाक्शक्ति का आश्रय वाक् इन्द्रिय है तथा इसका मूल कारण अव्याकृत बीज शक्ति (अन्तर्यामी) है, वह उत्पत्ति स्थिति और प्रलयकालमें उसके ही आश्रयसे रहती है। इस वाक्शक्तिकी प्रज्ञारूपसे अर्थात् इसको ज्ञानका ही एक अवस्था भेद मानकर उपासना करे। राजाने कहा, कि हे मुने? आप प्रज्ञा किसको कहते हैं? भला वाणी प्रज्ञा कैसे होसकती है? याज्ञवल्क्यने कहाकि—यह वाणी ही प्रज्ञा है। वाणीके द्वारा ही हम बन्धुको जानते हैं। और ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वा और अङ्गिराके देखे हुए मंत्ररूप अथर्ववेद, इतिहास (उर्वशी और पुरूरवा आदिका निरूपण करनेवाला ब्राह्मण भाग) पुराण (सृष्टि की उत्पत्ति आदि का वर्णन करनेवाला ब्राह्मण भाग), विद्या (नृत्य आदि कलाओंका वर्णन करनेवाला ब्राह्मण भाग) उपनिषद्, श्लोक, सूत्र संक्षिप्त व्याख्या विस्तृत व्याख्या ये सब वाणीके द्वारा ही जाने जाते हैं, बावड़ी, बाग आदि इष्ट, होम, अन्नदान जलदान आदिसे होने वाला धर्म इस वाणीके द्वारा ही जाना जाता और किया

जाता है यह जन्म अन्य जन्म और सकल भूत वाणीसे ही जाने जाते हैं, इस लिये हे राजन्! वाणी ही प्रज्ञा है और वाणी ही परम ब्रह्म है। ऐसा जानने वाला जो साधक वाणीके देवतारूप ब्रह्मकी उपासना करता है उस को वाणीका देवता त्यागता नहीं है, उसको सकल भूत भेंट अर्पण करते हैं। उसमें यहां ही देवताकेसे भाव प्रकट होजाते हैं, और वह शरीरपात होने पर देवलोकमें देवपदवी पाता है याज्ञवल्क्यजीसे इस उपदेशके मर्मको समझ कर विदेहराज जनक बड़ा प्रसन्न हुआ और कहा, कि—हे भगवन्! जिनमें हाथी की समान हृष्टपुष्ट सांड हैं ऐसी एक सहस्र गौएँ मैं आपको देता हूं। इस पर याज्ञवल्क्यजीने कहा कि-मेरे पिताका यह सिद्धान्त रहता था, कि—शिष्यको उपदेश देकर कृतार्थ किये विना उससे कुछ धन नहीं लेना चाहिये, इस लिये मैं ब्रह्मविद्याका पूरा२ उपदेश दिये बिना इस गोधनको नहीं लेना चाहता॥ २॥

यदेव ते कश्चिदब्रवीत्तच्छृणवामेत्यब्रवीन्म उदङ्कः शौल्वायनः प्राणो वै ब्रह्मेति यथा मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् ब्रूयात्तथा तच्छौल्वायनोऽब्रवीत्प्राणो वै ब्रह्मेत्यप्राणतो हि किꣳस्यादित्यब्रवीत्तु ते तस्याऽऽयतनं प्रतिष्ठां न मेऽब्रवीदित्येकपाद्वा एतत्सम्राडिति स वै नो ब्रूहि याज्ञवल्क्य प्राण एवाऽऽयतनमाकाशः प्रतिष्ठा प्रियमित्येनदुपासीत का प्रियता याज्ञवल्क्य प्राण एव सम्राडिति होवाच प्राणस्य वै सम्राट् कामा-

याप्याज्यं याजयत्यप्रगृह्यस्य प्रतिगृह्णात्यपि तत्र वधाशङ्कं भवति यां दिशमेति प्राणस्यैव सम्राट् कामाय प्राणो वै सम्राट् परमं ब्रह्म नैनं प्राणो जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति देवो भूत्वा देवानप्येति य एवं विद्वानेतदुपास्ते हस्त्यृषभं सहस्रं ददामीति होवाच जनको वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यः पिता मेऽमन्यत नाऽननुशिष्य हरेतेति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ते) तेरा (कश्चित् (कोई (यत्) जो (अब्रवीत्) कहता हुआ (तत्, एव) उसको (शृणवाम) सुनना चाहते हैं (इति) ऐसा कहने पर (शौल्वायनः) शुल्वका पुत्र (उदङ्कः) उदङ्क (मे) मेरे अर्थ (वै) प्रसिद्ध (प्राणः) प्राण (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (अब्रवीत्) कहता हुआ (मातृमान) माता वाला (पितृवान्) पितावाला (आचार्यवान्) आचार्यवाला (यथा) जैसा (ब्रूयात्) कहे (तथा) तैसे (शौल्वायनः) शुल्व का पुत्र (प्राणः, वै) प्रसिद्ध प्राण (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) इस प्रकार (तत्) उस वचनको (अब्रवीत्) कहता हुआ (हि) क्योंकि (अप्राणतः प्राणरहित से (किम्) क्या (स्यात्) होगा (तु) फिर (तस्य) उसके (आयतनम्) शरीरको (च) और (प्रतिष्ठाम्) मूल कारण को (ते) तेरे अर्थ (अब्रवीत्) कहता हुआ (इति) ऐसा बूझने पर (मे) मेरे अर्थ (न) नहीं (अब्रवीत्) कहा (इति) यह उत्तर दिया [सम्राट्) हे राजन् (एतत्) यह (एकपाद्, वै) एक पादवाला ही है (इति) ऐसा कह,

(याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (सः) वह तू (नः) हमारे अर्थ (ब्रूहि वै) अवश्य कहो (प्राणः एव) प्राण ही (आयतनम्) शरीर है (आकाशः) अन्तर्यामी (प्रतिष्ठा) मूल कारण है (एनत्) इसको (प्रियम्, इति) प्रिय इस से (उपसीत) उपासना करे (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (प्रियता) प्रियता (का) क्या है (सम्राट्) हे राजन् (प्राणः एव) प्राण ही (इति) ऐसा (ह) प्रसिद्ध (उवाच) कहता हुआ (सम्राट्) हे राजन् (प्राणस्य) प्राणकी (कामाय, वै) रक्षाके लिये ही (अयाज्यम्) यजन करानेके अयोग्यको (याजयति) यजन कराता है (अप्रतिगृह्यस्य) जिसका दान नहीं लेना चाहिये उस का (प्रतिगृह्णाति) दान लेता है (अपि) और (सम्राट्) हे राजन् (प्राणस्य, कामाय, एव) प्राणकी रक्षाके लिये ही (यां, दिशम्, एति) जिस दिशाको जाता है (तत्र) वहां (वधाशङ्कम्) मरणकी आशङ्का (भवति) होती है (सम्राट्) हे राजन् (प्राणः, वै) प्राण ही (परमं, ब्रह्म) परम ब्रह्म है (यः) जो (एवं विद्वान्) ऐसा जानने वाला (एतत् उपास्ते) इसकी उपासना करता है (एनम्) इसको (प्राणः) प्राण (न) नहीं (जहाति) त्यागता है (सर्वाणि, भूतानि) सब भूत (एनम्) इसको (अभिक्षरन्ति) भेट अर्पण करते हैं (देवः, भूत्वा) देवता होकर (देवान्) देवताओंको (अप्येति) प्राप्त होता है (वैदेहः) विदेहराज (ह) प्रसिद्ध (जनकः) जनक (हस्त्यृषभम्) हाथी समान सांडवाली (सहस्रम्) सौ गौएँ (ददामि) देता हूं (इति) ऐसा (उवाच) कहता हुआ (सः) वह (ह) प्रसिद्ध (याज्ञवल्क्यः) याज्ञवल्क्य (उवाच) बोला (अननुशिष्य) शिक्षा

बिना दिये (न, हरेत) धन न लेय (इति ऐसा (मे) मेरे (पिता) पिता (अमन्यत) मानते थे ॥ ३ ॥

(भावार्थ) याज्ञवल्क्यने फिर कहा कि – हे राजन् आपको दूसरे आचार्योंने और जो कुछ उपदेश दिया हो उसको भी सुनना चाहता हूं । राजाने उत्तर दिया, कि हे महाराज ! शुल्बके पुत्र उदङ्कने मुझे उपदेश दिया था कि प्राण ही ब्रह्म है क्योंकि - प्राणशून्य पुरुष पुरुष ही नहीं होता, प्राण वा क्रियावर्ग ही आत्माका उत्तम चिह्न वा परिचय देने वाला है इसलिये देहकी क्रियाओं को ही ब्रह्म जानना चाहिये। मुनिने कहा, कि हे राजन् ठीक है जैसे कोई माता पितासे शिक्षा पाये हुए शिष्य को उपदेश देय उदङ्कने तुम्हें ऐसा ही उपदेश देकर आचार्यवान् बनाया है परन्तु उन्होंने तुम्हें इस प्राण ब्रह्म (वायुदेव) के शरीर और त्रिकालके आश्रय मूल कारणका भी उपदेश दिया ? राजाने कहा नहीं उन्होंने मुझे यह उपदेश तो नहीं दिया था यदि आप इस तत्त्व को जानते हों तो मुझे बतला दीजिये। याज्ञवल्क्यजीने कहा कि हे राजन् ! गुण वा उपाधिके भेदसे विकाश की न्यूनाधिकताके अनुसार ब्रह्म का भेद प्रतीयमान होनेपर भी, स्वरूपतः उसमें भेद नहीं है वह निरन्तर एकरूप है। प्राणशक्ति देहकी सकल क्रियाओंका आश्रय है, इस प्राणशक्तिका देवता वायु है। आध्यात्मिकभाव में व्यष्टिरूपसे जिसको प्राणशक्ति कहते हैं, आधिदैविक भावमें वही समष्टिरूपसे वायुशक्ति कहीजाती है, वह वायु ही प्राणियोंके शरीरोंमें प्राणेन्द्रियरूपसे प्रकट है, इस प्राणका मूलकारण अव्याकृत बीजशक्ति है, इस प्राण कहिये वायुरूप ब्रह्मको प्रिय मान कर उपासना

करनी चाहिये परन्तु यह ब्रह्मका एक पादमात्र है राजा ने कहा, कि-हे महाराज ! प्राणमें प्रियपना क्या है ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया, कि-जब देहकी क्रियाशक्ति ही प्राणशक्ति है तब तो यह सबको अवश्य ही प्रिय (प्यारा) है, यदि प्रिय न हो-यदि सुख न मिले तो कोई किसी क्रियाको करे ही नहीं । देखो लोग प्राणकी रक्षाके लिये यज्ञके अनधिकारीको यज्ञ करादेते हैं और जिन म्लेच्छ आदिका दान नहीं लेना चाहिये उनका दान लेलेते हैं और प्राणकी रक्षाके लिये उन चोर सिंह आदिके भयवाले भयानक स्थानोंमें चलेजाते हैं जहाँ मरणकी आशङ्का होती है, इसलिये प्राणको प्रिय मानना चाहिये और परब्रह्म मानकर इसकी उपासना करनी चाहिये । जो ऐसा जानकर इस प्राण (वायुरूप ब्रह्म) की उपासना करता है, उसको प्राण कभी नहीं त्यागता है, सब प्राणी उसको भेट अर्पण करते हैं और इस जन्म में ही उसमें देवभावका आविर्भाव होजाता है और शरीरान्त होने पर वह देवताओंमें जा पहुँचता है । यह सुनकर प्रसन्न हुए राजा जनकने कहा, कि-हे भगवन् ! जिनमें हाथीकी समान हृष्टपुष्ट साँड हैं ऐसी एक सहस्र गौएँ मैं आपको देना चाहता हूं । इस पर याज्ञवल्क्यजीने कहा, कि-मेरे पिताजीका यह सिद्धान्त था और उन्होंने मुझे भी यही उपदेश दिया था, कि-शिष्यको पूर्ण रूप से आत्मतत्त्वका उपदेश देकर कृतार्थ किये बिना उससे कुछ धन नहीं लेय, इसलिये मैं पूरा २ उपदेश बिना दिये इस गोधनको नहीं लेना चाहता ॥ ३ ॥

यदेव ते कश्चिदब्रवीत्तच्छृणवामेत्यब्रवीन्मे वर्कु-

वार्ष्णश्चक्षुर्वै ब्रह्मेति यथा मातृमान् पितृमाना-
चार्यवान् ब्रूयात्तथा तद्वार्ष्णोऽब्रवीच्चक्षुर्वै ब्रह्मे-
त्यपश्यतो हि किꣳस्यादित्यब्रवीत्तु ते तस्याऽऽ-
यतनं प्रतिष्ठां न मेऽब्रवीदित्येकपाद्वा एतत्स-
म्राडिति स वै नो ब्रूहि याज्ञवल्क्य चक्षुरेवा-
यतनमाकाशः प्रतिष्ठा सत्यमित्येनदुपासीत का
सत्यता याज्ञवल्क्य चक्षुरेव सम्राडिति होवाच
चक्षुषा वै सम्राट् पश्यन्तमाहुरद्राक्षीरिति स
आहाद्राक्षमिति तत्सत्यं भवति चक्षुर्वै सम्राट्
परमं ब्रह्म नैनं चक्षुर्जहाति सर्वाण्येनं भूता-
न्यभिक्षरन्ति देवो भूत्वा देवानप्येति य एवं
विद्वानेतदुपास्ते हस्त्यृषभꣳ सहस्रं ददामीति
होवाच जनको वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यः
पिता मेऽमन्यत नाननुशिष्य हरेतेति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ते) तेरा (कश्चित्) कोई (यत्) जो (अब्रवीत्) कहता हुआ (तत् एव) उसको ही (शृणवाम) सुनना चाहते हैं (इति) ऐसा कहने पर (वार्ष्णः) वृष्णका पुत्र (वर्कुः) वर्क (मे) मेरे अर्थ (वै) प्रसिद्ध (चक्षुः) चक्षु (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (अब्रवीत्) कहता हुआ (मातृमान्) मातावाला (पितृमान्) पितावाला (आचार्यवान्) आचार्यवाला (यथा) जैसे (ब्रूयात्) कहे (तथा) तैसे (वार्ष्णः) वृष्णका पुत्र (चक्षुः वै) प्रसिद्ध चक्षु (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (तत्) उस वचनको (अब्रवीत्) कहता हुआ (हि) क्योंकि (अपश्यतः) अन्धेसे (किम्)

क्या (स्यात्) हो (तु) फिर (तस्य) उसके (आयतनम्) शरीरको (प्रतिष्ठाम्) आश्रयको (ते) तेरे अर्थ (अब्रवीत्) कहा (इति) ऐसा बूझने पर (मे) मेरे अर्थ (न) नहीं (अब्रवीत्) कहता हुआ यह उत्तर दिया (सम्राट्) हे राजन् ! (एतत्) यह (एकपाद्वै) एक पादवाला (इति) ही है (इति) ऐसा कहने पर (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (सः) वह तुम (नः) हमारे अर्थ (ब्रूहि, वै) अवश्य कहो (चक्षुः, एव) चक्षु ही (आयतनम्) शरीर है (आकाशः) अन्तर्यामी (प्रतिष्ठा) आश्रय है (सत्यं, इति) सत्य इस नामसे (एनत्) इसको (उपासीत) उपासना करे (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (सत्यता) सत्यता (का) क्या है (सम्राट्) हे राजन् ! (चक्षुः एव) चक्षु ही (इति) ऐसा (ह) प्रसिद्ध (उवाच) कहता हुआ (सम्राट्) हे राजन् ! (चक्षुषा) नेत्रसे (पश्यन्तम्) देखनेवाले को (अद्राक्षीः) देखा (इति) ऐसा (आहुः, वै) कहते ही हैं (सः) वह (अद्राक्षम्) देखा (इति) ऐसा (आह) कहता है (तत्) वह (सत्यम्) सत्य (भवति) होता है (सम्राट्) हे राजन् ! (चक्षुः, वै) चक्षु ही (परमं, ब्रह्म) परम ब्रह्म है (यः) जो (एवं, विद्वान्) ऐसा जाननेवाला (एनत्) इसको (उपास्ते) उपासना करता है (एनम्) इसको (चक्षुः) चक्षु (न) नहीं (जहाति) त्यागता है (एनम्) इसको (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणी (अभिक्षरन्ति) भेट अर्पण करते हैं (देवः) देवता (भूत्वा) होकर (देवान्) देवताओं को (अप्येति) प्राप्त होता है (वैदेहः) विदेहराज (ह) प्रसिद्ध (जनकः) जनक (हस्त्यृषभम्) हाथी

की समान सींगवालीं (सहस्रम्) सौ गौएँ (ददामि) देता हूं (इति) ऐसा (उवाच) कहता हुआ (सः) वह (ह) प्रसिद्ध (याज्ञवल्क्यः) याज्ञवल्क्य (उवाच) बोला (अननुशिष्य) शिक्षा दिये विना (न) नहीं (हरेत) धनलेय (इति) ऐसा (मे) मेरे (पिता) पिता (अमन्यत) मानते थे ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-याज्ञवल्क्यने राजा जनकसे फिर बूझा, कि-हे राजन् ! किसी आचार्यने तुम्हें और कुछ उपदेश दिया हो तो मैं उसको भी सुनना चाहता हूं । जनकने कहा, कि-वृष्णके पुत्र महात्मा बर्कुने उपदेश दिया था कि-चक्षु ही ब्रह्म है, चक्षु ही आत्माका एक परिचायक चिह्न है चक्षुको ही ब्रह्म मानकर ग्रहण करना चाहिये । याज्ञवल्क्यने कहा कि-ठीक है, जैसे कोई माता पितासे क्रमशः शिक्षा पाया हुआ आचार्यके पास जाय और वह उसको उचित शिक्षा देकर आचार्यवान् बनावै तैसे ही बर्कुने तुमको 'चक्षु ही ब्रह्म है' यह उपदेश देकर तुम्हारे ऊपर अनुग्रह किया है, परन्तु चक्षुका शरीर क्या है और मूलकारण क्या है यह भी उन्होंने तुम्हें बताया था नहीं ? राजाने कहा, कि-उन्होंने मुझे यह तो नहीं बताया, यह तत्त्व कृपा करके आप ही मुझे बतादीजिये याज्ञवल्क्यने कहा, कि-हे राजन् ! गुण वा उपाधिके भेद से विकाशकी न्यूनाधिकताके अनुसार ब्रह्मका भेदसा प्रतीत होने पर भी, स्वरूपतः उसमें कोई भेद नहीं है, वह निरन्तर एकरूप है । चक्षुका आश्रय दर्शनेन्द्रिय है, सूर्य दर्शनेन्द्रियका देवता है । आधिदैविक राज्यमें समष्टिभावसे जिसको सूर्य कहते हैं वही आध्यात्मिक राज्यमें व्यष्टिरूपसे दर्शनेन्द्रिय है । यह सूर्य ज्योति ही

प्राणीके शरीरमें तैजस चक्षु-इन्द्रियरूपसे प्रकट होरहा है। इस चक्षु इन्द्रियका मूलकारण अव्याकृत बीजशक्ति (अन्तर्यामी) ही है। इस चक्षुः शक्तिकी सत्य नामसे उपासना करना चाहिये, परन्तु यह ब्रह्मका एक पाद-मात्र है। राजाने कहा, कि-हे भगवन्! नेत्रमें सत्यपना क्या है? मुनिने कहा, कि-हे राजन्! नेत्रसे देखनेवाले पुरुषसे यदि कोई कहे कि-तूने हाथी देखा तो वह कहता है कि-हाँ देखा और यह बात सत्य होती है, इसलिये हे राजन्! अभिमानी सूर्यदेवता सहित चक्षु ही पर-ब्रह्म है। जो ऐसा जाननेवाला इस भावसे ही चक्षु-ब्रह्मकी उपासना करता है उसको चक्षु और उसका अभिमानी देवता कभी नहीं त्यागता है सब प्राणी उस को भेट अर्पण करते हैं और इस जीवनमें ही देवभाव प्रकट होजाता है तथा शरीर पात होने पर यह देवता-ओंको प्राप्त होता है। उस उपदेशको सुनकर विदेहराज जनक बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने कहा, कि-हे भग-वन्! मैं आपको जिनमें हाथीके समान हृष्टपुष्ट सांड हैं ऐसी एक सहस्र गौएं देना चाहता हूं, याज्ञवल्क्यजी ने कहा कि-मेरे पिताका यह सिद्धान्त था और उन्होंने मुझे भी यह उपदेश दिया था, कि-शिष्यको पूर्णरूपसे आत्मतत्त्वका उपदेश देकर कृतार्थ किये विना उससे कुछ धन न लेय, इसलिये मैं गोधनको नहीं लेना चाहता ॥ ४ ॥

यदेव ते कश्चिदब्रवीत्तच्छृणवामेत्यब्रवीन्मे गर्द-भीविपीतो भारद्वाजः श्रोत्रं वै ब्रह्मेति यथा मातृमान् पितृमानाचार्यवान् ब्रूयात्तथा तद्भारद्वा-

जोऽब्रवीच्छ्रोत्रं वै ब्रह्मेत्यशृण्वतो हि किꣳस्यादित्यब्रवीत्तु ते तस्यायतनं प्रतिष्ठां न मेऽब्रवीदित्येकपाद्वा एतत्सम्राडिति स वै नो ब्रूहि याज्ञवल्क्य श्रोत्रमेवायतनमाकाशः प्रतिष्ठाऽनन्त इत्येनदुपासीत काऽनन्तता याज्ञवल्क्य दिश एव सम्राडिति होवाच तस्माद्वै सम्राड् वै यां काञ्च दिशं गच्छति नैवाऽस्या अन्तं गच्छत्यनन्ता हि दिशो दिशो वै सम्राट् श्रोत्रꣳ श्रोत्रं वै सम्राट् परमं ब्रह्म नैनꣳश्रोत्रं जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति देवो भूत्वा देवानप्येति य एवं विद्वानेतदुपास्ते हस्त्यृषभꣳसहस्रं ददामीति होवाच जनको वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यः पिता मेऽमन्यत नाननुशिष्य हरेतेति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ते) तेरा (कश्चित्) कोई (यत्) जो (अब्रवीत्) कहता हुआ (तत् एव) उसको ही (शृणवाम) सुनना चाहते हैं (इति) ऐसा कहने पर (भारद्वाजः) भरद्वाज गोत्रवाला (गर्दभीविपीतः) गर्दभीविपीत (मे) मेरे अर्थ (श्रोत्रं वै) श्रोत्र ही (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (अब्रवीत्) कहता हुआ (मातृमान्) मातावाला (पितृमान्) पितावाला (आचार्यवान्) आचार्यवाला (यथा) जैसे (ब्रूयात्) कहे (तथा) तैसे (भारद्वाजः) भरद्वाज गोत्रवाला (श्रोत्रं, वै) श्रोत्र ही (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (तत्) उस वचनको (अब्रवीत्) कहता हुआ

(हि) क्योंकि (अशृण्वतः) न सुननेवालेसे (किम्) क्या (स्यात्) हो (तु) फिर (ते) तेरे अर्थ (तस्य) उसके (आयतनम्) शरीरको (प्रतिष्ठाम्) आश्रयको (अब्रवीत्) कहता हुआ (इति) ऐसा बूझने पर (मे) मेरे अर्थ (न) नहीं (अब्रवीत्) कहता हुआ (इति) यह उत्तर दिया (सम्राट्) हे राजन् (एतत्) यह (एकपाद्, वै) एकपाद वाला ही है (इति) ऐसा कहने पर (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (सः) वह तुम (नः) हमारे अर्थ (ब्रूहि, वै) अवश्य कहो (श्रोत्रं, एव) श्रोत्र ही (आयतनम्) शरीर है (आकाशः) आकाश (प्रतिष्ठा) आश्रय है (अनन्तः, इति) अनन्त इस नामसे (एनत्) इसको (उपासीत) उपासना करे (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (अनन्तता) अनन्तता (का) क्या है (सम्राट्) हे राजन् ! (दिशः, एव) दिशायें ही (इति) ऐसा (ह) प्रसिद्ध (उवाच) कहता हुआ (सम्राट्) हे राजन् ! (तस्मात् वै) तिस कारणसे ही (यां, काञ्च) जिस किसी (वै) प्रसिद्ध (दिशम्) दिशाको (गच्छति) जाता है (अस्य) इस के (अन्तम्) अन्तको (नैव) नहीं (गच्छति) प्राप्त होता है (हि) क्योंकि (दिशः) दिशायें (अनन्ताः, वै) अनन्त ही हैं (सम्राट्) हे राजन ! (दिशः, वै) दिशायें ही (श्रोत्रम) श्रोत्र हैं (सम्राट्) हे राजन ! (श्रोत्रं, वै) श्रोत्र ही (परमं, ब्रह्म) परम ब्रह्म है (यः) जो (एवं, विद्वान) ऐसा जाननेवाला (एतत्) इसका (उपास्ते) उपासना करता है (एनम्) इसको (श्रोत्रम्) श्रोत्र (न) नहीं (जहाति) त्यागता है (एनम्) इसको (सर्वाणि, भूतानि) सब प्राणी

(अभिचरन्ति) भेट अर्पण करते हैं (देवः, भूत्वा) देवता होकर (देवान्) देवताओंको (अप्येति) प्राप्त होता है (वैदेहः) विदेहराज (ह) प्रसिद्ध (जनकः) जनक (हस्त्यृषभम्) हाथीकी समान सांडवाली (सहस्रम्) हजार गौएँ (ददामि) देता हूं (इति) ऐसा (उवाच) कहता हुआ (सः) वह (ह) प्रसिद्ध (याज्ञवल्क्यः) याज्ञवल्क्य (उवाच) बोला (अननुशिष्य) शिक्षा दिये विना (न) नहीं (हरेत) धनलेय (इति) ऐसा (मे) मेरे (पिता) पिता (अमन्यत) मानते थे ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-याज्ञवल्क्यजीने राजा जनकसे फिर बूझा कि—हे राजन् ? किसी आचार्यने तुम्हें और कुछ उपदेश दिया हो तो मैं उसको भी सुनना चाहता हूं। जनकने कहा, कि-भारद्वाजगोत्रके गर्दभीविपीतने मुझे उपदेश दिया था, कि-श्रोत्र। (श्रोत्राभिमानी देवता दिशायें) ही ब्रह्म है। श्रोत्र कहिये श्रवण क्रिया आत्मा का एक परिचायक है, आत्माका एक चिह्न है, इसलिये श्रवण क्रियाको ब्रह्म मानकर ग्रहण करना चाहिये। जनककी यह बात सुनकर मुनिने कहा कि- हे राजन् ! ठीक है जैसे कोई माता पितासे शिक्षा पाताहुआ आचार्यके पास जाय और वह उसको शिक्षा देकर आचार्यवान् बनावे तैसे ही भारद्वाजने तुम्हें श्रवण शक्ति ही ब्रह्म है, यह उपदेश तुम्हारे ऊपर कृपा की है, परन्तु श्रोत्रका शरीर क्या है और उत्पत्ति-स्थिति प्रलय का आश्रय मूलकारण क्या है यह भी उन्होंने तुम्हें बताया है या नहीं ? राजाने कहा, कि-उन्होंने मुझे यह तो नहीं बताया। यह तत्त्व कृपा करके आप ही मुझे

बता दीजिये। याज्ञवल्क्यने, कहा, कि-हे राजन्! गुण वा उपाधिके भेदसे विकाशकी न्यूनाधिकताके अनुसार ब्रह्मका भेद कल्पित हुआ करता है वास्तवमें उसमें कोई भेद नहीं है वह निरन्तर एकरूप है इस श्रोत्रका शरीर श्रवणेन्द्रिय ही है। इस श्रवण शक्तिकी देवता दिशा हैं। अध्यात्मिक भावमें व्यष्टिरूपसे जिसको श्रवणशक्ति कहते हैं, वही आधिदैविक भावमें समष्टिरूपसे दिशा नामसे कही जाती है। दिशा वा आकाशीय उपादान ही प्राणीके देहमें श्रवणशक्ति रूपसे प्रकट होरहा है। अव्याकृत बीज शक्ति (अन्तर्यामी) ही इस श्रवण इन्द्रियका आश्रय वा मूल कारण है। यह श्रवण शक्ति ही ब्रह्म है, परन्तु यह ब्रह्मका एक पादमात्र है। इस श्रवण शक्तिकी अनन्त नामसे उपासना करनी चाहिये चाहे जिस दिशा में जाओ उसका अन्त नहीं मिलता क्योंकि-दिशायें अनन्त हैं। हे राजन्! आकाश ही भिन्न प्रदेशका संबन्धी होने पर दिशा नामसे कहाजाता है उससे भिन्न दिशा नामका कोई पदार्थ नहीं है इस लिये दिशायें ही श्रोत्र हैं श्रोत्र वा दिशायें ही परम ब्रह्म है, जो ऐसा जान कर दिशाओंकी उपासना करता है। उसको श्रवणशक्ति कभी नहीं त्यागती है, सकल प्राणी उसको भेंट अर्पण करते हैं उसमें यहांही देवभाव प्रकट होजाता है और शरीरान्त होने पर वह देवताओंमें जा पहुँचता है। यह सुनकर प्रसन्न हुए राजा जनकने कहा कि-मैं आपको हाथीकी समान हृष्टपुष्ट सांडों सहित सहस्र गौएँ देना चाहता हूं। याज्ञवल्क्यने कहा, कि--शिष्यको आत्मतत्त्वका उपदेश देकर कृतार्थ किये विना धन नहीं लेना चाहिये, यह मेरे पिताजीका सिद्धान्त है

यदेव ते कश्चिदब्रवीत्तच्छृणवामेत्यब्रवीन्मे सत्यकामो जाबालो मनो वै ब्रह्मेति यथा मातृमान् पितृमानाचार्यवान् ब्रूयात्तथा तज्जाबालोऽब्रवीन्मनो वै ब्रह्मेत्यमनसो हि किꣳ स्यादित्यब्रवीत्तु ते तस्याऽऽयतनं प्रतिष्ठां व मेऽनवीदित्येकपाद्वा एतत्सम्राडिति स वै नो ब्रूहि याज्ञवल्क्य मन एवाऽऽयतनमाकाशः प्रतिष्ठाऽऽनन्दा इत्येनदुपासीत काऽऽनन्दता याज्ञवल्क्य मन एव सम्राडिति होवाच मनसा वै सम्राट् स्त्रियमभिहार्यते तस्यां प्रतिरूपः पुत्रो जायते स आनन्दो मनो वै सम्राट् परमं ब्रह्म नैनं मनो जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति देवो भूत्वा देवानप्येति य एवं विद्वानेतदुपास्ते हस्त्यृषभꣳ सहस्रं ददामीति होवाच जनको वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यः पिता मेऽमन्यत नाननुशिष्य हरेतेति॥६॥

अन्वय और पदार्थ- (ते) तेरा (कश्चित्) कोई (यत्) जो (अब्रवीत्) कहता हुआ (तत्, एव) उसको ही (शृणवाम) सुनना चाहते हैं (इति) ऐसा कहने पर (जाबालः) जबालाका पुत्र (सत्यकामः) सत्यकाम (मे) मेरे अर्थ (मनः, वै) मन ही (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (अब्रवीत्) कहता हुआ (मातृमान्) मातावाला (पितृमान्] पिता वाला (आचार्यवान्) आचार्यवाला (यथा) जैसे) ब्रूयात्) कहे (तथा) तैसे (जाबालः)

जबालाका पुत्र (मनः, वै) मन ही (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) इसप्रकार (तत्) उस वचनको (अब्रवीत्) कहता हुआ (हि) क्योंकि (अमनसः) मनरहित से (किम्) क्या (स्यात्) हो (तु) फिर (ते) तेरे अर्थ (तस्य) उसके (आयतनम्) शरीरको (प्रतिष्ठाम्) आश्रयको (अब्रवीत्) कहता हुआ (इति) ऐसा बूझने पर (मे) मेरे अर्थ (न) नहीं (अब्रवीत्) कहता हुआ (इति) यह उत्तर दिया (सम्राट्) हे राजन् (एतत्) यह (एकपाद्, वै) एक पाद वाला ही है (इति) ऐसा कहने पर (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (सः) वह तुम (नः) हमारे अर्थ (ब्रूहि, वै) अवश्य कहो (मनः, एव) मन ही (आयतनम्) शरीर है (आकाशः) अन्तर्यामी (प्रतिष्ठा) आश्रय है (एतत्) इसको (आनन्दः इति) आनन्द इस नामसे (उपासीत) उपासना करे (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (आनन्दता) आनन्दपना (का) क्या है (सम्राट्) हे राजन् (मनः, एव) मन ही है (इति) ऐसा (ह) प्रसिद्ध (उवाच) बोला (सम्राट्) हे राजन् ! (मनसा, वै) मनके द्वारा ही (स्त्रियम्, अभिहार्यते) स्त्रीके प्रति लेजाया जाता है (यस्याम्) उसमें (प्रतिरूपः) अनुरूप (पुत्रः) पुत्र (जायते) उत्पन्न होता है (सः) वह (आनन्दः) आनन्द है (सम्राट्) हे राजन (मनः, वै) मन ही (परमं ब्रह्म) परम ब्रह्म है (यः) जो (एवं, विद्वान्) ऐसा जानने वाला (एतत्) इसको (उपास्ते) उपासना करता है (एनम्) इसको (मनः) मन (न) नहीं (जहाति) त्यागता है (सर्वाणि, भूतानि) सब प्राणी (एनम्) इसको (अभिक्षरन्ति) भेंट अर्पण करते हैं,

(देवः, भूत्वा) देवता होकर (देवान्, अप्येति) देवताओंको प्राप्त होता है (हस्त्यृषभम्) हाथी की समान सांडवाली (सहस्रम्) सौ गौएँ (ददामि) देता हूं (इति) ऐसा (वैदेहः) विदेहराज (ह) प्रसिद्ध (जनकः) जनक (उवाच) कहता हुआ (सः) वह (याज्ञवल्क्यः) याज्ञवल्क्य (उवाच, ह) बोला (अननुशिष्य) शिक्षा दिये बिना (न) नहीं (हरेत) धन लेय (इति) ऐसा (मे) मेरे (पिता) पिता (अमन्यत) मानते थे ॥ ६ ॥

(भावार्थ)–याज्ञवल्क्यने राजा जनकसे फिर–कहा कि हे राजन्! किसी आचार्यने तुम्हें और कुछ उपदेश दिया हो तो मैं उसको भी सुनना चाहता हूं। राजाने कहा कि-हे मुने! जबालाके पुत्र सत्यकामने मुझे यह उपदेश दिया था, कि-मन ही ब्रह्म है। यह सुन कर मुनिने कहा, कि-राजन्! ठीक है, जैसे कोई माता पितासे शिक्षा पाया हुआ अपने आचार्यके पास जाय और वह उसको शिक्षा देकर आचार्यवान् बनावे तैसे ही जाबाल ने '(अपने देवता चन्द्रमासहित) मन ही ब्रह्म है' यह उपदेश देकर तुम्हारे ऊपर अनुग्रह किया है, क्योंकि— मनसे रहित मूर्ख पुरुषसे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता मन ही आत्माका परिचायक है परन्तु हे राजन! उन्होंने तुम्हें मनका शरीर और मूल कारण बताया था नहीं? राजाने कहा नहीं। मुनिने कहा तब तो यह ब्रह्मका एक ही पाद है। इस पर राजाने कहा, कि— महाराज! तो आप ही मुझे यह तत्त्व बतादीजिये। इस पर मुनिने कहा, कि–हे राजन्! ब्रह्म स्वरूपसे

भेदशून्य है, केवल गुण वा उपाधिके भेदसे विकाशकी न्यूनाधिकताके अनुसार ब्रह्मका भेद कल्पना करलिया जाता है, वास्तवमें ब्रह्म निरन्तर एकरूप है। इस मन की देवता चन्द्रज्योति है। आध्यात्मिक भावमें व्यष्टि-रूपसे जो मनःशक्ति कहलाती है वही आधिदैविक भावमें समष्टिरूपसे चन्द्रज्योति कहीजाती है। तैजस-चन्द्रमा ही प्राणीके शरीरमें मनःशक्तिरूपसे प्रकट हो रहा है। अव्याकृत बीजशक्ति (अन्तर्यामी ही) इस मनका आश्रय वा मूल कारण है। इसप्रकार यह मन ही ब्रह्म है, इस मनकी आनन्द रूपसे उपासना करनी चाहिये। राजाने बूझा, कि-आनन्द किसका नाम है। मुनिने उत्तर दिया, कि-मन ही आनन्द है, क्यों कि-मनके द्वारा ही लोग संसारमें सुन्दरी सुशीला पत्नीके लिये उत्सुक होते हैं, मनकी प्रेरणासे ही उसके साथ समागम करते हैं और उस स्त्रीसे अनुरूप पुत्रको पा कर आनन्दित होते हैं, इसलिये हे राजन्! अपने अधिष्ठात्री चन्द्रदेवता सहित मन ही ब्रह्म है। जो ऐसा जानता हुआ इस चन्द्रमाकी उपासना करता है उसको मानसशक्ति कभी नहीं त्यागती है, सकल प्राणी उसको भेंट अर्पण करते हैं और वह इस लोकमें देवता होकर परलोकमें देवताओंके पास जा पहुंचता है। यह सुन कर प्रसन्न हुए राजाने कहा कि हे भगवन्! मैं आपको हाथीकी समान हृष्टपुष्ट सांडोंवाली एक सहस्र गौएँ अर्पण करना चाहता हूं। यह सुनकर याज्ञवल्क्यने कहा, कि-हे राजन्! मेरे पिताका विचार था, कि-पूर्ण रूपसे शिक्षा देकर कृतार्थ किये विना धन न लेय, इस लिये मैं यह गोधन नहीं लूँगा॥ ६॥

यदेव ते कश्चिदब्रवीत्तच्छृणवामेत्यब्रवीन्मे विद-
ग्धः शाकल्यो हृदयं वै ब्रह्मेति यथा मातृमान्
पितृमानाचार्यवान् ब्रूयात्तथा तच्छाकल्योऽब्रवी
द्धृदयं वै ब्रह्मेत्यहृदयस्य हि किथ्ँस्यादित्यब्र-
वीत्तु ते तस्याऽऽयतनं प्रतिष्ठां न मेऽब्रवीदित्ये-
कपाद्वा एतत्सम्राडिति स वै नो ब्रूहि याज्ञवल्क्य
हृदयमेवाऽऽयतनमाकाशः प्रतिष्ठा स्थितिरित्ये-
नदुपासीत का स्थितता याज्ञवल्क्य हृदयमेव
सम्राडिति होवाच हृदयं वै सम्राट् सर्वेषां भूता-
नामायतनथ्ँ हृदयं वै सम्राट् सर्वेषां भूतानां
प्रतिष्ठा हृदये ह्येव सम्राट् सर्वाणि भूतानि प्रति-
ष्ठितानि भवन्ति हृदयं वै सम्राट् परमं ब्रह्म नैन
थ्ँ हृदयं जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति
देवो भूत्वा देवानप्येति एवं विद्वानेतदुपास्ते
हस्त्यृषभथ्ँसहस्रं ददामीति होवाच जनको
वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यः पिता मेऽमन्यत
नाऽननुशिष्य हरेतेति ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ते) तेरा (कश्चित्) कोई (यत्) जो (अब्रवीत्) कहता हुआ (तत्, एव) उसको ही (गुणग्राम) सुनना चाहते हैं (इति) ऐसा कहने पर (शाकल्यः) शकलका पुत्र (विदग्धः) विदग्ध (मे) मेरे अर्थ (हृदयं, वै) हृदय ही (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति)

ऐसा (अब्रवीत्) कहता हुआ (मातृमान्) मातावाला (पितृमान्) पितावाला (आचार्यवान्) आचार्यवाला (यथा) जैसे (ब्रूयात्) कहे (तथा) तैसे (शाकल्यः) शकलका पुत्र (हृदयं, वै) हृदय ही (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (तत्) उस वचनको (अब्रवीत्) कहता हुआ (हि) क्योंकि (अहृदयस्य) बुद्धिहीनका (किम्) क्या (स्यात्) हो (तु) फिर (ते) तेरे अर्थ (तस्य) उसके (आयतनम्) शरीरको (प्रतिष्ठाम्) आश्रयको (अब्रवीत्) कहता हुआ (इति) ऐसा बूझने पर (मे) मेरे अर्थ (न) नहीं (अब्रवीत्) कहता हुआ (इति) यह उत्तर दिया (सम्राट्) हे राजन् (एतत्) यह (एकपाद्, वै) एक चरणवाला ही है (इति) ऐसा कहने पर (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (सः) वह तुम (नः) हमारे अर्थ (ब्रूहि, वै) अवश्य ही कहो (हृदयं, एव) हृदय ही (आयतनम्) शरीर है (आकाश) अन्तर्यामी (प्रतिष्ठा) आश्रय है (एनत्) इसको (स्थितिः, इति) स्थिति इस नामसे (उपासीत) उपासना करे (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य ! (स्थितता) स्थितपना (का) क्या है (सम्राट्) हे राजन् ! (हृदयं, एव) हृदय ही है (इति) ऐसा (ह) प्रसिद्ध (उवाच) बोला (सम्राट्) हे राजन् ! (हृदयं, वै) हृदय ही (सर्वेषाम्) सब (भूतानाम्) भूतोंका (आयतनम्) शरीर है (सम्राट्) हे राजन (हृदयं, वै) हृदय ही (सर्वेषां भूतानाम्) सब भूतोंका (प्रतिष्ठा) आश्रय है (हि) क्योंकि (सम्राट्) हे राजन (हृदये, एव) हृदयमें ही (सर्वाणि, भूतानि) सब भूत (प्रतिष्ठितानि, भवन्ति) स्थिति पाये हुए होते हैं (सम्राट्) हे

राजन् (हृदयं, वै) हृदय ही (परमं, ब्रह्म) परम ब्रह्म है (यः) जो (एवं, विद्वान्) ऐसा जाननेवाला (एतत्) इसको (उपास्ते) उपासना करता है (एनम्) इसको (हृदयम्) हृदय (न) नहीं (जहाति) त्यागता है (सर्वाणि, भूतानि) सब भूत (एनम्) इसको (अभिक्षरन्ति) भेट अर्पण करते हैं (देवः, भूत्वा) देवता होकर (देवान्) देवताओंको (अप्येति) प्राप्त होता है (वैदेहः) विदेहराज (ह) प्रसिद्ध (जनकः) जनक (हस्त्यृषभम्) हाथीकी समान सांडोंवाली (सहस्रम्) सौ गौएं (ददामि) देवता हूं (इति) ऐसा (उवाच) बोला (सः) वह (ह) प्रसिद्ध (याज्ञवल्क्यः) याज्ञवल्क्य (उवाच) बोला (अननुशिष्य) शिक्षा बिनादिये (न) नहीं (हरेत) धनलेय (इति) ऐसा (मे) मेरे (पिता) पिता (अमन्यत) मानते थे ॥ ७ ॥

(भावार्थ) -याज्ञवल्क्यने राजा जनकसे फिर कहा कि-हे राजन् ! किसी आचार्यने तुम्हें और कुछ उपदेश दिया हो तो मैं उसको भी सुनना चाहता हूं । राजाने कहा, कि-हे मुने ! शकलके पुत्र विदग्धने मुझे यह उपदेश दिया था, कि-हृदय ही ब्रह्म है । यह सुनकर मुनिने कहा, कि-राजन् ! ठीक है, जैसे कोई माता पिता से शिक्षा पाया हुआ अपने आचार्यके पासजाय और वह उसको शिक्षा देकर आचार्यवान् बनावे, तैसे ही शाकल्यने 'अपने देवता प्रजापतिसे अधिष्ठित हृदय ही ब्रह्म है' यह उपदेश देकर तुम्हारे ऊपर अनुग्रह किया है, क्योंकि-हृदयहीन (बुद्धिशून्य) पुरुषसे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता बुद्धि ही आत्माकी परिचायक है,

परन्तु हे राजन्! उन्होंने तुम्हें हृदय (प्रजापति रूप ब्रह्म) का शरीर और आश्रयरूप मूलकारण भी बताया या नहीं ? राजाने कहा नहीं। मुनिने कहा- तब तो यह ब्रह्मका एकपादमात्र ही है। इस पर राजाने कहा, कि- भगवन्! तो आप ही मुझे यह तत्त्व बतादीजिये याज्ञवल्क्यने कहा, कि-उपाधिके भेदवश विकाशकी न्यूनाधिकताके अनुसार ब्रह्ममें भेदकी कल्पना होगयी है, वास्तवमें ब्रह्म निरन्तर एकरूप है, उसमें किसी प्रकार का भेद नहीं है, हृदय ही इस बुद्धिका आश्रय है और अव्याकृत बीजशक्ति (अन्तर्यामी) ही इसका मूल कारण है। इस बुद्धिकी स्थिति वा आयतन नामसे उपासना करे, क्योंकि-हृदयमें ही सब भूत स्थित हैं, हृदय ही नामरूप और कर्मकी भूमि है। सबका आधार हृदय ही ब्रह्म पदार्थ है। जो ऐसा जानकर इस हृदय (प्रजापति) की उपासना करता है उसको प्रजापति देवता सहित हृदय त्यागता नहीं है, सकल प्राणी उसको भेटें अर्पण करते हैं, उसमें यहाँ ही देवभाव प्रकट होजाता है और वह मरने पर देवताओंमें जा मिलता है। ज्ञानात्मक और क्रियात्मक अनेकों उपाधियोंमें उस ही एक ही ब्रह्मकी उपासना वा भावना करते २ साधक क्रमसे सब उपाधियोंके पार होकर उपाधियोंके कारणस्वरूप शुद्ध ब्रह्मकी धारणा करनेके योग्य होजाता है। इस उपदेशको सुनकर राजा जनक बड़े प्रसन्न हुए और मुनिसे कहनेलगे, कि—हे भगवन्! मैं आपको जिनमें हाथीकी समान हृष्ट पुष्ट साँड हैं ऐसी एक सहस्र गौएं देना चाहता हूँ। याज्ञवल्क्यजीने उत्तर दिया, कि-राजन्!

मेरे पिताजीका यह सिद्धान्त था, कि-पूर्णरूपसे शिक्षा देकर कृतार्थ किये विना धन न लेय, यही विचार मेरा भी है ॥ ७ ॥

चतुर्थाध्यायस्य प्रथमं ब्राह्मणं समाप्तम्।

जनको ह वैदेहः कूर्चादुपावसर्पन्नुवाच नमस्तेऽस्तु याज्ञवल्क्यानु मा शाधीति स होवाच यथा वै सम्राण्महान्तमध्वानमेष्यन् रथम्वा नावम्वा समाददीतैवमेवैताभिरुपनिषद्भिः समाहितात्माऽस्येवं वृन्दारकः आढ्यः सन्नधीतवेद उक्तोपनिषत्क इतो विमुच्यमान क्व गमिष्यसीति नाऽहं तद्भगवन् वेद यत्र गमिष्यामीत्यथ वै तेऽहं तद्वक्ष्यामि यत्र गमिष्यसीति ब्रवीतु भगवानिति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(वैदेहः) विदेहराज (ह) प्रसिद्ध (जनकः) जनक (कूर्चात्) कूर्चसे (उपावसर्पन्) समीपमें पहुँचता हुआ (उवाच) बोला (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (ते) तुम्हारे अर्थ (नमः) प्रणाम (अस्तु) हो (मा) मुझे (अनुशाधि) शिक्षा दीजिये (इति) ऐसा कहने पर (ह) प्रसिद्ध (सः) वह (उवाच) बोला (सम्राट्) हे राजन् ! (यथा) जैसे (महान्तम्) लम्बे (अध्वानम्) मार्गको (एष्यन्) जाना चाहता हुआ (वै) निश्चय (रथं, वा) या रथको (वा, नावम्) या नौकाको (समाददीत) सम्यक् प्रकार ग्रहण करेगा (एवमेव) इसप्रकार ही (एताभिः) इन (उपनिषद्भिः)

गुप्त नामों करके (समाहितमा) सावधान चित्तवाला (असि) है (एवम्) इसप्रकार (वृन्दारकः) पूज्य (आढ्यः) धनवान् (सन्) होता हुआ (अधीतवेदः) पढ़ा है वेद जिसने ऐसा (उक्तोपनिषत्कः) कहे हैं गुप्त नाम जिसके प्रति ऐसा [असि] है (इतः) इस शरीर से (विमुच्यमानः) छूटता हुआ (क्व) कहाँ (गमिष्यसि) जायगा (इति) ऐसा बूझने पर (भगवन्) हे महाराज ! (यत्र) जहां (गमिष्यामि) जाऊँगा (तत्) उसको (अहम्) मैं (न नहीं (वेद) जानता हूँ (इति) ऐसा कहने पर (अथ) अनन्तर (यत्र) जहाँ (गमिष्यसि) जायगा (तत्) उसको (अहम्) मैं (ते) तेरे अर्थ (वक्ष्यामि, वै) अवश्य कहूँगा (इति) ऐसा कहने पर (भगवान्) आप (ब्रवीतु) कहिये (इति) यह कहा ॥ १ ॥

(भावार्थ) राजा जनक दूसरे दिन प्रदोषकालमें महर्षि याज्ञवल्क्यजी के नित्यकर्मसे निपटजाने पर अपने बहुमूल्य सिंहासन परसे उठकर उपदेश पानेके लिये उनके समीप जाकर चरणोंमें गिरपड़ा और कहने लगा, कि-हे भगवन् ! आपको प्रणाम है, आप मुझे कृतार्थ करनेवाले तत्त्वज्ञानका उपदेश दीजिये। इस पर याज्ञवल्क्यजीने कहा, कि-हे चक्रवर्त्ती राजन् ! जैसे कोई जलमार्गमें या थलमार्गमें यात्रा करना चाहता है तो नौका या रथका उत्तम प्रबन्ध करता है ऐसे ही तुमने ब्रह्मविज्ञानको पानेकी इच्छा करके उचित सामग्रीका संग्रह करलिया है। निःसन्देह आपने समृद्धिशाली और प्रतिष्ठित कुलमें जन्म लिया है, आत्मज्ञानको पानेके लिये योग्य महात्माओंके मुखारविन्दसे विधिपूर्वक वेद-

विद्याको पढ़ कर हृदयमें धारण किया है और उपास्यके गुप्त नामरूप ब्रह्मविद्याके भण्डार उपनिषदोंको पढ़ा है, परन्तु अभी आपको परमात्मज्ञान नहीं हुआ है, इस लिये कृतार्थ नहीं हुए हो, मैं तुमको सुयोग्य अधिकारी समझकर एक बात बूझता हूँ, भला बताओ तो सही इस शरीरको त्यागदेने पर इन उपासनाओंसे युक्त हुए तुम कहां जाओगे ? राजाने कहा, कि हे भगवन् ! मैं जहाँ जाऊंगा-जहां पहुँचने पर कृतार्थ होऊँगा उस लोकको मैं नहीं जानता । इस पर मुनिने कहा, कि-जहां जाओगे जहाँ पहुँचने पर कृतार्थ होजाओगे, इस का तत्त्व मैं तुमको अवश्य बताऊँगा, इस पर राजाने कहा कि हे भगवन ! आप यह अनुग्रह अवश्य कीजिये॥

इन्धो ह वै नामैष योऽयं दक्षिणेऽक्षन् पुरुषस्तं वा एतमिन्धꣳ सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेणैव परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः॥२॥

अन्वय और पदार्थ-(दक्षिणे) दाहिने (अक्षन्) नेत्रमें (यः) जो (अयम्) यह (पुरुषः) पुरुष है (एषः) यह (ह) प्रसिद्ध (इन्धः, नाम, वै) इन्ध नामवाला ही है (वै) प्रसिद्ध (एतम्) इस (इन्धं, सन्तम्) इन्ध होते हुएको (इन्द्रः, इति) इन्द्र ऐसा (परोक्षेण, एव) परोक्षके द्वारा ही (आचक्षते) कहते हैं (हि) क्योंकि (देवाः) देवता (परोक्षप्रियाः, इव) परोक्षमें ही प्यार करनेवाले (प्रत्यक्षद्विषः) प्रत्यक्षमें द्वेष करने वाले [भवन्ति] होते हैं ॥ २ ॥

(भावार्थ)-दाहिने नेत्रमें जो यह अध्यात्मरूपको प्राप्त हुआ पुरुष है, यह इस आदित्यके भीतर रहने

वाला प्रसिद्ध (जाग्रत्में स्थूल भोगको भोक्तापनेसे सर्वदा प्रकाशित करनेवाला) इन्ध नामवाला है। इस पुरुषको इन्ध होने पर भी विद्वान् इन्द्र इस परोक्ष नाम से कहते हैं, क्योंकि—देवता परोक्ष नाम लेनेसे प्रसन्न होते हैं और प्रत्यक्ष नामसे द्वेष करते हैं। स्पष्ट तात्पर्य यह है—याज्ञवल्क्यने कहा, कि-राजन्! जाग्रत् अवस्थामें जीवात्मा चक्षु कर्ण आदि इन्द्रियोंकी सहायतासे बाहरी विषयोंको ग्रहण करता है। इस अवस्थामें सब विषयोंके प्रकाशित होनेसे विद्वान् लोग इस इन्द्रियाधिष्ठाता चैतन्य पुरुषको इन्ध नामसे पुकारते हैं, क्योंकि-इस समय विषय इन्धमान अर्थात् प्रकाशित होते रहते हैं, परन्तु संसार इस आत्माको इन्ध न कह कर परोक्षतासे इन्द्र नाम ले कर व्यवहार करते हैं। परन्तु यह इन्द्र नाम आत्माका गौण नाम है, इन्द्रियें उसके परिचायक चिह्न हैं, इसलिये ही उसका इन्द्र नाम है। आत्मा 'इदं पश्यति' इस विषयको प्रत्यक्ष करता है, इस व्युत्पत्तिसे भी आत्माको इन्ध कहते हैं। बात यह है, कि-आत्मा जाग्रत् अवस्थामें इन्द्रियोंके द्वारा विषयों को उपलब्ध करता है, अतः इस अवस्थामें आत्माका मुख्य निरुपाधिक स्वरूप प्रकट नहीं होता, किन्तु बाहरी इन्द्रियरूप उपाधिके द्वारा आत्माका स्वरूप भासित होता है, अतः यह आत्माका गौण स्वरूप है—स्थूल स्वरूप है। इस अवस्थामें सब ही स्थूल विषय आत्मा का भोग्य और पोषक होता है॥ २॥

अथैतद्वामेऽक्षणि पुरुषरूपमेषास्य पत्नी विराट् तयोरेष सꣳस्तावो य एषोऽन्तर्हृदय आकाशोऽ

थैनयोरेतदन्नं य एषोऽन्तर्हृदये लोहितपिण्डोऽथैत-
योरेतत्प्रावरणं यदेतदन्तर्हृदये जालकमिवा-
थैनयोरेषा सृतिः सञ्चरणी यैषा हृदयादूर्ध्वा
नाड्युच्चरति यथा केशः सहस्रधा भिन्न एव-
मस्यैता हिता नामनाड्योऽन्तर्हृदये प्रतिष्ठिता
भवन्त्येताभिर्वा एतदास्रवदास्रवति तस्मादेष
प्रविविक्ताहारतर इवैव भवत्यस्माच्छारीरा-
दात्मनः ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ (अथ) अब (एतत्) यह (पुरुष-
रूपम्) पुरुषका रूप (वामे) वायें (अक्षणि) नेत्रमें
[अग्नि] है (अस्य) इसकी (एषा) यह (विराट्)
विराट्रूप (पत्नी) स्त्री है (तयोः) उनका (एषः) यह
(संस्तावः) समागमका स्थान है (यः) जो (एषः)
यह (अन्तर्हृदये) हृदयके भीतर (आकाशः) अव-
काश है (अथ) अब (एतत्) यह (एनयोः) इनका
(अन्नम्) भोग्य है (यः) जो (एषः) यह (अन्त-
र्हृदये) हृदयके भीतर (लोहितपिण्डः) लाल २ पिंड
है (अथ) अब (एतत्) यह (प्रावरणम्) ओढ़नेका
वस्त्र है (यत) जो (एतत्) यह (अन्तर्हृदये) हृदयके
भीतर (जालकं, इव) जालकी समान (अथ) अब
(एषा) यह (एनयोः) इनका (संचरणी, सृतिः) विच-
रनेका मार्ग है (या) जो (एषा) यह (हृदयात्)
हृदयसे (ऊर्ध्वा) ऊपरकी (नाडी) नाडी (उच्चरति)
ऊंची जाती है (यथा) जैसे (केशः) बाल (सहस्रधा)

सहस्र भागमें (भिन्नः) चीराहुआ होता है, (एवम्) ऐसे ही (अस्य) इसको (भिन्नः) चीराहुआ होता है (एवम्) ऐसे ही (अस्य) इसकी (एताः) ये (हिताः, नाम, नाड्यः) हित नामवाली नाड़ियें (अन्तर्हृदये) हृदयके भीतर (प्रतिष्ठिताः, भवन्ति) स्थित रहती हैं (एताभिः, वै) इनके द्वारा ही (एतत्) यह (आस्र-वत्) जाता हुआ (आस्रवति) प्राप्त होता है, (तस्मात्) तिससे (एतत्) यह (अस्मात्) इस (शारीरात्) शरीरवाले (आत्मनः) आत्मासे (प्रविविक्ताहारतर, इव, एव) परमसूक्ष्म आहारवालेकी समान ही (भवति) होता है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-अब कहा हुआ यह पुरुषका रूप बायें नेत्रमें पहुँच कर इस भोक्तारूप विश्व वा इन्द्रकी भोग्य-रूपसे यह विराट्स्वरूप इन्द्राणी पत्नी है । ऐसा होने पर यह जो जोड़ा जाग्रतमें विश्व कहलाता है, यही स्वप्नमें तैजस कहलाता है, इस अभिप्रायसे कहा है, इसलिये ही इस स्वप्नावस्थावाले मिथुनके स्थानको कहते हैं स्वप्नावस्थाको प्राप्त हुए इन्द्र और इन्द्राणीके परस्पर के समागमका स्थान यह हृदयकमलके भीतरका आकाश है । यह दोनोंका भोग्य कहिये स्थितिका हेतु है, जोकि-यह हृदयकमलके भीतर लोहित पिण्ड (खाये हुए अन्नका नाड़ियोंमें रहनेवाला सूक्ष्मतर रस) है। और हृदयकमलके भीतर नाड़ियोंके कारणसे जो जालसा पुरा हुआ दीखता है वह इन दोनोंका ओढ़नेका वस्त्र है और हृदयमें ऊपरको जाने वाली जो नाड़ियें ऊँची चली जाती हैं वह इन दोनोंका स्वप्नसे जाग्रतमें जाने

का मार्ग है। शरीरमें और भी नाड़ियें हैं उन सबका परिमाण बताते हैं, कि-जैसे एक बालको सहस्र भागमें चीरने पर वह सूक्ष्म होता है, तैसी ही सूक्ष्म देहके सम्बन्धवाली, स्वप्नमेंसे जाग्रत्में जाने आदिकी हेतु हिता नामवाली नाड़ियें हृदयके भीतर रहती हैं। इन सूक्ष्म नाड़ियोंके द्वारा ही यह पहले कहा हुआ परमसूक्ष्म अन्न बहता २ स्थितिके लिये लिङ्गशरीरकी उपाधिवाले तैजसके पास जा पहुँचता है। इसलिये यह तैजस इस स्थूल शरीररूप उपाधिवाले विश्वरूप आत्मासे परम सूक्ष्म आहारवालासा होता है। स्पष्ट तात्पर्य यह है, कि-जीव जब स्वप्न देखता है तब जीवका सूक्ष्म स्वरूप प्रकाशित होता है। स्वप्नावस्थामें स्थूल विषय नहीं रहता पहले अनुभव किये हुए सब स्थूल विषयोंके संस्कार वासनाकार वा स्मृतिरूप सूक्ष्मस्वरूपसे मनमें भरे रहते हैं। स्वप्नावस्थामें वे ही सब सूक्ष्म संस्कारमय आत्मा काम करते रहते हैं, परन्तु यह भी आत्माका मुख्य निरुपाधिक स्वरूप नहीं है। अन्तःकरणके द्वारा विषयोंका संस्कारमय सूक्ष्म अनुभव होता रहता है, इस कारण यह भी आत्माका गौणस्वरूप ही है। अन्तःकरणरूप उपाधिके संयोगसे इस अवस्थामें आत्माको तैजस कहते हैं। सूक्ष्मसंस्काररूप विषय ही इस अवस्था में आत्माका अन्न भोग्य वा पोषक होता है। हम अन्न जल आदि जो कुछ खाते पीते हैं वह जठराग्निके द्वारा पककर दो प्रकारकी अवस्था वा विकारको प्राप्त होता है। उनमें एक स्थूल और दूसरा उसकी अपेक्षा सूक्ष्म होता है। स्थूल अंश मल मूत्र आदिके रूपमें बाहर निकलजाता है और सूक्ष्म अंश फिर

जठराग्निके द्वारा दूसरे रूपमें आकर दो प्रकारका रस बनजाता है। उन दोनोंमें जो रस कुछ एक स्थूलभावमें होता है वह शुक्र शोणित आदिके रूपमें शरीरकी पुष्टि करता है और दूसरा रस जो अत्यन्त सूक्ष्म होता है वही लोहितपिण्डाकारसे हृदयमेंसे नसोंमेंको बहता चलाजाता है वही सूक्ष्म शरीरका पोषक है। यह सूक्ष्म-शरीरका भोज्य (अन्न) होता है, इसलिये सूक्ष्म शरीरके अधिष्ठाता आत्माका भी भोग्य और पोषक होता है। हृदयमेंसे सहस्र सूक्ष्म(शिरा) नसें निकलकर सब शरीरमें व्याप्त हो रही हैं। यह शिराभाग ही उस लोहितपिण्डका सञ्चरणभाग है। सूक्ष्म शरीर सूक्ष्म विज्ञान शक्ति तथा प्राणशक्तिके द्वारा ही गठित होरहा है। इस सूक्ष्म शरीरमें ही विषयोंके संस्कार रहते हैं अतः इस सूक्ष्म देहरूप उपाधिके योगसे ही आत्माका ज्ञान और क्रिया निर्वाहित होते हैं, इसकारण स्वप्नकी अवस्था भी आत्माके मुख्य स्वरूपको प्रकाशित नहीं करती। यह सूक्ष्म शरीर ही आत्माके मुख्य स्वरूपको आच्छादित किये रहता है। उस समय स्थूल विषय और इन्द्रियोंके विश्राम लेने पर भी अन्तःकरणमें उनके संस्कार जागृत रहते हैं, उनके द्वारा ही जीव स्वप्न देखता है और उनके द्वारा ही जीव वासनामय सब विषयोंको प्रत्यक्ष करता है ॥ ३ ॥

तस्य प्राची दिक् प्रत्यञ्चः प्राणा दक्षिणा दिग्दक्षिणे प्राणाः प्रतीची दिक् प्रत्यञ्चः प्राणा उदीची दिगुदञ्चः प्राणा ऊर्ध्वा दिगूर्ध्वाः प्राणा अवाची दिगवाञ्चः प्राणाः सर्वा दिशः सर्वे प्राणाः स

एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो न हि गृह्यतेऽशीर्यो न हि शीर्यतेऽसङ्गो न हि सज्यतेऽसितो न व्यथते न रिष्यत्यभयं वै जनक प्राप्तोऽसीति होवाच याज्ञवल्क्यः। स होवाच जनको वैदेहोऽभयं त्वा गच्छताद्याज्ञवल्क्य यो नो भगवन्नभयं वेदयसे नमस्तेऽस्त्विमे विदेहा अयमहमस्मि ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्य) उसके (प्राञ्चः) पूर्वमें गये हुए (प्राणाः) प्राण (प्राची, दिक्) पूर्वदिशा हैं (दक्षिणे) दक्षिणमें [गताः] गये हुए (प्राणाः) प्राण (दक्षिणा, दिक्) दक्षिण दिशा हैं (प्रत्यञ्चः) पश्चिममें गये हुए (प्राणाः) प्राण (प्रतीची, दिक्) पश्चिम दिशा हैं (उदञ्चः) उत्तर दिशामें गये हुए (प्राणाः) प्राण (उदीची, दिक्) उत्तर दिशा हैं (ऊर्ध्वाः) ऊपरको गये हुए (प्राणाः) प्राण (ऊर्ध्वा, दिक्) ऊपरकी दिशा हैं (अवाञ्चः) नीचेको गये हुए (प्राणाः) प्राण (अवाची दिक्) नीचेकी दिशा हैं (सर्वे) सब दिशाओंमें गयेहुए (प्राणाः) प्राण (सर्वाः, दिशः) सब दिशा हैं (सः) वह (एषः) यह (नेति नेति) कार्य भी नहीं है कारण भी नहीं है ऐसा (आत्मा) आत्मा (अगृह्यः) अगृह्य है (हि) क्योंकि (न) नहीं (गृह्यते) ग्रहण किया जाता है (अशीर्यः) क्षीण होने योग्य नहीं है (हि) क्योंकि (न) नहीं (शीर्यते) क्षीण होता है (असङ्गः) असङ्ग है (हि) क्योंकि (न, सज्यते) किसीसे सम्बन्ध नहीं पाता है (असितः) बन्धनरहित है (न) नहीं (व्यथते) व्यथा पाता है (न) नहीं (रिष्यति) विनष्ट

होता है (जनक) हे जनक (वै) निश्चय (अभयम्) अभयको (प्राप्तः, असि) प्राप्त हुआ है (इति) ऐसा (ह) प्रसिद्ध (याज्ञवल्क्यः) याज्ञवल्क्य (उवाच) बोला (सः) वह (वैदेहः) विदेहराज (ह) प्रसिद्ध (जनकः) जनक (उवाच) बोला (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (त्वा) तुम्हें (अभयम्) अभय (गच्छतात्) प्राप्त हो (भगवन्) हे भगवन् (यः) जो (नः) हमें (अभयम्) निर्भय ब्रह्म (वेदयसे) विदित करते हो (ते) तुम्हारे अर्थ (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो (इमे) ये (विदेहाः) विदेह देश हैं (अयम्) यह (अहम्) मैं (अस्मि) हूं ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-विश्वमें तैजसको और तैजसमें प्राज्ञको प्राप्त हुए उस विद्वान्के पूर्व दिशामें गयेहुए प्राण पूर्व-दिशा हैं दक्षिणमें गये हुए प्राण दक्षिण दिशा है, पश्चिम में गयेहुए प्राण पश्चिम दिशा हैं, उत्तरमें गयेहुए प्राण उत्तर दिशा हैं, ऊपरको गये हुए प्राण ऊर्ध्व दिशा हैं और नीचेको गयेहुए प्राण अधोदिशा हैं, इस रीतिसे सब दिशाओंमें गयेहुए प्राण सर्वदिशारूप हैं। इसप्रकार विद्वान् अपने प्राज्ञ स्वरूपको सर्वत्र व्यापक देखता है, फिर उसका प्रत्यगात्मामें उपसंहार करता है । जो न कारण है न कार्य है ऐसा निषेधकी अवधिरूप आत्मा अगृह्य है, क्योंकि-उसको कोई ग्रहण नहीं कर सकता अक्षीण है, क्योंकि-वह क्षय नहीं पाता है, वह असङ्ग है इसलिये उसका किसीके साथ सम्बन्ध नहीं है । वह बन्धनरहित है, इसलिये न व्यथा पाता है और न विनष्ट ही होता है। हे जनक ! तुम निःसन्देह जन्म मरण आदि

के भयसे रहित अभयको प्राप्त हुए हो ! याज्ञवल्क्यकी इस बातको सुनकर विदेहराज जनकने कहा, कि-हे याज्ञवल्क्य ! तुम, भी अभयको प्राप्त होजाओ । हे भगवन् ! अभय ब्रह्मका उपदेश देनेके बदलेमें मैं आपको क्या देसकता हूं ? हे मुने ! आपको प्रणाम है, ये विदेह देश और मेरा शरीर आपके अर्पण है । स्पष्ट तात्पर्य यह है, कि-जाग्रत् और स्वप्नावस्थाके सिवाय जीवकी तीसरी सुषुप्तावस्था है, इस अवस्थामें जीव किसी विषय का दर्शन नहीं करता, यह जीवकी गाढ़ निद्रावस्था है, इस अवस्थामें जीवको बाहर या भीतरका कुछ बोध नहीं होता है और न किसी प्रकारकी वासना ही रहती है । अन्तःकरण ही बुद्धि मन आदिका नाश और उन की स्मृतियें विलीन होकर [illegible] छिपी रहती हैं, परन्तु यह भी आत्माका स्वाभाविक सुख स्वरूप नहीं है । इस अवस्थामें सब विज्ञान मात्र [illegible] प्राण-शक्तिमें बीजरूपसे रहता है, इसकारण ही जीव निद्राभङ्ग होने पर सब वासना और संस्कारोंको लेकर फिर उठता है, तब यह [illegible] होता है । इस अवस्थामें आत्मा प्राणके साथ एकात्मक होता है और प्राज्ञ नामसे पुकारा जाता है । इस अवस्थामें जीवका सम्पूर्ण विशेष-ज्ञान तिरोहित होजाता है, परन्तु पुरुष के शरीरमें क्रिया होती दीखती है, इससे प्रतीत होता है, कि-प्राणशक्तिका ध्वंस नहीं होता है । प्राणशक्तिके साथ आत्मा एक होकर रहता है और विज्ञानशक्ति भी इस प्राणमें ही विलीन होकर रहती है । विशेष देश, काल, वस्तुका परिच्छिन्न बोध तथा मैं मेरा आदि अभि-मानका आरोप नहीं रहता है । जाग्रत् अवस्था होने

पर फिर विषयका संयोग होनेसे ये कारणावस्थाको त्याग कर विशेष २ विज्ञान क्रियाओंके आकारसे उद्बुद्ध हो उठते हैं। इस ही बीजरूप वा शक्तिरूप उपाधिका सम्बन्ध रहनेके कारण, इस अवस्थामें भी आत्माका उपाधिशून्य मुख्य स्वरूप प्रकाशित नहीं होता है। आत्माका जो मुख्य स्वरूप है वह सब प्रकारकी उपाधिसे शून्य और पूर्वोक्त तीनों अवस्थाओंमें पृथक् है ब्रह्म यह नहीं है ब्रह्म यह नहीं है इसकारण स्वरूपका अनुभव उपजने पर ज्ञात होता है, कि-आत्मा किसी प्रकारकी उपाधिसे प्रकाशित वा ग्राह्य नहीं है। आत्माको कोई क्षीण वा विनष्ट नहीं कर सकता। आत्मा असङ्ग है, बन्धनमें नहीं है और सब क्लेशसे विमुक्त है। हे महाराज आपने इस आत्माके वास्तविक स्वरूपको समझ लिया है, अतः शरीरको त्यागने पर भी आप इसप्रकार ही निर्भय रहेंगे। राजा जनकने याज्ञवल्क्यजीके इस ज्ञानगम्भीर उपदेशको सुनकर अपनेको कृतार्थ माना और उनके चरणोंमें गिरकर सकल राज्य और अपना आपातक उन को अर्पण करनेलगा॥ ४॥

चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयं ब्राह्मणं समाप्तम्।

जनकॅंह वैदेहं याज्ञवल्क्यो जगाम समेनेन वदिष्य इत्यथ ह यज्जनकश्च वैदेहो याज्ञवल्क्य-श्चाग्निहोत्रे समूदाते तस्मै ह याज्ञवल्क्यो वरं ददौ तॅंह सम्राडेव पूर्वः पप्रच्छ॥ १॥

अन्वय और पदार्थ-(याज्ञवल्क्यः) याज्ञवल्क्य (वैदेहम्) विदेहराज (ह) प्रसिद्ध (जनकम्) जनकको (जगाम) प्राप्त हुआ (न) नहीं (वदिष्ये) सम्वाद करूँगा (इति)

ऐसा (सः) वह (मेने) विचारता हुआ (अथ) अनन्तर (वैदेहः) विदेहराज (ह) प्रसिद्ध (जनकः) जनक (च) और (याज्ञवल्क्यः, च) याज्ञवल्क्य भी (यत्) जिस (अग्निहोत्रे) अग्निहोत्रके विषयमें (समूदाते) संवाद करते हुए (याज्ञवल्क्यः) याज्ञवल्क्य (तस्मै, ह) तिस प्रसिद्धके अर्थ (वरं, ददौ) वर देतेहुए (सः, ह) वह प्रसिद्ध जनक (कामप्रश्नम्, एव) इच्छा प्रश्न रूप ही (वव्रे) मांगताहुआ (तं, ह) इस वरको ही (अस्मै) इनके अर्थ (ददौ) देते हुए (तम्) उनके प्रति (पूर्वः) पहला (सम्राट्, एव) राजा ही (पप्रच्छ) बूझता हुआ ॥ १ ॥

(भावार्थ) - पिछले ब्राह्मणमें जाग्रत् आदि अवस्थाओंके अवलम्बनसे जिस आत्माका वर्णन किया था उसका इस ज्योतिर्ब्राह्मणमें विस्तारसे वर्णन करेंगे—एक समय याज्ञवल्क्यजी विदेहराज जनकके पासमको जातेहुए उन्होंने मार्गमें विचार किया, कि-मैं अपने योगक्षेमके विषयमें राजासे कुछ नहीं कहूंगा, परन्तु विदेहराज जनकने याज्ञवल्क्यजीसे जो कुछ प्रश्न किये उन्होंने उन सब प्रश्नोंका यथार्थ उत्तर देदिया। इस समय उन दोनोंमें अग्निहोत्रके विषयमें विचार हुआ था । याज्ञवल्क्यजी बात ही बातोंमें राजाके अग्निहोत्रके विषयके ज्ञानको देखकर प्रसन्न होगये और उनको वर दिया । ऋषिने पहले कोई बात नहीं कही, तब तो राजाने ही पूछनाचाहा उनसे पहले प्रश्न किया ॥ १ ॥

याज्ञवल्क्य किंज्योतिरयं पुरुष इति । आदित्यज्योतिः सम्राडिति होवाचाऽऽदित्येनैवाऽयं ज्यो-

तिषाऽऽस्ते पल्ययते कर्म कुरुते विपल्येतीत्ये-
वमेवैतद्याज्ञवल्क्य ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (अयम्) यह (पुरुषः) पुरुष (किंज्योतिः) किस प्रकाशवाला है (इति) ऐसा बूझने पर (सम्राट्) हे राजन् (आदित्यज्योतिः) सूर्यरूप प्रकाशवाला है (इति) ऐसा (उवाच, ह) कहता हुआ (आदित्येन) सूर्यरूप (ज्योतिषा, एव) प्रकाश करके ही (अयम्) यह (आस्ते) बैठता है (पल्ययते) जाता है (कर्म) कर्म (कुरुते) करता है (विपल्येति) फिर लौटकर आता (इति) ऐसा कहने पर (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (एतत्) यह (एवमेव) ऐसा ही है ॥ २ ॥

(भावार्थ)-राजा जनकने याज्ञवल्क्यजीसे बूझा, कि हे भगवन् ! ये सब पुरुष किसकी सहायतासे काम करते हैं अर्थात् इस देह इन्द्रियादिमें किसका प्रकाश है ? कि—जिस प्रकाशका अनुग्रह पाकर यह शरीर बैठने उठने आदिका व्यवहार करता है और वह प्रकाश देह इन्द्रियादिसे बाहर है या अन्तर्गत है ? इस पर याज्ञवल्क्यजीने कहा, कि हे राजन् ! इन देह इन्द्रियादिको सूर्यका प्रकाश सहायता देता है । शरीर और इन्द्रियादिने जिन नेत्र पर अनुग्रह करनेवाले सूर्यरूप प्रकाशसे ही यह देह बैठता है, चलता है, खेती आदिका काम करता है और फिर लौट आता है । राजाने कहा हे मुने ! आपका कहना ठीक है ॥ २ ॥

अस्तमित आदित्ये याज्ञवल्क्य किंज्योतिरेवायं

पुरुष इति चन्द्रमा एवाऽस्य ज्योतिर्भवतीति चन्द्रमसैवायं ज्योतिषाऽस्ते पल्ययते कर्म कुरुते विपल्येतीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (आदित्ये) सूर्यके (अस्तमिते) अस्त होजाने पर (अयम्) यह (एव) प्रसिद्ध (पुरुषः) पुरुष (किंज्योतिः) किस प्रकाशवाला होता है (इति) ऐसा बूझने पर (चन्द्रमाः एव) चन्द्रमा ही (अस्य) इसका (ज्योतिः) प्रकाश (भवति) होता है (इति) ऐसा है (चन्द्रमसा, एव) चन्द्रमारूप ही (ज्योतिषा) प्रकाशके द्वारा (आस्ते) बैठता है (पल्ययते) जाता है (कर्म, कुरुते) काम करता है (विपल्येति) फिर लौट कर आता है।(इति) ऐसा कहने पर (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (एतत्) यह (एवमेव) ऐसा ही है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-परन्तु हे याज्ञवल्क्यजी ! सूर्यका प्रकाश तो सब समय नहीं रहता, जब सूर्य अस्त होजाता है तब जीवका शरीर किस ज्योतिकी सहायतासे काम करता है ? याज्ञवल्क्यजीने उत्तर दिया, कि-उस समय चन्द्रमा ही इसका प्रकाश होता है, चन्द्रमाके प्रकाशसे ही यह बैठता है, जाता है, खेती आदिका काम करता है और फिर लौट आता है । राजाने कहा, कि हे भगवन् ! आप ठीक कहते हैं ॥ ३ ॥

अस्तमित आदित्ये याज्ञवल्क्य चन्द्रमस्यस्तमिते किंज्योतिरेवाऽयं पुरुष इत्यग्निरेवास्य ज्योतिर्भवतीत्यग्निनैवाऽयं ज्योतिषाऽऽस्ते पल्ययते कर्म कुरुते विपल्येतीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (आदित्ये, अस्तमिते) सूर्यके अस्त होजाने पर (चन्द्रमसि अस्तमिते) चन्द्रमाके अस्त होजाने पर (अयं, वै पुरुषः) यह प्रसिद्ध पुरुष (किंज्योतिः) किस प्रकाश वाला होता है (इति) ऐसा बूझने पर (अग्निः,एव) अग्नि ही (अस्य) इसका (ज्योतिः) प्रकाश (भवति) होता है (इति) ऐसा है (अग्निना, ज्योतिषा, एव) अग्निरूप प्रकाशके द्वारा ही (अयम्) यह पुरुष (आस्ते) बैठता है (पल्ययते) जाता है (कर्म, कुरुते) काम करता है (विपल्येति) फिर लौटकर आता है (इति) उत्तर देने पर (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (एतत्) यह (एवमेव) ऐसा ही है ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-राजाने कहा, कि-हे याज्ञवल्क्यजी ! चन्द्रमा भी तो सब समय नहीं रहता है, जब सूर्य और चन्द्रमा दोनों अस्त हो जाते हैं, तब यह शरीर किस ज्योतिकी सहायतासे क्रिया करता है ? मुनिने उत्तर दिया कि इन दोनोंके अभावमें अग्निरूप प्रकाश सहायक होता है, उस समय अग्निके प्रकाशसे प्रकाशित होकर ही जीव बैठता है, जाता है, काम करता है और फिर लौट कर आता है । इस पर राजाने कहा, कि-मुनिजी ! आप ठीक कहते हैं ॥ ४ ॥

अस्तमित आदित्ये याज्ञवल्क्य चन्द्रमस्यस्तमिते शान्तेऽग्नौ किंज्योतिरेवाऽयं पुरुष इति वागेवास्य ज्योतिर्भवतीति वाचैवाऽयं ज्योतिषाऽऽस्ते पल्ययते कर्म कुरुते विपल्येतीति तस्माद्वै

सम्राडपि यत्र स्वः पाणिर्न विनिर्ज्ञायतेऽथ यत्र वागुच्चरत्युपैव तत्र न्येतीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य॥५॥

अन्वय और पदार्थ-(याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (आदित्ये, अस्तमिते) सूर्यके अस्त होजाने पर (चन्द्रमसि अस्तमिते) चन्द्रमाके अस्त होजाने पर (अग्नौ, शान्ते) अग्निके शान्त होजाने पर (अयं, पुरुषः) यह पुरुष (किंज्योतिः) किस प्रकाशवाला होता है (इति) ऐसा बूझने पर (वाक्, एव) वाणी ही (अस्य) इसका (ज्योतिः) प्रकाश (भवति) होता है (इति) यह उत्तर दिया (वाचा, एव) वाणीरूप ही (ज्योतिषा) प्रकाशके द्वारा (आस्ते) बैठता है (पल्ययते) जाता है (कर्म कुरुते) काम करता है (विपल्येति) लौट कर आता है (इति) ऐसा है (तस्मात्) तिस कारणसे (सम्राट्) हे राजन् ! (यत्र) जहां (स्वः) अपना (पाणिः, अपि) हाथ भी (न) नहीं (विनिर्ज्ञायते) स्पष्टरूपसे जाननेमें आता है (यत्र) जहां (वाक्, उच्चरति) शब्द होता है (तत्र) तहां (उप) समीपमें (न्येति, एव) जाता ही है (इति) ऐसा कहने पर (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (एतत्) यह (एवमेव) ऐसा ही है ॥ ५ ॥

(भावार्थ) राजाने कहा, कि-हे याज्ञवल्क्यजी ! परन्तु जब सूर्य भी अस्त होजाता, चन्द्रमा भी अस्त होजाता है और अग्नि भी शान्त होजाता है तब इस जीवके शरीर इन्द्रियादि किस प्रकाशकी सहायतासे क्रिया करते हैं ? याज्ञवल्क्यजीने उत्तर दिया कि-उस समय वाणीरूप प्रकाशकी सहा-

यतासे क्रिया होती है। शब्दरूप विषयसे श्रोत्रेन्द्रिय प्रदीप्त होने पर मनमें विवेक उत्पन्न होता है, विवेक उत्पन्न होने पर पुरुषकी, जिधरसे शब्द आता है उधर को जाने आदिकी प्रवृत्ति होती है, इस लिये उस समय यह शब्दरूप प्रकाशकी सहायतासे ही बैठता है, जाता है, कर्म करता है और लौट कर आता है। इस कारण ही हे राजन्! जब चौमासेकी अन्धेरी रातमें अपना हाथ भी स्पष्ट नहीं दीखता है, उस समय बाहरका कोई प्रकाश न होनेके कारण सब प्रवृत्तियें रुकजाने पर मार्गमें पड़ा हुआ मनुष्य, जिधर मनुष्यका, गधेका या कुत्तेका शब्द होता है उधर ही समीपमेंको जाता है और ग्राम तथा मार्गमें जा पहुँचता है। यह सुन कर राजाने कहा, कि—हाँ याज्ञवल्क्यजी! आप यह ठीक कहते हैं ॥ ५ ॥

अस्तमित आदित्ये याज्ञवल्क्य चन्द्रमस्यस्तमिते शान्तेऽग्नौ शान्तायां वाचि किंज्योतिरेवाऽयं पुरुष इत्यात्मैवास्य ज्योतिर्भवतीत्यात्मनैवाऽयं ज्योतिषाऽऽस्ते पल्ययते कर्म कुरुते विपल्येतीति॥६॥

अन्वय और पदार्थ-(याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (आदित्ये अस्तमिते) सूर्यके अस्त होने पर (चन्द्रे, अस्तमिते) चन्द्रमाके अस्त होने पर (अग्नौ, शान्ते) अग्निके शान्त होने पर (शान्तायां, वाचि) वाणीके शान्त होजाने पर (अयं, वै, पुरुषः) यह प्रसिद्ध पुरुष (किंज्योतिः) किस प्रकाशवाला होता है (इति) ऐसा बूझने पर (आत्मा, एव) आत्मा ही (अस्य) इसका (ज्योतिः) प्रकाश (भवति) होता है (इति) यह उत्तर दिया

(अयम्) यह (आत्मना, एव) आत्मरूप ही (ज्योतिषा) प्रकाशके द्वारा (आस्ते) बैठता है (पल्ययते) जाता है (कर्म, कुरुते) काम करता है (विपल्येति) लौटकर आता है (इति) ऐसा है ॥ ६ ॥

(भावार्थ) -हे याज्ञवल्क्य ! सूर्यके अस्त होजाने पर चन्द्रमाके अस्त होजाने पर अग्निके शान्त होजाने पर और वाणीके भी शान्त होजाने पर स्वप्नकी दशामें यह पुरुष किस प्रकाशकी सहायतासे क्रिया करता है ? इस पर मुनिने उत्तर दिया कि-उस समय आत्मा ही प्रकाश होता है उस समय आत्मरूप प्रकाशसे ही बैठता है, जाता है, कर्म करता है और फिर लौट आता है । स्पष्ट तात्पर्य यह है, राजाने कहा कि--जब जीव जागता रहता है तब ही विषयाभिमुखी इन्द्रियें विषयोंके संयोग मे प्रवुद्ध हो कर क्रियानिर्वाह करती हैं, उस समय सूर्य चन्द्रमा आदिका प्रकाश इन्द्रियवर्गका सहायक होता है, परन्तु जब निद्रित वा सुषुप्त होता है, उस समय देखते हैं, कि-बाहरी विषय और बाहरी प्रकाश न होने पर भी, देह इन्द्रियादिसे अतिरिक्त एक प्रकाश के द्वारा ही जीवके स्वप्न देखने और सुख शयनका निर्वाह होता है । स्वप्नकी दशामें जब बाहरके शब्दादि विषय नहीं रहते और न बाहरी इन्द्रियोंकी ही क्रिया रहती है तब भी जीव स्वप्नमें भाई बन्धुओंके साथ मिलना बिछुड़ना, एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाना, खाना, पीना, हँसना, रोना और खेलना, कूदना आदि क्रियाओं को करता ही है तथा गहरी नींदमे उठ कर भी तो जीव अनुभव करता है, कि—मैं बड़े ही सुखकी नींदमें

होगा, अतः बताइये कि- यह सब कार्य किस प्रकाशकी सहायतासे होता है ? । मुनिने कहा, कि- सूर्य चन्द्रादि तथा देह, इन्द्रियें और विषयोंसे सर्वथा स्वतन्त्र और एक ज्योति है, जिसके प्रताप वा प्रकाशसे सब जीव जाग्रत् स्वप्न आदि सब अवस्थाओंमें अपनी क्रियाओंका निर्वाह करते हैं, इस पूर्ण ज्योतिका नाम है आत्म-ज्योति-आत्मालोक वा चैतन्यप्रकाश । यह आत्मज्योति शरीर इन्द्रियादिसे सर्वथा अलग है ! इसके ही बलसे सूर्य चन्द्रमा आदि और देह इन्द्रियादि अपनी २ क्रिया करनेमें समर्थ होते हैं । यह सबसे अलग रह कर सब का अवभासक वा प्रकाशक है ॥ ६ ॥

कतम आत्मेति योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः स समानः सन्नुभौ लोका-वनुसञ्चरति ध्यायतीव लेलायतीव स हि स्वप्नो भूत्वेमं लोकमतिक्रामति मृत्यो रूपाणि ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आत्मा) आत्मा (कतमः) कौनसा है ? (इति) ऐसा बूझने पर (यः अयम्) जो यह (विज्ञानमयः) विज्ञानमय (प्राणेषु) प्राणोंके समीप (हृद्यन्तः) बुद्धिके भीतर (ज्योतिःपुरुषः) चिन्मात्र पुरुष है (सः) वह (समानः, सन्) समान हो कर (उभौ, लोकौ, सञ्चरति) दोनों लोकोंमें विचरता है (ध्यायति, इव) ध्यान करता हुआसा होता है, (लेलायति, इव) चलता हुआसा होता है (हि) क्यों कि (सः) वह (स्वप्नः, भूत्वा) स्वप्न हो कर (इमम्) इस (लोकम्) लोकको (मृत्योः) मृत्युके (रूपाणि) रूपोंको (अतिक्रामति) लांघता है ॥ ७ ॥

(भावार्थ)-राजाने कहा, कि-बुद्धि आदि बहुतसे पदार्थोंमें आत्मा कौनसा है ? याज्ञवल्क्य मुनिने उत्तर दिया, कि-जो यह बुद्धिरूप उपाधिमें बुद्धिकी समान प्रतीत होनेवाला विज्ञानमय, पांच कर्मेन्द्रियाँ पाँच ज्ञानेन्द्रियां और पांच प्राणोंके समीपमें स्थित बुद्धिके भीतर वर्त्तमान चिन्मय पुरुष है यही आत्मा है । यह आत्मा समीपी होनेके कारण बुद्धिको समान प्रतीत होकर यह लोक और परलोक दोनों लोकोंमें मिले हुए देहोंको क्रम से त्यागता हुआ तथा अन्य देहको धारण करता हुआ विचरता है । उपाधिके कारण आत्मामें ऐसी प्रतीति होती है वास्तवमें वह नहीं विचरता है । देखो ध्यान रूप व्यापारवाली बुद्धिमें स्थित हो कर उसको प्रकाशित करता हुआ आत्मा भी ऐसा प्रतीत होता है मानो ध्यान करता है, परन्तु वास्तवमें वह ध्यान नहीं करता है तथा बुद्धि आदि करण चलायमान होता हुआसा प्रतीत होता है, परन्तु वास्तवमें चलायमान नहीं होता है, क्योंकि-आत्मा स्वप्नके आकारमें परिणामको प्राप्त हुई बुद्धिवृत्तिका प्रकाशक होनेके कारण उसके ही आकारवाला हो कर इस शरीरके अभिमानको छोड़ देता है तथा अज्ञानरूप मृत्युका किया और कार्यकारण रूपोंके अभिमानको भी त्याग देता है, इसलिये विचरना आदि आत्माका धर्म नहीं है ॥ ७ ॥

स वा अयं पुरुषो जायमानः शरीरमभिसंपद्य-मानः पाप्मभिः सꣳसृज्यते स उत्क्रामन् म्रिय-माणः पाप्मनो विजहाति ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वै) प्रसिद्ध (सः) वह (अयं, पुरुषः)

यह पुरुष (जायमानः) उत्पन्न होता हुआ (अभिसम्पद्य-मानः) शरीरमें आत्मभाव को प्राप्त होता हुआ (पाप्मभिः, संसृज्यते) पापोंके साथ संयुक्त होजाता है (सः) वह (म्रियमाणः) मरता हुआ (उत्क्रामन्) उत्क्रमण करता हुआ (पाप्मानः) पापोंको (विजहाति) त्यागता है ॥ ८ ॥

(भावार्थ)-यह पुरुष उत्पन्न होता हुआ अर्थात् शरीरमें आत्मभावका अभिनिवेश करता हुआ पापोंके साथ-धर्म अधर्मके आश्रय कार्य करणोंके साथ जुटजाता है और फिर शरीरादिका आरम्भ करनेवाले कर्मोंका भोगोंसे क्षय होजाने पर मरनेको पड़ा हुआ अर्थात् अन्य शरीरमें जानेके लिये उत्क्रमण करता हुआ संयोग पायेहुए उन कार्यकरणरूप पापोंको (अभिमानके त्याग-मात्रसे) त्याग देता है ॥ ८ ॥

तस्य वा एतस्य पुरुषस्य द्वे एव स्थाने भवत इदं च परलोकस्थानञ्च सन्ध्यं तृतीयꣳस्वप्नस्थानं तस्मिन् सन्ध्ये स्थाने तिष्ठन्नेते उभे पश्यतीदञ्च परलोकस्थानञ्च। अथ यथाक्रमोऽयं परलोकस्थाने भवति। तमाक्रममाक्रम्योभयान्पाप्मन आनन्दाꣳश्च पश्यति। स यत्र प्रस्वपित्यस्य लोकस्य सर्वावतो मात्रामपादाय स्वयं विहत्य स्वयं निर्माय स्वेन भासा स्वेन ज्योतिषा प्रस्वपित्यत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वै) प्रसिद्ध (तस्य) तिस (एतस्य, पुरुषस्य) इस पुरुषके (द्वे, एव) दो ही (स्थाने) स्थान

(भवतः) हैं (इदम्) यह (च) और (परलोकस्थानम्) परलोकरूप स्थान है (च) और (सन्ध्यम्) सन्धिमेंका (तृतीयम्) तीसरा (स्वप्नस्थानम्) स्वप्नस्थान है (तस्मिन् सन्ध्ये) सन्धिमेंके (स्थाने) स्थानमें (तिष्ठन्) स्थित होताहुआ (इदम्) यह (च) और (परलोकस्थानं, च) परलोकरूप स्थान भी (एते) इन (उभे) दोनों (स्थाने) स्थानोंको (पश्यति) देखता है (अथ) अनन्तर (अयम्) यह (परलोकस्थाने) अगले जन्मरूप स्थानमें (यथाक्रमः) जैसे आधारवाला (भवति) होता है (तम्) उस (आक्रमम्) आधारको (आक्रम्य) आश्रय करके (पाप्मनः) पापोंको (च) और (आनन्दान्) सुखोंको (उभयान्) दोनोंको (पश्यति) देखता है (सः) वह (यत्र) जब (प्रस्वपिति) अच्छे प्रकारसे स्वप्नका अनुभव करता है (अस्य) इस (सर्वावतः) भूतभौतिक मात्रावाले (लोकस्य) देहके (मात्राम्) अवयवको (अपादाय) ग्रहण करके (स्वयम्) आप (विहत्य) ज्ञानरहित करके (स्वयम्) आप ही (निर्माय) रच कर (स्वेन, भासा) अपने प्रकाशसे (स्वेन, ज्योतिषा) आत्मज्योतिसे (प्रस्वपिति) शयन करता है (अत्र) यहां (अयं, पुरुषः) यह आत्मा (स्वयंज्योतिः) स्वयं प्रकाशरूप (भवति) होता है ॥ ९ ॥

(भावार्थ)–इस पुरुषके दो स्थान हैं-एक वर्त्तमान जन्म और दूसरा परलोकरूप (आगेको होनेवाला जन्म रूप) स्थान है । उन दोनोंकी सन्धि (मिलन) में एक तीसरा स्वप्नस्थान है । उस सन्धिमेंके स्वप्नस्थानमें स्थित होकर यह इस जन्मरूप और भावी जन्मरूप दोनों स्थानोंको देखता है । आगे होनेवाले जन्मरूप स्थानमें चिन्तन, कर्म और

पूर्वप्रज्ञा ये आधार होते हैं। इन बीजभूत आधारोंका आश्रय लेकर पापोंके फलरूप दुःख और पुण्योंके फलरूप सुख इन दोनोंको धर्म और देवकी कृपासे पिछली अवस्थामें स्वप्नमें देखता है। यह आत्मा अच्छे प्रकारसे स्वप्नका अनुभव करता है तब यह देखेहुए तथा संसर्गके कारणभूत आध्यात्मिक आदि विभागोंके साथ भूत-भौतिक मात्रावाले देहके वासना रूप अवयवको लेकर स्वयं जाग्रत् शरीरको ज्ञानरहित करके और स्वयं ही अपने कर्मके अनुसार प्रातिभासिक स्वप्न शरीरको रच कर, अपने अन्तःकरणकी वृत्तिके प्रकाशमें आत्माके प्रकाशसे रचीहुई वस्तुओंको विषय करता हुआ शयन करता है। इस स्वप्नावस्थामें यह आत्मा सूर्य आदिके न होनेके कारण और इन्द्रियोंके संकुचित होजाने के कारण तथा मनके विषयाकार होजानेके कारण स्वयं ही सबके संसर्गसे रहित प्रकाशस्वरूप होता है ॥ ९ ॥

न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्त्यथ रथान् रथयोगान् पथः सृजते न तत्रानन्दा मुदः प्रमुदो भवन्त्यथानन्दान्मुदः प्रमुदः सृजते न तत्र वेशान्ताः पुष्करिण्यः स्रवन्त्यो भवन्त्यथ वेशान्तान् पुष्करिणीः स्रवन्तीः सृजते स हि कर्त्ता १०

अन्वय और पदार्थ-(तत्र) तहाँ (रथाः) रथ (न) नहीं हैं (रथयोगाः) रथमें जुड़नेवाले घोड़े आदि (न) नहीं हैं (पन्थानः) मार्ग (न) नहीं (भवन्ति) होते हैं (अथ) तब भी (रथान्) रथोंको (रथयोगान्) रथ के वाहनोंको (पथः) मार्गोंको (सृजते) रचलेता है

(तत्र) तहां (आनन्दाः) सुख (मुदः) हर्ष (प्रमुदः) अति हर्ष (न) नहीं (भवन्ति) होते हैं (अथ) तब भी (आनन्दान्) सुखोंको (मुदः) हर्षोंको (प्रमुदः) अतिहर्षोंको (सृजते) रचलेता है (तत्र) तहाँ (वेशान्ताः) छोटे २ सरोवर (पुष्करिण्यः) बावड़ियें (स्रवन्त्यः) नदियें (न, भवन्ति) नहीं होतीं हैं (अथ) तो भी (वेशान्तान्) सरोवरोंको (पुष्करिणीः) बावड़ियोंको (स्रवन्तीः) नदियोंको (सृजते) रचलेता है (हि) क्योंकि (सः) यह (कर्त्ता) कर्त्ता है ॥ १० ॥

(भावार्थ)-उस स्वप्नमें रथ, घोड़े तथा मार्ग नहीं होते हैं, परन्तु तो भी वासनारूप रथ घोड़े और मार्गोंको रचलेता है। तहाँ सुख नहा होते, पुत्र आदिके संबन्धसे होनेवाले हर्ष नहीं होते हैं तथा इनके संबन्धसे होने वाले अतिहर्ष भी नहीं होते हैं तो भी वासनारूप आनन्द, हर्ष तथा अतिहर्षोंको रचलेता है। उस स्वप्नावस्थामें सरोवर, बावड़ी और नदियें नहीं होतीं तो भी वासनारूप सरोवर, बावड़ियें और नदियोंको रचलेता है, क्योंकि-आरोपित जीवात्मा वासना आदिके साक्षीपनेसे कर्त्ता है ॥ १० ॥

तदेते श्लोका भवन्ति। स्वप्नेन शारीरमभिप्रहत्यासुप्तः सुप्तानभिचाकशीति शुक्रमादाय पुनरैति स्थानꣳ हिरण्मयः पुरुष एकहꣳसः॥ ११॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) उसमें (एते) ये (श्लोकाः) मन्त्र हैं [आत्मा] आत्मा (स्वप्नेन) स्वप्नके द्वारा (शरीरम्) शरीरको (अभिप्रहत्य) चेष्टाशून्य करके (असुप्तः) न सोता हुआ (सुप्तान्) सोयेहुओंको

(अभिचाकशीति) प्रकाशित करता है (हिरण्मयः) चैतन्यप्रकाशरूप (एकहंसः) एक ही जानेवाला (पुरुषः) पुरुष (शुक्रम्) शुक्रको (आदाय) लेकर (पुनः) फिर (आ-एति) आजाता है ॥ ११ ॥

(भावार्थ) उसके विषयमें ये मन्त्र हैं आत्मा स्वप्न के द्वारा शरीरको चेष्टारहित करके, स्वयं अलुप्तप्रकाश-स्वरूप होनेके कारण न सोता हुआ सोते हुओंको अर्थात् अन्तःकरणकी वृत्तिके आश्रित सकल पदार्थोंको आत्मदृष्टिसे प्रकाशित करता है। स्वप्नके भोगका क्षय होजाने पर वह चैतन्यप्रकाशरूप और एक ही जाग्रत् आदिमें तथा इह लोक परलोक आदिमें जाने वाला पुरुष इन्द्रियादिके शुद्ध तेजोमय मात्रारूपको लेकर फिर कर्मवश जागरित स्थानमें आजाता है ॥ ११ ॥

प्राणेन रक्षन्नवरं कुलायं बहिष्कुलायादमृत-श्चरित्वा। स ईयतेऽमृतो यत्र कामꣳ हिरण्मयः पुरुष एकहꣳसः ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (हिरण्मयः) चैतन्य ज्योतिःस्वरूप (एकहंसः) एक ही जानेवाला (पुरुषः) पुरुष (प्राणेन) प्राणके द्वारा (अवरम्) निकृष्ट (कुलायम्) शरीरको (रक्षन) रक्षा करता हुआ (अमृतः) असङ्ग (कुलायात) शरीरसे (बहिः) बाहर (चरित्वा) विचर कर (यत्र) जहाँ (अमृतः) अमरण धर्मवाला होता हुआ (कामम्) इच्छाको (ईयते) प्राप्त होता है १२

(भावार्थ)-वह चैतन्य ज्योतिःस्वरूप और जाग्रत् आदिमें अकेला ही जानेवाला पुरुष, स्वप्नावस्थामें पांच वृत्तियाले प्राणके द्वारा अपवित्र भावके कारण इस

निकम्मे शरीरकी रक्षाकरता हुआ स्वयं असङ्ग भावसे शरीरके बाहर भ्रमण करके अर्थात् बुद्धिके संयोगके कारण बाहर भ्रमणसा करके जिन विषयोंमें उत्कृष्टवृत्ति-रूप इच्छावाला होता है, उस इच्छाको मरणधर्मरहित होताहुआ पाता है ॥ १२ ॥

स्वप्नान्त उच्चावचमीयमानो रूपाणि देवः कुरुते बहूनि । उतेव स्त्रीभिः सह मोदमानो जक्षदुतेवापि भयानि पश्यन् ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(स्वप्नान्ते) [illegible] (उच्चावचम्) [illegible] (ईयमानः) [illegible] होता हुआ (देवः) आत्मदेव ([illegible]) [illegible] (बहूनि) बहुतसे (रूपाणि) [illegible] (उत) [illegible] (स्त्रीभिः, सह) स्त्रियोंके साथ (मोदमानः, इव) मौज करता हुआसा (उत) और (जक्षत्, इव) हँसता हुआसा (अपि) और (भयानि, [illegible] (पश्यन्) देखता [इव] सा [भवति] होता है ॥ १३ ॥

(भावार्थ)—स्वप्नस्थानमें देवता आदि उच्चभावको और पशु पक्षी आदि नीचभावको प्राप्त होता हुआ वह आत्मदेव, वासनामय बहुतसे शरीरोंको रचलेता है और ऐसा होजाता है, कि—मानो स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा कर रहा है अथवा मानो मित्रोंके साथ हँस रहा है या मानो सिंह व्याघ्र आदिके भयको देख रहा है ॥ १३ ॥

आराममस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चनेति । तं नाऽऽयतं बोधयेदित्याहुः । दुर्भिषज्यꣳहास्मै भवति यमेष न प्रतिपद्यते । अथो खल्वाहुर्जा-

गरितदेश एवास्यैष इति यानि ह्येव जाग्रत्पश्यति तानि सुप्त इत्यत्राऽयं पुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति सोऽहं भगवते सहस्रं ददाम्यत ऊर्ध्वं विमोक्षाय ब्रूहीति ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अस्य) इसके (आरामम्) क्रीड़ाके साधनको (पश्यन्ति) देखते हैं (कश्चन) कोई (तम्) उसको (न) नहीं (पश्यति) देखता है (इति) ऐसा है (तम्) उसको (आयतम्) सहसा (न) नहीं (बोधयेत्) जगावे (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं (यम्) जिसको (एषः) यह (न) नहीं (प्रतिपद्यते) प्राप्त होता है (अस्मै) इसके लिये (ह) स्पष्ट (दुर्भिषज्यम्) कठिनतासे चिकित्सा करने योग्य (भवति) होता है (अथो) और (आहुः) कहते हैं (खलु) निश्चय (एषः) यह (जागरितदेशः, एव) जाग्रत्‌का स्थान ही (अस्य) इसका [अस्ति] है (हि) क्योंकि (जाग्रत्, एव) जागता हुआ ही (इति) इस प्रकार (यानि) जिनको (पश्यति) देखता है (तानि-एव) उनको ही (सुप्तः) सोया हुआ (इति) ऐसा कहते हैं (अत्र) इस अवस्थामें (अयम्) यह (पुरुषः) पुरुष (स्वयंज्योतिः) स्वयंप्रकाश (भवति) होता है (सः) वह (अहम्) मैं (भगवते) आपके लिये (सहस्रम्) हजार गौएं (ददामि) देता हूं (अतः, ऊर्ध्वम्) इसके अनन्तर (*विमोक्षाय*) सम्यक्प्रकार ज्ञान होनेके लिये (ब्रूहि) उपदेश दीजिये (इति) यह कहा ॥ १४ ॥

(भावार्थ)-मनुष्य, इस आत्मदेवके स्वप्नमें वासना से रचे हुए स्त्री पुत्रादि क्रीड़ाके साधनोंको देखते हैं,

परन्तु उस आत्मदेवको कोई भी नहीं देखता। वैद्य लोग कहते हैं, कि-सोये हुए मनुष्यको सहसा न जगावे सहसा जगानेसे कभी २ यह आत्मा इन्द्रियदेशको नहीं पाता है और कभी २ उलटे ही प्रकारसे पाता है इस दशामें यह शरीर अन्धा आदि होजाता है और फिर उस रोगका दूर होना कठिन होजाता है। इससे सिद्ध होता है, कि-स्वप्नकी अवस्थामें आत्मा स्थूल शरीरके सम्बन्धसे जुदा होजाता है। दूसरे कहते हैं, कि-जाग्रत्में जिन पदार्थोंको देखता है, उनको ही सोता हुआ भी देखता है। इसप्रकार स्वप्नावस्थाके न होनेसे आत्माको स्वयंज्योतिपना सिद्ध नहीं होता, [illegible] [illegible] नहीं माना जा सकता, [illegible] [illegible] जुदा है, यह बात पहले कहा जा चुका है। इस स्वप्नावस्थामें यह पुरुष स्वयंप्रकाश होता है। यह सुन कर राजा जनकने कहा, कि-आपने मुझे आत्माके स्वयंप्रकाशपनेका उपदेश दिया, मैं आपको सहस्र गौएं देता हूं, अब आगे सम्यक् ज्ञानरूप [illegible] सिद्धि और जो कुछ उपदेश देना आवश्यक हो वह कीजिये, कि-जिसके द्वारा मैं आपकी कृपासे संसारसे मुक्त होजाऊं ॥ १४ ॥

स वा एष एतस्मिन् संप्रसादे रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यञ्च पापञ्च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्या- द्रवति स्वप्नायैव स यत्तत्र किञ्चित्पश्यत्यनन्वा- गतस्तेन भवत्यसंगो ह्ययं पुरुष इत्येवमेवैतद्याज्ञ- वल्क्य सोऽहं भगवते सहस्रं ददाम्यत ऊर्ध्वं विमोक्षायैव ब्रूहीति ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वै) प्रसिद्ध (सः) वह (एषः) यह (एतस्मिन्) इस (सम्प्रसादे) सुषुप्तिमें (रत्वा) क्रीड़ा करके (चरित्वा) विचर कर (पुण्यं) सुखको (च) और (पापं, च) दुःखको भी (दृष्ट्वा, एव) अनुभव करके ही (पुनः) फिर (स्वप्नाय, एव) स्वप्नके लिये ही (प्रतिन्यायं) विपरीत गमनपूर्वक (प्रतियोनि) कारण के प्रति (आद्रवति) आता है (सः) वह (तत्र) तहाँ (यत् किञ्चित्) जो कुछ (पश्यति) देखता है (तेन) उसके द्वारा (अनन्वागतः) बन्धन रहित (भवति) होता है (हि) क्योंकि (अयम्) यह (पुरुषः) पुरुष (असङ्गः) असङ्ग है (इति) ऐसा कहने पर (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (एतत्) यह (एवमेव) ऐसा ही है (सः) सो (अहम्) मैं (भगवते) आपके लिये (सहस्रम्) सहस्र (ददामि) देता हूँ (अतः, ऊर्ध्वम्) इससे आगे (विमोक्षाय, एव) मोक्षरूप ज्ञानके लिये ही (ब्रूहि) कहिये (इति) यह कहा ॥ १५ ॥

(भावार्थ) [illegible] स्वप्नप्रकाश आत्मा [illegible] होकर कर्मनाशक सुषुप्ति [illegible], [illegible] करके, [illegible] और पुण्यके फल सुखका तथा पाप के फल दुःखका अनुभव करके फिर सुषुप्तिमें [illegible] प्रकारसे [illegible] होजाता है। सुषुप्तिके अनन्तर फिर स्वप्नके लिये ही उलटी गतिसे कारण स्वप्नस्थानमेंको लौट आता है। वह आत्मा स्वप्नस्थानमें जो कुछ पुण्य और पापके फलका अनुभव करता है, उससे बन्धनमें नहीं पड़ता है, क्योंकि-यह आत्मपुरुष असङ्ग है, ऐसा कहने पर राजाने कहा, कि- हे याज्ञवल्क्यजी ! आप जो

कहते हैं, कि—स्वप्न आदिमें आत्मा कर्मसे बंधता नहीं है, यह आपका कहना सत्य है । मैं आपको सहस्र गौएँ देता हूं, अब आप मुझे विमुक्तिके लिये जो उपयोगी हो वही उपदेश दीजिये ॥ १५ ॥

स वा एष एतस्मिन् स्वप्ने रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यञ्च पापञ्च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्रवति बुद्धान्तायैव स यत्तत्र किञ्चित्पश्यत्यनन्वागतस्तेन भवत्यसङ्गो ह्ययं पुरुष इत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य सोऽहं भगवते सहस्रं ददाम्यत ऊर्ध्वं विमोक्षायैव ब्रूहीति ॥ १६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वै) प्रसिद्ध (सः) वह (एषः) यह (एतस्मिन्) इस (स्वप्ने) स्वप्नमें (रत्वा क्रीड़ा करके [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ([illegible]) यह
(तत्र) तहां (यत् किञ्चित्) जो कुछ (पश्यति) देखता है (तेन) उसके द्वारा ([illegible]) [illegible] (भवति) होता है (हि) क्योंकि (अयम्) यह (पुरुषः) पुरुष (असङ्गः) असङ्ग है (इति) ऐसा कहने पर (याज्ञवल्क्य) हे याज्ञवल्क्य (एतत्) यह (एवमेव) ऐसा ही है (सः) वह (अहम्) मैं (भगवते) आपके लिये (सहस्रम्) सहस्र (ददामि) देता हूं (अतः, ऊर्ध्वम्)

अब आगे (विमोक्षाय, एव) विमुक्तिके लिये ही (ब्रूहि) कहिये (इति) यह कहा ॥ १६ ॥

(भावार्थ)-यह प्रसिद्ध आत्मा स्वप्नमें क्रीड़ा करके जहां तहाँ भ्रमण करके और सुख दुःखका अनुभव करके फिर जागरणके लिये ही उलटी गतिसे जाग्रत्स्थान-रूप कारणमेंको आता है। यह आत्मा स्वप्नकालमें जो कुछ पुण्य पापके फलका अनुभव करता है, उससे बन्धन में नहीं पड़ता, क्योंकि-यह आत्मपुरुष असंग है, ऐसा कहने पर राजाने कहा, कि-हे याज्ञवल्क्यजी ! आपने जो कुछ उपदेश दिया, यह ठीक है, मैं आपको सहस्र गौएँ देता हूं, अब आगेको आप विमुक्तिके लिये जो कुछ उपयोगी हो वही उपदेश दीजिये ॥ १६ ॥

स वा एष एतस्मिन् बुद्धान्ते रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यं च पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रति-योन्याद्रवति स्वप्नान्तायैव ॥ १७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(वै) प्रसिद्ध (सः) वह (एषः) यह (एतस्मिन्) इस (बुद्धान्ते) जागरणमें (रत्वा) क्रीड़ा करके (चरित्वा) भ्रमण करके (पुण्यम्) सुखको (च) और (पापं, च) दुःखको भी (दृष्ट्वा एव) अनुभव करके ही (पुनः) फिर (स्वप्नान्ताय, एव) सुषुप्तिके लिये ही (प्रतिन्यायम्) विपरीतगतिपूर्वक (प्रतियोनि) कारणके प्रति (आद्रवति) आता है ॥१७॥

(भावार्थ)-यह स्वप्नमेंसे लौटकर आया हुआ आत्मा इस जाग्रत् अवस्थामें क्रीड़ा करके भ्रमण करके और सुख दुःखका अनुभव करके फिर सुषुप्तिके लिये

ही विपरीत गतिसे कारणरूप स्वप्नस्थानकी ओरको आता है ॥ १७ ॥

तद्यथा महामत्स्य उभे कूले अनुसञ्चरति पूर्वञ्चा-परञ्चैवमेवायं पुरुष एतावुभावन्तावनुसञ्चरति स्वप्नान्तं च बुद्धान्तं च ॥ १८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) तिसमें (यथा) जैसे (महामत्स्यः) बड़ामत्स्य (पूर्वम्) पूर्वको (च) और (अपरञ्च) अपरको भी (उभे, कूले) दोनों किनारोंके प्रति (अनुसञ्चरति) क्रमसे विचरता है (एवमेव) इसप्रकार ही (अयम्) यह (पुरुषः) पुरुष (स्वप्नान्तम्) स्वप्नस्थानके प्रति (च) और (बुद्धान्तं, च) जाग्रत्स्थानके प्रति भी (उभौ) दोनों (अन्तौ) स्थानोंके प्रति (अनुसञ्चरति) क्रमसे विचरता है ॥ १८ ॥

(भावार्थ)-इस विषयमें यह दृष्टान्त है, कि-जैसे बड़ाभारी मच्छ नदीके उरले और परले दोनों किनारों की ओरको क्रमसे जाता है परन्तु उन किनारोंसे भी जुदा रहता है और नदीके प्रवाहके भी वशमें नहीं होता है, इसप्रकार ही यह आत्मपुरुष स्वप्नस्थान और जाग्रत्स्थान दोनों ही स्थानोंकी ओरको क्रमसे जाकर विचर आता है परन्तु इन स्वप्न और जाग्रत् दोनोंसे ही जुदा रहता है, इनके धर्म इसको स्पर्श भी नहीं करसकते १८

तद्यथास्मिन्नाकाशे श्येनो वा सुपर्णो वा विपरिपत्य श्रान्तः सꣳहत्य पक्षौ संलयायैव ध्रियत एवमेवाऽयं पुरुष एतस्मा अन्ताय धावति यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति ॥ १९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) उसमें (यथा) जैसे (अस्मिन्) इस (आकाशे) आकाशमें (श्येनः) बाज (वा) या (सुपर्णः) सुपर्ण पक्षी (विपरिपत्य) भाँति २ से उड़कर (श्रान्तः) थका हुआ (पक्षौ) परोंको (संहृत्य) सम्यक् प्रकारसे फैला कर (संलयाय, एव) घोंसलेके लिये ही (ध्रियते) धारण करता है (एवमेव) इसप्रकार ही (अयम्) यह (पुरुषः) पुरुष (एतस्मै) इस (अन्ताय) स्थानके लिये (धावति) दौड़ता है (यत्र) जहाँ (सुप्तः) सोया हुआ ([illegible]) [illegible] अभिलाषा [illegible] (न) [illegible] करता है (कंचन) किसी [illegible] (पश्यति) देखता है ॥ १९ ॥

(भावार्थ) [illegible] है, जैसे आकाश में बड़े शरीर और मन्द वेगवाला बाज पक्षी अथवा छोटे शरीर और अधिक वेगवाला सुपर्ण पक्षी चारों ओर भाँति २ से उड़कर थकजाने पर अच्छे प्रकारसे पंख फैलाकर अपने घोंसलेमें पहुँचनेके लिये ही आप अपने आपको धारण करता है, इसीप्रकार यह पुरुष जाग्रत् और स्वप्नके भ्रमणसे थकजाने पर जिसमें जाग्रत् और स्वप्नका अन्त होजाता है उस अज्ञात ब्रह्मरूप अपने मूलस्थानकी ओरको दौड़ा हुआ जाता है इस अज्ञात ब्रह्मरूप मूल स्थानमें शयन करता हुआ किसी भी विषय की इच्छा नहीं करता है और किसी भी स्वप्नको नहीं देखता है ॥ १९ ॥

ता वा अस्यैता हिता नाम नाड्यो यथा केशः सहस्रधा भिन्नस्तावताऽणिम्ना तिष्ठन्ति

शुक्लस्य नीलस्य पिङ्गलस्य हरितस्य लोहितस्य पूर्णा अथ यत्रैनं घ्नन्तीव जिनन्तीव हस्तीव विच्छाययति गर्त्तमिव पतति यदेव जाग्रद्भयं पश्यति तदत्राऽविद्यया मन्यतेऽथ यत्र देव इव राजेवाहमेवेदꣳ सर्वोऽस्मीति मन्यते सोऽस्य परमो लोकः ॥ २० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अस्य) इसकी (वै) प्रसिद्ध (ताः) वे (एताः) ये (हिताः, नाम) हित नामवाली (नाड्यः) नाड़ियें (यथा) जैसे (केशः) बाल (सहस्रधा) सहस्र स्थानमें (भिन्नः) चीरा हुआ [भवेत्] होय (तावता) उतने (अणिम्ना) सूक्ष्मरूपमें (तिष्ठन्ति) स्थित होती हैं (शुक्लस्य) श्वेत (नीलस्य) नीले (पिङ्गलस्य) पीले (हरितस्य) हरे (लोहितस्य) लाल [रसस्य] रसकी (पूर्णाः) भरीहुई [भवन्ति] होती हैं (अथ) और (यत्र) जब (एनम्) इसको (घ्नन्ति, इव) मानों मार रहे हैं (जिनन्ति, इव) मानों वशमें कर रहे हैं (हस्ती इव) हाथीकी समान (विच्छाययति) दौड़ाता है (गर्त्तं, पतति, इव) मानो गढ़े में गिरता है (जाग्रत्) जागनेमें (यत्) जिस (एव) प्रसिद्ध (भयम्) भय को (पश्यति) देखता है (तत्) उसको (अत्र) इस में (अविद्यया) अविद्या करके (मन्यते) मानलेता है (अथ) और (यत्र) जब (देव इव) देवताकी समान (राजा इव) राजाकी समान (इदम्) यह (अहं, एव) मैं ही हूँ (सर्वः) पूर्ण (अस्मि) हूँ (इति) ऐसा (मन्यते) मानलेता है (सः) वह (अस्य) इसका (परमः) पूर्ण (लोकः) लोक है ॥ २० ॥

(भावार्थ)-दो शरीर, दो अवस्थायें और उनके धर्मोंके साथ आत्माका स्वाभाविक संबन्ध नहीं है, क्योंकि—वह स्वप्न जागने कारण अविद्यामें लीन होजाते हैं यह ऊपर दिखाया और तब अविद्याका संबन्ध भी आत्माके साथ स्वाभाविक नहीं है, यह बात दिखानेके लिये श्रुति कहती है, कि-इन शरीरोंकी हिता नामकी नाड़ियें इतने सूक्ष्म रूपमें स्थित हैं, कि-जितना सूक्ष्म एक हजार भागमें चीराहुआ बाल होता है। ये नाड़ियें सफेद, नीले, पीले, हरे और लाल रसमें भरी हुई हैं। इन नाड़ियोंमें अविद्याका कार्यरूप सूक्ष्म शरीर स्थित है। स्वप्न देखनेमें इसको मानो डाकू आदि मार रहे हैं, मानो कोई राजा पकड़कर अपने वशमें कर रहा है, मानो कोई हाथीको दौड़ता हुआ ऊपरको आ रहा है, और मानो गढ़ेमें गिराजाता हूं, ऐसा प्रतीत होता है, परन्तु यह मिथ्या होता है, वास्तवमें नहीं होता है जागनेमें जिन भयके हेतुओंको देखता है, उनको ही स्वप्नमें अपनेमें प्रकट हुई वासनारूप अविद्याके द्वारा देखता है तथा स्वप्नमें जागनेमें देवता आदिकी उपासना से उत्पन्न हुई वासनाके कारणसे जो अपनेको देवता की समान वा राजाकी समान देखता है वह भी मिथ्या है। इसप्रकार अविद्याका सम्बन्ध आत्माके साथ स्वाभाविक नहीं है। जाग्रत्की वासनावाले स्वप्नमें-यह सर्व मैं ही हूं, यह चिन्मात्र मुझसे भिन्न नहीं है, इस कारण मैं पूर्ण हूं, ऐसा जानता है वह सर्वात्मभाव इस आत्माका ज्ञानसे प्राप्त किया हुआ स्वाभाविक पूर्ण लोक है ॥ २० ॥

तद्वा अस्यैतदतिच्छन्दा अपहतपाप्माभयꣳ

रूपम् । तद्यथा प्रियया स्त्रिया संपरिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नाऽऽन्तरमेवमेवाऽयं पुरुषः प्राज्ञेनाऽऽत्मना सम्परिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नाऽऽन्तरं तद्वा अस्यैतदाप्तकाममात्मकाम-मकामꣳ रूपꣳ शोकान्तरम् ॥ २१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अस्य) इसका (तत्) वह (वै) प्रसिद्ध (रूपम्) रूप (अतिच्छन्दाः) कामरहित (अपहतपाप्म) धर्म अधर्म रहित (अभयम्) भय-रहित है (तत्) वह (यथा) जैसे (प्रियया) प्यारी (स्त्रिया) स्त्रीके साथ (सम्परिष्वक्तः) सम्यक् प्रकार से एकताको प्राप्त हुआ (बाह्यम्) बाहरके (किञ्चन) किसी पदार्थको भी (न) नहीं (वेद) जानता है (आन्तरम्) भीतरके भी (न) नहीं [वेद] जानता है (एवमेव) इसी तरह ही (अयम्) यह (पुरुषः) पुरुष (प्राज्ञेन) अभिमानीके साथ (आत्मना) आत्मा के साथ (सम्परिष्वक्तः) सम्यक् प्रकारसे एकताको प्राप्त हुआ (बाह्यम्) बाहरके (किञ्चन) कुछ (न) नहीं (वेद) जानता है (आन्तरम्) भीतरका (न) नहीं [वेद] जानता है (अस्य) इसका (तत्) वह (वै) प्रसिद्ध (एतत्) यह (रूपम्) रूप (आप्तकामम्) आप्तकाम (आत्मकामम्) आत्मकाम (अकामम्) कामरहित (शोकान्तरम्) शोकशून्य [अस्ति] है २१

(भावार्थ) इस सर्वात्मभावको प्राप्त हुएका यह प्रसिद्धरूप कामरहित, धर्माधर्मरूप पापरहित और भय तथा उसकी कारणभूत अविद्यासे रहित होता है। यदि कहो कि तुम्हारा कहा हुआ स्वयंप्रकाशपना भी

अविद्या काम और कर्म आदिकी समान सुषुप्तिमें नहीं दीखता है इसकारण वह भी आत्माका स्वाभाविक रूप नहीं है तो इसका उत्तर यह है कि- सुषुप्तिमें स्वयंप्रकाश का दर्शन न होनेका कारण तो विशेषज्ञानका अभाव है जैसे प्यारी स्त्रीमें आसक्त होकर एकरूप हुआ कामी पुरुष संभोगके फलका अनुभव करते समय न किसी अपने बाहरकी वस्तुको जानता है और न अपने भीतर के दुःख आदिको ही जानता है तैसे ही जलचन्द्रकी समान कार्यकरणमें प्रविष्ट हुआ यह क्षेत्रज्ञ पुरुष उपाधिका विलय होने पर अविद्याके साक्षीरूप आत्माके साथ अत्यन्त एकीभूत होनेके समयमें इस एकीभूतपने के कारणसे न बाहरकी किसी वस्तुको जानता है और न भीतरके किसी पदार्थको जानता है । इस सुषुप्तिमें सर्वात्मभावको प्राप्त हुए आत्माका ऐसा रूप होता है कि-उसको आत्मसाक्षात्काररूप सुखको पाजानेके कारण और कोई कामना नहीं रहती है, एक आत्मसुख में ही उसको सब सुखोंका आनन्द आता है और उस में शोकका लेशमात्र भी नहीं होता है ॥ २१ ॥

अत्र पिताऽपिता भवति माताऽमाता लोका अलोका देवा अदेवा वेदा अवेदाः । अत्र स्तेनोऽस्तेनो भवति भ्रूणहाऽभ्रूणहा चाण्डालोऽचाण्डालः पौल्कसोऽपौल्कसः श्रमणोऽश्रमणस्तापसोऽतापसोऽनन्वागतं पुण्येनाऽनन्वागतं पापेन तीर्णो हि तदा सर्वाञ्छोकान् हृदयस्य भवति ॥ २२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अत्र) इस अवस्थामें (पिता) पिता (अपिता) अपिता (भवति) होता है (माता) माता (अमाता) अमाता होती है (लोकाः) लोक (अलोकाः) अलोक होते हैं (देवाः) देवता (अदेवाः) अदेव होते हैं (वेदाः) वेद (अवेदाः) अवेद होते हैं (अत्र) इस अवस्थामें (स्तेनः) चोर (अस्तेनः) अचोर (भवति) होता है (भ्रूणहा) ब्रह्मघाती (अभ्रूणहा) ब्रह्महत्याके पापसे विलग होता है (चाण्डालः) चाण्डाल (अचाण्डालः) चाण्डाल नहीं होता (पुल्कसः) पुल्कस नामका वर्णसङ्कर (अपुल्कसः) पुल्कस नहीं होता (श्रमणः) संन्यासी (अश्रमणः) असंन्यासी होता है (तापसः) वानप्रस्थ (अतापसः) अवानप्रस्थ होता है (पुण्येन) पुण्य करके (अनन्वागतम्) संबन्धरहित (पापेन) पाप करके (अनन्वागतम्) संबन्ध रहित [भवति] होता है (हि) क्योंकि (तदा) उस समय (हृदयस्य) बुद्धिके (सर्वान्) सब (शोकान्) शोकोंको (तीर्णः) पार हुआ (भवति) होता है ॥२२॥

(भावार्थ)-जैसे आत्माका काम आदिके साथ कुछ संबन्ध नहीं है ऐसे कर्मसे भी कुछ संबन्ध नहीं है अतः सुषुप्ति अवस्थामें वास्तविक रूपमें आयेहुए आत्माका पिता अपिता होता है, माता अमाता होती है, क्योंकि-इनके संबन्धका कोई कर्म नहीं होता है। लोक अलोक होते हैं, क्योंकि-उस समय कर्मसे पाये हुए किसी लोकसे सम्बन्ध नहीं रहता और न कर्मसे किसी लोकको जीतनेका ही उद्योग करता है। देवता अदेवता होजाते हैं और वेद अवेद होजाते हैं और उस सुषुप्ति अवस्थामें कर्मसे संबन्ध न होनेके कारण चोर

साधु होता है और ब्रह्महत्यारा निष्पाप होता है। चाण्डाल (ब्राह्मणीमें शूद्रसे उत्पन्न हुआ) चाण्डाल नहीं रहता और पुल्कस (ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न हुआ जो निषाद उससे क्षत्रियामें उत्पन्न होनेवाला) अपुल्कस होजाता है। संन्यासी असन्यासी और तापस (वानप्रस्थ) अतापस होता है। उस समय आत्माका शास्त्र विहित कर्मरूप पुण्यके साथ तथा शास्त्रसे निषिद्ध कर्म रूप पापके साथ कुछ संबन्ध नहीं होता है, क्योंकि-आत्मा उस समय बुद्धिके सकल शोक और कामनाओं के पार पहुँचा हुआ होता है ॥ २२ ॥

यद्वैतन्न पश्यति पश्यन् वै तन्न पश्यति न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात्। न तु तद् द्वितीयमस्ति ततोऽन्याद्विभक्तं यत्पश्येत् ॥ २३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) तिस सुषुप्तिमें (न वै) नहीं (पश्यति) देखता है (यत्) जो (तत्) उसमें (पश्यन् वै) देखता हुआ भी (न) नहीं (पश्यति) देखता है (हि) क्योंकि (द्रष्टुः) द्रष्टाकी (दृष्टेः) दृष्टिके (अविनाशित्वात्) अविनाशी होनेसे (विपरिलोपः) विनाश (न) नहीं (विद्यते) है (तत्) तहाँ (ततः) तिससे (द्वितीयम्) दूसरा (अन्यत्) और (विभक्तम्) विभाग किया हुआ (तु) तो (न) नहीं (अस्ति) है (यत्) जिसको (पश्येत्) देखे ॥ २३ ॥

(भावार्थ)-सुषुप्तिमें एकपनेकी प्राप्तिसे विशेषज्ञान नहीं होता है, उसका कारण स्वयंप्रकाशका अभाव नहीं है, यही बात स्पष्ट करके दिखाते हैं, कि-यदि तुम यह

मानते हो, कि-सुषुप्तिमें आत्मा देखता ही नहीं है तो यह मानना ठीक नहीं है, क्योंकि-सुषुप्तिमें स्वरूपचैतन्य के द्वारा सबके साक्षीपनेसे देखता हुआ भी द्रष्टव्य पदार्थोंको नहीं देखता है। इसप्रकार स्वरूपका दर्शन और विशेष अदर्शन होता है क्योंकि—द्रष्टाकी स्वरूपभूत दृष्टि अविनाशी है, इसलिये अग्निकी उष्णताको समान उसका विनाश नहीं होता है, उस सुषुप्तिमें आत्मस्वरूप से दूसरे प्रमाताका रूप तथा नेत्रादि अन्य करण तथा विभक्त कहिये रूपादि लक्षणवाला प्रमेय तो होता ही नहीं है, कि—जिस प्रमेयको प्रमाता नेत्र से देखे ॥ २३ ॥

यद्वै तन्न जिघ्रति जिघ्रन् वै तन्न जिघ्रति नहि घ्रातुर्घ्रातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वा-न्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं य-ज्जिघ्रेत् ॥ २४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) उसमें (न,वै) नहीं (जिघ्रति) सूंघता है (यत्) जो (तत्) उसमें (जिघ्रन्, वै) सूंघता हुआ भी (न) नहीं (जिघ्रति) सूँघता है (हि) क्योंकि (घ्रातुः) सूँघनेवालेकी (घ्रातेः) सूंघनेकी शक्तिके (अविनाशित्वात्) अविनाशी होनेसे (विपरि-लोपः) विनाश (न) नहीं (विद्यते) है (तत्) उस में (ततः) उससे (द्वितीयम् (दूसरा (अन्यत्) और (विभक्तम्) विभाग किया हुआ (तु) तो (न) नहीं (अस्ति) है (यत्) जिसको (जिघ्रेत्) सूँघे ॥ २४ ॥

(भावार्थ)-उस सुषुप्तिमें आत्मा सूँघता नहीं है, यदि तुम ऐसा कहो तो ठीक नहीं है, उस समय वह

सबके साक्षीरूपसे सूँघता हुआ भी सूँघनेयोग्य पदार्थों को नहीं सूँघता है. क्योंकि-सूँघनेवालेकी स्वरूपभूत सूँघनेकी शक्ति अविनाशी है, इसलिये उसका विनाश नहीं होता है, उस समय तो आत्मासे दूसरा अन्य विभक्त तो होता ही नहीं है कि--जिसको प्रमाता नासिकासे सूँघे ॥ २४ ॥

यद्वै तन्न रसयते रसयन् वै तन्न रसयते न हि रसयितू रसयतेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद् द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्रसयेत् ॥ २५ ॥

अन्वय और पदार्थ--(तत्) उसमें (न, वै) नहीं (रसयते) स्वाद लेता है (यत्) जो (तत्) उसमें (रसयन् वै) स्वाद लेता हुआ भी (न) नहीं (रसयते) स्वाद लेता है (हि) क्योंकि (रसयितुः) स्वाद लेने वालेकी शक्तिके (अविनाशित्वात्) अविनाशी होनेसे (विपरिलोपः) विनाश (न) नहीं (विद्यते) है (तत्) उसमें (ततः) उससे (द्वितीयम्) दूसरा (अन्यत्) और (विभक्तम्) विभाग कियाहुआ (तु) तो (न) नहीं (अस्ति) है (यत्) जिसको (रसयेत्) चाखे ।

(भावार्थ)-उस सुषुप्तिमें आत्मा स्वाद नहीं लेता है, यदि तुम ऐसा मानते हो तो ठीक नहीं है, क्योंकि उस समय सबके साक्षीरूपसे वह स्वाद लेता हुआ भी वह स्वाद लेने योग्य पदार्थोंको नहीं चाखता है । उस समय स्वाद लेनेवालेकी स्वरूपभूत स्वाद लेनेकी शक्ति अविनाशी होती है, इसकारण उसका विनाश नहीं

होता है, उस समय तो आत्मासे दूसरा अन्य विभक्त पदार्थ होता ही नहीं है कि-जिसको प्रमाता जीभसे चाखे ॥ २५ ॥

यद्वै तन्न वदति वदन् वै तन्न वदति न हि वक्तुर्वक्तेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात । न तु तद् द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्वदेत्

अन्वय और पदार्थ-(तत्) उसमें (न वै) नहीं वदति) बोलता है (यत्) जो (तत्) उसमें (वदन् वै) बोलता हुआ भी (न) नहीं (वदति) बोलता है (हि) क्योंकि (वक्तुः) बोलनेवालेकी (वक्तेः) कथनशक्तिके (अविनाशित्वात्) अविनाशी होनेसे (विपरिलोपः) विनाश (न) नहीं (विद्यते) है (तत्) उसमें (ततः) उससे (द्वितीयम्) दूसरा (अन्यत्) और (विभक्तम्) विभाग किया हुआ (तु) तो (न) नहीं (अस्ति) है (यत्) जिसको (वदेत्) बोले ॥ २६ ॥

(भावार्थ)-सुषुप्ति अवस्थामें आत्मा बोलता ही नहीं है, यदि ऐसा मानो तो ठीक नहीं है, वास्तवमें सुषुप्ति अवस्थामें सबके साक्षीरूपसे बोलता हुआ भी बोलने योग्य शब्दोंको नहीं बोलता है, क्योंकि-बोलनेवालेकी स्वरूपभूत बोलनेकी शक्ति अविनाशी है, इसकारण उसका विनाश नहीं होता है और उस समय आत्मासे दूसरा और कोई विभक्त पदार्थ तो होता ही नहीं है, कि-जिसको प्रमाता वाणीसे बोले ॥ २६ ॥

यद्वै तन्न शृणोति शृण्वन् वै तन्न शृणोति न हि श्रोतुः श्रुतेर्विपरिलोपो विद्यते अविना-

शिवान्न तु तद् द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्वि-
भक्तं यच्छृणुयात ॥ २७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्) उसमें (न, वै) नहीं (शृणोति) सुनता है (यत्) जो (तत्) उसमें (शृण्वन्, वै) सुनता हुआ भी (न) नहीं (शृणोति) सुनता है (हि) क्योंकि—(श्रोतुः) सुननेवालेकी (श्रुतेः) श्रवणशक्तिके (अविनाशित्वात्) अविनाशी होनेसे (विपरिलोपः) विनाश (न) नहीं (विद्यते) है (तत्) उसमें (ततः) उससे (द्वितीयम्) दूसरा (अन्यत्) और (विभक्तम्) बटा हुआ (तु) तो (न) नहीं (अस्ति) है (यत्) जिसको (शृणुयात्) सुने

(भावार्थ)—उस सुषुप्तिके समय आत्मा सुनता नहीं है, यदि ऐसा मानते हो तो ठीक नहीं है, कारण यह है कि—उस समय सबके साक्षीरूपसे सुनता हुआ भी सुनने योग्य शब्दोंको नहीं सुनता है, क्योंकि—सुननेवालेकी स्वरूपभूत श्रवणशक्ति अविनाशी है, अतः उसका विनाश नहीं होसकता, सुषुप्तिके समय आत्मा से दूसरा और कोई विभक्त पदार्थ नहीं होता है, कि-जिसको प्रमाता कानसे सुने ॥ २७ ॥

यद्वै तन्न मनुते मन्वानो वै तन्न मनुते न हि मन्तुर्मतेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात् न तु तद् द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यन्मन्वीत ॥ २८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्) उसमें (न, वै) नहीं (मनुते) संकल्प करता है (यत्) जो (तत्) उसमें

(मन्वानः, वै) सङ्कल्प करता हुआ भी (न) नहीं (मनुते) सङ्कल्प करता है (हि) क्योंकि (मन्तुः) सङ्कल्प करनेवालेकी (मतेः) सङ्कल्प करनेकी शक्तिके (अविनाशित्वात्) अविनाशी होनेसे (विपरिलोपः) विनाश (न) नहीं (विद्यते) है (तत्) उसमें (ततः) उससे (द्वितीयम्) दूसरा (अन्यत्) और (विभक्तम्) विभक्त (तु) तो (न) नहीं (अस्ति) है (यत्) जिस को (मन्वीत) मनन करे ॥ २८ ॥

(भावार्थ) –सुषुप्तिमें आत्मा संकल्प नहीं करता है, ऐसा नहीं मानना चाहिये, कारण कि-सुषुप्तिमें साक्षीरूपसे संकल्प करता हुआ भी आत्मा संकल्प करने योग्यका सङ्कल्प नहीं करता है, क्योंकि-सङ्कल्प करनेवालेकी स्वरूपभूत जो संकल्प करनेकी शक्ति वह अविनाशी है, अतः उसका विनाश होना ही नहीं और उस सुषुप्ति अवस्थामें आत्मासे दूसरा अन्य विभक्त पदार्थ तो होना ही नहीं है, कि-जिसका प्रमाता मनसे सङ्कल्प करे ॥ २८ ॥

यद्वै तन्न स्पृशति स्पृशन् वै तन्न स्पृशति न हि स्प्रष्टुः स्पृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात् । न तु तद् द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत्स्पृशेत् ॥ २९ ॥

अन्वय और पदार्थ (तत्) उसमें (न, वै) नहीं (स्पृशति) छूता है (यत्) जो (तत्) उसमें (स्पृशन्, वै) स्पर्श करता हुआ भी (न) नहीं (स्पृशति) स्पर्श करता है (हि) क्योंकि (स्प्रष्टुः) स्पर्श करनेवालेकी

(स्पृष्टेः) स्पर्शनशक्तिके (अविनाशित्वात्) अविनाशी होनेसे (विपरिलोपः) विनाश (न) नहीं (विद्यते) है (तत्) उसमें (ततः) उससे (द्वितीयम्) दूसरा (अन्यत्) और (विभक्तम्) विभक्त (तु) तो (न) नहीं (अस्ति) है (यत्) जिसको (स्पृशेत्) स्पर्श करे ॥ २९ ॥

(भावार्थ) सुषुप्तिमें आत्मा स्पर्श करता ही नहीं है, ऐसा नहीं मानना चाहिये, कारण कि-सुषुप्तिमें वह साक्षीरूपसे स्पर्श करता हुआ भी स्पर्श करने योग्य पदार्थोंको स्पर्श नहीं करता है, क्योंकि स्पर्श करनेवाले की स्वरूपभूत स्पर्शनशक्ति अविनाशी है अतः उसका विनाश तो होता ही नहीं है और उस समय आत्मासे दूसरा अन्य कोई विभक्त पदार्थ होता नहीं कि जिस को प्रमाता त्वचासे स्पर्श करे ॥ २९ ॥

यद्वै तन्न विजानाति विजानन् वै तन्न विजानाति न हि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद् द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्विजानीयात् ॥ ३० ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्) उसमें (न) नहीं (विजानाति) जानता है (यत्) जो (यत्) उसमें (विजानन्, वै) जानता हुआ भी (न) नहीं (विजानाति) जानता है (हि) क्योंकि (विज्ञातुः) जाननेवालेकी (विज्ञातेः) जाननेकी शक्तिके (अविनाशित्वात्) अविनाशी होनेसे (विपरिलोपः) विनाश (न) नहीं (विद्यते) है (तत्) उसमें (ततः) उससे (द्वितीयम्) दूसरा

(अन्यत्) और (विभक्तम्) विभक्त (तु) तो (न) नहीं (अस्ति) है (यत्) जिसको (विजानीयात्) जाने

(भावार्थ)-सुषुप्तिमें आत्मा नहीं जानता है ऐसा नहीं है, किन्तु साक्षिरूपसे जानता हुआ भी जानने योग्य पदार्थोंको नहीं जानता है, क्योंकि—जाननेवाले को स्वरूपभूत जाननेकी शक्तिके अविनाशी होनेके कारण उसका विनाश नहीं होता है सुषुप्तिके समय आत्मामें अन्य कोई विभक्त पदार्थ होता ही नहीं है कि-जिसको प्रमाता बुद्धिसे जाने ॥ ३० ॥

यत्र वा अन्यदिव स्यात्तत्राऽन्योऽन्यत्पश्येदन्योऽन्यज्जिघ्रेदन्योऽन्यद्रसयेदन्योऽन्यद्वदेदन्योऽन्यच्छृणुयादन्योऽन्यन्मन्वीतान्योऽन्यत्स्पृशेदन्योऽन्यद्विजानीयात् ॥ ३१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्र) जिसमें (अन्यत् इव) अन्य की समान (स्यात्) हो (तत्र, वै) तहाँ ही (अन्यः) अन्य (अन्यत्) अन्यको (पश्येत्) देखे (अन्यः, अन्यत्, जिघ्रेत्) अन्य अन्यको सूंघे (अन्यः, अन्यत्, रसयेत्) अन्य अन्यका स्वाद लेय (अन्यः, अन्यत्, वदेत्) अन्य अन्यको कहे (अन्य, अन्यत्, शृणुयात्) अन्य अन्यको सुने (अन्यः, अन्यत्, मन्वीत) अन्य अन्यका सङ्कल्प करे (अन्यः, अन्यत् विजानीयात्) अन्य अन्यको जाने ॥ ३१ ॥

(भावार्थ)-जिस दशा (जाग्रत् वा स्वप्न) में एकसे दूसरासा अविद्याके कारण आत्मासे भिन्न प्रतीत होता है उस अवस्थामें ही मानो मुझसे कोई दूसरा है ऐसा

माननेवाला मानो अपनेसे मानो जुदी अविद्यासे कल्पित हुई अन्य वस्तुको देखता है, अपनेसे जुदे पदार्थका स्वाद लेता है, अपनेसे जुदे शब्दको बोलता है, अपनेसे जुदी बातको सुनता है, अपनेसे जुदी वस्तुका सङ्कल्प करता है और अपनेसे अन्य वस्तुको जानता है ॥ ३१ ॥

सलिल एको द्रष्टाऽद्वैतो भवत्येष ब्रह्मलोकः सम्राडिति हैनमनुशशास याज्ञवल्क्य एषाऽस्य परमा गतिरेषास्य परमा सम्पदेषोऽस्य परमो लोक एषोऽस्य परम आनन्द एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति ॥ ३२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सम्राट्) हे राजन् (सलिलः) जलकी समान शुद्ध (एकः) एक (द्रष्टा) साक्षी (अद्वैतः) अद्वितीय (एषः) यह (ब्रह्मलोकः) स्वयं प्रकाशरूप परमात्मा (भवति) है (इति) ऐसा (याज्ञवल्क्यः) याज्ञवल्क्य (एनम्, ह) इस प्रसिद्ध जनकको (अनुशशास) उपदेश देता हुआ (अस्य) इसकी (एषा) यह (परमा, गतिः) परमगति है (एषा) यह (अस्य) इसकी (परमा, सम्पत्) परम विभूति है (एषः) यह (अस्य) इसका (परमः) उत्कृष्ट (लोकः) स्वयंज्योति स्वभाव है (एषः) यह (अस्य) इसका (परमः) उत्कृष्ट (आनन्दस्य) आनन्द है (एतस्य, एव) इस ही (आनन्दः) आनन्दके (मात्राम्) लेशको (अन्यानि) अन्य (भूतानि) प्राणी (उपजीवन्ति) उपभोग करते हैं ॥ ३२ ॥

(भावार्थ)-हे राजन् ! अन्तःकरण आदिका संबन्ध

अविद्याका किया हुआ है, इस कारण जलकी समान शुद्ध कहिये विजातीय भेदरहित, एक कहिये सजातीय भेदरहित, द्रष्टा कहिये कूटस्थ ज्योतिःस्वरूप साक्षी और अद्वैत कहिये स्वगतभेदरहित एकरस यह सुषुप्ति अवस्थाको प्राप्त हुआ प्रत्यगात्मा स्वयंप्रकाशरूप परमात्मा है, इस प्रकार याज्ञवल्क्यजीने राजा जनकको उपदेश दिया था। यह इस आत्माकी (इक्कीसवीं कण्डिका के पहले और अन्तके वाक्यमें कही हुई) परम गति है, उत्तम विभूति है, यह इसका उत्तम स्वयंज्योतिः स्वभाव है और यह इसका निरतिशय आनन्द है। परमात्माके इस ही आनन्दके लेशमात्रका ब्रह्मासे लेकर पिपीलिका पर्यन्त सकल प्राणी इन्द्रिय और विषयोंके सम्बन्धके द्वारा उपभोग करते हैं ॥ ३२ ॥

स यो मनुष्याणाᳯ राद्धः समृद्धो भवत्यन्येषामधिपतिः सर्वैर्मानुष्यकैर्भोगैः सम्पन्नतमः स मनुष्याणां परम आनन्दोऽथ ये शतं मनुष्याणामानन्दाः स एकः पितॄणां जितलोकानामानन्दोऽथ ये शतं पितॄणां जितलोकानामानन्दाः स एको गन्धर्वलोक आनन्दोऽथ ये शतं गन्धर्वलोक आनन्दाः स एकः कर्मदेवानामानन्दो ये कर्मणा देवत्वमभिसम्पद्यन्तेऽथ ये शतं कर्मदेवानामानन्दाः स एक आजानदेवानामानन्दो यश्च श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतोऽथ ये शतमाजानदेवानामानन्दाः स एकः प्रजाप-

तिलोक आनन्दो यश्च श्रोत्रियोऽवृजिनोऽका-
महतोऽथ ये शतं प्रजापतिलोक आनन्दाः स
एको ब्रह्मलोक आनन्दो यश्च श्रोत्रियोऽवृजिनो-
ऽकामहतोऽथैष एव परम आनन्द एष ब्रह्म-
लोकः सम्राडिति होवाच याज्ञवल्क्यः सोऽहं
भगवते सहस्रं ददाम्यत ऊर्ध्वं विमोक्षायैव
ब्रूहीत्यत्र ह याज्ञवल्क्यो बिभयाञ्चकार मेधावी
राजा सर्वेभ्यो मान्तेभ्य उदरौत्सीदिति ॥३३॥

अन्वय और पदार्थ—(मनुष्याणाम्) मनुष्योंमें (सः) वह (यः) जो (राद्धः) पुष्ट शरीर (समृद्धः) सम्पत्तिमान् (भवति) होता है (अन्येषाम्) औरोंका (अधिपतिः) नेता (सर्वैः) सब (मानुष्यकैः) मनुष्य संबन्धी (भोगैः) भोगों करके (सम्पन्नतमः) अत्यन्त सम्पन्न [भवति] होता है (सः) वह (मनुष्याणाम्) मनुष्योंका (परमः, आनन्दः) परम आनन्द है (अथ) और (मनुष्याणाम्) मनुष्योंके (शतम्) सौ (आनन्दाः) आनन्द हैं (सः) वह (एकः) एक (जितलोकानाम्) लोकको जीतने वाले (पितृणाम्) पितरोंका (आनन्दः) आनन्द है (अथ) और (ये) जो (जितलोकानाम्) लोकको जीतनेवाले (पितृणाम्) पितरोंके (शतम्) सौ (आनन्दाः) आनन्द हैं (सः) वह (गन्धर्वलोके) गन्धर्वलोकमें (एकः) एक (आनन्दः) आनन्द है (अथ) और (ये) जो (गन्धर्वलोके) गन्धर्वलोकमें (शतं, आनन्दाः) सौ आनन्द हैं (सः) वह

(ये) जो (कर्मणा कर्मके द्वारा (देवत्वम्) देवभावको (अभिसम्पद्यन्ते) प्राप्त होते हैं [तेषाम्] तिन (कर्मदेवानाम्) कर्मदेवोंका (एकः) एक (आनन्दः) आनन्द है (अथ) और (ये) जो (कर्मदेवानाम्) कर्मदेवताओंके (शतं, आनन्दाः) सौ आनन्द हैं (सः) वह (आजानदेवानाम्) सृष्टिकी आदिमें उत्पन्न हुए देवताओंका (एकः) एक (आनन्दः) आनन्द है (च) और (यः) जो (श्रोत्रियः) वेदपाठी (अवृजिनः) निष्पाप (अकामहतः) तृष्णारहित है (अथ) और (ये) जो (आजानदेवानाम्) सृष्टिकी आदिमें उत्पन्न हुए देवताओंके (शतं, आनन्दाः) सौ आनन्द हैं (सः) वह (प्रजापतिलोके) प्रजापतिके लोकमें (एकः आनन्दः) एक आनन्द है (च) और (यः) जो (श्रोत्रियः) वेदपाठी (अवृजिनः) निष्पाप (अकामहतः) तृष्णारहित है (अथ) और (प्रजापतिलोके) प्रजापतिके लोकमें (ये, शतं, आनन्दाः) जो सौ आनन्द हैं (सः) वह (ब्रह्मलोके) ब्रह्मलोकमें (एकः आनन्दः) एक आनन्द है (च) और (यः) जो (श्रोत्रियः) वेदपाठी (अवृजिनः) निष्पाप (अकामहतः) तृष्णारहित है (अथ) और (सम्राट्) हे राजन् (एषः) यह (परमः) निरतिशय (आनन्दः) आनन्द है (एषः) यह (ब्रह्मलोकः) स्वयंप्रकाश ब्रह्म है (इति) ऐसा (याज्ञवल्क्यः, ह) प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य (उवाच) कहता हुआ (सः) वह (अहम्) मैं (भगवते) आपके लिये (सहस्रम्) सहस्र गौएँ (ददामि) देता हूँ (अतः ऊर्ध्वम्) अब आगेको (विमोक्षाय, एव) विमुक्तिके लिये ही (ब्रूहि) कहिये (इति) इस प्रकार (अत्र) इस विषयमें (याज्ञवल्क्यः, ह) प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य

(मेधावी) बुद्धिमान् (राजा) राजा (माम्) मुझको (सर्वेभ्यः) सब (अन्तेभ्यः) अन्तोंसे (उदशीस्सीत्) रोकता हुआ (इति) इस कारण (बिभयाञ्चकार) भयभीत हुआ ॥ ३३ ॥

(भावार्थ)-जो पुरुष मनुष्योंमें हृष्टपुष्ट शरीरवाला बाहरी भोगके साधनोंवाला और जो दूसरोंका अधिपति तथा सकल मानवी भोगसाधनोंसे सम्पन्न होता है वह परमानन्दशाली मानाजाता है । मनुष्योंके ऐसे आनन्दसे सौगुणा आनन्द श्राद्ध आदि कर्मसे पितृदेवताओंको सन्तुष्ट करके लोकको जीतनेवाले पितरोंका एक आनन्द होता है और इन जितलोक पितरोंके ऐसे आनन्दसे सौगुणा गन्धर्वलोकका एक आनन्द होता है और गन्धर्वलोकके ऐसे आनन्दसे सौगुणा आनन्द उन कर्मदेवोंका एक आनन्द है कि-जो अग्निहोत्र आदि कर्मके द्वारा देवभावको पागये हैं और कर्मदेवोंके ऐसे आनन्दसे सौगुणा आनन्द सृष्टिकी आदिमें उत्पन्न हुए आजानदेवताओंका एक आनन्द है और जो अर्थसहित वेदकी एक शाखाका अध्ययन करनेवाला श्रोत्रिय शास्त्र की आज्ञाके अनुसार वर्त्ताव करताहुआ पापरहित है तथा आजानदेवताके पहले आनन्दोंमें तृष्णा नहीं रखता है ऐसे आजानदेवताके उपासकका आनन्द भी आजानदेवकी समान होता है और आजानदेवके ऐसे आनन्द से सौगुणा आनन्द एक विराट्शरीरमें होता है और जो श्रोत्रिय पापरहित तथा विराट्शरीरके आनन्दसे पहले आनन्दोंमें तृष्णारहित होता है उस विराट्के उपासकका आनन्द भी विराट्की समान ही होता है और भी विराट्शरीरके आनन्दकी समान आनन्द एक

ब्रह्माके शरीरमें होता है, और श्रोत्रिय पापरहित, ब्रह्मा के आनन्दसे पहले आनन्दोंमें तृष्णारहित होता है ऐसे ब्रह्माके उपासकका आनन्द भी ब्रह्माकी समान ही होता है । अब जहाँ सुखके उत्कर्षकी न्यूनाधिकता समाप्त होती है वही प्रत्यगात्मस्वरूप निरतिशय आनन्द है और हे राजा जनक! यही तृष्णारहित श्रोत्रियको प्रत्यक्ष होने वाला स्वयंप्रकाश ब्रह्म है । इसप्रकार याज्ञवल्क्यजीने कहा तब राजा जनक कहनेलगा कि—हे महाराज ! जिस को आपने यह उपदेश दिया है ऐसा मैं आपको सहस्र गौएँ देता हूं । अब आगेको भी आप मुझे विमुक्तिके लिये उपयोगी उपदेश ही दीजिये । राजा जनककी इस बातको सुनकर याज्ञवल्क्यजीको यह भय हुआ कि-यह बुद्धिमान राजा इच्छानुसार प्रश्नके बहानेसे मेरा सब ज्ञान लेलेनेके लिये मुझे हरएक प्रश्नके निर्णयका अन्त आनेपर बार २ उपदेश देनेका आग्रह करता है ॥ ३३ ॥

स वा एष एतस्मिन् स्वप्नान्ते रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यञ्च पापञ्च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्रवति बुद्धान्तायैव ॥ ३४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (वै) प्रसिद्ध (एषः) यह (एतस्मिन्) इस (स्वप्नान्ते) स्वप्नस्थानमें (रत्वा) क्रीड़ा करके (चरित्वा) भ्रमण करके (च) और (पुण्यम्) पुण्यको (च) और (पापम्) पापको (दृष्ट्वा, एव) अनुभव करके ही (पुनः) फिर (बुद्धान्ताय, एव) जाग्रत् स्थानके लिये ही (प्रतिन्यायम्) विपरीत गति पूर्वक (प्रतियोनि) अपने कारण जाग्रत्की ओरको (आद्रवति) आता है ॥ ३४ ॥

(भावार्थ)-आत्मा स्वप्नावस्थामें क्रीड़ा करके, भ्रमण करके और पुण्यके फल सुखका तथा पापके फल दुःख का अनुभव करके फिर जाग्रत् अवस्थामें आनेके लिये ही जाग्रत्की ओरको लौट पड़ता है ॥ ३४ ॥

तद्यथाऽनः सुसमाहितमुत्सर्जद्यायादेवमेवायᳪ शारीर आत्मा प्राज्ञेनाऽऽत्मनाऽन्वारूढ उत्सर्जन् याति यत्रैतदूर्ध्वोच्छ्वासी भवति ॥ ३५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) उस पर (यथा) जैसे (अनः) गाड़ी (सुसमाहितम्) अत्यन्त भराहुआ (उत्सर्जत्) शब्द करता हुआ (यायात्) जाय (एवमेव) इसप्रकार ही (यत्र) जिस समय (एतत्) यह (ऊर्ध्वोच्छ्वासी) ऊर्ध्वश्वासवाला (भवति) होता है [तत्र] तब (अयम्) यह (शारीरः) शरीरमें रहनेवाला (आत्मा) लिङ्गश-रीर (प्राज्ञेन) स्वयंप्रकाश स्वभाववाले (आत्मना) आत्माके द्वारा (अन्वारूढः) व्याप्त हुआ (उत्सर्जन्) शब्द करता हुआ (याति) जाता है ॥ ३५ ॥

(भावार्थ) उस पर दृष्टान्त कहते हैं, कि जैसे उलू-खल आदि घरकी सामग्रीसे अत्यन्त भरीहुई गाड़ी गाड़ी-वान्के चलाने पर अनेकों प्रकारके शब्द करती हुई जाती है इसप्रकार ही जब इसका ऊर्ध्वश्वास चलता है तब इस स्थूल शरीरमें रहनेवाला लिङ्गशरीररूप आत्मा स्वयं प्रकाश स्वभाववाले प्राज्ञ आत्माके द्वारा चिदाभाससे व्याप्त होकर दुःख भरा शब्द करता हुआ चलाजाता है

स यत्रायमणिमानं न्येति जरया वोपतपता वाऽणिमानं निगच्छति तद्यथाऽऽम्रं वोदुम्बरं वा पिप्पलं वा बन्धनात्प्रमुच्यत एवमेवाऽयं पुरुष

एभ्योऽङ्गेभ्यः संप्रमुच्य पुनः प्रतिन्यायं प्रति-
योन्याद्रवति प्राणायैव ॥ ३६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (अयम्) यह (यत्र) जब (अणिमानम्) कृशताको (नि-एति) प्राप्त होता है (वा) या (जरया) वृद्धावस्थाके द्वारा (वा) या (उपतपता) उपतापके द्वारा (अणिमानम्) कृशताको (विगच्छति) प्राप्त होता है (तत्) उसमें (यथा) जैसे (आम्रम्) आम (वा) या (उदुम्बरम्) गूलड़ (वा) या (पिप्पलम्) पीपलका फल (बन्धनात्) दंडीमेंसे (प्रमुच्यते) छूटता है (एवमेव) इसप्रकार ही (अयम्) यह (पुरुषः) पुरुष (एभ्यः) इन (अङ्गेभ्यः) अङ्गोंमें (संप्रमुच्य) सम्यक् प्रकारसे छूटकर (पुनः) फिर २ (प्रतिन्यायम्) जैसे आया था उस प्रकार ही (प्राणाय, एव) देहान्तरको ग्रहण करनेके लिये ही (प्रतियोनि) योनि २ के प्रति (आद्रवति) जाता है ।

(भावार्थ)-यह देह जब दुर्बल होजाता है, जब वृद्धावस्थासे अथवा ज्वर आदिके तापसे दुर्बल होजाता है तब ऊर्ध्वश्वासी होने लगता है और ऐसा होने पर जब दुःख भरा शब्द करता हुआ जाता है उस समय किसप्रकार शरीरको त्यागता है, उस पर दृष्टान्त कहते हैं, कि-जिसप्रकार आमका फल वा गूलड़का फल अथवा पीपलका फल वायु आदिके कारणसे दण्डीमेंसे टूट पड़ता है इसप्रकार ही यह लिङ्गशरीर नामवाला पुरुष चिदाभाससे प्रकाशित होताहुआ इन नेत्र आदि अवयवोंसे सर्वथा विलग होकर बार बार जिस रीतिसे देहमें आया था उस प्रकार ही देहान्तरको ग्रहण करने के लिये योनि योनिमें जाता है ॥ ३६ ॥

तद्यथा राजानमायान्तमुग्राः प्रत्येनसः सूतग्रामण्योऽन्नैः पानैरावसथैः प्रतिकल्पन्तेऽयमायात्ययमागच्छतीत्येवꣳ हैवंविदꣳ सर्वाणि भूतानि प्रतिकल्पन्त इदं ब्रह्माऽऽयातीदमागच्छतीति ॥ ३७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) उसमें (यथा) जैसे (राजानम्) राजाको (आयान्तम्) आताहुआ [ज्ञात्वा] जानकर (उग्राः) क्रूरकर्म करनेवाले (प्रत्येनसः) पापियोंका शासन करनेके लिये नियत किये हुए (सूतग्रामण्यः) सूत और ग्रामके मुखिया (अन्नैः) खानेके पदार्थोंके द्वारा (पानैः) पीनेके पदार्थोंके द्वारा (आवसथैः) ठहरनेके स्थानोंके द्वारा (अयम्) यह (आयाति) आता है (अयम्) यह (आगच्छति) आता है (इति) इसप्रकार [वदन्तः] कहते हुए (प्रतिकल्पन्ते) बाट देखते हैं (एवम्, ह) इसप्रकार ही (एवम्विदम्) ऐसा जाननेवालेके प्रति (सर्वाणि) सब (भूतानि) भूत (इदं, ब्रह्म) यह ब्रह्म (आयाति) आता है (इदम्) यह (आगच्छति) आता है (इति) इसप्रकार (प्रतिकल्पन्ते) बाट देखते हैं ॥ ३७ ॥

(भावार्थ -इसमें दृष्टान्त कहते हैं, कि जिसप्रकार राजाको आता हुआ जानकर क्रूर कर्म करनेवाले, पापियोंका शासन करनेके लिये नियत कियेहुए ब्राह्मणीमें क्षत्रियसे उत्पन्न हुए) सूत तथा ग्रामके मुखिया पुरुष भक्ष्य भोज्य आदि खानेके पदार्थोंसे, दूध आदि पीनेके पदार्थोंसे तथा महल डेरे आदि ठहरनेके स्थानोंसे

सम्पन्न होकर अर्थात् इन सबका प्रबन्ध करके 'यह आये, यह आये' इसप्रकार कहते हुए बाट देखते हैं, इसप्रकार ही ऐसे कर्मफलको जाननेवाले संसारी मनुष्य के लिये शरीरका आरम्भ करनेवाले सकल भूत तथा इन्द्रियों पर अनुग्रह करनेवाले आदित्य आदि देवता उस जीवके कर्मसे प्रेरित होकर भोगके साधन शरीर आदिसे सम्पन्न होकर यह ब्रह्म कहिये हमारा कर्त्ता वा भोक्ता आता है, यह आता है, ऐसा विचारते हुए बाट देखते हैं ॥ ३७ ॥

तद्यथा राजानं प्रयियासन्तमुग्राः प्रत्येनसः सूतग्रामण्योऽभिसमायान्त्येवमेव ममात्मानमन्तकाले सर्वे प्राणा अभिसमायन्ति यत्रैतदूर्ध्वोच्छ्वासी भवति ॥ ३८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) उसमें (यथा) जैसे (राजानम्) राजाको (प्रयियासन्तम्) जानेका अभिलाषी [ज्ञात्वा] जानकर (उग्राः) क्रूर कर्म करनेवाले (प्रत्येनसः) पापियोंका शासन करने पर नियुक्त किये हुए (सूतग्रामण्यः) सूत और ग्रामके मुखिया (अभिसमायन्ति) चारों ओरसे इकट्ठे होकर आजाते हैं (एवमेव) इसप्रकार ही (इमं, आत्मानम्) इस भोक्ताके प्रति (यत्र) जब (एतत्) यह (ऊर्ध्वोच्छ्वासी) ऊपर को आनेवाले हैं श्वास जिसके ऐसा (भवति) होता है [तत्र] तब (अन्तकाले) मरणकालमें (सर्वे) सब (प्राणाः) प्राण (अभिसमायन्ति) इकट्ठे होकर आते हैं

(भावार्थ)-जब यह अन्य शरीरमेंको जानेको होता है उस समय इसके पीछे २ कौन जाता है ? तथा किस

प्रकार आता है ? इस बातको दृष्टान्तके साथ कहते हैं, कि-जिसप्रकार महाराज जाना चाहते हैं यह जानकर क्रूर कर्म करनेवाले और अपराधियोंका शासन करनेके लिये लिये नियत किये हुए सूत और ग्रामके मुखिया, राजाके आज्ञा न देनेपर आकर इकट्ठे होजाते हैं । इस प्रकार ही जब यह भोक्ता दूसरे शरीरमें आनेके लिये ऊर्ध्वश्वासी होता है, तब उस मरणकालमें वाक् आदि सब इन्द्रियें अपने कर्मोंसे प्रेरित हो इकट्ठी होकर आजाती हैं ॥ ३८ ॥

चतुर्थाध्यायस्य तृतीयं ज्योतिर्ब्राह्मणं समाप्तम् ।

स यत्रायमात्माऽबल्यं न्येत्य संमोहमिव न्येत्या-थैनमेते प्राणा अभिसमायन्ति स एतास्तेजो-मात्राः समभ्याददानो हृदयमेवान्ववक्रामति स यत्रैष चाक्षुषः पुरुषः पराङ् पर्यावर्त्तनेऽ-थारूपज्ञो भवति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (यत्र) जब (अबल्यम्) दुर्बलताको (न्येत्य) पाकर (संमोहमिव) अविवेकीपनेको जैसे (न्येति) प्राप्त होता है (अथ) तब (एनम्) इसके प्रति (एते) ये (प्राणाः) प्राण (अभिसमायन्ति) अभिमुख होकर आते हैं (सः) वह (एताः) इन (तेजोमात्राः) प्रकाश के अवयवोंका (समभ्याददानः) अभिमुख होकर निःशेषरूपसे उपसंहार करता हुआ (हृदयमेव) हृदय की ओरको ही (अन्ववक्रामति) आता है (सः) वह (एषः) यह (चाक्षुषः) चाक्षुष (पुरुषः) पुरुष (यत्र)

जब (पराङ्) बाहरसे विमुख होकर (पर्यावर्त्तते) सब प्रकारसे लौट आता है (अथ) तब (अरूपज्ञः) रूपको न जाननेवाला (भवति) होता है ॥ १ ॥

(भावार्थ)-यह आत्मा जब देहकी दुर्बलताके कारण दुर्बलहुआसा प्रतीत होकर विवेकहीन होजाता है उस समय वाणी आदि प्राण (इन्द्रियें) इस आत्माकी ओरको अभिमुख होकर आने लगते हैं, । यह अज्ञानी जीव इन तेज (प्रकाश) के अवयवरूप नेत्रादिकोंको अपनेमें समेट कर रखता हुआ हृदयमें स्थित बुद्धिकी ओरको आता है अर्थात् बुद्धिमें ही प्रकट विज्ञानवाला होजाता है । ऐसा यह आदित्यका अंशरूप चाक्षुष पुरुष भोक्ताके कर्मका क्षय होजाने पर जब बाहरसे अर्थात् भोक्ताके भोगोंसे विमुख होता हुआ अपने अंशी देवता-रूपके प्रति सब प्रकारसे आता है तब मरनेको पड़ाहुआ पुरुष रूपको नहीं जानता है ॥ १ ॥

एकी भवति न पश्यतीत्याहुरेकी भवति न जिघ्रतीत्याहुरेकी भवति न रसयत इत्याहुरेकी भवति न वदतीत्याहुरेकी भवति न शृणोतीत्याहुरेकी भवति न मनुत इत्याहुरेकी भवति न स्पृशतीत्याहुरेकी भवति न विजानातीत्याहुस्तस्य हैतस्य हृदयस्याग्रं प्रद्योतते तेन प्रद्योतेनैष आत्मा निष्क्रामति चक्षुष्टो वा मूर्ध्नो वाऽन्येभ्यो वा शरीरदेशेभ्यस्तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति प्राणमनूत्क्रामन्तꣳ सर्वे प्राणा

अनूत्क्रामन्ति सविज्ञानो भवति सविज्ञानमे-वान्ववक्रामति तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एकी भवति) एकरूप होता है (न पश्यति) नहीं देखता है (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं (एकी भवति) एकरूप होता है (न जिघ्रति) नहीं सूंघता है (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं (एकी भवति) एकरूप होता है (न रसयते) नहीं स्वाद लेता है (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं (एकी भवति) एकरूप होता है (न वदति) नहीं बोलता है (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं (एकी भवति) एकरूप होता है (न शृणोति) नहीं सुनता है (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं (एकी भवति) एकरूप होता है (न मनुते) मनन नहीं करता है (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं (एकी भवति) एकरूप होता है (न स्पृशति) स्पर्श नहीं करता है (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं (एकी भवति) एकरूप होता है (न विजानाति) नहीं जानता है (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं (तस्य) तिस (ह) प्रसिद्ध (एतस्य) इसके (हृदयस्य) हृदयका (अग्रम्) नाडीमुख (प्रद्योतते) प्रकाशित होता है (तेन) उस (प्रद्योतेन) प्रकाशसे (एषः) यह (आत्मा) आत्मा (चक्षुष्टः) चक्षुसे (वा) या (मूर्ध्नः) ब्रह्मरन्ध्रसे (वा) या (अन्येभ्यः) और (शरीरदेशेभ्यः) शरीरके अवयवोंसे (निष्क्रामति) निकलता है (उत्क्रामन्तम्) निकलते हुए (तं, अनु) उसके पीछे २ (प्राणः) प्राण (उत्क्रामति) निकलता है (उत्क्रामन्तम्) निकलते हुए (प्राणं, अनु) प्राणके

पीछे २ (सर्वे) सब (प्राणाः) प्राण (उत्क्रामन्ति) निकलते हैं (सविज्ञानः) विज्ञानवाला (भवति) होता है (सविज्ञानम्, एव) सविज्ञानकी ओरको ही (अन्ववक्रामति) जाता है (विद्याकर्मणी) विद्या और कर्म (तं, समन्वारभेते) उसके पीछे २ जाते हैं (पूर्वप्रज्ञा, च) पहली प्रज्ञा भी [अनुगच्छति] पीछे २ जाती है २

(भावार्थ)-जब चक्षु तैजसके साथ एकरूप होजाता है तब मरनेको पड़ाहुआ प्राणी देखता नहीं है, ऐसा पास बैठे हुए मनुष्य कहते हैं । जब नासिका तैजसके साथ एकरूप होजाती है तब कहते हैं, कि-यह सूँघता नहीं । जब जीभ तैजसके साथ एकीभूत होजाती है तब कहते हैं, कि-यह स्वाद नहीं लेता है । जब वाणी तैजसके साथ एकताको पाजाती है तब कहते हैं, कि-यह बोलता नहीं है । जब कान लिङ्गात्माके साथ एकरूप होजाते हैं तब कहते हैं, कि-यह सुनता नहीं है । जब मन तैजसके साथ एकताको पाजाता है तब कहते हैं, कि यह सङ्कल्प विकल्प नहीं करता है । जब त्वचा तैजसके साथ एकीभूत होजाती है तब कहते हैं, कि-इसको स्पर्शका ज्ञान नहीं रहा और जब बुद्धि तैजसके साथ एकरूप होजाती है तब कहते हैं कि-यह जानता नहीं है । वह लिङ्ग उपाधिवाला इस मरनेको पड़ेहुएके हृदय-छिद्रका नाड़ीमुख स्वरूपी स्थान चैतन्यज्योतिसे प्र[illegible] देहको विषय करनेवाली बुद्धिवृत्ति स्पष्ट प्रकाशित होता है । उस प्रकाशसे यह लिङ्गशरीरी उपाधिवाला आत्मा, यदि आदित्य लोककी प्राप्तिका निमित्तरूप कर्म वा चिन्तवन होता है तो नेत्रोंमेंको होकर निकलता है और यदि ब्रह्मलोककी प्राप्तिका निमित्तरूप उपा-

सना वा कर्म होता है तो ब्रह्मरन्ध्रमेंको निकलता है अथवा ध्यान कर्मके अनुसार कान आदि शरीरके अन्य अवयवोंमेंको होकर निकलता है। निकलते हुए उस जीवके पीछे२ ही प्राण चलता है और जीवके पीछे २ उत्क्रमण करनेवाले उस प्राणके साथ ही साथ वाणी आदि सब प्राण (इन्द्रियें) भी उत्क्रमण करजाते हैं। मरनेवालेके उत्क्रमणके समयमें स्वप्नको समान उसको आगेको होनेवाले संबन्धका ज्ञान होजाता है। इसके पीछे भी वह भावी संबन्धके विशेष ज्ञानसे प्रकाशित हुए अपने मार्गमेंको चलाजाता है। ऐसे अन्य शरीरमें को जानेवाले विज्ञात्माके पीछे २ विद्या कहिये आत्मज्ञानसे भिन्न प्रमाण अप्रमाणसे उत्पन्न हुआ विहित निषिद्ध आदिरूप ज्ञान और शुभ अशुभ कर्म जाता है तथा पूर्व प्रज्ञा कहिये कर्मफलके भोगसे उत्पन्न हुआ संस्कार भी जाता है, इसकारण मनुष्योंको शुभ कर्मका ही अनुष्ठान करना चाहिये ॥ २ ॥

तद्यथा तृणजलायुका तृणस्यान्तं गत्वाऽन्यमाक्रममाक्रम्याऽऽत्मानमुपसꣳहरत्येवमेवायमात्मेदꣳ शरीरं निहत्याऽविद्यां गमयित्वाऽन्यमाक्रममाक्रम्याऽऽत्मानमुपसꣳहरति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ -((तत्) उसमें (यथा) जैसे (तृणजलायुका) तृणके ऊपरकी जोंक (तृणस्य) तृणके (अन्तम्) छोरको (गत्वा) प्राप्त होकर (अन्यम्) दूसरे (आक्रमम्) आधारको (आक्रम्य) आश्रय लेकर (आत्मानम्) अपनेको (उपसंहरति) संकुचित कर लेती है (एवमेव) इसप्रकार ही (अयम्) यह (आत्मा)

आत्मा (इदम्) इस (शरीरम्) शरीरको (निहत्य) हतकर (अविद्याम्) अविद्याको (गमयित्वा) पहुँचा कर (अन्यम्) दूसरे (आक्रमम्) आधारको (आक्रम्य) ग्रहण करके (आत्मानम्) अपनेको (उपसंहरति) संकुचित कर लेता है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-इसमें दृष्टान्त कहते हैं, कि-जिसप्रकार तिनुकों पर रहनेवाली जोंक तृणके सिरे पर पहुँच कर दूसरे तृणरूप आधारका आश्रय लेकर अपनेको संकुचित कर लेती है अर्थात् अपने पिछले भागको आगेके भागमें को सकोड़लेती है, इसप्रकार ही यह आत्मा इस शरीर को हनकर अर्थात् अचेत करके अन्य शरीररूप आधार को वासनाके द्वारा ग्रहण करके उसमें अपना सङ्कोच कर लेता है अर्थात् 'अहम्' इस आत्मभावको पाजाता है ॥ ३ ॥

तद्यथा पेशस्कारी पेशसो मात्रामपादायान्यन्नवतरं कल्याणतरꣳरूपं तनुत एवमेवायमात्मेदꣳ शरीरं निहत्याविद्यां गमयित्वाऽन्यन्नवतरं कल्याणतरꣳरूपं कुरुते पित्र्यम्वा गान्धर्वं वा दैवं वा प्राजापत्यं वा ब्राह्मम्वाऽन्येषां वा भूतानाम् ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) उसमें (यथा) जैसे (पेशस्कारी) सुनार (पेशसः) सोनेके (मात्राम्) टुकड़ेको (अपादाय) लेकर (अन्यत्) दूसरे (नवतरम्) नवीन (कल्याणतरम्) अधिक शोभावाले (रूपम्) रूपको (तनुते) रचता है (एवमेव) इसप्रकार ही (अयम्)

यह (आत्मा) आत्मा (इदम्) इस (शरीरम्) शरीर को (निहत्य) हनन करके (अविद्याम्) अविद्याको (गमयित्वा) पहुँचा कर (अन्यत्) दूसरे (पित्र्यम्) पितृलोकके भोगके योग्य (वा) या (गान्धर्वम्) गन्धर्वलोकके भोगके योग्य (वा) या (दैवम्) देवताके भोगने योग्य (वा) या (प्राजापत्यम्) विराट्के भोगने योग्य (वा) या (ब्राह्मम्) हिरण्यगर्भके लोकके भोगने योग्य (वा) या (अन्येषाम्) और (भूतानाम्) भूतोंके (नवतरम्) अधिक नये (कल्याणतरम्) परम शोभावाले (रूपम्) शरीरको (कुरुते) रचलेता है ॥४॥

(भावार्थ)— नये शरीरका आरम्भ पूर्व शरीरमेंके सूक्ष्म पांच भूतोंसे होता है, इस पर यह दृष्टान्त है, कि-जैसे सुनार सोनेका एक टुकड़ा लेकर उसके द्वारा पहली रचना से भिन्न नयीर रचनाकी परिपाटीके अनुसार परम सुन्दर नया आभूषण बना लेता है, ऐसे ही यह संसारी जीवात्मा भी इस पाञ्चभौतिक शरीरको पञ्चत्वको प्राप्त कराकर अर्थात् अचेतन करके इस पञ्चभूतके द्वारा ही दूसरा पितृलोकके भोगके उपयोगी या गन्धर्वलोकके भोगके योग्य अथवा देवलोकके उपयोगी या विराट्लोकके भोगके योग्य अथवा हिरण्यगर्भ लोकके उपयोगी या मनुष्य पशु पक्षी आदि अन्य सकल प्राणियोंके भोगके योग्य अधिक नया परम सुन्दर शरीर धारण करलेता है ॥ ४ ॥

स वा अयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमयो मनोमयः प्राणमयश्चक्षुर्मयः श्रोत्रमयः पृथिवीमय आपोमयो वायुमय आकाशमयस्तेजोमयोऽतेजोमयः

कामममयोऽकाममयः क्रोधमयोऽक्रोधमयो धर्म-मयोऽधर्ममयः सर्वमयस्तद्यदेतदिदंमयोऽदोमय इति यथाकारी यथाचारी तथा भवति साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवति पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन । अथो खल्वाहुः काममय एवाऽयं पुरुष इति स यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तदभिसंपद्यते ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (वै) प्रसिद्ध (अयम्) यह (आत्मा) जीवात्मा (ब्रह्म, वै) ब्रह्म ही (विज्ञानमयः) बुद्धिप्राय (मनोमयः) मनोमय (प्राणमयः) प्राणमय (चक्षुर्मयः) नेत्रमय (श्रोत्रमयः) श्रोत्रमय (पृथिवीमयः) पृथिवीमय (आपोमयः) जलमय (वायुमयः) वायुमय (आकाशमय) आकाशमय (तेजोमयः) तेजोमय (अतेजोमयः) अतेजमय (काममयः) काममय (अकाममयः) अकाममय (क्रोधमयः) क्रोधमय (अक्रोधमयः) अक्रोधमय (धर्ममयः) धर्ममय (अधर्ममयः) अधर्ममय [भवति] होता है (यत्) क्योंकि (एतत्) यह (इदंमयः) ग्रहण किये जाते हुए विषयादिमय है (तत्) तिससे (अदोमयः) कार्यसे अनुमेय भावनारूप विषयादिमय है (इति) इस प्रकार (सर्वमयः) सर्वमय है (यथाकारी) जैसा करनेवाला (यथाचारी) जैसे आचरण वाला [भवति] होता है (तथा) तैसा (भवति) होजाता है (साधुकारी) अच्छा करनेवाला (साधुः) अच्छा (भवति)

होता है (पापकारी) पाप करनेवाला (पापः) निकृष्ट (भवति) होता है (पुण्येन, कर्मणा) पुण्य कर्मके द्वारा (पुण्यः) पुण्यवान् (पापेन) पापके द्वारा (पापः) पापवाला (भवति) होता है (अथ) और (खलु) निश्चय (अयं,पुरुषः) यह पुरुष (काममयः, एव) काम मय ही है (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं (सः) वह (यथाकामः) जैसी इच्छा वाला (भवति) होता है (तत्क्रतुः) तैसे निश्चय वाला (भवति) होता है (यत्क्रतुः) जैसे निश्चय वाला (भवति) होता है (तत्कर्म) तैसा कर्म (कुरुते) करता है (यत्कर्म) जैसा कर्म (कुरुते) करता है (तत्) तैसा (अभिसम्पद्यते) पाता है ॥ ५ ॥

(भावार्थ)—ऐसा यह जीव उपाधिसे रहित दशा में तो ब्रह्म ही है परन्तु बुद्धिकी एकताके अभ्याससे बुद्धिमय मनकी समीपतासे मनोमय प्राणके सम्बन्धसे प्राणमय नेत्रके संबन्धसे रूप आदिको देखने समय नेत्रमय शब्दको सुननेके समय श्रोत्रमय पार्थिव शरीरका आरम्भ होने पर पृथिवीमय, जलीय शरीरके आरम्भमें जलमय, वायव्य शरीरके आरम्भमें वायुमय आकाशीय शरीरके आरम्भमें अकाशमय, देवशरीरके आरम्भमें तेजोमय, पशु प्रेतादि शरीरका आरम्भ होते समय अतेजोमय, चित्तमें किसी वस्तुकी अभिलाषा होते समय काममय, विवेक आदिसे उस कामनाकी शान्ति होजाने पर चित्तकी शान्त दशामें अकाममय, अशान्त कामनामें कोई बाधा डालदेय तो वह काम ही क्रोधरूप बनजाता है उस समय क्रोधमय, वह क्रोध किसी उपायसे शान्त होजाय तो उस चित्तके प्रशान्त

समय अक्रोधमय शुभकर्ममें प्रवृत्ति होनेके समय धर्ममय, अशुभकर्ममें प्रवृत्ति होनेके समय अधर्ममय और व्यक्त अव्यक्तरूप जगत् धर्म अधर्मका कार्य है इस कारण इन दोनोंके सद्भावमें सर्वमय होता है। क्योंकि-यह आत्मा इदंमय कहिये ग्रहण कियेजाते हुए विषयादिमय है इसकारण ही अदोमय कहिये कार्यसे अनुमान किये हुए भावनारूप विषयादिमय है। जो जैसा करने वाला होता है तथा जैसे आचरण वाला होता है वह वैसा ही होजाता है। अच्छा कर्म करने वाला अच्छा (पितृलोक आदिमें) होता है और पाप करने वाला निकृष्ट स्थावर आदिमें होता है। पुण्यकर्मसे पुण्यवान् होता है और पापकर्म से पापात्मा होता है। पुण्य पाप ही संसारका असाधारण कारण है और उसके पूर्वपक्षरूप में अविद्यासे उत्पन्न हुआ काम ही संसारका असाधारण कारण है, यह सिद्धान्त है। बन्धमोक्षके स्वरूप को जाननेमें चतुर पुरुष कहते हैं, कि—यह पुरुष काममय ही है अर्थात् विषय आदिकी इच्छाके अनुसार प्रतीत होता है ऐसा यह आत्मा जैसी इच्छा करता है वैसा ही इसका निश्चय होजाता है जैसा निश्चय होता है वैसा ही कर्म करता है और जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है ॥ ५ ॥

तदेष श्लोको भवति। तदेव सक्तः सह कर्मणैति लिङ्गं मनो यत्र निषक्तमस्य। प्राप्यान्तं कर्मणस्तस्य यत्किञ्चेह करोत्ययम्। तस्माल्लोकात्पुनरेत्यस्मै लोकाय कर्मण इति नु कामयमानो ऽथाकामयमानो योऽकामो निष्काम आप्तकाम

आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) उसमें (एषः) यह (श्लोकः) श्लोक है (अस्य) इसका (लिङ्गम्) लिङ्गरूप (मनः) मन (यत्र) जिसमें (निषक्तम्) आसक्त [भवति] होता है (सक्तः) आसक्त हुआ (कर्मणा, सह) कर्म के साथ (तदेव) उसको ही (एति) प्राप्त होता है (अयम्) यह (इह) यहां (यत्किञ्च) जो कुछ (करोति) करता है (तस्य) उस (कर्मणः) कर्मके (अन्तम्) अन्तको (प्राप्य) पाकर (तस्मात्) तिस (लोकात्) लोकमें (पुनः) फिर (कर्मणे) कर्म करनेके लिए (अस्मै लोकाय) इस मनुष्य लोकमें (एति) आता है (इति) इस प्रकार (नु) निश्चय (कामयमानः) कामना करता हुआ [संसरति] भ्रमण करता है (अथ) और (अकामयमानः) कामना न करता हुआ [न संसरति] भ्रमण नहीं करता है (यः) जो (अकामः) इच्छारहित-कामनाओंसे रहित (आप्तकामः) प्राप्त काम (आत्मकामः) आत्माकी ही इच्छा वाला [अस्ति] है (तस्य) उसके (प्राणाः) प्राण (न) नहीं (उत्क्रामन्ति) उत्क्रमण करते हैं (ब्रह्म सन्) ब्रह्म होता हुआ (ब्रह्म, एव) ब्रह्मको ही (अप्येति) प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

(भावार्थ)-इस अर्थको पुष्ट करनेवाला यह श्लोक है, कि-इस उभरी हुई इच्छा वालेका आत्माको जानेका साधनरूप मन जिस फलमें आसक्त होजाता है, उसमें आसक्त होकर फलका आरम्भ करनेवाले कर्मके साथ उस फलकी ओरको ही जाता है । इस फल

में आसक्त हुआ कामनावाला मनुष्य यहां जो कुछ करता है उस कर्मका भोगके द्वारा अन्त पा कर उस लोकमेंसे फिर इस लोकमें कर्म करनेके लिये आता है। इस प्रकार कामनावाला निस्सन्देह भ्रमण करता फिरता है। इसप्रकार जाग्रत् और स्वप्न अवस्थाका सिद्धान्त रूप संसार दिखाया अब सुषुप्तिमें कहेहुए रूपके सिद्धान्तभूत साधनसहित मोक्षको कहते हैं, कि-जो कामनारहित है वह संसारमें भ्रमण नहीं करता है। जो बाहरी शब्दादि विषयोंकी इच्छासे रहित और अन्तः-करणमेंकी वासनारूप इच्छासे रहित, सर्वात्मभावसे जिसको सब भोग प्राप्त हो गये हैं ऐसा प्राप्तकाम और केवल आत्माकी ही इच्छा वाला है उसके वाक् आदि प्राण, कामनाके अभावसे कर्मका अभाव होजाने पर गमनका कारण न रहनेसे उत्क्रमण नहीं करते हैं। इस कारण जीवित दशामें ब्रह्म ही होता है और शरीरका त्याग होने पर भी ब्रह्मको ही प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

तदेष श्लोको भवति--यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुत इति। तद्यथाहिनिर्ल्वयनी वल्मीके मृता प्रत्यस्ता शयीतैवमेवेदꣳ शरीरꣳ शेतेऽथायमशरीरोऽमृतः प्राणो ब्रह्मैव तेज एव सोऽहं भगवते सहस्रं ददामीति होवाच जनको वैदेहः ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) उसमें (एषः) यह (श्लोकः) मंत्र (भवति) होता है (यदा) जब (अस्य) इसके

(हृदि) हृदयमें (स्थिताः) रहने वाली (ये) जो (सर्वे) सब (कामाः) वासनायें (प्रमुच्यन्ते) विनष्ट होजाती हैं (अथ) तब (मर्त्यः) मरण धर्म वाला (अमृतः) अविनाशी (भवति ; होता है (अत्र) यहां (ब्रह्म) ब्रह्मको (समश्नुते) पाता है (इति) यह सिद्धान्त है (तत्) उसमें (यथा) जैसे (अहिनिर्ल्वयनी) साँपकी कैंचुली (मृता) सर्पके शरीरसे अलग हुई (वल्मीके) बमई पर (प्रत्यस्ता) छोड़ी हुई (शयीत) पड़ी रहे (एवमेव) इस प्रकार ही (इदम्) यह (शरीरम्) शरीर (शेते) पड़ा रहता है (अथ) तब (अशरीरः) शरीर-रहित (अमृतः) अविनाशी (प्राणः) प्राण (ब्रह्म एव) ब्रह्म ही है (तेजः, एव) विज्ञान ज्योतीरूप ही है (सः) वह (अहम्) मैं (भगवते) आपके लिये (सहस्रम्) सहस्र गौएँ (ददामि) देता हूं इति) इसप्रकार (वैदेहः) विदेहराज (जनकः) जनक (उवाच,ह) कहता हुआ ॥७॥

(भावार्थ)- ऊपर कहे हुए मोक्ष और उसके साधन के विषय में यह मंत्र है-जब इस आत्मकाम ब्रह्मवेत्ता के हृदयमेंकी इन्द्रियोंकी प्रवृत्तिकी कारणरूप सकल वासनायें मूल सहित विनष्ट होजाती हैं तब वह पहले मरणधर्मवाला होकर भी अब अविनाशी होजाता है और इस शरीरमें रहता हुआ भी ब्रह्मको पाजाता है अर्थात् ब्रह्मरूप होजाता है। जीवन्मुक्तके शरीर और जीवन्मुक्तके विषयमें यह दृष्टान्त है, कि-जैसे सर्पकी केंचली सर्पके शरीरसे जुदा होकर बमई पर सर्पकी अना-त्मभावसे छोड़ी हुई पड़ी रहती है और सर्पकी उसमें अहन्ता ममता नहीं होती है, इस प्रकार ही जीवन्मुक्त का अनात्म भावसे त्यागा हुआ यह स्थूल तथा सूक्ष्म

शरीर, मरे हुएके सा सम्बन्ध रहित स्थित होता है, और यह जीवन्मुक्त भी सर्पको समान शरीरमें अहन्ता ममता रहित होता है, इस कारण शरीर रहित, अविनाशी, प्राण (साक्षी) क्षुधा आदिसे रहित ब्रह्म ही होता है और विज्ञान ज्योतिरूप ही होता है । हे याज्ञवल्क्यजी जिसको आपने यह उपदेश दिया है ऐसा मैं आपको सहस्र गौएँ देता हूं, यह बात उस विदेहराज जनकने कही ॥ ७ ॥

तदेते श्लोका भवन्ति । अणुः पन्था विततः पुराणो माᳫँस्पृष्टोऽनुवित्तो मयैव । तेन धीरा अपियन्ति ब्रह्मविदः स्वर्गं लोकमित ऊर्ध्वं विमुक्ताः ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) उसमें (एते) ये (श्लोकाः) श्लोक (भवन्ति) होते हैं (अणुः) अतिसूक्ष्म (विततः) विस्तारवाला (पुराणः) प्राचीन (पन्थाः) मार्ग (माम्) मुझको (स्पृष्टः) प्राप्त है (मया, एव) मेरे द्वारा ही (अनुवित्तः) अनुभव किया गया है (ब्रह्मविदः) बुद्धिमान (धीराः) निर्द्वन्द्व पुरुष (विमुक्ताः) विमुक्त हुए (इतः) इससे (ऊर्ध्वम्) अनन्तर (तेन) उस मार्गके द्वारा (स्वर्गम्) परमानन्दरूप (लोकम्) स्वप्रकाशको (अपियन्ति) पाते हैं ॥ ८ ॥

(भावार्थ)-ब्रह्मवेत्ताकी मोक्ष होती है, इस विषय में श्लोक हैं, स्थूल आदि सकल विशेषताओंसे रहित होनेके कारण अणु कहिये अतिसूक्ष्म, दुर्विज्ञेय होनेके कारण असीम और नित्यरूप वेदसे प्रकाशित होनेके कारण प्राचीन, ऐसा एकात्मभाव (अद्वैत) ज्ञान मार्ग

शास्त्रके द्वारा मुझे प्राप्त होगया है और मैंने विद्याका परिपाक होने पर परमफलरूपसे पाकर उसका अनुभव भी करलिया है । दूसरे भी जो बुद्धिमान् द्वन्द्वों के पार होकर जीवित दशामें ही विमुक्त (जीवन्मुक्त) होगये हैं उन्होंने भी इस शरीरका पात होजानेके अनन्तर इस ब्रह्मविद्याके मार्गसे परमानन्दरूप स्वप्रकाश को पाया ॥ ८ ॥

तस्मिञ्छुक्लमुत नीलमाहुः पिङ्गलᳬहरितं लोहितञ्च । एष पन्था ब्रह्मणा हानुवित्तस्तेनैति ब्रह्मवित्पुण्यकृत्तैजसश्च ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मिन्) उसमें (शुक्लम्) शुद्ध (नीलम्) नील (पिङ्गलम्) पीला (हरितम्) हरा (च) और (लोहितम्) लाल (आहुः) कहते हैं (एषः) यह (पन्थाः) मार्ग (ब्रह्मणा, ह) ब्रह्मवेत्ताके द्वारा ही (अनुवित्तः) निष्ठाका पहुँचाया हुआ है (तेन) उस मार्ग के द्वारा (पुण्यकृत्) पुण्यवान (च) और (तैजसः) शुद्ध सत्त्वगुणवाला (ब्रह्मवित्) ब्रह्मवेत्ता (एति) पहुँचता है ॥ ९ ॥

(भावार्थ)-कोई कहते हैं, कि इस ब्रह्मज्ञानरूप मोक्षमार्गमें शुद्ध ब्रह्म है, कोई कहते हैं शरद्ऋतुके आकाशकी समान नील है, कोई कहते हैं अग्निकी ज्वालाकी समान पीला है, कोई कहते हैं वैदूर्यमणिकी समान हरा है और कोई कहते हैं जपाके फूलकी समान लाल है, परन्तु यह सब उपासनाका मार्ग है, मोक्षमार्ग नहीं है और जो रङ्ग कहे यह ब्रह्मका स्वरूप नहीं है, किन्तु आदित्यके तथा उसको पानेकी साधनरूप नाड़ियों

के रूप हैं। इस ज्ञानमार्ग के चरमफलकी प्राप्तिरूप जिष्ठा को पहुँचा हुआ तीनों एषणाओंका त्यागी ब्राह्मण ही इस ज्ञानमार्ग की महिमाको जानता है। अन्य पुण्यवान् और शुद्धसत्त्वगुणी ब्रह्मवेत्ता भी ब्रह्मविद्याके मार्ग से इस मोक्षको पाजाते हैं ॥ ६ ॥

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते । ततो-भूय इव ते तमो य उ विद्यायाꣳरताः ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ (ये) जो (अविद्याम्) अविद्याको (उपासते) सेवा करते हैं (अन्धम्) अदर्शनरूप (तमः) अज्ञानमें (प्रविशन्ति) प्रवेश करते हैं (ये) जो (विद्यायाम्) विद्यामें (रताः) आसक्त हैं (ते) वे (ततः, उ) उससे भी (भूय इव) अधिकसे (तमः) अज्ञानान्धकारमें [प्रविशन्ति] प्रवेश करते हैं ॥ १० ॥

(भावार्थ)- जो कर्मरूप अविद्याकी सेवा करते हैं वे उस अज्ञानान्धकारमें जा पड़ते हैं जिसमें आत्माका दर्शन नहीं होता अर्थात् मोह आदिमें जा पड़ते हैं, और जो उपनिषद्की उपेक्षा करके कर्मको ही प्रयोजन बनानेवाली कर्मकाण्डरूप विद्यामें ही आसक्त रहते हैं वे मानो उससे भी बढ़े हुए संसाररूप अज्ञानान्धकारमें जा पड़ते हैं ॥ १० ॥

अनन्दा नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः । ताꣳस्ते प्रेत्याभिगच्छन्त्यविद्वाꣳसोऽबुधो जनाः ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ (अन्धेन) अज्ञानरूप (तमसा) अन्धकार करके (आवृताः) व्याप्त (ते) वे (लोकाः)

लोक (अनन्दाः, नाम) तीव्र दुःखवाले प्रसिद्ध हैं [ये] जो (अविद्वांसः) अविद्वान्) (अबुधः) आत्मज्ञान-शून्य (जनाः) प्राणी हैं (ते) वे (प्रेत्य) मर कर (तान्) उनको (अभिगच्छन्ति) प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥

(भावार्थ)-जो लोक अज्ञानरूप अन्धकारसे भरे हुए हैं वे लोक तीव्र दुःखसे भरेहुए हैं यह प्रसिद्ध है। जो मनुष्य अविद्वान् और आत्मज्ञानसे शून्य होते हैं वे मर कर उन लोकोंमें जाते हैं ॥ ११ ॥

आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः ।
किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत् ॥१२॥

अन्वय और पदार्थ(अयम्) यह (पूरुषः) पुरुष (अस्मि) हूं (इति) इसप्रकार (आत्मानम्) आत्माको (चेत्) जो (विजानीयात्) जाने (किम्) क्या (इच्छन्) चाहता हुआ (कस्य) किसके (कामाय) प्रयोजनके लिये (शरीरं, अनु) शरीरके पीछे (संज्वरेत्) सन्ताप पावे ॥ १२ ॥

(भावार्थ)-आत्मज्ञानमें निष्ठा रखनेवालेके सकल क्लेश नष्ट होजाते हैं, यह दिखाते हुए कहते हैं, कि-यह परमात्मस्वरूप पुरुष मैं ही हूं, इसप्रकार हृदयमें रहने वाले क्षुधा आदिसे रहित जो कोई चित्तशुद्धि होजानेसे जानजाय तो वह सबके आत्मस्वरूप होजानेके कारण कौनसे फलको चाहता हुआ और किस प्रयोजनके लिये शरीरके तापके पीछे संताप पावे? अर्थात् वह सर्वात्मदर्शी शरीर आदिके दुःखके कारणसे दुःखी नहीं होता है १२

यस्यानुवित्तः प्रतिबुद्ध आत्माऽस्मिन् सन्देहे

गहने प्रविष्टः । स विश्वकृत्स हि सर्वस्य कर्त्ता तस्य लोकः स उ लोक एव ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ- (अस्मिन्) इस (गहने) विषम (सन्देघे) शरीरमें (प्रविष्टः) प्रवेश किया हुआ (आत्मा) आत्मा (यस्य) जिसका (अनुवित्तः) प्राप्त करा हुआ (प्रतिबुद्धः) साक्षात् किया हुआ (अस्ति) है (सः) वह (विश्वकृत्) विश्वका कर्त्ता है (हि) क्योंकि (सः) वह (सर्वस्य) सबका (कर्त्ता) कर्त्ता है (तस्य) उस का (लोकः) आत्मा है (सः, उ) वह भी (लोकः, एव) आत्मा ही है ॥ १३ ॥

(भावार्थ)-जिसमें आध्यात्मिक आदि अनेकों अनर्थ लग रहे हैं ऐसे इस विषम शरीरमें जलमें प्रतिबिम्ब रूपसे प्रवेश किये हुए सूर्यकी समान प्रविष्ट हुए आत्मा को जिसने शास्त्रके द्वारा पालिया है तथा मैं ब्रह्म हूँ इसप्रकार अपिरोक्षरूपसे साक्षात्कार कर लिया है वह विद्वान् विश्वका कर्त्ता है, क्योंकि—वह सबका कर्त्ता है और आत्मामें कल्पित होनेके कारण सब प्रपञ्च उस विद्वान्का आत्मा है तथा वह विद्वान् भी सब प्रपञ्चका आत्मा है ॥ १३ ॥

इहैव सन्तोऽथ विद्मस्तद्वयं न चेदवेदिर्महती विनष्टिः । ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःख-मेवापियन्ति ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(इह एव) यहां ही (सन्तः) होते हुए (वयम्) हम (अथ) अब (तत्) उसको (विद्म) जानते हैं (चेत्) जो (न) नहीं [विदितवन्तः] जानते [तदा] तो (अवेदिः) अज्ञानी (स्याम्) होता (महती

बड़ाभारी (विनष्टिः) विनाश (स्यात्) होता (ये) जो (तत्) उसको (विदुः) जानते हैं (ते) वे (अमृताः) मुक्त (भवन्ति) होते हैं (अथ) और (इतरे) दूसरे (दुःखं, एव) दुःखको ही (अपियन्ति) प्राप्त होते हैं॥

(भावार्थ)-इस शरीरमें ही हमने अज्ञानरूप निद्रा से जागकर ब्रह्मतत्त्वको आत्मरूप जान लिया है, यदि न जाना होता तो अज्ञानी रहते और अनन्त कालके लिये जन्ममरणादिरूप बड़ी भारी हानि होजाती। जो उस ब्रह्म को जानते हैं वे मुक्त होजाते हैं और जो नहीं जानते हैं वे जन्म मरणादि रूप दुःखको ही पाते हैं १४

यदैतमनुपश्यत्यात्मानं देवमञ्जसा । ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यदा) जब (अनु) पीछे (एतम्) इस (आत्मानम्) आत्मा (देवम्) प्रकाशरूप (भूतभव्यस्य) भूतभविष्यत् के (ईशानम्) स्वामीको (अञ्जसा) साक्षात् (पश्यति) देखता है (ततः) तिससे (न) नहीं (विजुगुप्सते) निन्दा करता है ॥१५॥

(भावार्थ)-जब परमदयालु गुरुदेवकी कृपाको पाकर इस प्रकाशरूप और त्रिकालके स्वामी हृदयमें स्थित आत्माका साक्षात् दर्शन करता है तब वह सबको आत्मरूपमें देखता है, इसकारण किसीकी निन्दा नहीं करता है ॥ १५ ॥

यस्मादर्वाक् सम्वत्सरोऽहोभिः परिवर्तते । तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतम् ॥ १६॥

अन्वय और पदार्थ-(सम्वत्सरः) वर्ष (अहोभिः)

दिनोंके द्वारा (यस्मात्) जिससे (अर्वाक्) अन्य विषयवाला होकर (परिवर्त्तते) आवाजाई करता रहता है (तत्) उस (ज्योतिषाम्) ज्योतियोंके (ज्योतिः) प्रकाशक (अमृतम्) अमरण धर्मवालेको (आयुः) आयु रूपसे (देवाः, ह) प्रसिद्ध देवता (उपासते) उपासना करते हैं ॥ १६ ॥

(भावार्थ)-यह सम्वत्सर रूप काल अपने अवयव रूप दिनरात्रियोंके द्वारा सकल कार्योंका परिच्छेद (विभाग) करता हुआ ईश्वरसे अन्य विषयों पर ही अपनी सत्ता चलाता रहता है, ईश्वरका परिच्छेद नहीं कर सकता, ऐसे सूर्य चन्द्रादि ज्योतियोंके प्रकाशक, अमरणधर्मी ईश्वरको आयुरूप मानकर देवता इसकी उपासना करते हैं, इसकारण आयुकी कामनावालोंको ऐसे गुणवाले ब्रह्मकी उपासना करनी चाहिये ॥ १६ ॥

यस्मिन्पञ्च पञ्चजना आकाशश्च प्रतिष्ठितः ।
तमेव मन्य आत्मानं विद्वान्ब्रह्मामृतोऽमृतम् १७

अन्वय और पदार्थ-(यस्मिन्) जिसमें (पञ्च) पाँच (पञ्चजनाः) पञ्चजन (च) और (आकाशः) आकाश (प्रतिष्ठितः) स्थित है (तमेव) उस ही (आत्मानम्) आत्माको (ब्रह्म) ब्रह्म (अमृतम्) अमृत (विद्वान्) जाननेवाला [अहम्] मैं (अमृतः) अविनाशी हूँ [इति] ऐसा (मन्ये) मानता हूँ ॥ १७ ॥

(भावार्थ)-जिस ब्रह्ममें गन्धर्व, पितर, देवता, असुर और राक्षस ये पाँच देवयोनियें अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पञ्चजन अथवा सूर्य, प्राण, चक्षु, श्रोत्र और मन ये पांच स्थित हैं तथा जिस

में सूत्रात्माका आधार अव्याकृत आकाश स्थित है उस ही आत्माको ब्रह्म और अमृत जाननेवाला मैं अविनाशी हूँ ऐसा मानता हूँ ॥ १७ ॥

प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो ये विदुः ते निचिक्युर्ब्रह्म पुराण-मग्र्यम् ॥ १८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्राणस्य) प्राणके (प्राणम्) प्राण (उत) और (चक्षुषः) नेत्रके (चक्षुः) नेत्र (उत) और (श्रोत्रस्य) कानके (श्रोत्रम्) कान (मनसः) मनके (मनः) मन [आत्मानम्] आत्माको (ये) जो (विदुः) जानते हुए (ते) वे (अग्र्यम्) सबसे पहले के (पुराणम्) प्राचीन (ब्रह्म) ब्रह्मको (निचिक्युः) निश्चय करते हुए ॥ १८ ॥

(भावार्थ)-यह आत्मा प्राणका प्राण, नेत्रका नेत्र, कानका कान और मनका मन है, जिन्होंने ऐसा जान लिया है उन्होंने प्राचीन और सबसे पहले वर्त्तमान ब्रह्म को निश्चितरूपसे जानलिया है ॥ १८ ॥

मनसैवाऽनुद्रष्टव्यं नेह नानाऽस्ति किञ्चन ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति १९

अन्वय और पदार्थ-(अनु) पीछे (मनसा, एव) मनके द्वारा ही (द्रष्टव्यम्) साक्षात् करना चाहिये (इह) यहां (किञ्चन) कुछ भी (नाना) भेद (न, अस्ति) नहीं है (यः) जो (इह) यहाँ (नानाइव) भेदसा (पश्यति) देखता है (सः) वह (मृत्योः) मृत्युसे (मृत्युम्) मृत्युको (आप्नोति) पाता है ॥ १९ ॥

(भावार्थ)-गुरुसे उपदेश पानेके अनन्तर उस उपदेशके संस्कारवाले पुरुषको मनसे ही ब्रह्मका साक्षात्कार करना चाहिये, अन्य साधनसे नहीं करना चाहिये यहां साक्षात् करने योग्य ब्रह्ममें वास्तवमें कुछ भी भेद नहीं है, जो इस ब्रह्ममें भेदसा देखता है वह जन्म लेकर मरता है और फिर वार वार जन्म लेकर मरता है ॥ १६ ॥

एकधैवानुद्रष्टव्यमेतदप्रमेयं ध्रुवम् । विरजः पर आकाशादज आत्मा महान् ध्रुवः ॥ २० ॥

अन्वय और पदार्थ-(एकधा, एव) एक प्रकार ही (अनुद्रष्टव्यम्) साक्षात् करने योग्य है (एतद्) यह (अप्रमेयम् अप्रमेय है (ध्रुवम्) निर्विकार है (विरजः) मलसे रहित (आकाशात) आकाशसे (परः) पर (अजः) जन्मरहित (आत्मा) आत्मा (महान्) बड़ा (ध्रुवः) अविनाशी [अस्ति] है ॥ २० ॥

(भावार्थ)-क्योंकि-ब्रह्म आकाशकी समान एक प्रकार ही श्रवणादिसे साक्षात् करने योग्य है, इसकारण यह ब्रह्म अप्रमेय तथा निर्विकारी है। धर्माधर्मरूप मलसे रहित, अव्याकृत रूप आकाशसे भिन्न, जन्मरहित, सबका आत्मा, महान् और अविनाशी है ॥ २० ॥

तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः । नानुध्यायाद्बहूञ्छब्दान् वाचो विग्लापनꣳहि तदिति ॥ २१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(धीरः) बुद्धिमान् (ब्राह्मणः) मुमुक्षु (तमेव) उसको ही (विज्ञाय) जानकर (प्रज्ञाम्)

प्रज्ञाको (कुर्वीत) करे (बहून्) बहुतसे (शब्दान्) शब्दोंको (न) नहीं (अनुध्यायात्) चिन्तवन करे हि) क्योंकि (तत्) वह (वाचः) वाणीको (विग्लापनम्) श्रमदेना है (इति) ऐसा जाने ॥ २१ ॥

(भावार्थ)-बुद्धिमान् मुमुक्षु पुरुष इस आत्माको ही शास्त्र और उपदेशसे जानकर, स्वरूपका साक्षात्कार रूप प्रज्ञाको प्राप्त करे, बहुतसे शब्दोंका अर्थात् बहुतसे ग्रन्थोंका पारायण न करता रहे, क्योंकि बहुतसे शब्दोंको पढ़ना तो वाणीका निरर्थक परिश्रम ही देना है ॥ २१ ॥

स वा एष महानज आत्मा योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु य एषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिञ्छेते सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः स न साधुना कर्मणा भूयान्नो एवाऽसाधुना कनीयानेष सर्वेश्वर एष भूताधिपतिरेष भूतपाल एष सेतुर्विधरण एषां लोकानामसंभेदाय तमेतं वेदाऽनुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेनैतमेव विदित्वा मुनिर्भवत्येतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्त्येतद्धस्म वै तत्पूर्वे विद्वाꣳसः प्रजां न कामयन्ते किं प्रजया करिष्यामो येषां नोऽयमात्माऽयं लोक इति ते ह स्म पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाऽथ भिक्षाचर्यं चरन्ति या ह्येव पुत्रैषणा सा वित्तैषणा या वित्तैषणा सा

लोकैषणोभे ह्येते एषणे एव भवतः । स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो न हि गृह्यतेऽशीर्यो न हि शीर्यतेऽसङ्गो न हि सज्यतेऽसितो न व्यथते न रिष्यत्येतमु हैवैते न तरत इत्यतः पापमकरवमित्यतः कल्याणमकरवमित्युभे उ हैवैष एते तरति नैनं कृताकृते तपतः ॥ २२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(वै) प्रसिद्ध (सः) वह (एषः) यह (आत्मा) आत्मा (महान्) बड़ा (अजः) अजन्मा है (यः) जो (अयम्) यह (विज्ञानमयः) विज्ञानमय (प्राणेषु) प्राणोंके समीपमें है (यः) जो (एषः) यह (अन्तर्हृदये) हृदयके भीतर (आकाशः) आकाश है (तस्मिन्) उसमें (शेते) स्थित है (सर्वस्य, वशी) सबको वशमें रखनेवाला (सर्वस्य) सबका (ईशानः) नियामक (सर्वस्य) सबका (अधिपतिः) पालन कर्त्ता है (सः) वह (साधुना) शास्त्रमें विहित (कर्मणा) कर्मके द्वारा (भूयान) बड़ाहुआ (न) नहीं (असाधुना) निषिद्ध कर्मके द्वारा (कनीयान्, एव) निकृष्ट भी (न) नहीं [भवति] होता है (एषः) यह (सर्वस्य) सबका (ईश्वरः) नियामक है (एषः) यह (भूताधिपतिः) भूतोंका स्वामी है (एषः) यह (भूतपालः) भूतोंका रक्षक है (एषः) यह (एषाम्) इन (लोकानाम्) लोकोंका (असंभेदाय) सांकर्य न होनेके लिये (विधरणः) व्यवस्था रखनेवाला (सेतुः) सेतुरूप है (ब्राह्मणाः) द्विज (तम्) उस (एतम्) इसको (वेदानुवचनेन) वेदके नित्य स्वाध्यायके द्वारा (यज्ञेन) यज्ञ

के द्वारा (दानेन) दानके द्वारा (अनाशकेन) निष्काम-भावसे किये हुए (तपसा) तपके द्वारा (विविदिषन्ति) जानना चाहते हैं (एनं, एव) इसको ही (विदित्वा) जानकर (मुनिः) योगी (भवति) होता है (एतम्, एव) इस ही (लोकम्) लोकको (इच्छन्तः) चाहते हुए (प्रव्राजिनः) मुमुक्षु पुरुष (प्रव्रजन्ति) कर्मोंको सर्वथा त्याग देते हैं (तत्) सो (एतत्) यह (वै, ह) प्रसिद्ध ही है (पूर्वे) पहले (विद्वांस) आत्मज्ञानी (प्रजाम्) प्रजाको (न) नहीं (कामयन्ते, स्म) चाहतेहुए (येषाम्) जिन (नः) हमारा (अयं, आत्मा) यह आत्मा (अयं लोकः) यह पुरुषार्थ है [ते, वयम्] वे हम (प्रजया) प्रजाके द्वारा (किम्) क्या (करिष्यामः) करेंगे (इति, ह) इस कारणसे ही (ते) वे (पुत्रैषणायाः, च) पुत्रकी अभिलाषासे भी (वित्तैषणायाः च) धनकी अभिलाषा से भी (लोकैषणायाः, च) प्रतिष्ठाकी अभिलाषासे भी (व्युत्थाय) चित्तकी वृत्तिको हटाकर (अथ) अनन्तर (भिक्षाचर्यम्) भिक्षाके लिये विचरण (चरन्ति, स्म) करते हुए (या) जो (हि) प्रसिद्ध (पुत्रैषणा) पुत्रकी वासना है (सा, एव) वह ही (वित्तैषणा) धनकी वासना है (या) जो (वित्तैषणा) धनकी वासना है (सा) वह (लोकैषणा) लोकप्रसिद्धिकी वासना है (एते) ये (उभे, हि) दोनों ही (एषणे, एव) वासना ही (भवतः) हैं (सः) वह (एषः) यह (नेति, नेति) उपाधियोंका निषेध करके कहा हुआ (आत्मा) आत्मा (अगृह्यः) ग्रहण करनेयोग्य नहीं है (हि) क्योंकि (न) नहीं (गृह्यते) ग्रहण किया जाता है (अशीर्यः) अपक्षयसे रहित हैं (हि) क्योंकि (न) नहीं (शीर्यते)

अपक्षीण होता है (असङ्गः) असङ्ग है (हि) क्योंकि (न) नहीं (सज्यते) सम्बद्ध होता है (असितः) बन्धनरहित है (न) नहीं (व्यथते) व्यथा पाता है (न) नहीं (रिष्यति) विनष्ट होता है (इत्यतः) इस कारणसे (पापम्) पापको (अकरवम्) करताहुआ (इत्यतः) इसकारणसे (कल्याणम्) शुभकर्मको (अकरवम्) करताहुआ (एते, उ) ये प्रसिद्ध (एतम्, उ, ह) इस परमात्मस्वरूपको (न) नहीं (तरतः) व्याप्त होते हैं (एषः) यह (एते, उभे, उ, ह) इन दोनोंको ही (तरति) पार होजाता है (एनम्) इसको (कृताकृते) किया हुआ और न किया हुआ (न) नहीं (तपतः) सन्ताप देते हैं ॥ २२ ॥

(भावार्थ)–वह जो ज्योतिर्मय प्राणोंमें रमताहुआ महान् अजन्मा आत्मा है, जो कि–विज्ञानमय कहिये बुद्धिकी वृत्तिके अनुसार प्रतीत होनेवाला इन्द्रियोंके मध्यमें रहता है और जो हृदयके भीतर बुद्धिके आश्रय स्व अव्याकृत आकाशमें बुद्धि आदिके साक्षिरूपसे स्थित है वह इन्द्र आदि सबको वशमें रखनेवाला सब का नियामक और सबका पालन करनेवाला है। वह शास्त्रविहित उत्तम कर्मसे बड़प्पन नहीं पाता और शास्त्रमें निषिद्ध अधर्म कर्मके द्वारा छोटापन नहीं पाता है, क्योंकि-वह धर्म आदि सबका नियामक है, स्थावर जङ्गम सकल भूतोंका प्रेरक है तथा इन उत्पन्न हुए भूतों का रक्षक है और वह विद्वान् इन भू आदि लोकोंमें सांकर्य (घोलमेल) न होजाय, इसलिये व्यवस्था रखनेवाला सेतुरूप है। द्विज ऐसे इस उपनिषदमें वर्णन कियेहुए पुरुषको नित्यके स्वाध्यायरूप वेदानुवचनसे,

द्रव्ययज्ञ और ज्ञानयज्ञसे, श्रद्धा आदिके साथ किये हुए दानसे और फलकी इच्छाके त्यागरूप-नाश न करनेवाले तपसे जानना चाहते हैं। इन कहेहुए उपायोंसे बुद्धिकी शुद्धि होकर आत्मस्वरूपसे जाननेकी अभिलाषा होने पर श्रवण मनन आदिके क्रमसे मंत्र ब्राह्मणमें कहेहुए इस आत्माको जानकर योगी होजाना है। इस आत्मारूप लोकको ही जानना चाहते हुए मुमुक्षु पुरुष सकल कर्मों को त्याग देते हैं। सब कर्मोंको त्यागनेमें यह स्पष्ट कारण प्रसिद्ध ही है। पहले आत्मज्ञानी प्रजा (सन्तान) को नहीं चाहते थे। उन्होंने क्रमसे तीनों लोकोंके साधनरूप पुत्र कर्म और अपरविद्याका अनुष्ठान नहीं किया। हमारा पुरुषार्थ तो यह नित्य समीप क्षुधारहित आत्मा ही है, हम पुत्रादिरूप प्रजाको लेकर क्या करेंगे? इस अभि-प्रायसे उन्होंने पुत्रवासना, द्रव्यवासना और लोकवासना से चित्तको हटालिया और श्रवण आदिसे अवकाश मिलने पर शरीरकी स्थितिके लिये भिक्षार्थ विचरते रहे जो पुत्रवासना है वही साधनरूप होनेसे द्रव्यवासना है और जो द्रव्यवासना है वही लोकवासना है। तथापि साधन साध्यके भेदसे ये द्रव्यवासना और लोकवासना दो ही हैं। नेति नेति कहकर सकल उपाधियोंके निषेध के द्वारा कहा हुआ आत्मा इन्द्रियोंके और अन्तःकरण के द्वारा ग्रहण नहीं कियाजाता, इसलिये उसको कोई ग्रहण नहीं कर सकता, अपक्षयसे रहित है इसकारण उसका क्षय नहीं होता। असङ्ग है, इसकारण उसका किसीके साथ सम्बन्ध नहीं होता है। बन्धनरहित है इसकारण उसको न व्यथा होती है और न उसका नाश

होता है। यह देहसंबन्धी अज्ञानके कारण राग द्वेषमें पड़कर, मैंने पाप किया है इसलिये मुझे नरक होगा ऐसा खेद तथा फलकी इच्छासे मैंने यज्ञ आदि शुभकर्म किया है इसकारण मुझे स्वर्ग मिलेगा, ऐसा यह हर्ष आत्मज्ञानीको नहीं होता है। यह ब्रह्मज्ञानी इन पाप पुण्यरूप दोनों कर्मोंके अवश्य ही पार होजाता है, इसकारण ही इस ब्रह्मवेत्ताको किया हुआ या न किया हुआ नित्य आदि कर्मका अनुष्ठान इष्टफल नहीं देता है और प्रत्यवाय आदि होजाने पर सन्ताप भी नहीं देता है ॥ २२ ॥

तदेतदृचाऽभ्युक्तम् । एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य न वर्धते कर्मणा नो कनीयान् तस्यैव स्यात् पदवित्तं विदित्वा न लिप्यते। कर्मणा पापकेनाति ! तस्मादेवम्विच्छान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वाऽऽत्मानं पश्यति सर्वमात्मानं पश्यति नैनं पाप्मा तरति सर्वं पाप्मानं तरति नैनं पाप्मा तपति सर्वं पाप्मानं तपति विपापो विरजोऽविचिकित्सो ब्राह्मणो भवत्येष ब्रह्मलोकः सम्राडेनं प्रापितोऽसीति होवाच याज्ञवल्क्यः सोऽहं भगवते विदेहान् ददामि मा चाऽपि सह दास्यायेति ॥ २३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) सो (एतत्) यह (ऋचा) मंत्रने (अभ्युक्तम्) कहा है (ब्राह्मणस्य) ब्रह्मवेत्ताका (एषः) यह (महिमा) महिमा (नित्यः) सदा रहता

है (कर्मणा) कर्मसे (न, वर्धते) बढ़ता नहीं है (कनीयान्) कम (नो) नहीं होता है (तस्य, एव) उसका ही (पदवित्) स्वरूपको जाननेवाला (स्यात्) होय (तम्) उसको (विदित्वा) जानकर (पापकेन, कर्मणा) पापकर्मसे (न, लिप्यते) लिप्त नहीं होता है (इति) ऐसा है । (तस्मात्) तिससे (एवंवित्) ऐसा जाननेवाला (शान्तः) बाहरी इन्द्रियोंके व्यापारसे उपरत (दान्तः) अन्तःकरणको वशमें रखनेवाला (उपरतः) एषणाओंसे रहित (तितिक्षुः) सहनशील (समाहितः) एकाग्र चित्तवाला (भूत्वा) होकर (आत्मनि, एव) कार्यकरणसंघातमें ही (आत्मानम्) चेतनपुरुषको (पश्यति) देखता है (सर्वम्) सर्वरूप (आत्मानम्) आत्माको (पश्यति) देखता है (एनम्) इसको (पाप्मा) पाप (न) नहीं (तरति) लगता है (सर्वम्) सब (पाप्मानम्) पापको (तरति) लाँघजाता है (एनम्) इसको (पाप्मा) पाप (न) नहीं (तपति) सन्ताप देता है (सर्वम्) सब (पाप्मानम्) पापको (तपति) भस्म करता है (विपापः) पापरहित (विरजः) निर्मल (अविचिकित्सः) संशयशून्य (ब्राह्मणः) ब्रह्मवेत्ता (भवति) होता है (एषः) यह (ब्रह्मलोकः) ब्रह्मरूप लोक है (सम्राट्) हे राजन् (एनम्) इसको (प्रापितः, असि) प्राप्त कराया गया है (इति) ऐसा (याज्ञवल्क्यः ह) प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य (उवाच) कहते हुए (सः) वह (अहम्) मैं (भगवते) आपके लिये (विदेहान्) विदेह-देशोंको (ददामि) देता हूं (च) और (सह) साथ ही (दास्याय) दासकर्मके लिये (माम् , अपि) अपने आपको भी [ददामि] देता हूं (इति) ऐसा कहा २३

(भावार्थ)-यह ब्राह्मणमें कहा हुआ वस्तुतत्त्व मंत्र में भी कहा है । ब्रह्मज्ञानीका यह स्वरूपभूत महिमा स्वाभाविकरूपसे नित्य है, इसलिये यह शुभ कर्मसे बढ़ता नहीं है और अशुभकर्मसे घटता नहीं है, इस लिये मुमुक्षुको इस महिमाका स्वरूप जानना चाहिये । महिमाको जाननेवाला धर्मअधर्मरूप पापकर्मसे लिप्त नहीं होता है । आत्माका ऐसा महिमा है इसलिये आत्मा कर्मके और कर्मफलके संबन्धसे रहित है, ऐसा परोक्षरूपसे जाननेवाला बाहरी इन्द्रियोंके व्यापारसे उपराम पायाहुआ शान्त, जिसके अन्तःकरणकी तृष्णा निवृत्त होगयी है ऐसा दान्त, उपरत कहिये पुत्रैषणा वित्तैषणा और लोकैषणाको त्यागनेवाला, तितिक्षु कहिये जिसमें प्राणान्त न होजाय ऐसे शीतोष्णादि द्वन्द्वको सहन करनेवाला और आत्मामें एकाग्रता रखनेवाला होकर इस शरीरमें ही प्रत्यक् चेतनका साक्षात्कार करता है, सर्वरूप आत्माको ही देखता है, उससे भिन्न कुछ भी नहीं देखता है । इसप्रकार आत्माको देखनेवाले इस ब्रह्मज्ञानीको धर्म अधर्मरूप पाप नहीं लगता है, क्योंकि यह सकल पापोंको आत्मभावसे लाँघजाता है । इसको किया हुआ और न किया हुआ नित्यकर्म पाप अपने फलकी उत्पत्तिसे सन्ताप नहीं देता है, क्योंकि यह सकल पापको सर्वात्मदर्शनरूप अग्निसे भस्म कर डालता है । इसलिये ही वह धर्म अधर्मरूप पापसे रहित, कामरूप मलसे रहित और छिन्न होगये हैं संशय जिसके ऐसा मैं सर्वात्मा परब्रह्म हूं ऐसी निश्चित मतिवाला इस अवस्थामें मुख्य ब्रह्मवेत्ता होजाता है । हे चक्रवर्ती राजन् ! यह ब्रह्मरूप लोक है, यही तुमको प्राप्त कराया

है, ऐसा याज्ञवल्क्यने कहा, तब इस पर राजाने कहा कि-इसप्रकार आपने जिसको ब्रह्मभाव पर पहुँचाया है ऐसा मैं आपको अपने विदेहदेश और साथमें विदेहदेशके लोगों सहित अपनेको भी दासकी समान सेवा करनेके लिये अर्पण करता हूं ॥ २३ ॥

स वा एष महानज आत्माऽन्नादो वसुदानो विन्दते वसु य एवं वेद ॥ २४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (एषः) यह (वै) प्रसिद्ध (महान) बड़ा (अजः) अजन्मा (आत्मा) आत्मा (अन्नादः) अन्नका भक्षण करनेवाला (वसुदानः) धनका देनेवाला है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है [सः] वह (वसु) धनको (विन्दते) पाता है ॥ २४ ॥

(भावार्थ -जो राजा और मुनिके संवादमें कहेहुए इस महान्, प्रसिद्ध अजन्मा आत्माको सकल भूतोंमें रहकर सकल अन्नोंका भक्षक और धनका दाता है, ऐसा जानता है और अहंग्रहसे इसकी उपासना करता है वह प्रदीप्त जठराग्निवाला होता है और गौ घोड़े आदि धनको पाता है ॥ २४ ॥

स वा एष महानज आत्माऽजरोऽमृतोऽभयो ब्रह्माभयं ब्रह्माभयꣳहि वै ब्रह्म भवति य एवं वेद ॥ २५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वै) प्रसिद्ध (सः) वह (एषः) यह (महान्) परिच्छिन्न करनेवाली उपाधिसे रहित (अजः) जन्मरहित (आत्मा) आत्मा (अजरः) जरारहित (अमरः) मरणरहित (अमृतः) जिसमें जड़मूल

से अभाव होजाय ऐसे नाशसे रहित (अभयः) निर्भय (ब्रह्म) ब्रह्म है (अभयम्) भयशून्य (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (वै) प्रसिद्ध है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (हि) निश्चय (अभयं, ब्रह्म, वै) निर्भय ब्रह्म ही (भवति) होता है ॥ २५ ॥

(भावार्थ)-वह प्रसिद्ध, परिच्छिन्न करनेवाली उपाधिसे रहित, जन्मरहित आत्मा प्राणत्यागरूप मरणसे रहित, जिसमें वंशपरम्परा नहीं चलती ऐसे नाशसे रहित, भयकी हेतु अविद्याके नाश होजानेके कारण निर्भय तथा सत्य ज्ञान आनन्दस्वरूप ब्रह्म है। ब्रह्म निर्भय है यह सिद्धान्त शास्त्रमें और लोकमें प्रसिद्ध है। इस कहेहुए आत्माको जो ऐसा निर्भय रूप ब्रह्म जानता है वह निःसन्देह निर्भयरूप ब्रह्म ही होजाता है अर्थात् मुक्त होजाता है ॥ २५ ॥

चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थं ब्राह्मणं समाप्तम् ।

अथ ह याज्ञवल्क्यस्य द्वे भार्ये बभूवतुर्मैत्रेयी च कात्यायनी च तयोर्ह मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी बभूव स्त्रीप्रज्ञैव तर्हि कात्यायन्यथ ह याज्ञवल्क्योऽन्यद्वृत्तमुपाकरिष्यन् ॥ १ ॥ मैत्रेयीति होवाच याज्ञवल्क्यः प्रव्रजिष्यन् वा अरेऽहमस्मात्स्थानादस्मि हन्त तेऽनया कात्यायन्याऽन्तं करवाणीति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अनन्तर (याज्ञवल्क्यस्य, ह) प्रसिद्ध याज्ञवल्क्यकी (मैत्रेयी) मैत्रेयी (च) और (कात्यायनी, च) कात्यायनी भी (द्वे) दो (भार्ये) स्त्रियें (बभूवतुः) थीं (तयोः) उन दोनोमें (मैत्रेयी,

ह) प्रसिद्ध मैत्रेयी (ब्रह्मवादिनी) ब्रह्मका कथन करने के स्वभाववाली (बभूव) थी (तर्हि) तो (कात्यायनी) कात्यायनी (स्त्रीप्रज्ञा, एव) स्त्रियोंकीसी बुद्धिवाली ही [बभूव] थी (अथ) अनन्तर (याज्ञवल्क्यः, ह) प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य (अन्यत्) दूसरे (वृत्तम्) बर्ताव को (उपाकरिष्यन्) ग्रहण करना चाहते हुए (अरे मैत्रेयि) हे मैत्रेयी ! (अहम्) मैं (अस्मात्) इस (स्थानात्) स्थानसे (वै) निश्चय (प्रव्रजिष्यन्) संन्यास लेनेवाला (अस्मि) हूं (हन्त) अनुमति दे (ते) तेरा (अनया, कात्यायन्या) इस कात्यायनीके साथ (अन्तं, करवाणि) विभाग करदूँ (इति) ऐसा (याज्ञवल्क्यः) प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य (उवाच) बोले ॥ १ ॥ २ ॥

(भावार्थ) संन्यास सहित आत्मज्ञान मोक्षका कारण है, इसकारण उपदेशके अनन्तर प्रतिज्ञा किये हुए अर्थको दृष्टान्तरूपसे दिखाते हैं, कि—याज्ञवल्क्य की मैत्रेयी और कात्यायनी नामकी दो स्त्रियें थी, उन दोनोंमें मैत्रेयी तो ब्रह्म विचारमें लगी रहती थी, परन्तु कात्यायनी सांसारिक स्त्रियोंकीसी बुद्धि रखती थी, गृहस्थीके कामकाजमें निपुण थी । कुछ समयके अनन्तर याज्ञवल्क्यने गृहस्थाश्रमको त्यागकर संन्यास आश्रममें प्रवेश करना चाहा और और अपनी जेठी स्त्री मैत्रेयी से कहनेलगे कि-अरी मैत्रेयी ! मैं अब गृहस्थको छोड़ कर संन्यास धारण करना चाहता हूँ, इसलिये तू मुझे अनुमति दे, तेरी इच्छा हो तो तेरा इस दूसरी स्त्री कात्यायनीके धनमेंसे विभाग करदूँ ? ॥ १ ॥ २ ॥

सा होवाच मैत्रेयी यन्नु म इयं भगोः सर्वा

पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात्स्यां न्वहं तेनाऽमृता ऽहो३नेति नेति होवाच याज्ञवल्क्यो यथैवोपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितꣳ स्यादमृतत्वस्य तु नाऽऽशास्ति वित्तेनेति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(भगोः) हे भगवन् (यत्) जो (नु) कदाचित्) (वित्तेन) धनसे (पूर्णा) भरीहुई (इयम्) यह (सर्वा) सब (पृथिवी) भूमि (मे) मेरी (स्यात्) हो (नु) तो (तेन) उससे (अहम्) मैं (अमृता) अविनाशी (स्याम्) होऊँ (आहो) या (न) नहीं (इति) ऐसा (सा) वह (ह) प्रसिद्ध (मैत्रेयी) मैत्रेयी (उवाच) बोली (न) नहीं (इति) ऐसा (याज्ञवल्क्यः ह) प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य (उवाच) बोले (यथा) जिस प्रकार (एव) प्रसिद्ध (उपकरणवताम्) साधनसम्पत्तिवालोंका (जीवितम्) जीवन (भवति) होता है (तथा, एव) वैसा ही (ते) तेरा (जीवितम्) जीवन (स्यात्) होगा (तु) परन्तु (वित्तेन) धनके द्वारा (अमृतत्वस्य) मोक्षकी (आशा) आशा (न) नहीं (अस्ति) है (इति) यह सूचित किया ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-यह बात सुनकर मैत्रेयीने बूझा, कि-हे भगवन् ! यदि कदाचित् धनसे भरीहुई यह संपूर्ण पृथिवी भी मुझे मिलजाय तो मैं उससे अविनाशी हो-जाऊँगी या नहीं ? इसके उत्तरमें याज्ञवल्क्यने कहा, कि-जिसप्रकार साधन सामग्रीवाले गृहस्थोंका जीवन सुखके प्राप्त करानेवाले सांसारिक भोगोंसे युक्त होता

है वैसा ही तेरा भी जीवन सुखभोगमें बीतजायगा, धनसे या धनसाध्य कर्मसे कभी मोक्षकी तो आशा ही नहीं करनी चाहिये ॥ ३ ॥

सा होवाच मैत्रेयी येनाऽहं नाऽमृता स्यां किमहं तेन कुर्यां यदेव भगवान् वेद तदेव मे ब्रूहीति ४

अन्वय और पदार्थ- (येन) जिससे (अमृता) अविनाशी (न) नहीं (स्याम्) होऊँ (तेन) उससे (अहम्) मैं (किम्) क्या (कुर्याम्) करूँ (भगवान्) आप (यत्) जो (एव) निश्चय रूपसे (वेद) जानते हैं (तत् एव) वही (मे) मेरे अर्थ (ब्रूहि) कहिये (इति) ऐसा (सा) वह (ह) प्रसिद्ध (मैत्रेयी) मैत्रेयी (उवाच) बोली ॥ ४ ॥

(भावार्थ) जिससे मैं अविनाशी नहीं हो सकती उस धनको लेकर मैं अपना कौनसा प्रयोजन सिद्ध करूँगी ? आप जिसको निश्चय मोक्षका साधन जानते हों वही मुझे बताइये यह उत्तर मैत्रेयीने दिया ॥ ४ ॥

स होवाच याज्ञवल्क्यः प्रिया वै खलु नो भवती सती प्रियमवृधद्धन्त तर्हि भवत्येतद्व्याख्यास्यामि ते व्याचक्षाणस्य तु मे निदिध्यासस्वेति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(भवती) तू (नः) हमारी (प्रिया) प्यारी (सती) पतिव्रता (प्रियं, वै) प्रियको ही (अवृधत्, खलु) निःसन्देह बढ़ाती हुई (हन्त) मैं प्रसन्न हूं (भवति) हे प्रिये ! (एतत्) यह (ते) तेरे लिये (व्या-

ख्यास्यामि) विस्तारसे कहूँगा (तु) परन्तु (व्याचक्षा-णस्य) व्याख्या करनेवाले (मे) मेरे [कथनम्] कथन को (निदिध्यासस्व) ध्यान देकर समझ (इति) ऐसा (सः) वह (याज्ञवल्क्यः, ह) प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य (उवाच) कहते हुए ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-याज्ञवल्क्यने कहा, कि-हे मैत्रेयी ! तू अबसे पहले भी मेरी प्रियतमा पतिव्रता पत्नी थी और इस समय भी मैं तेरे इस उत्तम विचारसे बड़ा प्रसन्न हूँ इसलिये यदि तुझे मोक्षका साधन जाननेकी इच्छा है तो मैं तुझसे मोक्षका साधन कहता हूँ, तू चित्तको सावधान करके मेरे कथनको सुन ॥ ५ ॥

स होवाच न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति । न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्या-त्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति । न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्त्यात्म-नस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति । न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति । न वा अरे पशूनां कामाय पशवः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पशवः प्रिया भवन्ति । न वा अरे ब्रह्मणः कामाय ब्रह्म प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय ब्रह्म प्रियं भवति । न वा अरे क्षत्रस्य कामाय क्षत्रं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय क्षत्रं प्रियं भवति

न वा अरे लोकानां कामाय लोकाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय लोकाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे देवानां कामाय देवाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय देवाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे वेदानां कामाय वेदाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय वेदाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे भूतानां कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्त्यात्मनस्तु कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति । न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति । आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञात इदँ सर्वं विदितम् ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः, ह) वह प्रसिद्ध (उवाच) बोला (अरे) अरी मैत्रेयी ! (वै) प्रसिद्ध है, कि (पत्युः, कामाय) पतिके प्रयोजनके लिये (पतिः, प्रियः, न, भवति) पति प्यारा नहीं होता है (तु) परन्तु (आत्मनः, कामाय) आत्माके प्रयोजनके लिये (पतिः, प्रियः भवति) पति प्यारा होता है (अरे) अरी (वै) प्रसिद्ध है कि (जायायै, कामाय) स्त्रीके प्रयोजनके लिये (जाया, प्रिया, न, भवति) स्त्री प्यारी नहीं होती है (तु) परन्तु) (आत्मनः, कामाय) आत्माके प्रयोजन के लिये (जाया, प्रिया, भवति) स्त्री प्यारी होती है ।

(अरे) अरी (वै) प्रसिद्ध है, कि (पुत्राणां, कामाय) पुत्रोंके प्रयोजनके लिये (पुत्राः, प्रियाः, न भवन्ति) पुत्र प्यारे नहीं होते हैं (तु) किन्तु (आत्मनः, कामाय) आत्माके प्रयोजनके लिये (पुत्राः, प्रियाः, भवन्ति) पुत्र प्यारे होते हैं । (अरे) अरी (वै) लोकमें प्रसिद्ध है, कि (वित्तस्य, कामाय) धनके प्रयोजनके लिये (वित्तं, प्रियं, न, भवति) धन प्यारा नहीं होता है (तु) किन्तु (आत्मनः, कामाय) आत्माके प्रयोजनके लिये (वित्तं, प्रियं, भवति) धन प्यारा होता है (अरे) अरी (वै) प्रसिद्ध है, कि (पशूनां कामाय) पशुओंके प्रयोजनके लिये (पशवः, प्रियाः, न, भवन्ति) पशु प्यारे नहीं होते हैं (तु) परन्तु (आत्मनः, कामाय) आत्माके प्रयोजन के लिये (पशवः, प्रियाः, भवन्ति) पशु प्यारे होते हैं (अरे) अरी (वै) प्रसिद्ध है कि (ब्रह्मणः, कामाय) ब्राह्मणजातिके प्रयोजनके लिये (ब्रह्म, प्रियं, न, भवति) ब्राह्मणजाति प्यारी नहीं होती है (तु) किन्तु (आत्मनः, कामाय) आत्माके प्रयोजनके लिये (ब्रह्म, प्रियं, भवति) ब्राह्मणजाति प्यारी होती है । (अरे) अरी (वै) प्रसिद्ध है कि (क्षत्रस्य, कामाय) क्षत्रियके प्रयोजनके लिये (क्षत्रं, प्रियं, न, भवति) क्षत्रियजाति प्रिय नहीं होती है (तु) किन्तु (आत्मनः, कामाय) आत्माके प्रयोजन के लिये (क्षत्रं, प्रियं, भवति) क्षत्रियजाति प्यारी होती है (अरे) अरी (वै) लोकमें प्रसिद्ध है कि (लोकानां, कामाय) लोकोंके प्रयोजनके लिये (लोकाः, प्रियाः, न, भवन्ति) लोक प्यारे नहीं होते हैं (तु) किन्तु (आत्मनः, कामाय) आत्माके प्रयोजनके लिये

(लोकाः, प्रियाः, भवन्ति) लोक प्यारे होते हैं (अरे) अरी (वै) लोकमें प्रसिद्ध है, कि (देवानां, कामाय) देवताओंके प्रयोजनके लिये (देवाः, प्रियाः, न, भवन्ति) देवता प्यारे नहीं होते हैं (तु) किन्तु (आत्मनः, कामाय) आत्माके प्रयोजनके लिये (देवाः, प्रियाः, भवन्ति) देवता प्यारे होते हैं (अरे) अरी (वै) प्रसिद्ध है, कि (वेदानां, कामाय) वेदोंके प्रयोजनके लिये (वेदाः, प्रियाः, न, भवन्ति) वेद प्यारे नहीं होते हैं (तु) किन्तु (आत्मनः, कामाय) आत्माके प्रयोजन के लिये (वेदाः, प्रियाः, भवन्ति) वेद प्यारे होते हैं। (अरे) अरी (वै) प्रसिद्ध है, कि-(भूतानां, कामाय) भूतोंके प्रयोजनके लिये (भूतानि, प्रियाणि, न, भवन्ति) भूत प्यारे नहीं होते हैं (तु) किन्तु (आत्मनः, कामाय) आत्माके प्रयोजनके लिये (भूतानि, प्रियाणि, भवन्ति) भूत प्यारे होते हैं। (अरे) अरी (वै) प्रसिद्ध है, कि (सर्वस्य, कामाय) सबके प्रयोजनके लिये (सर्वं, प्रियं, न, भवति) सब प्यारा नहीं होता है (तु) किन्तु (आत्मनः, कामाय) आत्माके प्रयोजनके लिये (सर्वं, प्रियं, भवति) सब प्यारा होता है (अरे) अरी (वै) प्रसिद्ध है, कि (आत्मा) आत्मा (द्रष्टव्यः) देखना चाहिये (श्रोतव्यः) सुनना चाहिये (मन्तव्यः) मनन करना चाहिये (निदिध्यासितव्यः) निश्चयपूर्वक ध्यान करना चाहिये (अरे, मैत्रेयि) अरी मैत्रेयी (खलु) निश्चयके साथ (आत्मनि) आत्माके (दृष्टे) देखने पर (श्रुते) सुनने पर (मते) मनन करने पर (विज्ञाते) विशेषरूप से जान लेने पर (इदम्) यह (सर्वम्) सब (विदितम्) जाना हुआ [भवति] होता है ॥ ६ ॥

(भावार्थ)-मोक्षके साधन आत्मज्ञानके अङ्गभूत वैराग्यका उपदेश करनेकी इच्छासे याज्ञवल्क्यजीने कहा कि-अरी मैत्रेयी ! लोकमें प्रसिद्ध है, कि-पतिके प्रयोजनके लिये पति प्यारा नहीं होता है, किन्तु आत्माके प्रयोजनके लिये पति प्यारा होता है । अरी ! प्रसिद्ध है, कि-स्त्रीके प्रयोजनके लिये स्त्री प्यारी नहीं होती है, किन्तु आत्माके प्रयोजनके लिये स्त्री प्यारी होती है । अरी ! प्रसिद्ध है, कि-पुत्रोंके प्रयोजनके लिये पुत्र प्यारे नहीं होते हैं, किन्तु आत्माके प्रयोजनके लिये पुत्र प्यारे होते हैं । अरी ! प्रसिद्ध है, कि-धनके प्रयोजनके लिये धन प्यारा नहीं होता है, किन्तु आत्माकी प्रीतिके लिये धन प्यारा होता है । अरी ! प्रसिद्ध है, कि-पशुओंके प्रयोजनके लिये पशु प्यारे नहीं होते हैं, किन्तु आत्माकी प्रीतिके लिये पशु प्यारे होते हैं । अरी ! प्रसिद्ध है, कि-ब्राह्मणजातिके प्रयोजनके लिये ब्राह्मणजाति प्यारी नहीं होती है, किन्तु आत्माके कारणसे ब्राह्मणजाति प्यारी होती है । अरी ! प्रसिद्ध है, कि-क्षत्रियजातिके प्रयोजनके लिये क्षत्रियजाति प्यारी नहीं होती है, किन्तु आत्माकी प्रीतिके कारण क्षत्रिय जाति प्यारी होती है । अरी मैत्रेयी ! प्रसिद्ध है, कि-स्वर्गादि लोकोंके प्रयोजनके लिये स्वर्गादि लोक प्यारे नहीं होते हैं, किन्तु आत्माकी प्रीतिके कारणसे स्वर्गादि लोक प्यारे होते हैं । अरी मैत्रेयी! प्रसिद्ध है कि-देवताओंके प्रयोजनके लिये देवता प्यारे नहीं होते हैं, किन्तु आत्माकी प्रीतिके निमित्तसे ही देवता प्यारे होते हैं । अरी मैत्रेयी ! प्रसिद्ध है, कि-वेदोंके प्रयोजनके लिये वेद प्यारे नहीं होते हैं, किन्तु आत्माके प्रयोजनके लिये वेद प्यारे होते हैं। अरी मैत्रेयी !

प्रसिद्ध है, कि-पृथिवी आदि सबोंके प्रयोजनके लिये सब प्यारे नहीं होते हैं, किन्तु आत्माके प्रयोजनके लिये सब प्यारे होते हैं। अरी मैत्रेयी! अन्य सबोंके प्रयोजनके लिये अन्य सब प्रिय नहीं होते हैं, किन्तु आत्माके प्रयोजनके लिये अन्य सब प्यारे होते हैं। इसप्रकार अन्यत्र जो कुछ प्रीति है वह आत्मसुखका साधन होनेके कारण गौणी प्रीति है और आत्मामें तो मुख्य प्रीति है, इसकारण अरी मैत्रेयी! परमप्रेमके स्थान आत्माका साक्षात्कार करना चाहिये आचार्य और शास्त्रसे सुनना चाहिये, युक्तियोंसे मनन करना चाहिये और निश्चयके साथ ध्यान करना चाहिये। अरी मैत्रेयी! इस आत्माका दर्शन, श्रवण, मनन, और निदिध्यासन (यह ऐसा ही है अन्यथा नहीं है इस प्रकार निश्चय) होजाने पर यह कल्पित सब जगत् विदित होजाता है ॥ ६ ॥

ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद क्षत्रं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः क्षत्रं वेद लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो लोकान् वेद देवास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान् वेद वेदास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो वेदान् वेद भूतानि तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो भूतानि वेद सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेदेदं ब्रह्मेदं क्षत्रमिमे लोका इमे देवा इमे वेदा इमानि भूतानीदꣳ सर्वं यदयमात्मा ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (आत्मनः, अन्यत्र) आ-

त्मासे अन्यत्र (ब्रह्म) ब्राह्मणजातिको (वेद) जानता है (तम्) उसको (ब्रह्म) ब्राह्मणजाति (परादात्) दूर करती है (यः) जो (आत्मनः, अन्यत्र) आत्मासे अन्यत्र (क्षत्रम्) क्षत्रियजातिको (वेद) जानता है (तम्) उसको (क्षत्रम्) क्षत्रियजाति (परादात्) दूर करती है (यः) जो (आत्मनः, अन्यत्र) आत्मासे अन्यत्र (लोकान्) लोकोंको (वेद) जानता है (तं, लोकाः, परादुः) उसको स्वर्गादि लोक दूर करते हैं (यः) जो (आत्मनः, अन्यत्र) आत्मासे अन्यत्र (देवान्, वेद) देवताओंको जानता है (तं, देवाः, परादुः) उसको देवता दूर कर देते हैं (यः) जो (आत्मनः, अन्यत्र) आत्मासे अन्यत्र (वेदान्, वेद) वेदोंको जानता है (तं वेदाः परादुः) उसको वेद दूर करते हैं (यः) जो (आत्मनः, अन्यत्र) आत्मासे अन्यत्र (भूतानि, वेद) भूतोंको जानता है (तं, भूतानि, परादुः) उसको भूत दूर कर देते हैं (यः) जो (आत्मनः, अन्यत्र) आत्मासे अन्यत्र (सर्वं, वेद) सबको जानता है (तं, सर्वं, परादात्) उसको सब दूर कर देते हैं (यत्) जो (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा है (इदम्) यह (ब्रह्म) ब्राह्मणजाति (इदं क्षत्रम्) यह क्षत्रियजाति (इमे, लोकाः) ये लोक (इमे देवाः) ये देवता (इमे वेदाः) ये वेद (इमानि, भूतानि) ये भूत (इदं, सर्वम्) यह सब [अस्ति] है ॥ ७ ॥

(भावार्थ)-जो ब्राह्मण ब्राह्मणजातिको अपनेसे विलग जानता है उसको ब्राह्मणजाति, यह हमें अपना नहीं समझता ऐसा जानकर अपनेसे दूर कर देती है ।

जो क्षत्रियजातिको अपनेसे विलग देखता है उसको क्षत्रियजाति दूर कर देती है। जो स्वर्गादि लोकोंको अपने आत्मासे जुदे जानता है उसको स्वर्गादि लोक दूर कर देते हैं। जो देवताओंको आत्मासे विलग जानता है उसको देवता दूर कर देते हैं। जो वेदोंको आत्मासे जुदे जानता है वेद उसकी उपेक्षा करते हैं। जो भूतों को आत्मासे भिन्न समझता है सकल भूत उसकी उपेक्षा करते हैं और जो सबको ही आत्मासे पृथक् समझता है, सब ही उसकी उपेक्षा करते हैं। ये ब्राह्मण ये क्षत्रिय, ये भू आदि लोक, ये सब देवता, ये सब वेद, ये सब भूत, एक बातमें कहें तो कहा हुआ और न कहा हुआ सब ही आत्ममय है, आत्मामें जुदा कुछ भी नहीं है। यह जगत् आत्मासे प्रकट हुआ है, आत्मा में स्थित है और अन्तमें आत्मामें ही विलीन होजायगा यह सब जगत् आत्माकी ही शक्ति वा विभूतिमात्र है ७

स यथा दुन्दुभेर्हन्यमानस्य न बाह्याञ्छब्दाञ्छक्नुयाद् ग्रहणाय दुन्दुभेस्तु ग्रहणेन दुन्दुभ्याघातस्य वा शब्दो गृहीतः ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (यथा) जैसे (दुन्दुभेः) नगाड़के (हन्यमानस्य) बजानेके समय (बाह्यान्) बाहरके (शब्दान्) शब्दोंको (ग्रहणाय) ग्रहण करने के लिये (न) नहीं (शक्नुयात्) समर्थ होगा (तु) परन्तु (दुन्दुभेः) दुन्दुभिके (वा) या (दुन्दुभ्याघातस्य) दुन्दुभिके आघातके (ग्रहणेन) ग्रहण करनेसे (शब्दः) शब्द (गृहीतः) ग्रहण कियाहुआ [भवति] होता है ८

(भावार्थ)-जिसप्रकार दण्ड आदिसे नगाड़ेको बजाने

पर उसमेंसे निकले हुए ऊँचे नीचे आदि शब्द अथवा बाहरके शब्द अलग२ नहीं समझ सकता केवल सामान्य आकारसे एकमात्र नगाड़ेका शब्द ही सुननेमें आता है नगाड़ेके व्यापक शब्दके ग्रहणके साथ२ और सब शब्दों का भी ग्रहण होजाता है, ऐसे ही स्फुरणरूप एकमात्र ब्रह्मके ज्ञानसे ही फुरेहुए सकल पदार्थोंका ज्ञान होजाता है, क्योंकि-वे उससे पृथक् नहीं हैं ॥ ८ ॥

स यथा शङ्खस्य ध्मायमानस्य न बाह्याञ्छब्दा ञ्छक्नुयाद् ग्रहणाय शङ्खस्य तु ग्रहणेन शङ्खध्मस्य वा शब्दो गृहीतः ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (यथा) जैसे (शंखस्य) शंखके (ध्मायमानस्य) बजाये जातेहुए (बाह्यान्) बाहरके (शब्दान्) शब्दोंको (ग्रहणाय) ग्रहण करनेके लिये (न) नहीं (शक्नुयात्) समर्थ होय (तु) परन्तु (शंखस्य) शंखके (वा) वा (शंखध्मस्य) शंखध्वनिके (ग्रहणेन) ग्रहणमें (शब्दः) शब्द (गृहीतः) ग्रहण किया हुआ [भवति] होता है ॥ ९ ॥

(भावार्थ)-जैसे बजतेहुए शंखकी ध्वनिको सुनते समय बाहरके और शब्द पृथक् २ सुनायी नहीं देते हैं, केवल शंखध्वनि ही सुनायी आती है। जैसे ग्रहणकी हुई शंखध्वनिके साथ दूसरे सामान्य विशेष शब्द सामान्य रूपसे ही गृहीत होते हैं, ऐसे ही एकमात्र आत्माके ज्ञान से ही सकल ज्ञान सिद्ध होजाते हैं ॥ ९ ॥

स यथा वीणायै वाद्यमानायै न बाह्याञ्छब्दा-ञ्छक्नुयाद् ग्रहणाय वीणायै तु ग्रहणेन वीणा-वादस्य वा शब्दो गृहीतः ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (यथा) जैसे (वीणायै, वाद्यमानायै) वीणाके बजाये जानेपर (बाह्यान्, शब्दान्) बाहरके शब्दोंको (ग्रहणाय) ग्रहण करनेके लिये (न) नहीं (शक्नुयात्; समर्थ होय (तु) परन्तु (वीणायै) वीणाके (वा) या (वीणावादस्य) वीणाके शब्दके (ग्रहणेन) ग्रहण करनेसे (शब्दः) शब्द (गृहीतः) ग्रहण किया हुआ [भवति] होता है॥ १० ॥

(भावार्थ)-जैसे वीणाके बजाये जाने पर पुरुष बाहर के अन्य शब्दोंको अलग नहीं सुन सकता, केवल वीणा के शब्दको ही सुनता है, दूसरे ऊँचे नीचे शब्द भी वीणाके शब्दके आकारमें ही गृहीत होते हैं, ऐसे ही एकमात्र आत्माके ज्ञानसे सकल ज्ञान सिद्ध होजाते हैं ॥

स यथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितस्य पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीष्टꣳ हुतमाशितं पायितमयञ्च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (यथा) जैसे (अभ्याहितस्य) चारों ओरसे लगाये हुए (आर्द्रैधाग्नेः) गीले इन्धनवाले अग्निमेंसे (पृथक्) नाना प्रकारके (धूमाः) धुएँ (विनिश्चरन्ति) निकलते हैं (एवं, वै) इसप्रकार

ही (अरे) अरी मैत्रेयी (अस्य) इस (महतः) अप-रिच्छिन्न (भूतस्य) परमार्थ वस्तुका (एतत्) यह (निःश्वसितम्) अनायासमें लिया हुआ श्वास सा है (यत्) जो (ऋग्वेदः) ऋग्वेद (यजुर्वेदः) यजुर्वेद (सामवेदः) सामवेद (अथर्वाङ्गिरसः) अथर्वाङ्गिरस (इतिहासः) इतिहास (पुराणम्) पुराण (विद्या) विद्या (उपनिषदः) उपनिषद् (श्लोकाः) श्लोक (सूत्राणि) सूत्र (अनुव्याख्यानानि) संक्षिप्त विवरण (व्याख्या-नानि) विस्तार पूर्वक विवरण (एतानि) ये (अस्य, एव) इसके ही (निश्वसितानि) निश्वास हैं ॥ ११ ॥

(भावार्थ)-जैसे प्रज्वलित कियेहुए गीले ईंधनवाले अग्निमेंसे भाँति २ के धुएँ निकलते हैं, हे मैत्रेयी ! इस प्रकार ही यह जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास (उर्वशी पुरूरवाका संवाद आदिरूप ब्राह्मणभाग) पुराण (जगत्की उत्पत्तिसे पहलेका तथा जगत्की उत्पत्ति आदिका वर्णन करनेवाला ब्राह्मणभाग) विद्या (नृत्य गीत आदिका वर्णन करनेवाला ब्राह्मणभाग), उपनिषद्, श्लोक (ब्राह्मणभागमेंके मंत्र) सूत्र (वस्तु को संक्षेपमें कहनेवाले वेदमन्त्र), अनुव्याख्यान (वस्तु को संक्षेपमें वचनोंकी व्याख्या), व्याख्यान (मंत्रोंके विस्तारके व्याख्यान) यह सब महामहिमावाले अपरि-च्छिन्न परमात्माका निश्वासरूप है, परमात्मासे निश्वा-सके समान अनायास ही प्रकट होगया है । परमात्मा का निश्वासरूप होनेसे वेद अर्थमें निरपेक्ष स्वतः-प्रमाण है, लौकिक अलौकिक सब प्रकारके ज्ञानका निदान है ॥ ११ ॥

स यथा सर्वासामपाᳩसमुद्र एकायनमेवᳩ

सर्वेषाᳪं स्पर्शानां त्वगेकायनमेवᳪं सर्वेषाᳪं रसानां जिह्वैकायनमेवᳪं सर्वेषाᳪं गन्धानां नासिके एकायनमेवᳪं सर्वेषाᳪं रूपाणां चक्षुरेकायनमेवᳪं सर्वेषाᳪं शब्दानाᳪं श्रोत्रमेकायनमेवᳪं सर्वेषाᳪं सङ्कल्पानां मन एकायनमेवᳪं सर्वासां विद्यानाᳪं हृदयमेकायनमेवᳪं सर्वेषां कर्मणाᳪं हस्तावेकायनमेवᳪं सर्वेषामानन्दानामुपस्थ एकायनमेवᳪं सर्वेषां विसर्गाणां पायुरेकायनमेवᳪं सर्वेषामध्वनां पादावेकायनमेवᳪं सर्वेषां वेदानां वागेकायनम् ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (यथा) जैसे (सर्वासाम्) सब (अपाम्) जलोंका (समुद्रः) समुद्र (एकायनम्) एक आश्रय है (एवम्) ऐसे ही (सर्वेषाम्) सब (स्पर्शानाम्) स्पर्शोंका (त्वक्) त्वचा (एकायनम्) एक आश्रय है (एवम्) ऐसे ही (सर्वेषाम्) सब (रसानाम्) रसोंका (जिह्वा) जीभ (एकायनम्) एक आश्रय है (एवम्) ऐसे ही (सर्वेषाम्, गन्धानाम्) सब गन्धों का (नासिके) नासिकाके दोनों छिद्र (एकायनम्) एक आश्रय है (एवम्) ऐसे ही (सर्वेषां, रूपाणाम्) सब रूपोंका (चक्षुः, एकायनम्) चक्षु एक आश्रय है (एवम्) ऐसे ही (सर्वेषां, शब्दानाम्) सब शब्दोंका (श्रोत्रं, एकायनम्) कान एक आश्रय है (एवम्) ऐसे ही (सर्वेषां, सङ्कल्पानाम्) सब सङ्कल्पोंका (मनः, एकायनम्) मन एक आश्रय है (एवम्) ऐसे ही (सर्वासां,

विद्यानाम्) सब विद्याओंका (हृदयं, एकायनम्) हृदय एक आश्रय है (एवम्) ऐसे ही (सर्वेषां, कर्मणाम्) सब कर्मोंका (हस्तौ, एकायनम्) हाथ एक आश्रय है (एवम्) ऐसे ही (सर्वेषां, आनन्दानाम्) सब आनन्दों का (उपस्थः) मूत्रेन्द्रिय (एकायनम्) एक आश्रय है (एवम्) ऐसे ही (सर्वेषां, विसर्गाणाम्) सब त्यागों का (पायुः, एकायनम्) गुदा एक आश्रय है (एवम्) ऐसे ही (सर्वेषां, अध्वनाम्) सब मार्गोंका (पादौ, एकायनम्) चरण एक आश्रय है (एवम्) ऐसे ही (सर्वेषां, वेदानाम्) सब वेदोंका (वाक्, एकायनम्) वाणी एक आश्रय है ॥ १२ ॥

(भावार्थ - जैसे नदी आदिके सब जलोंका समुद्र एक आश्रय है ऐसे ही कोमल कठोर आदि सब स्पर्शोंका त्वचा (त्वचाका विषय रूप स्पर्शसामान्य) एक आश्रय है, ऐसे ही सब रसोंका जिह्वा (जीभका विषयरूप रस-सामान्य) एक आश्रय है, ऐसे ही सब गन्धोंका नासिका (गन्धसामान्य) एक आश्रय है, ऐसे ही सब रूपोंका चक्षु (रूपसामान्य) एक आश्रय है, ऐसे ही सब शब्दों का श्रोत्र (शब्दसामान्य) एक आश्रय है (इन श्रोत्र आदिके विषयोंके सामान्योंका मनके विषय सङ्कल्पमें अन्तर्भाव होता है) ऐसे ही सब सङ्कल्पोंका मन (स-ङ्कल्पसामान्य) एक आश्रय है (इसका निश्चयमें अन्त-र्भाव होता है) ऐसे ही सब बुद्धि कहिये निश्चयोंका हृदय (निश्चयसामान्य) एक आश्रय है (यह निश्चय अपने कारणभूत प्रज्ञानघन ब्रह्ममें लीन होता है) ऐसे ही सब कर्मोंका हाथ (कर्मसामान्य) एक आश्रय है, ऐसे ही सब आनन्दोंका उपस्थ (आनन्दसामान्य) एक

आश्रय है, ऐसे ही सब त्यागोंका गुदा (त्यागसामान्य) एक आश्रय है, ऐसे ही सब गतियोंका चरण (गति-सामान्य) एक आश्रय है, ऐसे ही सब वेदों (शब्दों) का वाणी (शब्दसामान्य) एक आश्रय है (इन कर्मेन्द्रियों के सामान्योंका प्राणमें लय होता है और प्राणका कारण रूप ब्रह्ममें लय होता है ॥ १२ ॥

स यथा सैन्धवघनोऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नो रस-घन एवैवं वा अरेऽयमात्माऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवा-ऽनुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञाऽस्तीत्यरे ब्रवीमीति होवाच याज्ञवल्क्यः ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (यथा) जैसे (सैंधव-घनः) सेंधेका डला (अनन्तरः) अन्तररहित (अबाह्यः) बाहररहित (कृत्स्नः) सम्पूर्ण (रसघनः, एव) रस-घन ही है (एव, वै) इसप्रकार ही (अरे) अरी मैत्रेयी (अयं, आत्मा) यह आत्मा (अनन्तरः) अन्तर रहित (अबाह्यः) बाहररहित (कृत्स्नः) सब (प्रज्ञा-नघनः, एव) प्रज्ञानघन ही है (एतेभ्यः, भूतेभ्यः) इन भूतोंसे (समुत्थाय) सम्यक् प्रकार उठकर (तानि, अनु, एव) उनके पीछे ही (विनश्यति) विनष्ट होजाता है (अरे) अरी मैत्रेयी ! (प्रेत्य) मर कर (संज्ञा) चेत (न, अस्ति) नहीं रहता है (इति) ऐसा (ब्रवीमि) कहता हूं (इति) इसप्रकार (याज्ञवल्क्यः) याज्ञवल्क्य (उवाच, ह) कहता हुआ ॥ १३ ॥

(भावार्थ)-जैसे सेंधेकी बड़ीभारी शिला अन्तररहित बाहररहित सब रसघन ही होती है, ऐसे ही हे मैत्रेयी !

यह आत्मा अन्तर रहित बाहररहित सम्पूर्ण प्रज्ञानघन ही है । यह शरीर इन्द्रिय आदिके आकारमें परिणामको प्राप्त हुए उन भूतोंमेंसे सम्यक् प्रकार उठकर और इन भूतोंके विनाशके पीछे ही वह उठाहुआ जीवभाव विनाशको प्राप्त होता है । अरी मैत्रेयी ! शरीर इन्द्रियादिसे विमुक्त हुए ब्रह्मवेत्ताको शरीरत्यागके अनन्तर 'यह मेरा घर है, मैं सुखी हूं' ऐसा विशेषज्ञान (भेदभावका ज्ञान) नहीं होता है, मेरा यही कहना है । इस प्रकार याज्ञवल्क्यने अपनी स्त्रीको प्रसिद्ध परमार्थ दर्शन का उपदेश दिया ॥ १३ ॥

सा होवाच मैत्रेय्यत्रैव भगवान्मोहान्तमापीपिपन्न वा अहमिमं विजानामीति स होवाच न वा अरेऽहं मोहं ब्रवीम्यविनाशी वा अरेऽयमात्माऽनुच्छित्तिधर्मा ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(भगवान्) आप (मा) मुझको (अत्र एव) यहाँ ही (मोहान्तम्) मोहके मध्यमें (आपीपिपत्) पहुँचाते हुए (अहम्) मैं (इमम्) इस का (न, वै) नहीं (विजानामि) जानती हूं (इति) ऐसा (सा) वह (मैत्रेयी) मैत्रेयी (उवाच, ह) कहती हुई (अरे) अरी (अहम्) मैं (मोहम्) मोहको (न, वै) नहीं (ब्रवीमि) कहता हूँ (अरे) अरी (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (अविनाशी) अविकारी (अनुच्छित्तिधर्मा) अविनाशी धर्मवाला है ॥ १४ ॥

(भावार्थ) मैत्रेयीने कहा, कि—हे भगवन् ! आप तो मुझे इस प्रज्ञानघन वस्तुमें ही शरीरत्यागके अनन्तर

ज्ञान नहीं रहता, ऐसा कहकर मोह (गड़बड़) में डाल रहे हो, इससे तो मुझे आपके बताये हुए लक्षणोंवाले आत्माका विचार करने पर भी स्वरूपज्ञान नहीं होता। इस पर याज्ञवल्क्यजीने कहा कि अरी मैत्रेयी ! मेरे कहनेका तात्पर्य यह है, कि शरीरत्यागके अनन्तर उपाधिसे होनेवाले विशेष ज्ञान नहीं रहते हैं और प्रज्ञान घनका तो कभी नाश होता तो नहीं इसलिये मेरा यह कथन मोहमें डालनेवाला नहीं है । अरी मैत्रेयी ! यह आत्मा तो सदा अविकारी और अविनाशी है ॥ १४ ॥

यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति
तदितर इतरं जिघ्रति तदितर इतरꣳ रसयते
तदितर इतरमभिवदति तदितर इतरꣳ शृणोति
तदितर इतरं मनुते तदितर इतरꣳ स्पृशति
तदितर इतरं विजानाति यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवा-
ऽभूत्तत्केन कं पश्येत्तत्केन कं जिघ्रेत्तत्केन कꣳ
रसयेत्तत्केन कमभिवदेत्तत्केन कꣳ शृणुयात्तत्केन
कं मन्वीत तत्केन कꣳ स्पृशेत्तत्केन कं विजा-
नीयात् येनेदꣳ सर्वं विजानाति तं केन विजा-
नीयात्स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो न हि गृह्यते
ऽशीर्यो न हि शीर्यतेऽसङ्गो न हि सज्यतेऽसितो
न व्यथते न रिष्यति विज्ञातारमरे केन विजा-
नीयादित्युक्तानुशासनाऽसि मैत्रेय्येतावदरे
खल्वमृतत्वमिति होक्त्वा याज्ञवल्क्यो विजहार १५

अन्वय और पदार्थ-(यत्र) जब (हि) प्रसिद्ध (द्वैत-
मिव) द्वैतसा (भवति) होता है (तत्) तब (इतरः)
दूसरा (इतरम्) दूसरेको (पश्यति) देखता है (तत्)
तब (इतरः) दूसरा (इतरम्) दूसरेको (जिघ्रति)
सूंघता है (तत्, इतरः, इतरम्) तब दूसरा दूसरेको
(रसयते) चखता है (तत्, इतरः, इतरम्) तब दूसरा
दूसरेको (अभिवदति) बोलता है (तत्, इतरः, इतरम्)
तब दूसरा दूसरेको (शृणोति) सुनता है (तत्, इतरः,
इतरम्) तब दूसरा दूसरेको (मनुते) मनन करता है
(तत्, इतरः, इतरम्) तब दूसरा दूसरेको (स्पृशति)
स्पर्श करता है (तत्, इतरः, इतरम्) तब दूसरा
दूसरेको (विजानाति) जानता है (यत्र, तु) जब
तो (अस्य) इसको (सर्वम्) सब (आत्मा, एव)
आत्मा ही (अभूत्) हुआ (तत्) तब (केन) किसके
द्वारा (कम्) किस को (पश्येत्) देखे (तत्, केन, कम्)
तब किसके द्वारा किसको (जिघ्रेत्) सूँघे (तत्, केन,-
कम्) तब किसके द्वारा किसको (रसयेत्) स्वाद लेय
(तत्, केन, कम्) तब किसके द्वारा किसको (अभिवदेत्)
बोले (तत्, केन, कम्) तब किसके द्वारा किसका (शृणु-
यात्) सुने (तत्, केन, कम्) तब किसके द्वारा किसको
(मन्वीत) मनन करे (तत्, केन, कम्) तब किसके द्वारा
किसको (स्पृशेत्) छुए (तत्, केन, कम्) तब किसके द्वारा
किसको (विजानीयात्) जाने (येन) जिसके द्वारा
(इदम्) इस (सर्वम्) सबको (विजानाति) जानता
है (तम्) उसको (केन) किसके द्वारा (विजानीयात्)
जाने (सः) वह (एषः) यह (न इति, न इति) उपाधियों
का निषेध कर करके कहा हुआ (आत्मा) आत्मा (अगृह्यः)

ग्रहण नहीं किया जा सकता (हि) क्योंकि (न) नहीं (गृह्यते) ग्रहण किया जाता है (अशीर्यः) अक्षय है (हि) क्योंकि (न) नहीं (शीर्यते अपक्षीण होता है (असङ्गः) असंगः है (हि) क्योंकि (न) नहीं (सृज्यते) संलग्न होता है (असितः) अबद्ध है (न) नहीं (व्यथते) व्यथा पाता है (न) नहीं (रिष्यति) विनाश पाता है (अरे) अरी (विज्ञातारम्) विज्ञाता को (केन) किसके द्वारा (विजानीयात्) जाने (इति) इस प्रकार (उक्तानुशासना) दिया है उपदेश जिसको ऐसी (असि) है (अरे, मैत्रेयी) अरी मैत्रेयी (खलु) निश्चय (एतावत्) इतना ही (अमृतत्वम्) अमृतपना है (इति) ऐसा (उक्त्वा) कह कर (ह) प्रसिद्ध (याज्ञवल्क्यः) याज्ञवल्क्य (विजहार) विचरता हुआ ॥ १५ ॥

(भावार्थ)-जब अज्ञानकालमें एक ही आत्मामें प्रसिद्ध द्वैतसा प्रतीत होता है तब ब्रह्म से भिन्न देखने वाला ब्रह्मसे भिन्न नेत्रके द्वारा ब्रह्मसे भिन्न रूप आदि को देखता है,तब सूँघनेवाला नासिकासे गंधको सूँघता है,तब स्वाद लेनेवाला जीभसे रसका स्वाद लेता है,तब बोलने वाला वाणीसे बोलने योग्य शब्दोंको बोलता है, तब सुननेवाला कानसे सुनने योग्य शब्दोंको सुनता है, तब सङ्कल्प करनेवाला मनसे सङ्कल्प करने योग्य का सङ्कल्प करता है, तब स्पर्श करनेवाला त्वचा से स्पर्श करने योग्यका स्पर्श करता है, तब जानने वाला बुद्धि से जानने योग्य को जानता है । जब ज्ञानकाल में इस ब्रह्मवेत्ता को कर्त्ता, कर्म और कर्म फल आदि सब आत्मा ही होगया तब कौन किसके द्वारा किसको देखे, तब कौन किसके द्वारा किसको सूँघे, तब कौन किसके

द्वारा किसका स्वाद लेय, तब कौन किसके द्वारा क्या कहे? तब कौन किसके द्वारा क्या सुने? तब कौन किसके द्वारा किसका संकल्प करे, तब कौन किसके द्वारा किसको छुए, तब कौन किसके द्वारा किसको जाने ? जिस अविद्याकी दशामें अन्य अन्यको जानता है उस अवस्था में भी जिस कूटस्थके ज्ञान से लोग इस सब को जानते हैं उस साक्षी को किस करण के द्वारा कौन विज्ञाता जाने ? किसी के भी द्वारा कोई नहीं जान सकता। यह नेति नेति कहकर सकल उपाधियोंके निषेधके द्वारा कहा हुआ आत्मा इन्द्रियादि करणोंके द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता अतः इसको कोई ग्रहण नहीं कर पाता है, यह अपक्षय से रहित है अतः क्षीण नहीं होता, असंग है अतः इसका किसीके साथ सम्बन्ध नहीं होता है, बन्धनरहित है अतः न व्यथा पाता है और न नष्ट होता है । अरी मैत्रेयी ! जो अद्वितीय विद्या अवस्था का विज्ञाता है उस विज्ञाता को कौन किस द्वार से जाने ? कोई नहीं जान सकता। इस प्रकार तुझे मैंने क्रम से आत्मा के स्वरूप का उपदेश दे दिया। अरी मैत्रेयी ! निश्चय इतना ही मोक्षका साधन अद्वैत आत्मज्ञान है। इस प्रकार अपनी स्त्रीको उपदेश देकर याज्ञवल्क्यने संन्यास ले लिया ॥ १५ ॥

चतुर्थाध्यायस्य पंचमं ब्राह्मणं समाप्तम् ।

अथ व ॐ शः । पौतिमाष्यो गौपवनाद्गौपवनः पौतिमाष्यात्पौतिमाष्यो गौपवनाद्गौपवनः कौशिकात्कौशिकः कौण्डिन्यात्कौण्डिन्यः शाण्डिल्याच्छाण्डिल्यः कौशिकाच्च गौतमाच्च

गौतमः ॥ १ ॥ आग्निवेश्यादाग्निवेश्यो गार्ग्याद् गार्ग्यो गार्ग्याद् गार्ग्यो गौतमाद् गौतमः सैतवात्सैतवः पाराशर्यायणात्पाराशर्यायणो गार्ग्यायणाद्गार्ग्यायण उद्दालकायनादुद्दालकायनो जाबालायनाज्जाबालायनो माध्यन्दिनायनान्माध्यन्दिनायनः सौकरायणात्सौकरायणः काषायणात्काषायणः सायकायनात्सायकायनः कौशिकायनेःकौशिकायनिः २ घृतकौशिकाद्घृतकौशिकः पाराशर्यायणात्पाराशर्यायणः पाराशर्यात्पाराशर्यो जातूकर्ण्याज्जातूकर्ण्य आसुरायणाच्च यास्काच्चाऽऽसुरायणस्त्रैवणेस्त्रैवणिरौपजन्धनेरौपजन्धनिरासुरेरासुरिर्भारद्वाजाद्भारद्वाज आत्रेयादात्रेयो माण्टेर्माण्टिर्गौतमाद् गौतमो गौतमाद् गौतमो वात्स्याद्वात्स्यः शाण्डिल्याच्छाण्डिल्यःकैशोर्यात्काप्यात्कैशोर्यः काप्यः कुमारहारितात्कुमारहारितो गालवाद्गालवो विदर्भीकौण्डिन्याद्विदर्भीकौण्डिन्यो वत्सनपातोबाभ्रवाद्वत्सनपाद्बाभ्रवःपथः सौभरात्पन्थाः सौभरोऽयास्यादाङ्गिरसादयास्य आङ्गिरस आभूतेस्त्वाष्ट्रादाभूतिस्त्वाष्ट्रो विश्वरूपात्त्वाष्ट्राद्विश्वरूपस्त्वाष्ट्रोऽश्विभ्यामश्विनौ

दधीच आथर्वणा दध्यङ् आथर्वणोऽथर्वणो देवादथर्वा देवो मृत्योः प्राध्व ॐ सनात् मृत्युः प्राध्वॐ मनः प्रध्व ॐ सनात् प्रध्व ॐ सन एकर्षेरेकर्षिविप्रचित्तेर्विप्रचित्तिर्व्यष्टेर्व्यष्टिः सनारोः सनारुः सनातनात्सनातनःसनगात् सनगः परमेष्ठिनः परमेष्ठी ब्रह्मणो ब्रह्म स्वयंभु ब्रह्मणे नमः ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ- अथ) अब (वंशः) वंश (कथ्यते) कहा जाता है (पौतिमाष्यः) पौतिमाष्य (गौपवनात्) गौपवन से (गौपवनः) गौपवन (पौतिमाष्यात्) पौतिमाष्य से (पौतिमाष्यः) पौतिमाष्य (गौपवनात्) गौपवनसे (गौपवनः) गौपवन (कौशिकात्) कौशिक से (कौशिकः) कौशिक (कौण्डिन्यात्) कौण्डिन्यसे (कौण्डिन्यः) कौण्डिन्य (शाण्डिल्यात्) शाण्डिल्यसे (शाण्डिल्यः) शाण्डिल्य (कौशिकात्) कौशिकसे (च) और (गौतमाच्च) गौतमसे भी (गौतमः) गौतम ॥१॥ (आग्निवेश्यात्) आग्निवेश्यसे (आग्निवेश्यः) आग्निवेश्य (गार्ग्यात्) गार्ग्यसे (गार्ग्यः) गार्ग्य (गार्ग्यात्) गार्ग्यसे (गार्ग्यः) गार्ग्य (गौतमात्) गौतमसे (गौतमः) गौतम (सैतवात्) सैतवसे (सैतवः) सैतव (पाराशर्यायणात्) पाराशर्यायणसे (पाराशर्यायणः) पाराशर्यायण (गार्ग्यायणात्) गार्ग्यायणसे (गार्ग्यायणः) गार्ग्यायण (उद्दालकायनात्) उद्दालकायनसे (उद्दालकायनः) उद्दालकायन (जाबालायनात् जाबालायन से (जाबालायनः) जाबालायन (माध्यन्दिनायनात्)

माध्यन्दिनायनसे (माध्यन्दिनायनः) माध्यन्दिनायन (सौकरायणात्) सौकरायणसे (सौकरायणः) सौकरायण (काषायणात्) काषायणसे (काषायणः) काषायण (सायकायनात्) सायकायनसे (सायकायनः) सायकायन (कौशिकायनेः) कौशिकायनिसे (कौशिकायनिः) कौशिकायनि ॥ २ ॥ (घृतकौशिकात्) घृतकौशिकसे (घृतकौशिकः) घृतकौशिक (पाराशर्यायणात्) पाराशर्यायणसे (पाराशर्यायणः) पाराशर्यायण (पाराशर्यात्) पाराशर्यसे (पाराशर्यः) पाराशर्य (जातूकर्ण्यात्) जातूकर्ण्यसे (जातूकर्ण्यः) जातूकर्ण्य (आसुरायणात्) आसुरायणसे (च) और (यास्कात् च) यास्कसे भी (आसुरायणः) आसुरायण (त्रैवणेः) त्रैवणिसे (त्रैवणिः) त्रैवणि (औपजन्धनेः) औपजन्धनिसे (औपजन्धनिः) औपजन्धनि (आसुरेः) आसुरिसे (आसुरिः) आसुरि (भारद्वाजात्) भारद्वाजसे (भारद्वाजः) भारद्वाज (आत्रेयात्) आत्रेयसे (आत्रेयः) आत्रेय (माण्टेः) माण्टिसे (माण्टिः) माण्टि (गौतमात्) गौतमसे (गौतमः) गौतम (गौतमात्) गौतमसे (गौतमः) गौतम (वात्स्यात्) वात्स्यसे (वात्स्यः) वात्स्य (शाण्डिल्यात्) शाण्डिल्यसे (शाण्डिल्यः) शाण्डिल्य (कैशोर्यात्काप्यात्) कैशोर्य काप्यसे (कैशोर्यः, काप्यः) कैशोर्य काप्य (कुमारहारितात्) कुमारहारितसे (कुमारहारितः) कुमारहारित (गालवात्) गालवसे (गालवः) गालव (विदर्भीकौण्डिन्यात्) विदर्भीकौण्डिन्यसे (विदर्भीकौण्डिन्यः) विदर्भीकौण्डिन्य (वत्सनपानपातः बाभ्रवात्) वत्सनपानपात् बाभ्रवसे (वत्सनपान्नपाद्बाभ्रवः) वत्सन-

पानथाद्धाश्रव (पथः सौभरात्) पन्था सौभरसे (पन्थाः सौभरः) पन्था सौभर (अयास्यादांगिरसात्) अयास्य आङ्गिरससे (अयास्य आङ्गिरसः) अयास्य आङ्गिरस (आभूतेः त्वाष्ट्रात्) आभूति त्वाष्ट्रसे (आभूतिस्त्वाष्ट्रः) आभूति त्वाष्ट्र (विश्वरूपात् त्वाष्ट्रात्) विश्वरूपत्वाष्ट्रसे (विश्वरूपस्त्वाष्ट्रः) विश्वरूप त्वाष्ट्र (अश्विभ्याम्) अश्विनी कुमारोंसे (अश्विनौ) अश्विनीकुमार (दधीचः आथर्वणात्) दध्यङ् आथर्वणसे (दध्यङ्ङाथर्वणः) दध्यङ् आथर्वण (अथर्वणः दैवात्) अथर्वा दैवसे (अथर्वा दैवः) अथर्वा दैव (मृत्योः प्राध्वंसनात्) मृत्यु प्राध्वंसनसे (मृत्युः प्राध्वंसनः) मृत्यु प्राध्वंसन (एकर्षेः) एकर्षिसे (एकर्षिः) एकर्षि (विप्रचित्तेः) विप्रचित्तिसे (विप्रचित्तिः) विप्रचित्ति (व्यष्टेः) व्यष्टिसे (व्यष्टिः) व्यष्टि (सनारोः) सनारुसे (सनारुः) सनारु सना- तनात्) सनातनसे (सनातनः) सनातन (सनगात्) सनगसे (सनगः) सनग (परमेष्ठिनः) परमेष्ठीसे (परमेष्ठी) परमेष्ठी (ब्रह्मणः) ब्रह्मासे (ब्रह्म) ब्रह्म (स्वयंभु) स्वयंप्रकट हुआ है (ब्रह्मणे) ब्रह्माके अर्थ (नमः) प्रणाम है॥ ३॥

(भावार्थ)-अब वंश कहिये आचार्यपरम्परा कहते हैं पौतिमाष्य गौपवनसे, गौपवन दूसरे पौतिमाष्यसे, पौतिमाष्य दूसरे गौपवनसे, गौपवन कौशिकसे, कौशिक कौण्डिन्यसे, कौण्डिन्य शाण्डिल्यसे, शाण्डिल्य कौशिकसे और गौतमसे, कौशिक ब्रह्मासे और गौतम आग्नि- वेश्यसे, आग्निवेश्य गार्ग्यसे, गार्ग्य दूसरे गार्ग्यसे, गार्ग्य गौतमसे, गौतम सैतवसे, सैतव पाराशर्यायणसे, पाराश- र्यायण गार्ग्यायणसे, गार्ग्यायण उद्दालकायनसे, उद्दालका-

यन जाबालायनसे, जाबालायन माध्यन्दिनायनसे, माध्यन्दिनायन सौकरायणसे, सौकरायण काषायणसे, काषायण सायकायनसे, सायकायन कौशिकायनिसे, कौशिकायनि घृतकौशिकसे घृतकौशिक पाराशर्यायणसे, पाराशर्यायण पाराशर्यसे, पाराशर्य जातूकर्ण्यसे, जातूकर्ण्य आसुरायणसे और यास्कसे, यास्क अभ्याससे और आसुरायण त्रैवणिसे, त्रैवणि औपजन्धनिसे, औपजन्धनि आसुरिसे, आसुरि भारद्वाजसे, भारद्वाज आत्रेयसे, आत्रेय मांटिसे, मांटि गौतमसे, गौतम दूसरे गौतमसे, दूसरा गौतम वात्स्यसे, वात्स्य शाण्डिल्यसे, शाण्डिल्य कैशोर्य काप्यसे, कैशोर्य काप्य कुमारहारितसे, कुमारहारित गालवसे, गालव विदर्भीकौण्डिन्यसे, विदर्भीकौण्डिन्य वत्सनपात् बाभ्रवसे, वत्सनपातबाभ्रव पन्था सौभरसे, पन्था सौभर अयास्य आङ्गिरससे, अयास्य आङ्गिरस आभूति त्वाष्ट्रसे, आभूति त्वाष्ट्र विश्वरूप त्वाष्ट्रसे, विश्वरूपत्वाष्ट्र अश्विनीकुमारोंसे, अश्विनीकुमार दध्यङ् आथर्वणसे, दध्यङ् आथर्वण अथर्वादैवसे, अथर्वादैव मृत्यु प्राध्वंसनसे, मृत्युप्राध्वंसन प्रध्वंसनसे, प्रध्वंसन एकर्षिसे, एकर्षि विप्रचित्तिसे, विप्रचित्ति व्यष्टिसे, व्यष्टि सनारुसे, सनारु सनातनसे, सनातन सनगसे, सनग विराट्से और विराट हिरण्यगर्भसे ब्रह्मविद्याको प्राप्त हुआ, उस हिरण्यगर्भको अन्तर्यामीके द्वारा ब्रह्मविद्या की प्राप्ति हुई थी इसलिये आगेको आचार्यपरम्परा नहीं है, ब्रह्म वेदरूपसे स्थित है, इसकारण वेद नामवाला ब्रह्म नित्य है, उस वेदरूप ब्रह्मको नमस्कार है ॥१-३॥

इति चतुर्थाध्यायस्य षष्ठं ब्राह्मणं समाप्तम् ।

चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः

अथ पञ्चमोऽध्यायः

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते । ॐ खं ब्रह्म । खं पुराणं वायुरं खमिति ह स्माऽऽह कौरव्यायणीपुत्रो वेदोऽयं ब्राह्मणा विदुर्वेदैनेन यद्वेदितव्यम् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अदः) वह ब्रह्म (पूर्णम्) पूर्ण है (इदम्) यह (पूर्णं) पूर्ण है (पूर्णात्) पूर्णसे (पूर्णम्) पूर्ण (उदच्यते) ऊपर जाता है (पूर्णस्य) पूर्णके (पूर्णम्) पूर्णको (आदाय) लेकर (पूर्णम्, एव) पूर्ण ही (अवशिष्यते) शेष रहता है (ॐ) ओङ्कार (खम्) खरूप (ब्रह्म) ब्रह्म है (खम्) ख (पुराणम्) प्राचीन है (वायुरम्) जिसमें वायु रहता है वह (खम्) ख है (इति) ऐसा (ह) प्रसिद्ध (कौरव्यायणीपुत्रः) कौरव्यायणीका पुत्र (आह, स्म) कहता हुआ (अयम्) यह (वेदः) वेद है [इति] ऐसा (ब्राह्मणाः) ब्रह्मवेत्ता (विदुः) जानते थे (यत्) जो (वेदितव्यम्) जानने योग्य है [तत्] उसको (एनेन) इसके द्वारा (वेद) जानता है ॥ १ ॥

(भावार्थ)-वह ब्रह्म पूर्ण है । यह नामरूप उपाधि-वाला ब्रह्म भी अपने निरुपाधिक रूपसे पूर्ण है । कारण रूप पूर्णसे विशेष रूप पाया हुआ पूर्ण ऊपर जाता है । कारणरूप ब्रह्मसे नामरूपवाला कार्यरूप ब्रह्म मानो भिन्न है ऐसा प्रतीत होता है । ज्ञानीपुरुष पूर्ण कहिये कार्यरूप ब्रह्मके पूर्ण कहिये आत्मस्वरूपके एकरसपनेको

सम्पादन करके अर्थात् ज्ञानके द्वारा अज्ञानजनित उपाधियोंके संसर्गका तिरस्कार करते हुए पूर्णरूप ही अर्थात् निरन्तर प्रज्ञानघनैकरसस्वभाव केवल ब्रह्मरूपसे ही शेष रहता है। अब ॐकारके आलम्बनसे ब्रह्मके ध्यान को कहते हैं, कि-ॐकार खरूप अर्थात् प्राचीन या आकाशावच्छिन्न ब्रह्म है, ऐसा ध्यान करना चाहिये। ख शब्दका अर्थ है-प्राचीन। जिसमें वायु रहता है वह भौतिक आकाश 'ख' है ऐसा प्रसिद्ध कौरव्यायणीके पुत्र ने कहा था। यह ॐकार वेद है, ऐसा ब्रह्मज्ञानी पुरुष जानते थे, क्योंकि-जाननेयोग्य ब्रह्म है उसको जिज्ञासु ॐकारके द्वारा ही जानता है। प्रसिद्ध वेदका वेदपना भी ज्ञानका हेतु होनेसे ही है ॥ १ ॥

पञ्चमाध्यायस्य प्रथमं ब्राह्मणं समाप्तम् ।

त्रयाः प्राजापत्याः प्रजापतौ पितरि ब्रह्मचर्यमूषुर्देवा मनुष्या असुरा उषित्वा ब्रह्मचर्यं देवा ऊचुर्ब्रवीतु नो भवानिति तेभ्यो हैतदक्षरमुवाच द इति व्यज्ञासिष्टा ३ इति व्यज्ञासिष्मेति होचुर्दाम्यतेति न आत्थेत्योमिति होवाच व्यज्ञासिष्टेति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(देवाः) देवता (मनुष्याः) मनुष्य (असुराः) असुर (त्रयाः) तीन (प्राजापत्याः) प्राजापतिके पुत्र (प्रजापतौ, पितरि) प्रजापतिरूप पिताके समीप (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य पूर्वक (ऊषुः) रहते हुए (ब्रह्मचर्यं, उषित्वा) ब्रह्मचर्य पूर्वक रहकर (देवाः) देवता (ऊचुः) कहते हुए (भवान्) आप (नः)

हमारे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये (इति) ऐसा कहने पर (तेभ्यः) उनके अर्थ (ह) प्रसिद्ध (द, इति) द ऐसे (एतत्) इस (अक्षरम्) अक्षरको (उवाच) कहता हुआ (व्यज्ञासिष्ट) जानगये (इति) ऐसा बूझने पर (व्यज्ञासिष्म) जानगये (इति) ऐसा (ह) प्रसिद्ध (ऊचुः) कहते हुए (दाम्यत) इन्द्रियोंका निग्रह करो (इति) ऐसा (नः) हमसे (आत्थ) कहते हो (इति) इस पर (ह) प्रसिद्ध (ओम्) हाँ (इति) ऐसा (उवाच) कहता हुआ (व्यज्ञासिष्ट) जानगये (इति) ऐसा कहा ॥ १)

भावार्थ—देवता, मनुष्य और असुर इन तीन प्रजापति (विराट्) के पुत्रों ने अपने पिता प्रजापति के पास ब्रह्मचर्य धारण करके निवास किया और उनमेंसे पहले देवताओं ने प्रजापति से कहा, कि-हे भगवन्! आप हमें उपदेश दीजिये। प्रजापतिने उन ज्ञानोपदेश चाहनेवालों से 'द' यह अक्षर कहदिया और उन देवताओं से बूझा, कि-क्या तुम समझगये, कि-यह अक्षर कहकर मैंने तुम्हें क्या उपदेश दिया है? इस पर देवताओं ने कहा, कि-हां, हम समझ गये, आपने हमें यह उपदेश दिया है, कि—'तुम स्वभाव से इन्द्रियों के निग्रहसे रहित हो इस कारण इन्द्रियोंका निग्रह करो-इन्द्रियों को वशमें रक्खो'' यह सुन कर प्रजापतिने कहा, कि-हां ठीक है, तुमने उस अक्षरके ठीक अर्थ को जानलिया ॥ १ ॥

अथ हैनं मनुष्या ऊचुर्ब्रवीतु नो भवानिति तेभ्यो हैतदेवाक्षरमुवाच द इति व्यज्ञासिष्टा३

इति व्यज्ञासिष्मेति होचुर्दत्तेति न आत्थेत्यो-
मिति होवाच व्यज्ञासिष्टेति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अनन्तर ह प्रसिद्ध (एनम्) इसके प्रति (मनुष्याः) मनुष्य (ऊचुः) बोले (भवान्) आप (नः) हमारे अर्थ (ब्रवीतु) कहिये (इति) ऐसा कहने पर (तेभ्यः) उनके अर्थ (ह) प्रसिद्ध (द,इति) द ऐसे (एतत्) इस (अक्षरम्) अक्षरको (उवाच) कहता हुआ (व्यज्ञासिष्ट) जानगये (इति) ऐसा बूझने पर (व्यज्ञासिष्म) जानगये (इति) ऐसा (ह) प्रसिद्ध (दत्त) दो (इति) ऐसा (नः) हमसे (आत्थ) कहते हो (इति) इस पर ह प्रसिद्ध (ओम्) हाँ (इति) ऐसा (उवाच) कहता हुआ (व्यज्ञासिष्ट) जान गये (इति) ऐसा कहा ॥ २ ॥

भावार्थ:-फिर उन प्रजापतिसे मनुष्यों ने कहा, कि हे भगवन् ! आप हमें कुछ उपदेश दीजिये, इस पर मनुष्यों से भी प्रजापति ने 'द' यह अक्षर कहदिया और उनसे बूझा कि तुमने इस अक्षर का क्या अर्थ समझा ? इस पर मनुष्योंने कहा, कि-हाँ, हम समझ गये आपने हमें यह उपदेश दिया है, कि तुम स्वभाव से लोभी हो उस लोभ को छोड़ कर यथा शक्ति अन्न आदि का दान किया करो" यह सुन कर प्रजापति ने कहा, कि-हाँ ठीक है, तुम मेरे उपदेश को ठीक २ समझ गये ॥ २ ॥

अथ हैनं असुरा ऊचुर्ब्रवीतु नो भवानिति तेभ्यो
हैतदेवाक्षरमुवाच द इति व्यज्ञासिष्टा ३ इति
व्यज्ञासिष्मेति होचुर्दयध्वमिति न आत्थेत्यो-

मिति होवाच व्यज्ञासिष्टेति तदेतदेवैषा दैवी वागनुवदति स्तनयित्नुर्द द द इति दाम्यत दत्त दयध्वमिति तदेतत्त्रयं शिक्षेद्दमं दानं दयामिति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ- (अथ) अनन्तर (ह) प्रसिद्ध (एनम्) इसके प्रति (असुराः) असुर लोग बोले (भगवन्) भगवन् (नः) हमारे अर्थ (ब्रवीतु) उपदेश दीजिये (इति) ऐसा (तेभ्यः) उनके अर्थ (ह) प्रसिद्ध (द इति) द ऐसे (एतत्) इस अक्षरम् अक्षरको (उवाच) कहता हुआ (व्यज्ञासिष्ट) जानगये (इति) ऐसा पूछने पर (व्यज्ञासिष्म) जानगये (इति) ऐसा (ह) प्रसिद्ध (ऊचुः) बोले (दयध्वम्) दया करो (इति) ऐसा (नः) हमसे (आत्थ) कहते हो (इति) इस पर (ह) प्रसिद्ध (ओम्) हां (इति) ऐसा (उवाच) बोला (व्यज्ञासिष्ट जानगये इति) ऐसा कहा (तत्) सो (एतत्) यह (एव) ही (स्तनयित्नुः) मेघरूपा (दैवी, वाक्) दैवी वाणी (द द द इति) द द द इस प्रकार (अनुवदति) अनुवाद करती है (दाम्यत) इन्द्रियोंका निग्रह करो (दत्त) दान करो (दयध्वम्) दया करो (इति) इसप्रकार (दमम्) दमको (दानम्) दानको (दयाम्) दयाको (इति) इसप्रकार (एतत) इन (त्रयम्) तीनको (शिक्षेत्) सीखे ॥ ३ ॥

(भावार्थ) -फिर प्रजापतिसे असुरोंने कहा, कि-हे भगवन् ! आप हमें उपदेश दीजिये, प्रजापतिने इनसे

मी 'द' यह अक्षर कहदिया और बूझा, कि-क्या तुम मेरे कहेहुए इस अक्षरका अर्थ समझगये ? यह सुनकर असुरोंने कहा, कि-हाँ हम समझगये, आपने हमें यह उपदेश दिया है, कि "तुम स्वभावसे हिंसा आदिमें लिप्त रहते हो, सो अब तुम प्राणियोंके ऊपर दया किया करो" यह सुनकर प्रजापतिने कहा, कि-हाँ तुम समझ गये इस अक्षरका तुमने ठीक २ अर्थ समझ लिया। ऐसे इस प्रजापतिके उपदेशको ही मेघरूपा दैवी वाणी द द द इसप्रकार अनुवाद करके कहती है। क्योंकि-प्रजापति मेघरूपसे वर्त्तमान समयमें भी(इन्द्रियोंका निग्रह करो) दान दो और (प्राणियोंके ऊपर दया करो), ऐसा उपदेश देते हैं, इसलिये दम, दान और दया ये तीन बातें मनुष्योंको शिक्षारूपसे ग्रहण करनी चाहियें ॥ ३ ॥

पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयं ब्राह्मणं समाप्तम्

एष प्रजापतिर्यद्धृदयमेतद्ब्रह्मैतत्सर्वं तदेतत् त्र्यक्षर ॐ हृदयमिति हृ इत्येकमक्षरमभिहरन्त्यस्मै स्वाश्चान्ये च य एवं वेद द इत्येकमक्षरं ददत्यस्मै स्वाश्चान्ये च य एवं वेद यमित्येकमक्षरमेति स्वर्गं लोकं य एवं वेद ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (हृदयम्) हृदय है (एषः) यह (प्रजापतिः) प्रजापति है (एतत्) यह (ब्रह्म) ब्रह्म है (एतत्) यह (सर्वम्) सब है (तत्) सो (एतत्) यह (हृदयं, इति) हृदय यह नाम

(त्र्यक्षरम्) तीन अक्षरका है (हृ इति) हृ यह (एकं, अक्षरम्) एक अक्षर है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (अस्मै) इसके लिये (स्वाः) जातिवाले (च) और (अन्ये, च) दूसरे भी (अभिहरन्ति) चारों ओरसे लाते हैं (द इति) द यह (एकं, अक्षरम्) एक अक्षर है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (अस्मै) इसके लिये (स्वाः) जातिवाले (च) और (अन्ये, च) दूसरे भी (ददति) देते हैं (यं, इति) यं यह (एकं, अक्षरम्) एक अक्षर है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (स्वर्गं, लोकम्) स्वर्ग लोकको (एति) प्राप्त होता है ॥ १ ॥

(भावार्थ)-दिशाओं और देवताओंके आश्रयरूपसे शाकल्य ब्राह्मणमें जिस बुद्धि सूत्रात्माका वर्णन किया था वह हृदय ही अर्थात् जो सब भूतोंके हृदयोंमें विराजमान है वह सूत्रात्मा ही सकल प्रजाओंका सृष्टिकर्त्ता प्रजापति है, वह ही ब्रह्म है, वह ही सर्व है। यह हृदय तीन अक्षरका नाम है। उनमें पहला अक्षर 'हृ' है, इसका अर्थ लाना है जो इस अर्थको जानता है उसके लिये जातिवाले और दूसरे लोग अपनी २ योग्यताके अनुसार नाना प्रकारके पदार्थ लाकर अर्पण करते हैं। दूसरा अक्षर 'द' है, इसका अर्थ है-देना, जो इस अर्थको जानता है उसको जातिवाले तथा दूसरे लोग अथवा अपनी इन्द्रियें और सकल विषय अपना २ बल वा व्यापार देते हैं। तीसरा अक्षर 'यम्' है, इसका अर्थ है जाना जो इस अर्थको जानता है वह स्वर्ग लोकको जाता है। इसप्रकार उपास्य हृदय ब्रह्मकी स्तुतिके लिये यह तीन अक्षरोंकी उपासना कही ॥ १ ॥

पञ्चमाध्यायस्य तृतीयं ब्राह्मणं समाप्तम्।

तद्वै तदेतदेव तदास सत्यमेव स यो हैतं महद्यक्षं प्रथमजं वेद सत्यं ब्रह्मेति जयतीमाँल्लोकाञ्जित इन्न्वसावद्य एतमेतन्महद्यक्षं प्रथमजं ब्रह्मेति सत्यᳬंह्येव ब्रह्म ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) वह (वै) प्रसिद्ध है (तत्) वह (एतत्, एव) यही है (तत्) वह (सत्यं, एव) सत्य ही (आस) था (यः) जो (एतम्) इस (हि) प्रसिद्ध (सत्य, ब्रह्म) सत्य ब्रह्मको (महत्) महान् (यक्षम्) पूज्य (प्रथमजम्) पहले उत्पन्न हुआ है (इति) ऐसा (वेद) जानता है (सः) वह (इमान्) इन (लोकान्) लोकोंको (जयति) जीतता है (इन्नु) इसप्रकार (असौ) यह शत्रु (जितः) जीताहुआ (असत्) नष्ट [भवति] होता है (यः) जो (एतत्) इस (सत्यं, ब्रह्म) सत्य ब्रह्मको (एवम्) इसप्रकार (महत्) महान् (यक्षम्) पूजनीय (प्रथमजम्) पहले उत्पन्न हुआ है (इति) ऐसा जानकर (वेद) उपासना करता है [सः, एवम्विधं, एव, फलं, प्राप्नोति] वह ऐसे ही फलको पाता है (हि) क्योंकि-(सत्यं, ब्रह्म, एव) सत्य ब्रह्म ही है ॥ १ ॥

(भावार्थ)-वह हृदय ब्रह्म ही हिरण्यगर्भरूप सत्य था। जो साधक इस प्रसिद्ध सत्य ब्रह्मको महान् पूजनीय और विराट् ब्रह्ममें पहले उत्पन्न हुआ है ऐसा मानकर उपासना करता है वह सत्य ब्रह्मकी समान इन भू आदि लोकोंको जीतलेता है और जैसे सत्य ब्रह्मने असत्यरूप शत्रुको जीतलिया है, ऐसे ही जो महान्, पूज्य और प्रथम उत्पन्न हुए ब्रह्मकी उपासना करता है

वह अपने शत्रु को जीतलेता है और उसका शत्रु नष्ट भी होजाता है, क्योंकि-सत्य ब्रह्म ही शत्रुजित् और लोकजित् है ॥ १ ॥

पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थं ब्राह्मणं समाप्तम् ।

आप एवेदमग्र आसुस्ता आपः सत्यमसृजन्त सत्यं ब्रह्म ब्रह्म प्रजापतिं प्रजापतिर्देवाᳪंस्ते देवाः सत्यमेवोपासते तदेतत् त्र्यक्षरं सत्यमिति स इत्येकमक्षरं तीत्येकमक्षरं यमित्येकमक्षरं प्रथमोत्तमे अक्षरे सत्यं मध्यतोऽनृतं तदेतदनृतमुभयतः सत्येन परिगृहीतᳪं सत्यभूयमेव भवति नैवं विद्वाᳪंसमनृतं हिनस्ति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इदम्) यह (अग्रे) पहले (आपः एव) जल ही (आसुः) थे (आपः) जल (सत्यम्) सत्यको (असृजन्त) उत्पन्न करते हुए (सत्यम्) सत्य (ब्रह्म) ब्रह्म है (ब्रह्म) ब्रह्म (प्रजापतिम्) हिरण्यगर्भको (प्रजापतिः) हिरण्यगर्भ (देवान्) देवताओंको (ते) वे (देवाः) देवता (सत्यम्, एव) सत्यको ही (उपासते) उपासना करते हैं (तत्) सो (एतत्) यह (सत्यं, इति) सत्य यह नाम (त्र्यक्षरम्) तीन अक्षरों का है (स इति) स ऐसा (एकं, अक्षरम्) एक अक्षर है (ति, इति) ति यह (एकं, अक्षरम्) एक अक्षर है (यं, इति) यं यह (एकं, अक्षरम्) एक अक्षर है (प्रथमोत्तमे) पहला और अन्तका ये दो (अक्षरे) अक्षर (सत्यम्) सत्य हैं (मध्यतः) मध्यमेंका (अनृतम्) असत्य है (तत्) सो (एतत्) यह (अनृतम्)

असत्य (उभयतः) दोनों ओर (सत्येन) सत्यके द्वारा (परिगृहीतम्) व्याप्त है (सत्यभूयं, एव) सत्यकी अधिकतावाला ही (भवति) होता है (एवम्) ऐसा (विद्वांसम्) जाननेवालेको (अनृतम्) असत्य (न) नहीं (हिनस्ति) दबाता है ॥ १ ॥

(भावार्थ)-यह जगत् उत्पत्तिसे पहले जगत्का बीज अव्याकृत जलरूप ही था, उस जलने सत्य कहिये हिरण्यगर्भको उत्पन्न किया, उससे वह सत्य ब्रह्म पहले उत्पन्न हुआ था, उसने हिरण्यगर्भ विराट्को उत्पन्न किया । इसप्रकार विराट् आदिके द्वारा हिरण्यगर्भ सब का स्रष्टा है, इसकारण वह महान् है । उस विराटने देवताओंको उत्पन्न किया । देवता पितारूप विराट्को लाँघकर सत्य हिरण्यगर्भकी ही उपासना करते हैं, इस कारण वह पूज्य है । यह सत्य नाम तीन अक्षरोंका है । वे तीन अक्षर स, ति (त्) और य हैं । इनमें पहला और तीसरा 'स और य' ये दो अक्षर स्वरसहित होने के कारण सत्य हैं और मध्यमेंका त् स्वररहित होनेके कारण असत् है । यह असत् त् दोनों ओरसे सर्व रूप सत्यसे व्याप्त है, अतः यह तुच्छ है और सत्यमें बहुत पना है । इसप्रकार सत्यके बहुत्व और असत्के तुच्छ पनेको जो जानता है उसको, कदाचित् वह प्रमादसे असत्य बोल जाय तो वह असत्य अपना फल देकर सताता नहीं है ॥ १ ॥

तद्यत्तत्सत्यमसौ स आदित्यो य एष एतस्मि-
न्मण्डले पुरुषो यश्चायं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषस्तावे-
तावन्योन्यस्मिन्प्रतिष्ठितौ रश्मिभिरेषोऽस्मिन्प्र-

तिष्ठितः प्राणैरयममुष्मिन्स यदोत्क्रमिष्यन् भवति शुद्धमेवैतन्मण्डलं पश्यति नैनमेते रश्मयः प्रत्यायन्ति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (तत्) वह (सत्यम्) सत्य है (तत्) वह (असौ) यह (आदित्यः)आदित्य है (यः) जो (एषः) यह (पुरुषः) पुरुष (अस्मिन्) इस (मण्डले) मण्डलमें (च) और (यः)जो (अयम्) यह (दक्षिणे , दाहिने (अक्षन्) नेत्रमें (पुरुषः) पुरुष है (सः) वह [सत्यम्] सत्य ब्रह्म है (तौ) वे (एतौ) ये (अन्योन्यस्मिन) परस्पर एक दूसरे में (प्रतिष्ठितौ) स्थित हैं (एषः) यह (रश्मिभिः) किरणोंके द्वारा (अस्मिन्) इसमें (प्रतिष्ठितः) स्थित है (अयम्) यह (प्राणैः) इन्द्रियोंके द्वारा (अमुष्मिन्) इसमें (प्रतिष्ठितः) स्थित है (सः) वह (यदा) जब (उत्क्रमिष्यन्) उत्क्रमण करता हुआ (भवति) होता है (तदा) तब (एतत्) इस (मण्डलम्) मण्डलको (शुद्धम्, एव) शुद्ध ही (पश्यति) देखता है (एते) ये (रश्मयः) किरणें (एनम्) इसके प्रति (न) नहीं (प्रत्यायन्ति) आती हैं ॥ २ ॥

(भावार्थ)-पीछे जिस सत्य ब्रह्मका वर्णन किया है वही आदित्य है। जो आदित्य पुरुष इस मण्डलका अभिमानी है और जो पुरुष इस मनुष्यके दाहिने नेत्रमें अभिमानी रूपसे रहता है,आदित्यमें और नेत्रमें रहने वाले ये अभिमानी एक ही सत्यब्रह्मके आधिदैविक और आध्यात्मिक स्थान हैं, इसकारण आदित्यका अभिमानी

नेत्रमें और नेत्रका अभिमानी आदित्यमें स्थित है। यह आदित्यका अभिमानी अपनी किरणोंसे उपकार करता हुआ इस नेत्रमें स्थित है और यह नेत्रका अभिमानी नेत्र आदि इन्द्रियों से मण्डलको प्रकाशता हुआ इस आदित्यमें स्थित है अब संसारी मनुष्योंको सावधान करनेके लिये कहते हैं हैं, कि-यह जीव जब इस शरीर को छोड़ कर जानेवाला होता है तब यह इस सूर्य-मंडलको किरणोंसे शून्य देखता है, भोक्ताके कर्मका क्षय होजानेके कारण पहले को समान ये किरणें इस नेत्राभिमानी की ओरको नहीं आती हैं, इसकारण ऐसा दीखता है ॥ २ ॥

य एष एतस्मिन्मंडले पुरुषस्तस्य भूरिति शिर एक ँ शिर एकमेतदक्षरं भव इति बाहू द्वौ बाहू द्वे एते अक्षरे स्वरिति प्रतिष्ठा द्वे प्रतिष्ठे द्वे एते अक्षरे तस्योपनिषदहरिति हन्ति पाप्मानं जहाति च य एवं वेद ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (एषः) यह (एतस्मिन्) इस (मडले) मंडलमें (पुरुषः) पुरुष है (तस्य) उसका (भूः इति) भू यह (शिरः) मस्तक है (शिरः) मस्तक (एकम्) एक है (एतत्) यह (एकम्) एक (अक्षरम्) अक्षर है (भुवः, इति) भुवः यह (बाहू) बाहु हैं (बाहू) बाहु (द्वौ) दो है (एते) ये अक्षर (द्वे) दो हैं (स्वः, इति) सुवः ये (प्रतिष्ठा) स्थित होनेका साधन पैर हैं (द्वे) दो (प्रतिष्ठे) पैर होते हैं (द्वे) दो (एते) ये (अक्षरे) अक्षर हैं (अहः,इति) अहः यह (तस्य)

उसका (उपनिषद्) नाम है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (पाप्मानम्) पापको (हन्ति) नष्ट करता है (च) और (जहाति) त्यागता है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-जो अभिमानी पुरुष सूर्यमंडलमें स्थित है भू उसका मस्तक है, क्योंकि —जैसे मस्तक एक है तैसे ही भू यह अक्षर भी एक है । भुव: यह उसके दो हाथ हैं, जैसे दो हाथ होते हैं तैसे ही भुवः ये दो अक्षर हैं (स्वः) (सुवः) ये दो पैर हैं, क्योंकि-जैसे दो पैर होते हैं तैसे ही ये अक्षर दो हैं । व्याहृतिरूप अङ्गोंवाले उस सत्य ब्रह्मका अहः (दिन) यह नाम है, हन्ति (हन् धातु) का और जहाति (हा धातु) का अहः बनता, दिनमे यहां प्रकाश वा ज्ञान लिया जायगा, इसलिये जो उपासक उसको अहः कहिये प्रकाशस्वरूप या ज्ञानस्वरूप जानता है वह पापका हनन और त्याग करता है ॥ ३ ॥

योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषस्तस्य भूरिति शिर एकं शिर एकमेतदक्षरं भुव इति बाहू द्वौ बाहू द्वे एते अक्षरे स्वरिति प्रतिष्ठा द्वे प्रतिष्ठे द्वे एते अक्षरे तस्योपनिषदहमिति हन्ति पाप्मानं जहाति च य एवं वेद ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (अयम्) यह (दक्षिणे) दाहिने (अक्षन्) नेत्रमें (पुरुषः) पुरुष है (तस्य) उसका (भूः, इति) भू यह (शिरः) शिर है (एकम्) एक है (एतत्) यह (अक्षरम्) अक्षर (एकम्) एक है (भुवः,इति) भव यह (बाहू) बाहु हैं (बाहू) बाहु (द्वे) दो हैं (एते) ये (अक्षरे) अक्षर (द्वे) दो हैं

(स्वः इति) सुवः यह (प्रतिष्ठा) पैर हैं (प्रतिष्ठे) पैर (द्वे) दो होते हैं (एते) ये (अक्षरे) अक्षर (द्वे) दो हैं (तस्य) उसका (अहं इति) अहं यह (उपनिषत्) नाम है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (पाप्मानम्) पापको (हन्ति) नष्ट करता है (च) और (जहाति) त्यागता है ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-जो दक्षिण नेत्रमें पुरुष स्थित है उसका भूः माथा है, क्योंकि जैसे माथा एक है वैसे ही भूः यह अक्षर भी एक है। भुवः हाथ हैं क्योंकि- जैसे हाथ दो होते हैं वैसे ही भुवः ये अक्षर भी दो हैं। स्वः सुवः ये पैर हैं, क्योंकि-जैसे पैर दो होते हैं वैसे ही सुवः ये अक्षर भी दो हैं। उस व्याहृतिरूप अङ्गोंवाले सत्य ब्रह्मका अहं यह नाम है। हन्ति और जहातिका अहं बन जाता है जो ऐसा जानता है वह पापका नाश और त्याग करता है ॥ ४ ॥

पञ्चमाध्यायस्य पञ्चमं ब्राह्मणं समाप्तम् ।

मनोमयोऽयं पुरुषो भाः सत्यस्तस्मिन्नन्तर्हृदये
यथा व्रीहिर्वा यवो वा स एष सर्वस्येशानः
सर्वस्याधिपतिः सर्वमिदं प्रशास्ति यदिदं किञ्च १

अन्वय और पदार्थ—(अयम्) यह (पुरुषः) पुरुष (मनोमयः) मनोमय (भाः सत्यः) प्रकाशस्वरूप है (यथा) जैसे (व्रीहिः वा) धान होता है (यवः, वा) जौ होता है (तस्मिन्) तिस (अन्तर्हृदये) हृदयके भीतर [अस्ति] है (सः) वह (एषः) यह (सर्वस्य) सबका (ईशानः) स्वामी (सर्वस्य) सबका (अधिपतिः) पालक [अस्ति] है (इदम्) यह (यत्किञ्च) जो कुछ है (इदम्) इस (सर्वम्) सबको (प्रशास्ति) नियममें रखता है ॥ १ ॥

(भावार्थ)-यह पुरुष मनोमय अर्थात् मनमें प्रतीत होता है, इसलिये मनजैसा है, इसलिये ही प्रकाशस्वरूप है। धान वा जौ की समान हृदयके भीतर योगियों को दीखता है, यह सबका स्वामी और सबका पालक है और जो कुछ चराचर जगत् है इस सबको नियममें रखता है ॥ १ ॥

पञ्चमाध्यायस्य षष्ठं ब्राह्मणं समाप्तम्

विद्युद् ब्रह्मेत्याहुर्विदानाद् विद्युद् विद्यत्येनं पाप्मनो य एवं वेद विद्युद् ब्रह्मेति विद्युद्ध्येव ब्रह्म १

अन्वय और पदार्थ-(विद्युत्) बिजली (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं (विदानात्) नाश करनेसे (विद्युत्) बिजली कहलाती है (विद्युत्) बिजली (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति, एवम्) ऐसा (यः) जो (वेद) जानता है (एनम्) इसके (पाप्मनः) पापोंका (विद्यति) नाश करता है (हि) क्योंकि (ब्रह्म) ब्रह्म (विद्युत् एव) विदारक ही है ॥ १ ॥

(भावार्थ)-विवेकी पुरुष कहते हैं, कि-बिजली ब्रह्म है। मेघके कारण होनेवाले अन्धकारका नाश करती है, इसलिये बिजली विद्युत् नामसे कही जाती है। ऐसे गुण-वाली बिजली ब्रह्म है, इस तत्त्वको जानकर जो उपा-सना करता है, उस उपासकके पापोंका ब्रह्म नाश कर देता है, क्योंकि-ब्रह्म विद्युत् है अर्थात् तमोमूलक पाप का नाश करनेवाला ही है ॥ १ ॥

पञ्चमाध्यायस्य सप्तमं ब्राह्मणं समाप्तम् ।

वाचं धेनुमुपासीत तस्याश्चत्वारः स्तनाः स्वाहा-कारो वषट्कारो हन्तकारः स्वधाकारस्तस्यै द्वौ-

स्तनौ देवा उपजीवन्ति स्वाहाकारञ्च वषट्कारं हन्तकारं मनुष्याः स्वधाकारं पितरस्तस्याः प्राण ऋषभो मनो वत्सः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वाचम्) वाणीरूप (धेनुम्) कामधेनुको (उपासीत) उपासना करे (तस्याः) उसके (स्वाहाकारः) स्वाहाकार (वषट्कारः) वषट्कार (हन्तकारः) हन्तकार (स्वधाकारः) स्वधाकार (चत्वारः) चार (स्तनाः) स्तन हैं (तस्यै) उसके (स्वाहाकारम्) स्वाहाकार (च) और (वषट्कारञ्च) वषट्कार भी (द्वौ) दो (स्तनौ) स्तनोंको (देवाः) देवता (उपजीवन्ति) जीवनका साधन करते हैं (मनुष्याः) मनुष्य (हन्तकारम्) हन्तकारको (पितरः) पितर (स्वधाकारम्) स्वधाकारको [उपजीवन्ति] जीविकाका साधन करते हैं (प्राणः) प्राण (तस्याः) उसका (ऋषभः) वृषभ है (मनः) मन (वत्सः) बछड़ा है ॥ १ ॥

(भावार्थ)-उपासक वेदवाणीरूप कामधेनुकी उपासना करे । जैसे गौके चार स्तन होते हैं, ऐसे ही वेदवाणीरूप गौके भी स्वाहाकार, वषट्कार, हन्तकार और स्वधाकार ये चार स्तन हैं । (स्वाहाकार और वषट्कार नामक दो स्तनोंके आधार पर देवताओंका आजीवन होता है) क्योंकि इन दो वैदिक शब्दोंको बोल कर ही देवताओंको हवि दियाजाता है । हन्त-अपेक्षित लो ऐसा कहकर मनुष्योंको अन्न दियाजाता है, इसलिये हन्तकार रूप स्तनसे मनुष्योंका आजीवन चलता है (और स्वधाकारसे पितरोंको अन्न दियाजाता है,) इसकारण स्वधाकारसे पितरोंकी जीविका चलती है । उस वेदवाणीरूप

कामधेनुका वृषभ (साँड) प्राण है, क्योंकि-प्राणके बल से वाणी प्रसूत होती है-शब्द आदिका उच्चारण किया जा सकता है और मन बछड़ा है, क्योंकि-मनमें पूर्वापरका विचार करके उन स्वाहाकार आदिके लिये प्रवृत्त होता है ॥ १ ॥

पञ्चमाध्यायस्याष्टमं ब्राह्मणं समाप्तम् ।

अयमग्निर्वैश्वानरो योऽयमन्तः पुरुषे येनेदमन्नं पच्यते यदिदमद्यते तस्यैष घोषो भवति यमेतत्कर्णावपिधाय शृणोति स यदोत्क्रमिष्यन् भवति नैनं घोषꣳशृणोति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अयम्) यह (अग्निः) अग्नि (वैश्वानरः) वैश्वानर है (यः) जो (अयम्) यह (अन्तः पुरुषे) शरीरके भीतर है (येन) जिससे (इदम्) यह (अन्नम्) अन्न (पच्यते) पकता है (यत्) जो (इदम्) यह (अद्यते) खाया जाता है (तस्य) उसका (एषः) यह (घोषः) शब्द (भवति) होता है (यम्) जिसको (एतत्) यह (कर्णौ) कानोंको (अपिधाय) बन्द करके (शृणोति) सुनता है (सः) वह (यदा) जब (उत्क्रमिष्यन्) निकलनेका उद्योग करनेवाला (भवति) होता है (एनम्) इस (घोषम्) शब्दको (न) नहीं (शृणोति) सुनता है ॥ १ ॥

(भावार्थ)-जो जठराग्नि सब शरीरोंके भीतर विद्यमान है वह वैश्वानर कहलाता है । इस अग्निसे ही खायाहुआ अन्न पचता है । जिस अन्नको कि—प्राणी खाया करते हैं, उसको पचानेवाले जठराग्निका घोर

शब्द होता है कि--जिस शब्दको पुरुष दोनों अंगुलियोंसे कानोंको बन्द करके सुना करता है। जब वह भोक्ता पुरुष मरनेको होता है तब यह शब्द सुनायी नहीं आता है ॥ १ ॥

पञ्चमाध्यायस्य नवमं ब्राह्मणं समाप्तम्।

यदा वै पुरुषोऽस्माल्लोकात्प्रैति स वायुमागच्छति तस्मै स तत्र विजिहीते यथा रथचक्रस्य खं तेन स ऊर्ध्व आक्रमते स आदित्यमागच्छति तस्मै स तत्र विजिहीते यथा लम्बरस्य खं तेन स ऊर्ध्व आक्रमते स चन्द्रमसमागच्छति तस्मै स तत्र विजिहीते यथा दुन्दुभेः खं स तेन स ऊर्ध्व आक्रमते स लोकमागच्छत्यशोकमहिमं तस्मिन् वसति शाश्वतीः समाः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यदा) जब (वै) निश्चय (पुरुषः) पुरुष (अस्मात्) इस (लोकात्) लोकसे (प्रैति) शरीर त्यागकर जाता है (तदा) तब (सः) वह (वायुम्) वायुके प्रति (आगच्छति) आता है (सः) वह वायु (तस्मै) उसके लिये (तत्र) तहां (रथचक्रस्य) पहिये के (खं, इव) छिद्रकी समान (विजिहीते) छिद्रवाला करता है (तेन) उसके द्वारा (सः) वह (ऊर्ध्वः, आक्रमते) ऊपरको गमन करता है (सः) वह (आदित्यं आगच्छति) सूर्यलोकको पाता है (सः) वह (तस्मै) उसके लिये (तत्र) तहां (लम्बरस्य) डम्बरके (खं, यथा) छिद्रकी समान (विजिहीते) अपनेको छिद्रवाला करता है (तेन) उसके द्वारा (सः) वह (ऊर्ध्वः,-

आक्रमते) ऊपरको जाता है (सः) वह (चन्द्रमसं,-आगच्छति) चन्द्रमाको प्राप्त होता है (सः) वह (तस्मै) उसके लिये (तत्र) तहां (दुन्दुभेः) दुंदुभिके (खं,यथा) छिद्रकी समान (विजिहीते) अपनेको छिद्रवाला करता है (तेन) उसके द्वारा (सः) वह (ऊर्ध्वः,आक्रमते) ऊपरकी ओरको जाता है (सः) वह (अशोकम्) शोक-रहित (अहिमम्) हिम आदि दुःखके साधनसे रहित (लोकम्) लोकको (आगच्छति) आता है (तस्मिन्) उसमें (शाश्वतीः) असंख्यों (समाः) वर्षों पर्यन्त (वसति) रहता है ॥ १ ॥

(भावार्थ) - जब उपासक पुरुष शरीरको त्याग कर इस लोकसे जाता है तब वह वायु लोकमें पहुँचता है । तहांका निश्चल और असंख्यवायु उस उपासकके लिये तहां जैसा रथके पहियेमें छिद्र होता है तैसे ही छिद्र-वाला अपनेको करलेता है तब उस छिद्रमें को होकर वह उपासक ऊपरको जाता है और सूर्यलोकमें पहुँ-चता है वह सूर्य इस उपासकके लिये जैसे डौरू छिद्र-वाला होता है तैसे ही छिद्रवाला अपनेको करलेता है, उसमें को होकर यह उपासक और ऊपरको जाता है तथा चन्द्रलोकमें जा पहुँचता है तहां चन्द्रमा उसके लिये जैसे ढोलमें छिद्र होता है तैसे ही छिद्रवाला अपने को करलेता है तब उस छिद्रमें को उपासक ऊपर को जाता है तथा मानसिक और शारीरिक दुःखरहित प्रजा-पतिके लोकमें पहुँचता है और उस लोकमें ब्रह्माके बहुतसे कल्पों तक वास करता है १ ॥

पञ्चमाध्यायस्य दशमं ब्राह्मणं समाप्तम्

एतद्वै परमं तपो यद् व्याहितस्तप्यते परमꣳ हैव लोकं जयति य एवं वेदैतद्वै परमं तपो यं प्रेतमरण्यꣳ हरन्ति परमꣳ हैव लोकं जयति य एवं वेदैतद्वै परमं तपो यं प्रेतमग्नावभ्यादधति परमꣳ हैव लोकं जयति य एवं वेद ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यत्) जो व्याहितः व्याधिमें पीड़ित हुआ (तप्यते) दुःख पाता है (तत्, वै) यह ही (परमम्) श्रेष्ठ (तपः) तप है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (वै) निश्चय (परमं, ह एव) परम ही (लोकम्) लोकको (जयति) जीतता है (यत्) जिस (प्रेतम्) प्रेतको (अरण्यम्) वनको (हरन्ति) लेजाते हैं (एतत्, वै) यह ही (परमम्) परम (तपः) तप है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (वै) निश्चय (परमं, ह, एव) परम ही (लोकम्) लोकको (जयति) जीतता है (यम्) जिस (प्रेतम्) प्रेतको (अग्नौ) अग्निमें (अभ्यादधति) डालते हैं (एतत्, वै) यह ही (परमम्) परम (तपः) तप है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (वै) निश्चय (परमं, ह, एव) परमही (लोकम्) लोकको (जयति) जीतता है ॥ १ ॥

(भावार्थ)-जिसको ज्वर आदि रोगोंने ग्रसलिया है और मृत्युशय्या पर पड़ा है, परन्तु उसका चित्त आत्मविचारमें लगा है, इसकारण जो दुःखित न होकर रोगदशाके अपने आत्मविचारको तप मान रहा है वह

देहपात होने पर उत्तम लोकमें जाता है । वह पुरुष भी श्रेष्ठ तप कर रहा है, कि-जो रोगी होकर मरणके समीप आ पहुँचा है परन्तु आत्मविचारमें तत्पर होकर यह समझ रहा है, कि-मरनेके अनन्तर मेरी जातिके लोग मुझे जङ्गलमें लेजायँगे, ऐसा ज्ञानी भी श्रेष्ठ लोकमें जाता है । यह उस ज्ञानीका श्रेष्ठ तप है जो रोगी होकर मृत्युके निकट आ पहुँचा है परन्तु ईश्वरके विचारको नहीं छोड़ता है और उस समय भी यह चिंता करता है, कि—मेरे इस शरीरको कुछ काल पीछे मरण होजाने पर लोग अग्निमें झोंक देंगे, ऐसा दृढ़ ज्ञानी अवश्य श्रेष्ठ लोकको पाता है । जैसे सत्कर्मपरायण पुरुष गृहस्थको त्याग वानप्रस्थ होता हुआ जङ्गलमें चलाजाता है और उस अवस्थामें ही शरीरको त्याग देता है तब जिन श्रेष्ठ लोकोंको पाता है, उन ही लोकोंको यह ज्ञानी भी मरनेके पीछे पाता है । जैसे सत्कर्मपरायण मरणके अनन्तर अग्निमें प्रविष्ट हो पापोंसे निर्मल होता हुआ उत्तम लोकोंको पाता है उन ही लोकोंको यह ज्ञानी भी अपने घरमें ही शरीरपातके अनन्तर पाता है ॥ १ ॥

पञ्चमाध्यायस्यैकादशं ब्राह्मणं समाप्तम् ।

अन्नं ब्रह्मेत्येक आहुस्तन्न तथा पूयति वा अन्नमृते प्राणात्प्राणो ब्रह्मेत्येक आहुस्तन्न तथा शुष्यति वै प्राण ऋतेऽन्नादेते हत्वेव देवते एकधाभूयं भूत्वा परमतां गच्छतस्तद्ध स्माऽऽह प्रातृदः पितरं किंस्विदेवैवं विदुषे साधु कुर्यां किमेवास्मा असाधु कुर्यामिति स ह स्माऽऽह

पाणिना मा प्रातृद कस्त्वेनयोरेकधाभूयं भूत्वा परमतां गच्छतीति तस्मा उ हैतदुवाच वीत्यन्नं वै व्यन्ने हीमानि सर्वाणि भूतानि विष्टानि रमिति प्राणो वै रं प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि रमन्ते सर्वाणि ह वा अस्मिन् भूतानि विशन्ति सर्वाणि भूतानि रमन्ते य एवं वेद ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अन्नम्) अन्न (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (एके) एक (आहुः) कहते हैं (तत्) सो (तथा) तैसा (न) नहीं है (प्राणात्, ऋते) प्राण के विना (अन्नम्) अन्न (पूयति) सड़ता है (वै) प्रसिद्ध है (प्राणः) प्राण (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (एके) एक (आहुः) कहते हैं (तत्) सो (तथा) तैसा (न) नहीं है (अन्नात्, ऋते) अन्नके विना (प्राणः) प्राण (शुष्यति) सूखजाता है (वै) प्रसिद्ध है (एते, ह, एव) ये ही (देवते) देवता (एकधाभूयं) एकप्रकारके भावको (भूत्वा) प्राप्त होकर (परमताम्) ब्रह्मभावको (गच्छतः) प्राप्त होते हैं (तत्) इस तत्त्व को (प्रातृदः) प्रातृद ऋषि (पितरम्) अपने पिताके प्रति (आह, स्म) कहता हुआ (किंस्वित्) क्या (एवम्) ऐसा (विदुषे) जाननेवालेके लिये (साधु, एव) सत्कार ही (कुर्याम्) करूँ (किमेव) क्या (अस्मै) इसके लिये (असाधु) तिरस्कार (कुर्याम्) करूँ (इति) ऐसा कहने पर (सः) वह (पाणिना) हाथसे (वारयन्) निषेध करता हुआ (आह स्म) बोला (प्रातृद) हे प्रातृद (मा) नहीं (एनयोः) इन दोनोंके (एकधाभूयम्) एकीभावको (भूत्वा) पाकर (कः) कौन (परमताम्) ब्रह्मत्वको (गच्छति) प्राप्त होता है (इति) इस पर

यह (ददृश इव) दीखता हुआसा है (परोरजा,इति) परोरजा यह (एव, हि) प्रसिद्ध (एषः) यह (सर्वम्,-उ,रजः उपरि,उपरि) सब ही लोकके ऊपर ऊपर(तपति) तपता है (यः) जो (एवम्) इस प्रकार (अस्याः) इसके (एतत्) इस (पदम्) पदको (वेद) जानता है (एवं, ह, एव) इस प्रकार ही (श्रिया) लक्ष्मी करके (यशसा) यश करके (तपति) प्रकाशित होता है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-प्राण, अपान और व्यान (विग्रान) ये आठ प्राण आदिके अक्षर हैं, ऐसे ही "भर्गो देवस्य धीमहि" इन आठ अक्षर वाला प्रसिद्ध गायत्रीका एक तीसरा पद है. इस गायत्रीके इस तीसरे पदका स्वरूप ये प्रसिद्ध प्राणादिक ही हैं, ऐसी उपासना करे। जो पुरुष गायत्रीके इस प्राणादिरूप तीसरे पदकी इस प्रकार उपासना करता है वह पुरुष, जितने भी प्राणधारी हैं उन सबको अवश्य ही वशमें करलेता है। शब्दरूपा गायत्रीके कथनके अनन्तर इस तीन पदवाली गायत्रीकी अभिधेयरूप, इस ही गायत्रीका "तुरीयं दर्शतं पदं परोरजा य एष तपति" चौथा पद, दीखता हुआसा चौथा पद जो यह लोकोंके ऊपर तप रहा है, वह है [इन सब पदोंकी श्रुति स्वयं भी व्याख्या करती है] लोकमें जो चौथा प्रसिद्ध है वह यहाँ तुरीय शब्दसे कहाजाता है। 'दर्शतं पदं' यह इस अर्थको जताता है कि-सूर्यमण्डलके भीतर रहनेवाला यह प्रसिद्ध हिरण्यगर्भरूप पुरुष अतीन्द्रिय होनेके कारण साक्षात् तो नहीं दीखता परन्तु देखा हुआसा है अर्थात् योगसिद्ध ऋषियोंने इसको सूक्ष्म विचारके द्वारा जाना है। 'परोरजा' इस अर्थका बोधक है, कि-यह प्रसिद्ध सूर्यमण्डलमें वर्त्तमान परम

पुरुष सब लोकोंके ऊपर ही ऊपर सबका अधिपति बन कर तपता है [इस चौथे पदकी उपासनाके फलको कहते हैं, कि-] जो पुरुष इसप्रकार इस गायत्रीके इस चौथे पदकी उपासना करता है, वह सूर्यमण्डलमें वर्त्तमान परमपुरुषकी समान हो सर्वाधिपत्य रूप लक्ष्मीसे और यशसे प्रकाशमान् होता है ॥ ३ ॥

सैषा गायत्र्येतस्मिꣳस्तुरीये दर्शते पदे परो-
रजसि प्रतिष्ठिता तद्वै तत्सत्ये प्रतिष्ठितं चक्षुर्वै
सत्यं चक्षुर्हि वै सत्यं तस्माद्यदिदानीं द्वौ विव-
दमानावेयातामहमदर्शमहमश्रौषमिति य एवं
ब्रूयादहमदर्शमिति तस्मा एव श्रद्दध्याम तद्वै
तत्सत्यं बले प्रतिष्ठितं प्राणो वै बलं तत्प्राणे
प्रतिष्ठितं तस्मादाहुर्बलꣳसत्यादोगीय इत्ये-
वम्वेषा गायत्र्यध्यात्मं प्रतिष्ठिता सा हैषा
गयाꣳस्तत्रे प्राणा वै गयास्तत्प्राणाꣳस्तत्रे तद्य
द्गयाꣳस्तत्रे तस्माद्गायत्री नाम स यामेवामूꣳ
सावित्रीमन्वाहैषैव सा स यस्मा अन्वाह तस्य
प्राणाꣳस्त्रायते ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सा) वह (एषा) यह (गायत्री) गायत्री (एतस्मिन्) इस (तुरीये) चौथे (दर्शते) देखे हुएसे (परोरजसि) लोकके अधिपतिमें (प्रतिष्ठिता) स्थित है (तत्) इतर पद सहित (वै) प्रसिद्ध (तत्) वह (सत्ये) सत्यमें (प्रतिष्ठितम्) स्थित है (चक्षुः

वै) नेत्र ही (सत्यम्) सत्य है (हि) क्योंकि (चक्षुः) नेत्र (सत्यम्) सत्य है (तस्मात्) जिससे (यत्) जो (अहम्) मैं (अदर्शम्) देखता हुआ (अहम्) मैं (अश्रौषम्) सुनता हुआ (इति) इसप्रकार (विवदमानौ) विवाद करतेहुए (द्वौ) दो (इदानीम्) इस समय (एयाताम्) आवें [तयोः] उन दोनोंमें (यः) जो (अहम्) मैं (अदर्शम्) देखता हुआ (इति, एवम्) ऐसा (ब्रूयात्) कहे (तस्मै, एव) उसीका कथन ही (श्रद्दध्याम) श्रद्धा करते हैं (तत्) चार पद कथित (वै) प्रसिद्ध (तत्) वह (सत्यम्) सत्य (बले) बलमें (प्रतिष्ठितम्) स्थित है (प्राणः, वै) प्राण ही (बलम्) बल है (तत्) वह (प्राणे) प्राणमें (प्रतिष्ठितम्) स्थित है (तस्मात्) जिससे (बलम्) बलको (सत्यात्) सत्यसे (ओगीयः ओजीयः) बलवान् है (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं (एवं, उ) इसप्रकार ही (एषा) वह (गायत्री) गायत्री (अध्यात्मम्) सूत्रात्मारूप प्राणमें (प्रतिष्ठिता) स्थित है (ह) प्रसिद्ध (सा) वह (एषा) यह (गयान्) गान करनेवालोंको (तत्रे) रक्षा करती हुई (प्राणाः वै) प्राण ही (गयाः) गान करनेवाले हैं (तत्) उन (प्राणान्) प्राणोंको (तत्रे) रक्षा करती हुई (तत्) उसमें (यत्) क्योंकि (गयान्) गान करने वालोंको (तत्रे) रक्षा करती हुई (तस्मात्) जिससे (गायत्री, नाम) गायत्री नामवाली है (सः) वह (याम्, एव) जिस प्रसिद्ध (अमूम्) इस (सावित्रीम्) सावित्रीको (अन्वाह) कथन करता है (सा) वह (एषा, एव) यह ही है (सः) वह (यस्मै) जिसके

अर्थ (अन्वाह) क्रमसे कहता है (तस्य) उसके (प्राणान्) प्राणोंको (त्रायते) रक्षा करती है ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-वही यह त्रिपदा गायत्री इस चौथे पद रूप देखे हुएसे लोकोंके अधिपतिरूपसे आदित्यमें स्थित है । इतर पदों सहित वह प्रसिद्ध चौथा पद सत्यमें स्थित है, नेत्र ही सत्य है, क्योंकि-नेत्र सत्य है, इसकारण जो ऐसा कहै कि-मैंने अमुक वस्तु देखी है और जो कहै कि-वह वस्तु ऐसी नहीं है, यह मैंने सुना है, ऐसा विवाद करते हुए वे दोनों पुरुष इस समय हमारे पास आवें तो उन दोनोंमेंसे जो यह कहे कि-अमुक वस्तु मैंने देखी है, उसके लिये ही हमारी श्रद्धा होगी और जो कहे कि-मैंने सुना है, उसकी बात हम नहीं मानेंगे । वह चार पद सहित प्रसिद्ध सत्य बलमें स्थित है, प्राण ही बल है, उस बलरूप प्राणमें सत्य स्थित है, इसकारण लोक कहते हैं बल सत्यसे बलवान् है । इसप्रकार आदित्य नेत्र आदिमें स्थितिके द्वारा ही यह गायत्री अध्यात्म करिये सूत्रात्मारूप प्राणमें स्थित है । वह प्रसिद्ध मुख्य प्राणरूप गायत्री गान (जप) करनेवालोंकी रक्षा करती है । वाक् आदि प्राण (इन्द्रियें) ही गान करनेवाली हैं, उनकी भी रक्षा गायत्री करती है । अनुष्ठान करनेवाले के शरीरमें गान करनेवालोंकी रक्षा करती है, इसकारण गायत्री नामसे प्रसिद्ध है । आचार्य माणवक (बालक) को उपनयन देकर इस सूर्यदेवतावाली सावित्रीका उपदेश देता है । यह सावित्री ही जगत्का प्राणरूप गायत्री है । इस गायत्रीकी उपासना करनेवाला आचार्य जिस माणवकको इस गायत्रीका क्रमसे उपदेश देता है, उसके प्राणों (इन्द्रियों) की यह नरक आदिमें गिरनेसे रक्षा करता है ॥ ४ ॥

ता ७ँ हैतामेके सावित्रीमनुष्टुभमन्वाहुर्वागनुष्टु
वेतद्वाचमनुब्रूम इति न तथा कुर्याद् गायत्रीमेव
सावित्रीमनुब्रूयाद्यदि ह वा अप्येवंविद्बह्विव
प्रतिगृह्णाति न हैव तद्गायत्र्या एकंचन
पदं प्रति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एके) एक शाखावाले (ताम्)उस (एतां,ह) इसकी (अनुष्टुभम्) अनुष्टुप् छन्दवाली (सावित्रीम्) गायत्रीको (अन्वाहुः) क्रमसे उपदेश देते हैं (वाक्) वाणी (अनुष्टुप्) अनुष्टुप् है (एतद्वाचम्) इस वाणीको (अनुब्रूम) क्रमसे कहते हैं (इति) इसप्रकार (तथा) तैसा (न) नहीं (कुर्यात्) करे (गायत्रीम्) गायत्रीरूप (सावित्रीं, एव) सावित्रीको ही (अनुब्रूयात्) क्रमसे कहे (यदि,अपि) जो कि (एवंवित्) ऐसा जाननेवाला (बह्विव) बहुतसा जैसा (प्रतिगृह्णाति) भोग्यपदार्थका दान लेता है [तथापि] तो भी (तत्) वह (गायत्र्याः) गायत्रीके (एकञ्चन) एक भी (पदं, प्रति) पदके प्रति [पर्याप्तम्] पर्याप्त (न) नहीं होता है ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-कोई एक शाखावाले ["तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् । श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि" अर्थात् प्रेरणा करनेवाले देवके उस सत्त्वगुणरूप धनको हम चाहते हैं,और सूर्यदेवके अनुग्रहसे हम श्रेष्ठ, सकल भोग्य देनेवाले तथा शत्रुओंका नाश करनेवाले उस धनका उपभोग करते हैं] इस अनुष्टुप् छन्दवाली प्रसिद्ध सावित्रीका उपनयन कियेहुए वह माणवकको उपदेश देते हैं । उनका अभिप्राय यह है कि वाणी

अनुष्टुप् है और वाणी शरीरमें सरस्वती है, इसलिये हम इस अनुष्टुपरूप वाणी (सरस्वती) का माणवकको उपदेश देते हैं, ऐसा कहते हुए उसका ही उपदेश देते हैं, परन्तु यह उनका कहना मिथ्या है, इस कारण ऐसा न करे अर्थात् वटुको अनुष्टुपरूपा सावित्री का उपदेश न करे, किन्तु गायत्रीरूपा सावित्रीका ही उपदेश करे, क्योंकि—उसके उपदेशमें सब उपदेश होजाता है। गायत्रीको जाननेवालेमें ऐसा प्रभाव होता है, कि—वह चाहे बहुतसा प्रतिग्रह करे तो भी वह गायत्रीके एक पदके विज्ञानके फलकी समान भी नहीं होता है ॥ ५ ॥

स य इमाꣳस्त्रींल्लोकान् पूर्णान् प्रतिगृह्णीयात्सोऽस्या एतत्प्रथमं पदमाप्नुयादथ यावतीयं त्रयी विद्या यस्तावत् प्रतिगृह्णीयात्सोऽस्या एतद् द्वितीयं पदमाप्नुयादथ यावदिदं प्राणि यस्तावत्प्रतिगृह्णीयात्सोऽस्या एतत्तृतीयं पदमाप्नुयादथाऽस्या एतदेव तुरीयं दर्शतं पदं परोरजा य एष तपति नैव केनचनाऽऽप्यं कुत उ एतावत्प्रति गृह्णीयात ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (यः) जो (पूर्णान्) पूर्ण (इमान्) इन (त्रीन्) तीन (लोकान्) लोकों को (प्रतिगृह्णीयात्) प्रतिग्रह करे (सः) वह (अस्याः) इसके (प्रथमं) पहले (पदम्) पदको (आप्नुयात्) पावे (अथ) और (यावती) जितनी (इयम्) यह (त्रयी,विद्या) त्रयी विद्या है (तावत्) उतना (यः)

जो (प्रतिगृह्णीयात्) प्रतिग्रह करे (सः) वह (अस्याः) इसके (एतत्) इस (द्वितीयम्) दूसरे (पदम्) पदको (आप्नुयात्) पावे (अथ) और (यावत्) जितना (इदम्) यह (प्राणि) प्राणियोंका समूह है (यः) जो (तावत्) उतना (प्रतिगृह्णीयात्) प्रतिग्रह करे (सः) वह (अस्याः) इसके (एतत्) इस (तृतीयम्) तीसरे (पदम्) पदको (आप्नुयात्) पावे (अथ) और (अस्याः) इसका (एतत्,एव) यही (तुरीयम्) चौथा (दर्शनम्) दीखता हुआसा (पदम्) पद (परोरजाः) सब लोकोंके ऊपर वर्त्तमान (यः) जो (एषः) यह (तपति) तपता है (केनचन,एव) किसीके द्वारा भी (न) नहीं (आप्यम्) प्राप्त होने योग्य है (एतावत्) इतना (कुतः,उ) कहांसे (प्रतिगृह्णीयात्) प्रतिग्रह करे ॥ ६॥

(भावार्थ)-गायत्रीका जाननेवाला धनसे भरेहुए इन भू आदि तीनों लोकों का प्रतिग्रह करलेय तो वह प्रतिग्रह इस गायत्रीके प्रथम पदकी उपासनाके फलकी समान होसकेगा, फिर उस प्रतिग्रहसे कुछ दोष कैसे लग सकता है ? जितनी यह त्रयी विद्या है, उसकी बराबरी करनेवाली वस्तुको यदि गायत्रीका ज्ञाता प्रतिग्रहरूपमें ले लेय तो वह प्रतिग्रह गायत्रीके दूसरे चरण की उपासनासे प्राप्त होनेवाले फलको भोगनेकी समान होगा और जितना यह प्राणियोंका समूह है यदि उतने का प्रतिग्रह करे तो वह प्रतिग्रह गायत्रीके तीसरे चरण की उपासनाके फलको भोगनेकी समान होता है (न ऐसा कोई दाता और न कोई ऐसा प्रतिग्रह करनेके ही योग्य है, तथापि श्रुतिने कल्पना करके गायत्रीकी प्रशंसा करी है) तीनों पदोंकी उपासनाके फलको भोगने

के अनन्तर यह गायत्रीका जो दर्शन कियाहुआसा सब लोकोंसे श्रेष्ठ प्रकाशवान् चौथा पद है, उसकी उपासनाका फल अनन्त है, इसकारण उसकी उपासनाके फल की बराबरी कोई भी प्रतिग्रह आदि नहीं कर सकता, फिर इतना प्रतिग्रह करेगा ही कहांसे? इस की उपासनाके फलकी समान कोई प्रतिग्रहकी वस्तु है ही नहीं, अतः उसका चय नहीं होता है ॥ ६ ॥

तस्या उपस्थानम्, गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि न पद्यसे । नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसेऽसावदो मा प्रापदिति यं द्विष्यादसावस्मै कामो मा समृद्धीति वा न हैवास्मै स कामः समृध्यते यस्मा एवमुपतिष्ठतेऽहमदः प्रापमिति ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्याः) उसका (उपस्थानम्) उपस्थान [अनेन,मंत्रेण,कर्त्तव्यम्] इस मन्त्रसे करना चाहिये (गायत्रि) हे गायत्री (एकपदी) एकपदवाली (असि) है (द्विपदी) दो पदवाली (चतुष्पदी) चार पदवाली (अपदी) पदरहित (असि) हो (हि) क्योंकि (न) नहीं (पद्यसे) जानीजाती है (दर्शताय) देखे हुएसे (परोरजसे) लोकोंके ऊपर वर्त्तमान (तुरीयाय चौथे (पदाय) पदरूप (ते) तेरे अर्थ (नमः) नमस्कार हो (असौ) यह (अद) यह (मा,प्रापत्) न प्राप्त हो (इति) यह मेरी उपासना है (यम्) जिस के प्रति (द्विष्यात्) द्वेष करे (असौ) यह (अस्मै) इसके लिये (कामः) अभिलषित पदार्थ (मा,समृद्धि)

पूर्णताको प्राप्त न हो (इति) यह प्रार्थना है (वा) इस से (यस्मै) जिस के लिये (एवम्) इसप्रकार (उपतिष्ठते) उपस्थान करता है (अस्मै) इसके लिये (सः) वह (ह) प्रसिद्ध (कामः) अभिलषित पदार्थ (नैव) नहीं (समृध्यते) पूर्णता पाता है (वा) अथवा (अहम्) मैं (अदः) इस को (प्रापम्) पाऊँ (इति) इसप्रकार करे ॥७॥

(भावार्थ) इस मंत्रसे गायत्रीका उपस्थान (ध्यान के द्वारा समीपस्था होकर नमस्कार) करे, कि-हे गायत्री! तू त्रिलोकीरूप एक पदसे एकपदी है, त्रयीविद्यारूप पद से द्विपदी है, तू प्राणादि रूप पदसे त्रिपदी है और सूर्य-मण्डलके भीतर स्थित पुरुषरूप पदसे चतुष्पदी है, इसप्रकार चार पदोंसे तुम्हें उपासक जानते हैं, हे गायत्री! निरुपाधिक रूपसे तू अपदा है, क्योंकि-तुम्हें देशरूपसे कोई नहीं जान सकता । व्यवहारमें आनेवाले चौथे दर्शत तुरीयरूपमें और लोकोंके ऊपर रहनेवाली तुमको नमस्कार है । यह पाप रूप शत्रु तुम्हारी प्राप्तिमें विघ्न करता है, इस पापरूप शत्रुका तुम्हारी प्राप्तिमें विघ्न-कारीपन मुझे प्राप्त न हो, यही मेरी प्रार्थना है । उपासक जो पापरूप शत्रुके ऊपर द्वेष करता है, उसके ही प्रति इस मन्त्रसे उपस्थान किया जाता है । यह अमुक नाम वाला शत्रु है (यहां शत्रुका नाम लेवे) इस शत्रु की अभिलाषित वस्तुओंकी पूर्ति न हो । जो शत्रुके लिये इसप्रकार उपस्थान करता है, इसलिये वह अभिलषित पदार्थों को पूर्ण रीतिसे कदापि नहीं पाता है । अथवा मैं इसके अभिलषित वा अपने अभिलषित पदार्थको पाजाऊँ, इसप्रकार इच्छानुसार उपस्थान करे. ७

एतद्ध वै तज्जनको वैदेहो बुडिलमाश्वतरा-
श्विमुवाच यन्नु हो तद्गायत्रीविदब्रूथा अथ
कथꣳ हस्ती भूतो वहसीति मुखꣳ ह्यस्याः
सम्राण्न विदाञ्चकारेति होवाच तस्या अग्नि-
रेव मुखं यदि ह वा अपि बह्विवाग्नावभ्या-
दधति सर्वमेव तत्सन्दहत्येवꣳ हैवैवंविद्यद्यपि
बह्विव पापं कुरुते सर्वमेव तत्संप्साय शुद्धः
पूतोऽजरोऽमृतः संभवति ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) उसमें (एतत्) यह (ह, वै) प्रसिद्ध [स्मर्यते] स्मरण किया जाता है (वैदेहः) वैदेह (जनकः) जनक (आश्वतराश्विम्) अश्वतराश्वके पुत्र (बुडिलम्) बुडिल को (उवाच) कहता हुआ (हो) अहो (यत्) जो (गायत्रीवित्) गायत्री का जानने वाला हूं [इति] ऐसा (अब्रूथाः) कहता हुआ (तत्) वह (नु) आश्चर्य है (अथ) ऐसा है [तर्हि] तो (कथम्) कैसे (हस्तीभूतः) हाथी हुआ (वहसि) वहन करता है (इति) ऐसा कहने पर (सम्राट्) हे सार्वभौम ! (हि) क्योंकि (अस्याः) इसके (ह) प्रसिद्ध (मुखम्) मुखको [अहम्] मैं (न) नहीं (विदाञ्चकार) जानता हुआ (इति) ऐसा (उवाच) कहता हुआ (अग्निः, एव) अग्नि ही (तस्याः) उसका (मुखम्) मुख है (यदि, ह, वा) जो कि (अग्नौ) अग्निमें (बहु, इव, अपि) बहुतसा भी (अभ्यादधति) डालते हैं (तत्) उस (सर्वम्, एव) सबको ही (सन्दहति, स) जलाता ही है (एवं, एव) ऐसा ही है (एवं-

वित्) ऐसा जाननेवाला (यद्यपि) यद्यपि (बहु, इव) बहुतसे (पापम्) पापको (कुरुते) करता है [तथापि] तो भी (तत्) उस (सर्वम्, एव) सबको ही (संप्साय) सम्यक् प्रकारसे भक्षण करके (शुद्धः) शुद्ध (पूतः) पवित्र (अजरः) जरारहित (अमृतः) अमर (संभवति) होता है ॥ ८ ॥

(भावार्थ)–उस गायत्रीकी उपासनाके विषयमें यह स्मरण किया जाता है, कि विदेह देशके राजा जनकने अश्वतराश्वके पुत्र बुडिलसे कहा, कि यह आश्चर्यकी बात है, कि तुम अपनेको गायत्रीका जाननेवाला कहते हुए भी मेरे सामने हाथीकी समान प्रतिग्रहके दोषसे दब रहे हो ! राजाके ऐसा कहने पर बुडिलने कहा कि–हे महाराज ! इस गायत्रीके मुखको नहीं जानता हूं । यह सुन कर जनकने कहा, कि गायत्रीका मुख अग्नि ही है । जैसे लोग अग्निमें चाहे जितना ईंधन डालदें उसको अग्नि भस्म ही कर डालता है, ऐसे ही गायत्रीका मुख अग्नि है, ऐसा जाननेवाला उपासक बहुतसा प्रतिग्रह आदि दोष करे तो भी उस सब ही पापसमूहको पूर्णतया भक्षण करके शुद्ध कहिये पापके स्पर्शसे रहित पवित्र कहिये प्रतिग्रहसे होनेवाले पापके संसर्गसे शून्य जरारहित तथा अविनाशी होजाता है ॥ ८ ॥

इति पञ्चमाध्यायस्य चतुर्दशं ब्राह्मणं समाप्तम्

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् । तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये । पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् । समूह तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि यो-

ऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तँ शरीरम् । ओ३म् क्रतो स्मर कृतँ स्मर क्रतो स्मर कृतँ स्मर । अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(हिरण्मयेन) प्रकाशमान (पात्रेण) पात्रके द्वारा (सत्यस्य) सत्यका (मुखम्) स्वरूप (अपिहितम्) ढका हुआ है (पूषन्) हे पोषण करने वाले (त्वम्) तुम (सत्यधर्माय) सत्य धर्मके अर्थ (दृष्टये) दर्शन होनेके लिये (तत्) उसको (अपावृणु) खोलिये (पूषन्) हे पोषक (एकर्षे) हे अकेले चलने वाले (यम) हे नियामक (सूर्य) हे अन्तर्यामी (?) प्रेरणा करनेवाले (प्राजापत्य) हे प्रजापतिके पुत्र (रश्मीन्) किरणोंको (व्यूह) समेटिये (तेजः) तेजको (समूह) सङ्कुचित कीजिये (ते) तुम्हारा (यत्) जो (कल्याणतमम्) अत्यन्त कल्याणमय (रूपम्) रूप है (ते) तुम्हारे (तत्) उसको (पश्यामि) देखूं (यः) जो (असौ) यह (पुरुषः) पुरुष (सः) वह (अहम्) मैं (अस्मि) हूं (वायुः) आध्यात्मिक वायु (अमृतम्) आधिदैविक (अनिलम्) वायुको [गच्छतु] प्राप्त होय (अथ) अनन्तर (इदम्) यह (शरीरम्) शरीर (भस्मान्तम्) भस्मरूप अन्तवाला [पृथिवीम्, यातु] पृथिवीको प्राप्त हो (ओ३म् क्रतो) हे सर्वरक्षक क्रतो (स्मर) स्मरण कर (कृतम्) करे हुए

को (स्मर) स्मरण कर (क्रतो) हे क्रतो (स्मर) स्मरण कर (कृतम्) करे हुएको (स्मर) स्मरण कर (देव) प्रकाशरूप (अग्ने) हे अग्ने (विश्वानि) सब (वयुनानि) उपासनाओंको (विद्वान्) जानते हो (राये) कर्मफलको भोगनेके लिये (अस्मान्) हमें (सुपथा) शोभन मार्गसे (नय) पहुँचाओ (अस्मत्) हमारे (जुहुराणम्) कुटिल (एनः) पापको (युयोधि) दूर करो (ते) तुम्हारे अर्थ (भूयिष्ठाम्) बहुतसी (नमउक्तिम्) प्रणामकी वाणीको (विधेम) समर्पण करते हैं ॥ १ ॥

(भावार्थ) —प्रकाशमय मण्डलरूप पात्रकी समान ढकनसे सत्य नामक सूर्यब्रह्मका स्वरूप वा द्वार ढका हुआ है । हे जगत्का पोषण करनेवाले पूषा ! हे सूर्यदेव ! मेरे आत्मासे अभिन्न आपका दर्शन होनेके लिये, परमार्थस्वरूप ब्रह्मस्वरूप भाववाले मुझ सत्यधर्मके लिये उस स्वरूप परसे आवरणको हटादो, दर्शनकी बाधाको दूर करदो । हे उष्णता आदि देकर जगत्का पोषण करनेवाले ! हे एकाकी विचरनेवाले ! हे सकल जगतके नियामक ! हे बुद्धि आदिके वा इन्द्रियोंके प्रेरक ! हे ईश्वरके वा हिरण्यगर्भके पुत्र ! किरणोंको समेट लीजिये, चक्षुका तिरस्कार करनेवाले अपने तीव्र तेजको संकुचित करिये, कि-जिससे तुम्हारा जो सत्य ज्ञानादिरूप परमकल्याणवाला स्वरूप है, उस तुम्हारे स्वरूपका मैं दर्शन (अनुभव) करूँ । जो यह व्याहृतिरूप अवयववाला आदित्यमें स्थित यह अविनाशी पुरुष है वह मैं ही हूँ । मेरे शरीरका पात होजाने पर उसमेंका

प्राणवायु आधिदैविक बाहरी वायुमें जा मिले, अन्य इन्द्रियें भी अपने २ कारणोंमें चली जायँ, फिर यह शरीर भस्मरूप परिणामको प्राप्त होकर पृथिवीमें जा मिले। हे सबके रक्षक क्रतु कहिये मनमें रहनेवाले सङ्कल्परूप अग्ने! तू स्मरण करने योग्यका स्मरण कर, मैंने जिन कर्म वा उपासनाओंको किया है उनका स्मरण कर, हे क्रतो! स्मरण कर, मेरे कियेहुये कर्मादिका स्मरण कर (दो बार आदरार्थ कहा है) हे प्रकाशरूप अग्निदेव! तुम सकल उपासनाओं तथा कर्मोंको जाननेवाले हो, इसकारण कर्मफलको भोगनेके लिये पुनरावृत्तिरहित उत्तरमार्गसे भेजो और मेरे देवयानमार्गमें विघ्न डालनेवाले सब कुटिल पापोंको दूर करो। हम देहावसान (मरण) के समय और कुछ नहीं कर सकते, इसकारण हम आपको बहुतसे प्रणामवचन समर्पण करते हुए आपका पूजन करते हैं ॥ १ ॥

पञ्चमाध्यायस्य पञ्चदशं ब्राह्मणं समाप्तम्।

पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः

—०—

अथ षष्ठोऽध्यायः

अब शेष रही हुई ब्रह्मकी उपासनायें तथा श्रीमन्थ आदि कर्मोंके कथनार्थ इस अध्यायका आरम्भ होता है। इसमें चक्षु आदिके होते हुए भी उक्थ ब्राह्मणमें उक्थआदि भावसे केवल प्राणकी ही उपासना क्यों कही है? इस शङ्काको दूर करने के लिये प्राणकी ज्येष्ठता दिखाते हुए स्वतन्त्र प्राणोपासनाको कहते हैं—

ॐ । यो ह वै ज्येष्ठञ्च श्रेष्ठञ्च वेद ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च स्वानां भवति प्राणो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च स्वानां भवत्यपि च येषां बुभूषति य एवं वेद ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (ह) प्रसिद्ध (ज्येष्ठम्) ज्येष्ठको (च) और (श्रेष्ठं, च) श्रेष्ठको भी (वेद) जानता है (स्वानाम्) अपनोंमें (ज्येष्ठः) ज्येष्ठ (च) और (श्रेष्ठः, च) श्रेष्ठ भी (भवति) होता है (प्राणः वै) प्राण ही (ज्येष्ठः) ज्येष्ठ (च) और (श्रेष्ठः, च) श्रेष्ठ भी है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (स्वानाम्) अपनोंमें (ज्येष्ठः) ज्येष्ठ (च) और (श्रेष्ठः, च) श्रेष्ठ भी (भवति) होता है (अपि, च) और (येषाम्) जिनमें (बुभूषति) होना चाहता है ॥ १ ॥

(भावार्थ)-जो कोई प्रसिद्ध ज्येष्ठ और श्रेष्ठको जानता है वह अपनी जातिमें ज्येष्ठ और श्रेष्ठ होता है । प्राण ही शरीरमें नेत्र आदिसे पहले प्रकट हुआ है इसकारण अवस्थामें ज्येष्ठ (बड़ा) तथा गुणसे श्रेष्ठ है । जो ऐसे गुणोंवाले प्राणकी उपासना करता है वह अपनी जातिमें बड़ा और श्रेष्ठ होता है तथा अपनी जातिके सिवाय और जिनमें ज्येष्ठ तथा श्रेष्ठ होना चाहता है, उनमें भी वैसा ही होजाता है ॥ १ ॥

यो ह वै वसिष्ठां वेद वसिष्ठः स्वानां भवति वाग्वै वसिष्ठा वसिष्ठः स्वानां भवत्यपि च येषां बुभूषति य एवं वेद ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (ह) प्रसिद्ध (वसिष्ठाम्) वसिष्ठाको (वेद) जानता है (स्वानाम्) अपनोंमें (वसिष्ठः वसिष्ठ (भवति) होता है (वाक्, वै) वाणी ही (वसिष्ठा) वसिष्ठ है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (स्वानाम्) अपनोंमें (वसिष्ठः) वसिष्ठ (भवति) होता है (अपि, च) और (येषाम्) जिनमें (बुभूषति) होना चाहता है ॥ २ ॥

(भावार्थ) जो कोई प्रसिद्ध वसिष्ठा (दूसरोंका तिरस्कार करनेवाले गुणोंसे युक्त) को जानता है वह अपनी जातिमें वसिष्ठ कहिये सबको दबा कर रहने वाला होता है। वाणी ही वसिष्ठा (आच्छादन करने वाली दूसरेका पराभव करनेवाले गुणवाली) है। वाणी पराभव करनेके गुणवाली है, ऐसा जानकर जो वाणी की उपासना करता है वह अपनी जातिमें वसिष्ठ (दूसरोंको दबा कर रहनेवाला) होता है तथा अपनी जातिके सिवाय और जिनमें दबाकर रहनेवाला होना चाहता है, उनमें भी वैसा ही होजाता है ॥ २ ॥

यो ह वै प्रतिष्ठां वेद प्रतितिष्ठति समे प्रतितिष्ठति दुर्गे चक्षुर्वै प्रतिष्ठा चक्षुषा हि समे च दुर्गे च प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति समे प्रतितिष्ठति दुर्गे य एवं वेद ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (ह) प्रसिद्ध (प्रतिष्ठाम्) प्रतिष्ठाको (वेद) जानता है (समे) समानमें (प्रतितिष्ठति) भले प्रकारसे स्थित होता है (दुर्गे) विषम में (प्रतितिष्ठति) भले प्रकारसे स्थित होता है (चक्षुः, वै) नेत्र ही (प्रतिष्ठा) प्रतिष्ठा है (हि) क्योंकि-

(चक्षुषा) नेत्रके द्वारा (समे) समानमें (च) और (दुर्गे च) विषममें भी (प्रतितिष्ठति) भले प्रकारसे स्थित होता है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (समे) सममें (दुर्गे) विषममें (प्रतितिष्ठति) अच्छे प्रकारसे स्थित होता है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)—जो कोई प्रसिद्ध प्रतिष्ठा (उत्तम स्थिति रूप गुणवाले) को जानता है वह सम (उत्कृष्ट) देशमें अथवा सुभिक्ष आदि अच्छे समयमें उत्तम प्रकारसे रहता है तथा विषम देश वा दुर्भिक्ष आदि विषम कालमें भी उत्तम प्रकारसे रहता है । नेत्र ही प्रतिष्ठा (उत्तम स्थिति) है, क्योंकि-पुरुष नेत्रके द्वारा सम देश आदिमें और विषमदेश आदिमें उत्तम रीतिसे रहता है । जो ऐसी उपासना करता है । वह सम भूमि और विषमभूमिमें उत्तम रीतिसे निर्वाह करता है ॥३॥

यो ह वै सम्पदं वेद स ᳪ हास्मै पद्यते यं
कामं कामयते श्रोत्रं वै सम्पच्छ्रोत्रे हीमे सर्वे
वेदा अभिसम्पन्नाः स ᳪ हास्मै पद्यते यं
कामं कामयते य एवं वेद ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (ह) प्रसिद्ध (सम्पदम्) सम्पत् को (वै) निश्चय (वेद) जानता है (यम्) जिस (कामम्) भोगको (कामयते) चाहता है (अस्मै) इसके अर्थ (सम्पद्यते, ह) अवश्य प्राप्त होता है (श्रोत्रं वै) श्रोत्र ही (संपत्) सम्पत् है (हि) क्योंकि (श्रोत्रे) श्रोत्रके होने पर (इमे) ये (सर्वे) सब (वेदाः) वेद (अभिसम्पन्नाः) प्राप्त कर लिये जाते हैं (यः) जो

(एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (यम्) जिस (कामम्) भोगको (कामयते) चाहता है (अस्मै) इसको (सः) (सम्पद्यते ह) अवश्य प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

(भावार्थ) जो प्रसिद्ध सम्पत्‌की उपासना करता है वह जिस भोगको चाहता है उसको वही भोग अवश्य प्राप्त होता है। श्रोत्र (कान) ही सम्पत् है, क्योंकि श्रोत्रके होनेपर ये सब वेद प्राप्त किये जा सकते हैं तथा विहित कर्मके द्वारा ही इच्छित भोगकी प्राप्ति होती है। जो ऐसा उपासना करता है वह जिस भोगको चाहता है वह भोग उसको अवश्य ही प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

यो ह वा आयतनं वेदाऽऽयतनꣳ स्वानां भव-
त्यायतनं जनानां मनो वा आयतनमायतनꣳ
स्वानां भवत्यायतनं जनानां य एवं वेद ॥५॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (ह) प्रसिद्ध (आयतनम्) आश्रयको (वेद) जानता है (स्वानाम्) अपनोंका (जनानाम्) जनोंका (आयतनम्) आश्रय (भवति) होता है (मनः, वै) मन ही (आयतनम्) आश्रय है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (स्वानाम्) अपनोंका (आयतनम्) आश्रय (जनानाम्) जनोंका (आयतनम्) आश्रय (भवति) होता है ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-जो प्रसिद्ध आश्रयकी उपासना करता है वह अपनी जातिवालोंका तथा और लोगोंका भी आश्रय होता है। मन ही इन्द्रियोंका तथा विषयोंका आश्रय है, क्योंकि-मनका आश्रय पाये हुए विषय जीवके भोगनेमें आते हैं और मनके सङ्कल्पके वशमें हुई इन्द्रियें अपना २ काम करनेमें प्रवृत्त और निवृत्त होती

हैं। जो ऐसी उपासना करता है वह जातिवालोंका तथा दूसरे पुरुषोंका आश्रय होता है ॥ ५ ॥

यो ह वै प्रजापतिं वेद प्रजायते ह प्रजया पशुभी रेतो वै प्रजापतिः प्रजायते ह प्रजया पशुभिर्य एवं वेद ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (ह) प्रसिद्ध (प्रजापतिम्) प्रजापतिको (वेद) जानता है (प्रजया) प्रजाके द्वारा (पशुभिः) पशुओंके द्वारा (प्रजायते, ह) अवश्य सम्पन्न होता है (रेतः, वै) वीर्य ही (प्रजापतिः) प्रजापति है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (प्रजया) सन्तान करके (पशुभिः) पशुओं करके (प्रजायते, ह) अवश्य सम्पन्न होता है ॥ ६ ॥

(भावार्थ)—जो प्रसिद्ध प्रजापतिको जानकर उपासना करता है वह सन्तान और पशुओंसे सम्पन्न होता है। रेत (सन्तानको उत्पन्न करनेवाली इन्द्रिय) ही प्रजापति (सन्तानकी उत्पत्तिका कारण) है, जो ऐसी उपासना करता है, वह सन्तान और पशुओंसे अवश्य ही सम्पन्न होता है ॥ ६ ॥

[illegible] आदि [illegible] आदिमें नहीं रहते हैं किन्तु प्राणमें रहते हैं, यह दिखानेके लिये आख्यायिका आरंभ करते हैं—

ते हेमे प्राणा अहंश्रेयसे विवदमाना ब्रह्म जग्मुस्तद्धोचुः को नो वसिष्ठ इति तद्धोवाच यस्मिन्व उत्क्रान्त इदंशरीरं पापीयो मन्यते स वो वसिष्ठ इति ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध (ते) वे (इमे) ये (प्राणाः) प्राण (अहंश्रेयसे) मैं श्रेष्ठ हूं इसके लिये (विवदमानाः) विवाद करते हुए (ब्रह्म) प्रजापतिके प्रति (जग्मुः) गये (तत्) उसके प्रति (नः) हममें (कः) कौन (वसिष्ठः) श्रेष्ठ है (इति) ऐसा (ऊचुः) कहते हुए (तत्) वह (इति) इसप्रकार (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (वः) तुममें (यस्मिन्, उत्क्रान्ते) जिसके निकलने पर (इदम्) यह (शरीरम्) शरीर (पापीयः) अधिक पापी (मन्यते) माना जाता है (सः) वह (वः) तुममें (वसिष्ठः) श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

(भावार्थ)-वाणी आदि प्रसिद्ध प्राण (इन्द्रियें) मैं श्रेष्ठ हूं, मैं श्रेष्ठ हूं, इसप्रकार विवाद करते हुए प्रजापतिके पास गये और कहनेलगे कि-हे ब्रह्मन् ! बताइये हममें कौन श्रेष्ठ है ? इस पर प्रजापतिने उत्तर दिया कि तुममेंसे जिसके निकल जाने पर यह [illegible] नष्ट होने योग्य अधिक पापिष्ठ कहा जाता है तुम सबोंमें वही श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

वाग्घोच्चक्राम सा संवत्सरं प्रोष्यागत्योवाच कथमशकत मदृते जीवितुमिति ते होचुर्यथा कला अवदन्तो वाचा प्राणन्तः प्राणेन पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण विद्वाᳬसो मनसा प्रजायमाना रेतसैवमजीविष्मेति प्रविवेश ह वाक् ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध (वाक्) वाणी (उच्चक्राम) निकलगयी (सा) वह (संवत्सरम्) वर्षभर

(प्रोष्य) अन्यत्र रहकर (आगत्य) आकर (उवाच) कहने लगी (मदृते) मेरे बिना (जीवितुम्) जीनेको (कथम्) कैसे (अशकत) समर्थ हुए (ते) वे (इति) इसप्रकार (ह) स्पष्ट (ऊचुः) बोले (यथा) जैसे (कलाः) गूँगे (वाचा) वाणीसे (अवदन्तः) न बोलते हुए (प्राणेन) प्राणके द्वारा (प्राणन्तः) श्वास लेते हुए (चक्षुषा) आँखसे (पश्यन्तः) देखते हुए (श्रोत्रेण) कानके द्वारा (शृण्वन्तः) सुनते हुए (मनसा) मनके द्वारा (विद्वांसः) जानतेहुए (रेतसा) वीर्यके द्वारा (प्रजायमानाः) सन्तानको उत्पन्न करतेहुए (एवम्) ऐसेही (अजीविष्म) जीवित रहे (इति) ऐसा कहने पर (ह) प्रसिद्ध (वाक्) वाणी (प्रविवेश) प्रवेश करगयी ॥ ८ ॥

(भावार्थ)–प्रजापतिके ऐसा कहने पर अपने बलकी परीक्षा करनेके लिये वाणी आदि सब इन्द्रियोंने शरीरमें से निकलनेका विचार किया और उनमें से वाणी इस शरीरको छोड़कर निकल गयी और एक वर्षतक बाहर रहकर फिर लौट आयी तथा दूसरी इन्द्रियोंसे कहने लगी, कि तुम इस शरीरमें मेरे बिना कैसे जीवित रहीं ? इस पर उन्होंने वाणीसे कहा, कि–जैसे गूँगे प्राणी वाणीसे तो नहीं बोलते परन्तु प्राणसे श्वास लेते हुए, नेत्रसे देखते हुए, कानसे सुनते हुए, मनसे कर्त्तव्य अकर्त्तव्यको जानते हुए और वीर्यसे पुत्रादिको उत्पन्न करते हुए जीवित रहते हैं तैसे ही हम भी जीते रहे । यह उत्तर सुनकर वाणीको निश्चय होगया, कि मैं सबसे श्रेष्ठ नहीं हूँ, इसलिये वह फिर शरीरमें प्रवेश करगयी ॥ ८ ॥

चक्षुर्होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्याऽऽगत्योवाच कथमशकत मदृते जीवितुमिति ते होचुर्यथाऽन्धा अपश्यन्तश्चक्षुषा प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा शृण्वन्तः श्रोत्रेण विद्वाꣳसो मनसा प्रजायमाना रेतसैवमजीविष्मेति प्रविवेश ह चक्षुः ॥९॥

अन्वय और पदार्थ (ह) प्रसिद्ध (चक्षुः) नेत्र (उच्चक्राम) निकला (तत्) वह (संवत्सरम्) वर्षभर (प्रोष्य) बाहर रहकर (आगत्य) आकर (उवाच) कहने लगा (मदृते) मेरे बिना (जीवितुम्) जीवित रहनेको (कथम्) कैसे (अशकत) समर्थ हुए (इति) इस पर (ते) वे (ह) स्पष्ट (ऊचुः) बोले (यथा) जैसे (अन्धाः) अन्धे (चक्षुषा) नेत्रसे (अपश्यन्तः) न देखते हुए (प्राणेन) प्राणके द्वारा (प्राणन्तः) श्वास लेते हुए (वाचा) वाणीके द्वारा (वदन्तः) बोलते हुए (श्रोत्रेण) कानसे (शृण्वन्तः) सुनतेहुए (मनसा) मनसे (विद्वांसः) जानते हुए (रेतसा) वीर्यके द्वारा (प्रजायमानाः) सन्तानको उत्पन्न करते हुए (एवम्) इसप्रकार ही (अजीविष्म) जीते रहे (इति) ऐसा कहने पर (ह) प्रसिद्ध (चक्षुः) नेत्र (प्रविवेश) प्रवेश करगया ९

(भावार्थ)-तदनन्तर शरीरमेंसे नेत्र निकल कर चलागया और साल भर बाहर रहकर फिर आकर कहने लगा, कि-बताओ मेरे बिना तुम कैसे जीते रहे, इस पर अन्य सब इन्द्रियोंने उत्तर दिया, कि-जैसे अन्धा मनुष्य यद्यपि आंखसे नहीं देखसकता है, परन्तु प्राणसे श्वास लेता हुआ, वाणीसे बोलता हुआ, कानसे सुनता हुआ,

मनसे जानता हुआ और वीर्यसे सन्तान उत्पन्न करता हुआ जीता रहता है ऐसे ही हम भी तेरे बिना जीते रहे, इस उत्तरको सुनकर नेत्रने समझा, कि मैं सबमें श्रेष्ठ नहीं हूँ और वह फिर शरीरमें प्रवेश करगया ॥९॥

श्रोत्रं होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्यागत्योवाच कथमशकत मदृते जीवितुमिति ते होचुर्यथा बधिरा अशृण्वन्तः श्रोत्रेण प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा विद्वांसो मनसा प्रजायमाना रेतसैवमजीविष्मेति प्रविवेश ह श्रोत्रम् ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध (श्रोत्रम्) कान (उच्चक्राम) निकलगया (तत्) वह (संवत्सरम्) वर्ष भर (प्रोष्य) बाहर रहकर (आगत्य) आकर (उवाच) कहने लगा (मदृते) मेरे बिना (जीवितुम्) जीनेको (कथम्) कैसे (अशकत) समर्थ हुए (इति) इस पर (ते) वे (ह) स्पष्ट (ऊचुः) बोले (यथा) जैसे (बधिराः) बहरे (श्रोत्रेण) कानसे (अशृण्वन्तः) न सुनते हुए (प्राणेन) प्राणसे (प्राणन्तः) श्वास लेते हुए (वाचा) वाणीसे (वदन्तः) बोलते हुए (चक्षुषा) आंखसे (पश्यन्तः) देखते हुए (मनसा) मनसे (विद्वांसः) जानते हुए (रेतसा) वीर्यके द्वारा (प्रजायमानाः) सन्तान उत्पन्न करते हुए (एवम्) ऐसे ही (अजीविष्म) जीवित रहे (इति) ऐसा कहने पर (ह) प्रसिद्ध (श्रोत्रम्) कान (प्रविवेश) प्रवेश करगया ॥१०॥

(भावार्थ)-तदनन्तर शरीरमेंसे कान निकल गया

और वह सालभर तक बाहर रहा, तदनन्तर फिर आकर कहने लगा, कि-तुम सब मेरे बिना कैसे जीते रहे ? इस पर उन्होंने उत्तर दिया, कि-जैसे बहरा कान से न सुनने पर भी प्राणसे श्वास लेता हुआ, वाणीसे बोलता हुआ, आंखसे देखता हुआ, मनसे जानता हुआ और उपस्थसे सन्तान उत्पन्न करता हुआ जीवित रहता है, ऐसे ही हम भी जीवित रहे। इस उत्तरको सुनकर कानने निश्चय किया, कि मैं श्रेष्ठ नहीं हूं और वह फिर शरीरमें प्रवेश कर गया ॥ १० ॥

मनो होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्यागत्योवाच कथमशकत मदृते जीवितुमिति ते होचुर्यथा मुग्धा अविद्वांसो मनसा प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण प्रजायमाना रेतसैवमजीविष्मेति प्रविवेश ह मनः ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध (मनः) मन (उच्चक्राम) बाहर निकल गया (तत्) वह (सम्वत्सरम्) वर्ष भर (प्रोष्य) बाहर रहकर (आगत्य) आकर (उवाच) कहने लगा (मदृते) मेरे बिना (जीवितुम्) जीनेको (कथम्) कैसे (अशकत) समर्थ हुए (इति) इस पर (ते) वे (ह) स्पष्ट (ऊचुः) बोले (यथा) जैसे (मुग्धाः) मूढ़ (मनसा) मनके द्वारा (अविद्वांसः) न जानते हुए (प्राणेन) प्राणसे (प्राणन्तः) श्वास लेते हुए (वाचा) वाणीसे (वदन्तः) बोलते हुए (चक्षुषा) आंखसे (पश्यन्तः) देखते हुए (श्रोत्रेण) कानसे (शृण्वन्तः) सुनते हुए (रेतसा) वीर्यसे (प्रजायमानाः)

सन्तान उत्पन्न करते हुए (एवम्) ऐसे ही (अजीविष्म) जीवित रहे (इति) ऐसा कहने पर (ह) प्रसिद्ध (मनः) मन (प्रविवेश) प्रवेश करगया ॥ ११ ॥

(भावार्थ)-फिर मन शरीरमेंसे निकल गया और वह वर्ष भरतक बाहर रहकर लौट आया तथा कहने लगा, कि-तुम मेरे बिना कैसे जीवित रहे ? इस पर उन्होंने उत्तर दिया, कि जैसे मूढ़ पुरुष मनसे कर्त्तव्य अकर्त्तव्यको न जानने पर भी प्राणसे श्वास लेता हुआ, वाणीसे बोलता हुआ, नेत्रसे देखता हुआ, कानसे सुनता हुआ और उपस्थसे सन्तान उत्पन्न करता हुआ जीवित रहता है वैसे ही हम भी जीवित रहे, इस उत्तरको सुनकर मनने जाना कि-मैं मुख्य नहीं हूं, और वह फिर शरीरमें घुसगया ॥ ११ ॥

रेतो होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्यागत्योवाच कथमशकत मदृते जीवितुमिति ते होचुर्यथा क्लीबा अप्रजायमाना रेतसा प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण विद्वाꣳसो मनसैवमजीविष्मेति प्रविवेश ह रेतः ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध (रेतः) वीर्य (उच्चक्राम) बाहर निकलगया (तत्) वह (संवत्सरम्) वर्ष भर (प्रोष्य) बाहर रहकर (आगत्य) आकर (उवाच) बोला (मदृते) मेरे बिना (जीवितुम्) जीवित रहनेको (कथम्) कैसे (अशकत) समर्थ हुए (ते) वे (ह) स्पष्ट (ऊचुः) बोले (यथा) जैसे (क्लीबाः) नपुंसक

(रेतसा) वीर्यसे (अप्रजायमानाः) सन्तान उत्पन्न न करते हुए (प्राणेन) प्राणसे (प्राणन्तः) श्वास लेते हुए (वाचा) वाणीसे (वदन्तः) बोलते हुए (चक्षुषा) आँखसे (पश्यन्तः) देखते हुए (श्रोत्रेण) कानसे (शृण्वन्तः) सुनते हुए (मनसा) मनसे (विद्वांसः) जानते हुए (एवम्) ऐसे (अजीविष्म) जीवित रहे (इति) इस पर (रेतः) वीर्य (ह) निश्चय (प्रविवेश) प्रवेश कर गया ॥ १२ ॥

(भावार्थ)-तदनन्तर उपस्थ इन्द्रिय शरीरमेंसे निकल गया और एक वर्षतक बाहर रहकर लौट आया तथा कहने लगा, कि-तुम मेरे बिना कैसे जीवित रहे? इस पर उन सबोंने उत्तर दिया, कि-जैसे नपुंसक पुरुष वीर्यके द्वारा सन्तान तो उत्पन्न नहीं कर सकते, परन्तु प्राणसे श्वास लेते हुए वाणीसे बोलते हुए आँखसे देखते हुए कानसे सुनते हुए और मनसे कर्त्तव्य अकर्त्तव्यको जानते हुए जीते रहते हैं, इसप्रकार ही हम भी जीते रहे ! यह सुनकर उपस्थको निश्चय होगया, कि-मैं सबोंमें श्रेष्ठ नहीं हूं और वह फिर शरीरमें प्रवेश करगया ॥ १२ ॥

अथ ह प्राण उत्क्रमिष्यन् यथा महासुहयः सैन्धवः पड्वीशशंकून् संवृहेदेवꣳ हैवेमान् प्राणान् संववर्ह ते होचुर्मा भगव उत्क्रमीर्न वै शक्ष्यामस्त्वदृते जीवितुमिति तस्योमे बलिं कुरुतेति तथेति ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) इसके अनन्तर (यथा (जैसे (सैन्धवः) सिन्धुदेशमें उत्पन्न हुआ (महासुहयः)

बड़ा सुन्दर घोड़ा (पड्वीशशंकून) पैर बाँधनेके खूँटों को (संवृहेत्) उखाड़े (एवमेव) ऐसे ही (ह) मुख्य (प्राणः) प्राण (उत्क्रमिष्यन्) निकलना चाहता हुआ (इमान्) इन (प्राणान्) वाणी आदि प्राणोंको (संववर्ह) उखाड़ता हुआ (ते) वे (ह) स्पष्ट (ऊचुः) बोले (भगवः) हे भगवन् (मा उत्क्रमीः) मत निकलो (वै) निःसन्देह (त्वदृते) तुम्हारे विना (जीवितुम्) जीनेको (न) नहीं (शक्ष्यामः) समर्थ होंगे (इति) इस पर (तस्य, मे) तिस मुझको (बलिम्, कुरुत) भेंट दो (इति) यह कहा (इति) इस पर (तथा) तैसा ही किया है ॥ १३ ॥

(भावार्थ)-तदनन्तर जैसे सुन्दर और बड़ाभारी सिन्धदेशका घोड़ा पैरोंको बांधनेके खूँटोंको उखाड़ डालता, ऐसे ही मुख्य प्राण निकलनेकी इच्छा करते ही इन वाणी आदि सब इन्द्रियोंको अपने २ गोलकसे उखाड़नेलगा, तब उन वाणी आदि इन्द्रियोंने घबड़ाकर कहा कि हे भगवन् ! आप हम सबको छोड़कर न जाइये, आपके विना हम जीवित नहीं रह सकते । इस पर मुख्य प्राणने कहा, कि--यदि इस प्रकार तुमने मेरा सबसे श्रेष्ठ होना निश्चय करलिया तो तुम सब मुझे भेंट अर्पण करो, क्योंकि हारनेवाले विजयीको भेंट देते हैं, मुख्य प्राणकी इस बातको सब इन्द्रियोंने मानलिया ॥ १३ ॥

सा ह वागुवाच यद्वा अहं वसिष्ठास्मि त्वं तद्व-
सिष्ठोऽसीति यद्वा अहं प्रतिष्ठाऽस्मि त्वं तत्प्रतिष्ठो-
ऽसीति चक्षुर्यद्वा अहं सम्पदस्मि त्वं तत्सम्पद-
सीति श्रोत्रं यद्वा अहमायतनमस्मि त्वं तदा-

यतनमसीति मनो यद्वा अहं प्रजाति रस्मि त्वं तत्प्रजाति रसीति रेतस्तस्यो मे किमन्नं किं वास इति यदिदं किञ्चाऽऽश्वभ्य आक्रामि आकीटपतङ्गेभ्यस्तत्तेऽन्नमापो वास इति न ह वा अस्यानन्नं जग्धं भवति नानन्नं प्रतिगृहीतं य एवमेतदभ्यस्यान्नं वेद तद्विद्वाꣳसः श्रोत्रिया अशिष्यन्त आचामन्त्यशित्वाऽऽचमन्त्येतमेव तदनमनग्नं कुर्वन्तो मन्यन्ते ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध (सा) वह (वाक्) वाणी (उवाच) बोली (अहम् मैं (यत्) जो (वसिष्ठा) वसिष्ठा (अस्मि) हूं (तत्) उस (वसिष्ठः) वसिष्ठ वाला (त्वं, वै) तू ही (असि) है (यत्) जो (अहम्) मैं ([illegible]) प्र[illegible] (अस्मि) हूँ (तत्प्रतिष्ठः) उस [illegible] (त्वं, वै) [illegible] (असि) है (इति) ऐसा, ([illegible]) कहता हुआ (अहम्) मैं (यत्) जो ([illegible]) [illegible] (असि) हूँ (तत्स[illegible]त) उस [illegible]वाला (त्वं, वै) तू ही (असि) है (इति) ऐसा (श्रोत्रम्) कान [उवाच] बोला (यत्) जो (अहम्) मैं (आयतनम्) आयतन (अस्मि) हूँ (तदायतनम्) उस आयतनवाला (त्वं, वै) तू ही (असि) है (इति) ऐसा (मनः) मन [उवाच] बोला (अहम्) मैं (यत्) जो (प्रजातिः) प्रजाति (अस्मि) हूं ([illegible]-प्रजातिः) उस प्रजातिवाला (त्वं, वै) तू ही (असि) है (इति) ऐसा (रेतः) वीर्य [उवाच] बोला ([illegible]) उस (मे) मेरा (अन्नम्)

अन्न (किम्) क्या है (वासः) वस्त्र (किम्) क्या है (इति) इस पर कहा (आश्वभ्यः) कुत्तों पर्यन्त (आ-कृमिभ्यः) कीड़ों पर्यन्त (आकीटपतङ्गेभ्यः) कीट पतङ्गांतक (यत्किञ्च) जो कुछ (इदम्) यह है (तत्) वह (ते) तेरा (अन्नम्) अन्न है (आपः) जल है (वासः) वस्त्र है (इति) इसलिये) (यः) जो (एवम्) इस प्रकार (अनस्य) प्राणके (एतत्) इस (अन्नम्) अन्नको (वेद) जानता है (अस्य) इसका (अनन्नम्) अभक्षणीय) (अन्नम्) भक्षित (न वै) नहीं (भवति) होता है (अनन्नम्) प्रतिग्रह न करनेयोग्य (प्रतिगृहीतम्) प्रतिग्रह किया हुआ (न) नहीं होता है (तत्) तिससे (श्रोत्रियाः) वेद पढ़े हुए (विद्वांसः) विद्वान् (अशिष्यन्तः) भोजन करते हुए (आचामन्ति) आचमन करते हैं (अशित्वा) भोजन करके (आचामन्ति) आचमन करते हैं (एतम्, एव) यह ही (तत्) उस (अनम्) प्राणको (अनग्नम्) ढका हुआ (कुर्वन्त) करते हुए (मन्यन्ते) मानते हैं ॥ १४ ॥

(भावार्थ — उन सब इन्द्रियोंमें पहले वाणी कर देने को उद्यत हुई और कहने लगी, कि—मैं जो वसिष्ठा कहिये दूसरों को दबानेका गुणवाली हूं, यह गुण तेरा ही है । चक्षुने कहा, कि—मैं जो प्रतिष्ठा कहिये अच्छी स्थितिमें रहना रूप गुणवाला हूँ, यह गुण तेरा है कानने कहा, कि—मैं जो सम्पत्ति रूप गुणवाला हूँ, यह गुण तेरा है । मनने कहा, कि—मैं जो आश्रयरूप गुणवाला हूँ, यह गुण तेरा है । उपस्थने कहा, कि-मैं जो सन्तानोत्पत्तिके कारण प्रजापति गुणवाला हूँ, यह गुण तेरा है । इसप्रकार वाणी आदि इन्द्रियोंके दिये हुए करको

स्वीकार करके प्राणने कहा, कि—मेरा अन्न और वस्त्र क्या है? इन्द्रियोंने उत्तर दिया, कि-हे भगवन् प्राण! कुत्तों पर्यन्त कृमियों पर्यन्त और कीट पतङ्गों पर्यन्त प्राणियोंका जो कुछ भी अन्न है वही तेरा अन्न है और इन सबोंका पिया हुआ जल तेरा वस्त्र है। जो इसप्रकार प्राणके इन सब प्राणियोंके भक्षण किये हुए अन्नको जानता है। यह सब प्राणका ही अन्न है ऐसा जाननेवाले उस पदसाधकको अनन्नभक्षणमें भी अभक्ष्यभक्षणका दोष नहीं लगता है, तथा हस्ती आदि अप्रतिग्राह्यका प्रतिग्रह करने पर भी प्रतिग्रहका दोष नहीं लगता है (यह कथन विद्याकी प्रशंसाके लिये है) क्योंकि-जलको प्राणका वस्त्र कहा है, इसलिये वेदको पढे हुए विद्वान् भोजन करनेके आरम्भमें और भोजन करके आचमन किया करते हैं। यही मानो प्राणको वस्त्रसे ढकते हैं, ऐसा मानते हैं॥ १४॥

इति षष्ठाध्याये प्रथमं ब्राह्मणं समाप्तम्.

श्वेतकेतुर्ह वा आरुणेयः पञ्चालानां परिषद-माजगाम स आजगाम जैवलिं प्रवाहणं परि-चारयमाणं तमुदीक्ष्याभ्युवाद कुमारा३ इति स भो३ इति प्रति शुश्रावानुशिष्टो न्वसि पित्रेत्योमिति होवाच॥ १॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध (आरुणेयः) अरुणका पौत्र (श्वेतकेतुः) श्वेतकेतु (पञ्चालानाम्) पञ्चालों की (परिषदम्) सभाको (आजगाम) आता हुआ (सः) वह (परिचारयमाणम्) सेवा कराते हुए

(जैवलिम्) जीवलके पुत्र (प्रवाहणम्) प्रवाहणके पास (आजगाम) आया (तम्) उसको (अभ्युदीक्ष्य) देखकर (कुमारा ३) हे कुमार (इति) ऐसा (अभ्युवाद) बोला (सः) वह (भो ३ इति) भो ऐसा (प्रति शुश्राव) प्रत्युत्तर देता हुआ (पित्रा) पिता करके (अनुशिष्टः, असि) शिक्षा दिया गया है (नु) या नहीं (ओम्) हां (इति) ऐसा (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला ॥ १ ॥

(भावार्थ)-एक समय अरुणका पोता श्वेतकेतु पिता से विद्या पढ़ कर अपना पाण्डित्य प्रकट करनेके लिये पञ्चालदेशवालोंकी सभामें गया तहां ब्राह्मणोंको जीत कर फिर राजाको भी जीतनेके गर्वसे वह श्वेतकेतु पञ्चालके राजा जीवलके पुत्र प्रवाहणके पास पहुँचा, उस समय राजा आराममें था, सेवक परिचर्या कर रहे थे । राजाने पहले ही सुन रक्खा था, कि-एक श्वेतकेतु नाम का विद्वान् आया है और उसको अपनी विद्याका बड़ा घमण्ड है, परन्तु ब्राह्मणमें तो शान्ति आदि गुण होने चाहिये, इसलिये इसको गर्वरहित करदेना उचित है, यह विचार कर वह श्वेतकेतुको देखते ही बालककी समान पुकार बोला, कि-अरे कुमार ! इस तिरस्कारको देखकर श्वेतकेतुने भी क्रोधमें भर कर कहा भो ३ (हांरे राजा !) यह सुन कर राजाने कहा, कि-अरे कुमार! तूने अपने पितासे शिक्षा भी पायी है या नहीं ? यह सुनकर श्वेतकेतुने कहा-ओम्, हां शिक्षा पाई है, तुम को किसी बातमें सन्देह हो तो पूछो ॥ १ ॥

वेत्थ यथेमाः प्रजाः प्रयत्यो विप्रतिपद्यन्ता३ इति

नेति होवाच। वेत्थो यथेमं लोकं पुनरापद्यन्ता३ इति नेति हैवोवाच। वेत्थो यथासौ लोक एवं बहुभिः पुनः पुनः प्रयद्भिर्न संपूर्यता३ इति नेति हैवोवाच। वेत्थो यतिथ्यामाहुत्याᳫँ हुतायामापः पुरुषवाचो भूत्वा समुत्थाय वदन्ती ३ इति नेति हैवोवाच। वेत्थो देवयानस्य वा पथः प्रतिपदं पितृयाणस्य वा यत्कृत्वा देवयानं वा पन्थानं प्रतिपद्यन्ते पितृयाणं वाऽपि हि न ऋषेर्वचः श्रुतं द्वे सृती अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानां ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं चेति नाहमत एकञ्चन वेदेति होवाच॥ २॥

अन्वय और पदार्थ-(इमाः) ये प्रजाः) प्रजायें (प्रयत्यः) मरती हुईं (यथा) जैसे (विप्रतिपद्यन्ते) भिन्न २ मार्गोंमें जाती हैं (इति) यह (वेत्थ) जानता है (न) नहीं (इति) ऐसा (उवाच, ह) बोला (पुनः) फिर (यथा) जैसे (इमम्) इस (लोकम्) लोकको (आपद्यन्ते) आती हैं (इति) इसको (उ) क्या (वेत्थ) जानता है (न) नहीं (इति, एव) ऐसा ही (उवाच, ह) बोला (एवम्) ऐसे (पुनः पुनः) बार बार (प्रयद्भिः) मरते हुए (बहुभिः) बहुतमोंसे (असौ) यह (लोकः) लोक (यथा) जैसे (न) नहीं (संपूर्यते) भरता है (इति) इसको (उ) क्या (वेत्थ) जानता है (न) नहीं (इति, एव) ऐसा ही (उवाच, ह) बोला

(यतिथ्याम्) जितनी संख्याकी (आहुत्यां, हुतायाम्) आहुतिके होमी जाने पर (आपः) जल (पुरुषवाचः) पुरुष शब्दवाच्य (भूत्वा) होकर (समुत्थाय) अच्छे प्रकार उठकर (वदन्ति) बोलते हैं (इति) इसको (उ) क्या (वेत्थ) जानता है (न) नहीं (इति, एव) ऐसा ही (उवाच, ह) बोला (देवयानस्य) देवयाननामक (पथः) मार्गके (वा) या (पितृयाणस्य) पितृयानके (प्रतिपदम्) साधनको (उ) क्या (वेत्थ) जानता है (यत्) जिसको (कृत्वा) करके (देवयानम्) देवयान (पन्थानम्) मार्गको (अपि वा) या (पितृयाणम्) पितृयानको (प्रतिपद्यन्ते) प्राप्त होते हैं (हि) क्योंकि (ऋषेः) मंत्रका (वचः) वचन (नः) हमारा (श्रुतम्) सुना हुआ है (अहम्) मैं (मर्त्यानाम्) मनुष्योंके (द्वे) दो (सृती) मार्गोंको (अशृणवम्) सुनता हुआ (देवानाम्) देवताओंका (उत) और (पितृणाम्) पितरोंका (इदम्) यह (विश्वम्) विश्व (एजत्) एक स्थानसे दूसरे स्थान पर जाता हुआ (ताभ्याम्) तिन मार्गोंसे (समेति) सम्यक् प्रकार पहुंचता है (यत्) जो (पितरं, मातरं, च, अन्तरा) पिता माताके भीतर हैं (इति) यह पूछा (अतः) इस प्रश्नसमूहमेंसे (एकञ्चन) एकको भी (अहम्) मैं (न) नहीं (वेद) जानता हूं (इति) ऐसा (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला ॥ २ ॥

(भावार्थ)-राजाने कहा-अच्छा यदि ऐसा है तो बता, यह प्रजा जब मरजाती है तब नाडीमार्गसे निकल कर जिन दो मार्गोंसे भिन्न २ लोकोंको जाती है उन दोनों मार्गोंको तू जानता है ? यह सुनकर श्वेतकेतुने उत्तर दिया, कि मैं नहीं जानता । राजाने फिर पूछा-पर-

लोकको गयी हुई प्रजा जिसप्रकार फिर लौटकर इस लोक में आती है उसको क्या तू जानता है ? श्वेतकेतुने कहा मैं नहीं जानता। राजाने फिर पूछा-इसप्रकार जरा मरण आदिके कारणसे वारंवार मरनेवाले बहुतसे प्राणियोंके पहुँचने पर भी उनसे वह परलोक भर क्यों नहीं जाता इसको तू जानता है ? श्वेतकेतुने कहा मैं नहीं जानता। फिर पूछा-जितनी संख्या वाली आहुतियोंके होमने पर जल पुरुष शब्दसे कहने योग्य होकर और उठकर बोलने आदिका व्यापार करने लगते हैं उसको तू जानता है ? श्वेतकेतुने कहा-मैं नहीं जानता। राजाने फिर पूछा देव-यान और पितृयान मार्गके साधनको जानता है ? कि जिस साधनको करके पुरुष देवयान मार्गको या पितृ यान मार्गको पाता है। यह न कहना कि-इन मार्गोंके विषयमें प्रमाण न होनेसे ये दोनों मार्ग हैं ही नहीं क्यों कि-हमने कर्म विपाकप्रकरणमें इन दोनों मार्गोंको बता-नेवाले मंत्रको सुना है। वह मंत्र इसप्रकार है, कि-मैंने मनुष्योंके दोनों मार्गोंको सुना था, उनमेंका एक पितरों के लोकमें पहुँचानेवाला है और दूसरा देवताओंके लोक में पहुँचानेवाला है, यह सकल जगत् जब एक स्थानसे दूसरे स्थानको यात्रा करता है तब इन दो मार्गोंसे ही जाया करता है, ये दोनों मार्ग मातारूप पृथिवी और पितृरूप स्वर्ग इन दोनोंके अण्डकपालके भीतर हैं, यह सुनकर श्वेतकेतुने उत्तर दिया कि-मैं तो इन प्रश्नोंमेंकी एक बातको भी नहीं जानता ॥ २ ॥

अथैनं वसत्योपमन्त्रयाञ्चक्रेऽनादृत्य वसतिं कुमारः प्रदुद्राव स आजगाम पितरं तꣳहोवा-

चेति वाव किल नो भवान् पुराऽनुशिष्टानवोच इति कथꣳ सुमेध इति पञ्च मा प्रश्नान् राजन्यबन्धुरप्राक्षीत्ततो नैकञ्चन वेदेति कतमे त इतीम इति प्रतीकान्युदाजहार ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अनन्तर (एनम्) इसको (वसत्या) ठहरनेके द्वारा (उपमन्त्रयाञ्चक्रे) उपमंत्रण करता हुआ (कुमारः) कुमार (वसतिम्) ठहरनेको (अनादृत्य) अनादर करके (प्रदुद्राव) शीघ्रतासे लौटपड़ा (सः) वह (पितरम्) पिताके पास (आजगाम) आया (तम्) उसको (ह) स्पष्ट (इति) इसप्रकार (उवाच) बोला (पुरा) पहले (भवान्) आप (नः) हमें (अनुशिष्टान्) शिक्षा पाया हुआ (वाव किल) क्यों (अवोचः) कहते हुए (इति) इस पर [पिता उवाच] पिता ने कहा (सुमेधः) हे सुन्दर बुद्धिवाले (कथम्) कैसे [अनुशिष्टः न] शिक्षित नहीं है (इति) इस पर कहा (राजन्यबन्धुः) कहने मात्रका क्षत्रिय (मा) मुझसे (पञ्च) पाँच (प्रश्नान्) प्रश्नोंको (अप्राक्षीत्) पूछता हुआ (ततः) उनमेंसे (एकञ्चन) एकको भी (न) नहीं (वेद) जानता हूं (इति) ऐसा कहने पर (ते) वे (कतमे) कौनसे हैं (इति) पिताके ऐसा पूछने पर (इमे) ये हैं (इति) इसप्रकार (ह) स्पष्टरूपसे (प्रतीकानि) प्रतीकोंको (उदाजहार) वैसे ही कहकर सुना दिया ॥ ३ ॥

(भावार्थ)—इसप्रकार राजा प्रवाहणने श्वेतकेतुके विद्याके घमण्डको दूर करके कहा, कि-हे ब्राह्मणकुमार! तुम मेरे यहां ठहरो और अर्घ पाद्य आदिको ग्रहण

करो, श्वेतकेतु इस बातको स्वीकार न करके शीघ्र ही तहांसे चलदिया और अपने पिताके पास आकर कहने लगा, कि—आपने समावर्त्तनके समय मुझे सब विद्याओंकी शिक्षा तो दी नहीं, फिर यह क्यों कहा, कि-तू शिक्षित होगया ? पुत्रकी इस बातको सुन कर पिताने कहा, कि-हे सुन्दर बुद्धिवाले पुत्र ऐसा क्यों कहता है, कि-मैं सुशिक्षित नहीं हूँ ? यह सुनकर पुत्रने इसका कारण बताया, कि-हे पिताजी ! कथनमात्रके क्षत्रिय राजा प्रवाहणने मुझसे पांच प्रश्न पूछे थे, परन्तु मैं उनमें से एकका भी उत्तर नहीं जानता । यह सुन कर पिताने कहा, कि-वे प्रश्न कौनसे हैं ? तब श्वेतकेतु ने उन सब प्रश्नोंके प्रतीक कह कर सुनादिये ॥ ३ ॥

स होवाच तथा नस्त्वं तात जानीथा यथा यदहं किञ्च वेद सर्वमहं तत्तुभ्यमवोचं प्रेहि तु तत्र प्रतीत्य ब्रह्मचर्यं वत्स्याव इति भवानेव गच्छत्विति स आजगाम गौतमो यत्र प्रवाहणस्य जैवलेरास तस्मा आसनमाहृत्योदकमाहारयाञ्चकाराथ हास्मा अर्घ्यं चकार तꣳ होवाच वरं भगवते गौतमाय दद्म इति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध (सः) वह (उवाच) बोला (तात) हे पुत्र ! (त्वम्) तू (नः) हमें (तथा) ऐसा (जानीथाः) जान (यथा) जैसे (यत्किञ्च) जो कुछ (अहम्) मैं (वेद) जानता हूं (तत्) वह (सर्वम्) सब (अहम्) मैं (तुभ्यम्) तेरे अर्थ (अवोचम्) कह चुका (तु) परन्तु (प्रेहि) आओ (तत्र) तहाँ (प्रतीत्य)

चल कर (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्यपूर्वक (वत्स्यावः) रहेंगे (इति) इस पर (भवान्, एव) तुम ही (गच्छतु) जाओ (इति) यह सुनकर (सः) वह (गौतमः) गौतम (यत्र) जहाँ (जैवलेः) जीवलका पुत्र (प्रवाहणस्य) प्रवाहण (आस) था (आजगाम) आया (तस्मै) उसके लिये (आसनम्) आसनको (आहृत्य) लाकर (उदकम्) जल (आहारयाञ्चकार) मँगवाता हुआ (अथ) अनन्तर (अस्मै) इसके लिये (अर्घ्यम्) अर्घका विधान (चकार) करता हुआ (भगवते) पूजनीय (गौतमाय) गौतमके अर्थ (वरम्) वर (दद्मः) देते हैं (इति) ऐसा (तम्) उसके प्रति (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-तदनन्तर उसके पिताने कहा, कि- हे पुत्र ! तू ठीक समझ, कि मैं जो कुछ जानता था, वह सब विद्या मैंने तुझे बतादी, भला मुझे तुझसे अधिक प्यारा कौन था, कि—जिसके लिये मैं रख छोड़ता। राजाने तुझसे जो बात पूछी है उसको तो केवल उसके ही वंशधर जानते हैं, मुझे वह विद्या नहीं आती, यदि तू उस विज्ञानको पाना चाहता है तो आओ हम दोनों उस राजाके पास ही इस विद्याको सीखनेके लिये ब्रह्मचर्यपूर्वक रहें, इस पर श्वेतकेतुने कहा, कि- हे पिताजी! उसका मुख देखने को मेरा तो उत्साह होता नहीं, इसलिये आप ही जाइये, यह सुनकर वह गौतम गोत्रवाला उद्दालक जीवलके पुत्र प्रवाहणकी सभामें गया, तब राजाने उद्दालकके योग्य आसन मँगवाकर सेवकसे अर्घ पाद्य आदिके लिये जल मँगवाया, फिर पुरोहितके

साथ मन्त्र पढ़ कर अर्घ दिया, फिर कहा, कि-हे भगवन् गौतम ! मैं आप को गौ घोड़ा आदिरूप वर देता हूँ ॥ ४ ॥

स होवाच प्रतिज्ञातो म एष वरो यां तु कुमारस्यान्ते वाचमभाषथास्तां मे ब्रूहीति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध (सः) वह (उवाच) बोला (प्रतिज्ञातः) प्रतिज्ञा किया हुआ (एषः) यह (मे) (वरः) वर है (कुमारस्य) पुत्रके (अन्ते) समीपमें (याम्) जिस (वाचम्) वाणीको (अभाषथाः) बोले थे (ताम्, तु) इसको ही (मे) मेरे अर्थ (ब्रूहि) कहिये (इति) ऐसा कहा ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-राजाके ऐसा कहने पर गौतमवंशी उद्दालकने कहा, कि-हे राजन् ! आपने जो मुझे वर देना कहा है, इस वरमें मैं गौ घोड़े आदि नहीं चाहता, मैं तो यह चाहता हूँ, कि-आपने मेरे पुत्रसे जो प्रश्न किये थे उनका तत्त्व मुझे बता दीजिये ? ॥ ५ ॥

स होवाच दैवेषु वै गौतम तद्वरेषु मानुषाणां ब्रूहीति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध (सः) वह (उवाच) बोला (गौतम) हे गौतम (तत्) वह (वै) निश्चय (दैवेषु) देवसंबन्धी (वरेषु) वरोंमें है (मानुषाणाम्) मनुष्योंके मेंसे (ब्रूहि) कहो (इति) यह कहा ॥ ६ ॥

(भावार्थ)-यह सुनकर उस राजा प्रवाहणने कहा, कि-हे गौतम ! तुम जो कुछ माँगते हो वह तो देवताओंके वरोंमें है, इसलिये तुम गौ घोड़े आदि मनुष्योंके वरोंमेंसे कोई वर मांग लो ॥ ६ ॥

स होवाच विज्ञायते हास्ति हिरण्यस्यापात्तं गो अश्वानां दासीनां प्रवाराणां परिधानस्य मा नो भवान् वहोरनन्तस्यापर्यन्तस्याभ्यवदान्योऽभूदिति स वै गौतम तीर्थेनेच्छासा इत्युपैम्यहं भवन्तमिति वाचा ह स्मैव पूर्व उपयन्ति स होपायनकीर्त्योवास ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध (सः) वह (उवाच) बोला (हिरण्यस्य) सुवर्णका (अपात्तम्) प्राप्त (अस्ति) है (ह) स्पष्ट (विज्ञायते) जानाजाता है (गो अश्वानाम्) गौ घोड़ोंका (दासीनाम्) दासियोंका (प्रवाराणाम्) परिवारोंका (परिधानस्य) पहरनेके वस्त्रका [अपात्तं. अस्ति, अतः] प्राप्त है इसकारण (भवान्) आप (नः,अभि) हमारे लिये (बहोः) बहुत (अनन्तस्य) अन्तरहित (अपर्यन्तस्य) कभी समाप्त न होने वाले [धनस्य] धनके (अवदान्यः) अदाता (माभूत्) न हूजिये (इति) इसपर कहा (गौतम) हे गौतम (तीर्थेन) शास्त्रानुकूल मार्गसे (इच्छासै, चाहो (इति) इस पर कहा (अहम्) मैं (भवन्तम्) आपको (उपैमि) शिष्यभावसे प्राप्त होता हूँ (इति) इसप्रकार (पूर्वे) पहले (ह) प्रसिद्ध ब्राह्मण (वाचा, एव) वाणी करके ही (उपयन्ति, स्म) समीपमें जाते हुए (ह) प्रसिद्ध (सः) वह (उपायनकीर्त्या) चरणग्रहणके कथनमात्रसे (उवास) निवास करता हुआ ॥ ७ ॥

(भावार्थ)-राजाके ऐसा कहनेपर गौतमवंशी उद्दालकने कहा, कि-आपको मालूम ही है, कि-मेरे पास सुवर्णका ढेर है,गौ, घोड़े, दासी.परिवार और अच्छे २

रेशमी वस्त्र भी बहुतसे हैं, इसकारण यह वर लेनेकी मुझे आवश्यकता नहीं है, और आपके पास जो याचक आया है उसको आपने कभी निराश नहीं किया है, इसलिये आप मुझे वह धन दीजिये, जो बहुत हो, जिसका कभी नाश न हो और जो कभी मेरे पुत्र पौत्र आदि परिवारोंमेंसे उच्छिन्न न हो, आशा है आप मुझे ऐसा धन न देकर अदाता न बनेंगे । ऐसी प्रार्थना करते हुए उद्दालकसे राजा प्रवाहणने कहा, कि- हे गौतम ! यदि तुम मुझसे विद्या चाहते हो तो शास्त्रमें लिखी हुई रीतिसे सीखो । यह सुनकर गौतमने कहा, कि-मैं शिष्यभावसे आपके पास रहनेको तयार हूँ - पहले आपत्तिकालमें जिन ब्राह्मणोंने क्षत्रियोंसे या वैश्योंसे विद्या सीखनी चाही थी वे वाणीसे ही उनकी सेवा किया करते थे मैं चरण छूता हूँ ऐसा कह ही देते थे, हाथसे चरण नहीं छूते थे, इसकारण उद्दालक ऋषि वाणीसे चरण छूना कहकर राजा प्रवाहणके पास रहने लगे ॥ ७ ॥

स होवाच तथा नस्त्वं गौतम माऽपराधास्तव च पितामहा यथेयं विद्येतः पूर्वं न कस्मिँश्चन ब्राह्मण उवास तां त्वहं तुभ्यं वक्ष्यामि को हि त्वैवं ब्रुवन्तमर्हति प्रत्याख्यातुमिति ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध (सः) वह (उवाच) बोला (गौतम) गौतम (यथा) जैसे (नः) तेरे (पितामहाः) पितामह (तथा) तैसे ही (त्वम्, च) तू भी (नः) हमारे प्रति (मा, अपराधाः) अपराध मत

चढ़ाओ (इयम्) यह (विद्या) विद्या (इतः) इससे (पूर्वम्) पहले (कस्मिंश्चन) किसी भी (ब्राह्मणे) ब्राह्मणमें (न) नहीं (उवास) रही (तु) परन्तु (अहम्) मैं (तुभ्यम्) तेरे अर्थ (ताम्) उसको (वक्ष्यामि) कहूंगा (हि) क्योंकि (एवम्) ऐसा (ब्रुवन्तम्) कहते हुएको (कः) कौन (प्रत्याख्यातुम्) निषेध करनेको (अर्हति) समर्थ होसकता है (इति) यह कहा ॥ ८ ॥

(भावार्थ)-राजाने देखा, कि-ब्राह्मण अपने मनमें दुःख मान रहा है, इस लिये वह क्षमा कराता हुआ कहने लगा, कि-हे गौतम ! जैसे तुम्हारे पितामह हमारे पितामहोंके अपराध क्षमा किया करते थे तैसे ही आप भी मुझे अपराधी न बना कर मेरे अपराध को क्षमा करिये । यह विद्या अबसे पहले किसी ब्राह्मणमें नहीं रही है, इस बातको तुम भी जानते हो, इसलिये यदि होसकता तो उस क्षत्रियकुल की परम्पराको मैं भी रखना चाहता था, इसलिये ही आपसे गौ घोड़े आदि माँगने को मैंने कहा था, न देनेकी इच्छासे नहीं कहा था, अब आपका ऐसा आग्रह है तो यह विद्या मैं आपको अवश्य बताऊँगा, क्योंकि-जब आपसरीखा ब्राह्मण कहे कि मैं तुम्हारा शिष्य हूँ तो कौन निषेध कर सकता है ? इसलिये मैं आपको अवश्य बताऊँगा॥८

असौ वै लोकोऽग्निर्गौतम तस्यादित्य एव समिद्रश्मयो धूमोऽहरर्चिर्दिशोऽङ्गारा अवान्तरदिशो विस्फुलिङ्गास्तस्मिन्नग्नौ देवाः श्रद्धां जुह्वति तस्या आहुत्यै सोमो राजा

संभवति ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ- गौतम) हे गौतम (असौ यह (वै) प्रसिद्ध (लोकः) लोक (अग्निः) अग्नि है (आदित्यः,एव) आदित्य ही (तस्य) उसका (समिद्) ईंधन है (रश्मयः) किरणें (धूमः) धुआँ है (अहः) दिन (अर्चिः) ज्वाला है (दिशः) दिशायें (अङ्गाराः) अङ्गारे हैं (अवान्तर-दिशः) दिशाओंके कोने (विस्फुलिङ्गाः) चिनगारियें हैं (तस्मिन्) तिस (एतस्मिन्) इस (अग्नौ) अग्निमें (देवाः) देवता (श्रद्धाम्) श्रद्धाको (जुह्वति) होमते हैं (तस्याः) तिस (आहुत्यै) आहुतिसे (राजा) अधिपति (सोमः) सोम (संभवति) उत्पन्न होता है ९

(भावार्थ)-चौथा प्रश्नका निर्णय होजाने पर दूसरे प्रश्नका निर्णय होसकता है, इसलिये पहले उसको ही कहते हैं कि हे गौतम ! प्रसिद्ध स्वर्गलोक ही आह-वनीय अग्नि है ऐसी भावना करे, सूर्य ही उस स्वर्ग-लोकरूप अग्निका ईंधन है ऐसी दृष्टि करे, किरणें धुआँ है, दिन ज्वाला है, दिशायें अङ्गारे हैं और दिशाओंके कोने चिनगारियें हैं ऐसी भावना करे । ऐसे इस स्वर्ग-लोकरूप अग्निके लिये देवता (यजमानकी इन्द्रियें) श्रद्धा (होमके द्रव्यरूप अन्य भूतों सहित जलोंका होम करते हैं, उस आहुतिसे पितरों और ब्राह्मणोंका स्वामी सोम (चन्द्रमण्डलमेंका यजमानका शरीर) उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥

पर्जन्यो वा अग्निर्गौतम तस्य संवत्सर एव समिदभ्राणि धूमो विद्युदर्चिरशनिरङ्गारा ह्रादु-नयो विस्फुलिङ्गास्तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः

सोम थ्ठँ राजानं जुह्वति तस्या आहुत्यै वृष्टिः संभवति ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ (गौतम) हे गौतम (वै) प्रसिद्ध (पर्जन्यः) पर्जन्य (अग्निः) अग्नि है (संवत्सरः, एव) संवत्सर ही (तस्य) उसका (समित्) ईंधन है (अभ्राणि) बादल (धूमः) धुआं है (विद्युत्) बिजली (अर्चिः) ज्वाला है (अशनिः) वज्र (अङ्गाराः) अङ्गारे हैं (ह्रादुनयः) मेघकी गर्जनायें (विस्फुलिङ्गाः) चिनगारियें हैं (तस्मिन्) तिस (एतस्मिन्) इस (अग्नौ) अग्निमें (देवाः) देवता (राजानम्) अधिपति (सोमम्) सोमको (जुह्वति) होमते हैं (तस्याः) उस (आहुत्यै) आहुतिसे (वृष्टिः) वर्षा (संभवति) होती है ॥ १० ॥

(भावार्थ)-हे गौतम ! प्रसिद्ध पर्जन्य (वृष्टिकी सामग्रीका अभिमानी देवता) ही अग्नि है, ऐसी दृष्टि करे । संवत्सर ही उस पर्जन्यरूप अग्निका ईंधन है, बादल धुआं हैं, बिजली ज्वाला है, वज्र अङ्गारा है और मेघकी गर्जनायें चिनगारियें हैं, ऐसी भावना करे । इस पर्जन्यरूप अग्निमें देवता अधिपति सोमको होमते हैं, उस आहुतिसे वृष्टि होती है ॥ १० ॥

अयं वै लोकोऽग्निर्गौतम तस्य पृथिव्येव समिदग्निर्धूमो रात्रिरर्चिश्चन्द्रमा अङ्गारा नक्षत्राणि विस्फुलिङ्गास्तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा वृष्टिं जुह्वति तस्या आहुत्या अन्नथ्ठँ संभवति ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ-(गौतम) हे गौतम (वै) प्रसिद्ध (अयम्) यह (लोकः) लोक (अग्निः) अग्नि है

(पृथिवी, एव) पृथिवी ही (तस्य) उसका (समित्) ईंधन है (अग्निः) अग्नि (धूमः) धुआं है (रात्रिः) रात (अर्चिः) ज्वाला है (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (अङ्गाराः) अङ्गारा है (नक्षत्राणि) नक्षत्र (विस्फुलिङ्गाः) चिन-गारियें हैं (तस्मिन्) तिस (एतस्मिन्) इस (अग्नौ) अग्निमें (देवाः) देवता (वृष्टिम्) वृष्टिको (जुह्वति) होमते हैं (तस्याः) तिस (आहुत्यै) आहुतिसे (अन्नम्) अन्न (संभवति) उत्पन्न होता है ॥ ११ ॥

(भावार्थ)-हे गौतम ! यह भू लोक ही अग्नि है, पृथिवी (पृथिवीका अभिमानी देवता) इसका ईंधन है, अग्नि धुआं है, रात्रि ज्वाला है, चन्द्रमा अङ्गारा है और तारागण चिनगारिएं हैं, इस अग्निमें देवता वृष्टिकी आहुति देते हैं तब इससे अन्न उत्पन्न होता है

पुरुषो वा अग्निर्गौतम तस्य व्यात्तमेव समि-
त्प्राणो धूमो वागर्चिश्चक्षुरङ्गाराः श्रोत्रं विस्फु-
लिङ्गास्तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं जुह्वति
तस्या आहुत्यै रेतः संभवति ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ -(गौतम) हे गौतम (वै) प्रसिद्ध (पुरुषः) पुरुष (अग्निः) अग्नि है (व्यात्तम्, एव) पोला किया हुआ मुख ही (तस्य) उसका (समित्) ईंधन है (प्राणः) प्राण (धूमः) धुआँ है (वाक्) वाणी (अर्चिः) ज्वाला है (चक्षुः) आंख (अङ्गाराः) अङ्गारा है (श्रोत्रम्) कान (विस्फुलिङ्गाः) चिनगारी हैं (तस्मिन्) इस (अग्नौ) अग्निमें (देवाः) देवता (अन्नम्) अन्नको (जुह्वति) होमते हैं (तस्याः) उस (आहुत्यै) आहुतिसे (रेतः) वीर्य (संभवति) उत्पन्न होता है ॥१२॥

(भावार्थ)-हे गौतम ! यह पुरुषका शरीर ही अग्नि है, फुलाया हुआ मुख इसका ईंधन है, प्राण धुआं है, वाणी ज्वाला है, नेत्र अङ्गार है और कान चिनगारी है, इस अग्निमें देवता अन्नको होमते हैं, उस आहुतिसे वीर्य उत्पन्न होता है ॥ १२ ॥

योषा वा अग्निर्गौतम तस्या उपस्थ एव समिल्लोमानि धूमो योनिरर्चिर्यदन्तःकरोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलिङ्गास्तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुत्यै पुरुषः सम्भवति यावज्जीवत्यथ यदा म्रियते ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(गौतम) हे गौतम (वै) प्रसिद्ध (योषा) स्त्री (अग्निः) अग्नि है (उपस्थ, एव) उपस्थ ही (तस्याः) उसका (समित्) ईंधन है (लोमानि) रोम (धूमः) धुआँ है (योनिः) योनि (अर्चिः) ज्वाला है (यत्) जो (अन्तः) भीतर (करोति) करता है (ते) वे (अङ्गाराः) अङ्गारे हैं (अभिनन्दाः) सुख (विस्फुलिङ्गाः) चिनगारियें हैं (तस्मिन्) तिस (एतस्मिन्) इस (अग्नौ) अग्निमें (देवाः) देवता (रेतः) वीर्यको (जुह्वति) होमते हैं (तस्याः) उस (आहुत्यै) आहुतिसे (पुरुषः) पुरुष (संभवति) उत्पन्न होता है (अथ) अनन्तर (यदा) जब (म्रियते) मरता है ११

(भावार्थ)-हे गौतम ! यह स्त्री ही अग्नि है, उपस्थ ही उसका ईंधन है, रोम धुआं है, योनि ज्वाला है, योनिके भीतर जो मैथुनका व्यापार रूप कर्म करता है, वह अंगारा है और उस कर्मसे उत्पन्न हुए क्षुद्र सुख चिनगारिएं हैं, ऐसे इस अग्निमें देवता वीर्यको होमते

हैं तब उस आहुतिसे पुरुषका शरीर उत्पन्न होता है (इस क्रमसे, जिस संख्याकी आहुतिको होमने पर जल पुरुष शब्दका वाच्य होता है' इस चौथे प्रश्नका उत्तर कहदिया) यह पुरुष जीवित रहता है । इस शरीरमें रहनेके निमित्तवाला कर्म जितने समय तकका होता है, उतने समय तक जीता है, फिर जब मर जाता है १३

अथैनमग्नये हरन्ति तस्याग्निरेवाग्निर्भवति समित्समिद्धूमो धूमोऽर्चिरर्चिरङ्गारा अंगारा विस्फुलिंगा विस्फुलिंगास्तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः पुरुषं जुह्वति तस्या आहुत्यै पुरुषो भास्वरवर्णः संभवति ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अनन्तर (एनम्) इसको (अग्नये) अग्निके लिए (हरन्ति) लेजाते हैं (अग्निः, एव) अग्नि ही (तस्य) उसका (अग्निः) अग्नि (भवति) होता है (समित्) काष्ठ (समित्) ईंधन होता है (धूमः) धुआं (धूमः) धुआं होता है (अर्चिः) ज्वाला (अर्चिः ज्वाला होती है (अङ्गाराः) अङ्गारे (अङ्गाराः) अंगारे होते हैं (विस्फुलिङ्गाः) चिनगारियें (विस्फुलिङ्गाः) चिनगारिएं होती हैं (तस्मिन्) तिस (एतस्मिन्) इस (अग्नौ) अग्निमें (देवाः) देवता (पुरुषम्) पुरुषको (जुह्वति) होमते हैं (तस्याः) तिस (आहुत्यै) आहुतिसे (पुरुषः) पुरुष (भास्वरवर्णः) अत्यन्त प्रकाशमय (भवति) होता है ॥ १४ ॥

(भावार्थ)-उस समय इस मरे हुएको अग्निमें अन्तिम आहुति देनेके लिये ऋत्विज् लेजाते हैं, अग्नि ही उसका अग्नि होता है, काठ ईंधन होता

है, धुआं धुआं होता है, ज्वाला ज्वाला होती है अंगारे अंगारे होते हैं और चिनगारिएं चिनगारिएं होती हैं, इस अग्निमें ऋत्विजरूप देवता पुरुषकी अंतिम आहुति होमते हैं, उस आहुतिसे पुरुष, गर्भाधानसे लेकर अंत्येष्टि पर्यन्त कर्मोंसे संस्कारयुक्त होनेके कारण अत्यन्त दीप्तिमान् होजाता है ॥ १४ ॥

ते य एवमेतद्विदुर्ये चामी अरण्ये श्रद्धा सत्यमुपासते तेऽर्चिरभिसम्भवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान् षण्मासानुदङ्ङादित्य एति मासेभ्यो देवलोकं देवलोकादादित्यमादित्याद्वैद्युतं तान् वैद्युतान् पुरुषो मानस एत्य ब्रह्मलोकान् गमयति ते तेषु ब्रह्मलोकेषु पराः परावतो वसन्ति तेषां न पुनरावृत्तिः ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ये) जो (एवम्) इसप्रकार (एतत्) इसको (विदुः) जानते हैं (ते) वे (च) और (ये) जो (अमी) ये (अरण्ये) वनमें (श्रद्धाम्) श्रद्धापूर्वक (सत्यम्) सत्यको (उपासते) उपासना करते हैं (ते) वे (अर्चिः) अर्चिको (अभिसंभवन्ति) प्राप्त होते हैं (अर्चिषः) अर्चिसे (अहः) दिनको (अह्नः) दिनसे (आपूर्यमाणपक्षम्) शुक्लपक्षको (आपूर्यमाणपक्षात्) शुक्लपक्षसे (यान्) जिन (षट्) छः (मासान्) महीनोंमें (आदित्यः) सूर्य (उदङ्) उत्तर दिशाको (एति) जाता है (मासेभ्यः) महीनोंसे (देवलोकम्) देवलोकको (देवलोकात्) देवलोकसे (आदित्यम्) आदित्यको

(आदित्यात्) आदित्यसे (वैद्युतम्) विद्युत्के अभिमानी देवताको [एति] प्राप्त होता है (तान्) उन (वैद्युतान्) विद्युत्के अभिमानी देवताके पास पहुँचे हुओंको (मानसः) मनसे उत्पन्न हुआ (पुरुषः) पुरुष (एत्य) आकर (ब्रह्मलोकान्) ब्रह्मलोकोंमेंको (गमयति) लिवाजाता है (ते) वे (तेषु) उन (ब्रह्मलोकेषु) ब्रह्मलोकोंमें (पराः) उत्कृष्ट होते हुए (परावतः) अनेकों कल्पोंतक (वसन्ति) रहते हैं (तेषाम्) उनका (पुनरावृत्तिः) फिर लौटना (न) नहीं (भवति) होता है ॥ १५ ॥

(भावार्थ)-जो द्विज गृहस्थ इसप्रकार इस पञ्चाग्नि विद्याको जानते हैं वे तथा वानप्रस्थ तथा श्रवण आदि के अनधिकारी और आश्रमधर्ममात्रमें प्रीति रखनेवाले संन्यासी, जहां स्त्री और विषयी पुरुषोंका अधिकतर रहना तथा आना जाना न रहता हो ऐसे एकान्त स्थान में श्रद्धा पूर्वक सत्यस्वरूप हिरण्यगर्भ ब्रह्मकी उपासना करते हैं वे अर्चि कहिये अग्निकी ज्वालाके अभिमानी देवताको प्राप्त होते हैं। नैष्ठिक ब्रह्मचारी गुरुकुलवाससे उत्तरमार्गको पाते हैं और ब्रह्मवेत्ताके प्राण तो यहां ही विलीन होजाते हैं। अर्चिसे दिन के (अभिमानी देवता को, दिनसे शुक्लपक्षके अभिमानी देवता) को, शुक्लपक्षसे जो जिन छः महीनोंमें सूर्य उत्तरकी ओरको जाता है उन छः महीने रूप उत्तरायणके अभिमानी देवताको प्राप्त होते हैं, उत्तरायणके छः मासमें देवलोकको, देवलोकसे आदित्यको और आदित्यसे बिजलीके अभिमानी देवताको प्राप्त होते हैं। फिर ब्रह्माके मनसे रचे हुए ब्रह्मलोकवासी कोई पुरुष आकर उन बिजलीके

अभिमानी देवताके पास पहुँचे हुए उपासकोंको ब्रह्म-
लोकोंमें लेजाते हैं। उपासनाकी न्यूनाधिकतासे सायुज्य
आदिकी प्राप्ति होती है, इसलिये यहाँ 'ब्रह्मलोकोंमें'
ऐसा बहुवचन दिया है। पञ्चाग्नि विद्यावाले, सत्य
भाषणका अनुष्ठान करनेवाले, अश्वमेध करनेवाले और
नैष्ठिक ब्रह्मचारी नहीं अहंग्रह उपासना करके नहीं
गये हैं, इसलिये वे ब्रह्माके दूसरे कल्पमें लौट आते हैं
और जो अहंग्रह उपासना करके वहाँ गये हैं वे उस
ब्रह्मलोकमें उत्तम होकर ब्रह्माके अनेकों कल्प पर्यन्त रहते
हैं, वे फिर इस संसारमें लौटकर नहीं आते ॥ १५ ॥

अथ ये यज्ञेन दानेन तपसा लोकाञ्जयन्ति
ते धूममभिसंभवन्ति धूमाद्रात्रिꣳ रात्रेरपक्षीय-
माणपक्षमपक्षीयमाणपक्षाद्यान् षण्मासान्
दक्षिणाऽऽदित्य एति मासेभ्यः पितृलोकं पितृ-
लोकाच्चन्द्रं ते चन्द्रं प्राप्यान्नं भवन्ति ताꣳस्तत्र
देवा यथा सोमꣳ राजानमाप्यायस्वापक्षीय-
स्वेत्येवमेनाꣳस्तत्र भक्षयन्ति तेषां
यदा तत्पर्यवैत्यथेममेवाऽऽकाशमभिनिष्पद्यन्त
आकाशाद्वायुं वायोर्वृष्टिं वृष्टेः पृथिवीं प्राप्यान्नं
भवन्ति ते पुनः पुरुषाग्नौ हूयन्ते ततो
योषाग्नौ जायन्ते लोकान् प्रत्युत्थायिनस्त
एवमेवानुपरिवर्तन्तेऽथ य एतौ पन्थानौ न
विदुस्ते कीटाः पतङ्गा यदिदं दन्दशूकम् ॥ १६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (ये) जो (यज्ञेन)

यज्ञसे (दानेन) दानसे (तपसा) तपसे (लोकान्) लोकोंको (जयन्ति) जीतते हैं (ते) वे (धूमम्) धूमको (अभिसंभवन्ति) पाते हैं (धूमात्) धूमसे (रात्रिम्) रात्रिको (रात्रेः) रात्रिसे (अपक्षीयमाणपक्षम्) कृष्ण-पक्षको (अपक्षीयमाणपक्षात्) कृष्णपक्षसे (यान्) जिन (षण्मासान) छः महीने (आदित्यः) सूर्य (दक्षिणा) दक्षिण दिशाकी ओरको (एति) जाता है (मासेभ्यः) महीनोंसे (पितृलोकम्) पितृलोकको (पितृलोकात्) पितृलोकसे (चन्द्रम्) चन्द्रमाको [अभिसम्भवन्ति] प्राप्त होते हैं (ते) वे (चन्द्रम्) चन्द्रमाको (प्राप्य) प्राप्त होकर (अन्नम्) अन्न (भवन्ति) होजाते हैं (यथा) जैसे (सोमं, राजानम्) सोम राजाको (आप्याायस्व) फलाकर (अपक्षीयस्व) अपक्षय करके [भक्षयन्ति] खाते हैं (एवम्) इसप्रकार ही (तत्र) तहां (तान्) उन (एनान्) इनको (तत्र) उस चन्द्रलोकमें (देवाः) देवता (भक्षयन्ति) भोगते हैं (तेषाम्) उनका (तत्) वह (यदा) जब (पर्यवैति) क्षीण होता है (अथ) तब (इम,एवम्) इस ही (आकाशम्) आकाशको (अभिसंपद्यन्ते) प्राप्त होते हैं (आकाशात्) आकाशसे (वायुम्) वायुको (वायोः) वायुसे (वृष्टिम्) वर्षाको (वृष्टेः) वर्षासे (पृथिवीम्) पृथिवीको (अभिसंभवन्ति) प्राप्त होते हैं (ते) वे (पृथिवीम्) पृथिवीको (प्राप्य) प्राप्त होकर (अन्नम्) अन्न (भवन्ति) होते हैं (ते) वे (पुनः) फिर (पुरुषाग्नौ) पुरुषरूप अग्निमें (हूयन्ते) होमे जाते हैं (ततः) तदनन्तर (योषाग्नौ) स्त्रीरूप अग्निमें (जायन्ते) उत्पन्न होते हैं (लोकान् प्रति) लोकोंके प्रति (उत्थायिनः) उत्था-

नको प्राप्त हुए (ते) वे (एवम्, एव) इसप्रकार ही (अनु) वारवार (परिवर्त्तन्ते) घूमते हैं (अथ) और (ये) जो (एतौ) इन (पन्थानौ) मार्गोंको (न) नहीं (विदुः) जानते हैं (ते) वे (कीटाः) कीड़े (पतंगाः) पतंगे (यत्) जो (इदम्) यह (दन्दशूकम्) डसने वाला है [तत्] वह [भवन्ति] होते हैं ॥ १६ ॥

(भावार्थ)-ऊपर साधन सहित देवयानमार्ग कहा, अब पितृयान मार्ग को कहते हैं—जो दर्श पौर्ण-मास आदि यज्ञ करके सत्पात्रोंको दान करके और कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि तप करके पितृलोकोंमें पहुँचते हैं, वे पहले पितृलोकको पानेके साधनके मार्गरूप धूमके अभिमानी देवता को पाते हैं, धूमसे रात्रिके अभिमानी देवताको,रात्रिसे कृष्णपक्षके अभिमानी देवताको,कृष्ण-पक्षसे, जिन छः महीनोंमें सूर्य दक्षिणकी ओरको जाता है उन छः महीनेरूप दक्षिणायनके अभिमानी छः देवताओंको, छः मास से पितृलोकको और पितृलोकसे चन्द्रमाको पाते है, चन्द्रमाको पाकर वे देवताओंका भोग्य अन्न बनजाते हैं, जैसे यज्ञमें ऋत्विज चमसमेंके सोमराजाको,उसमें जल डाल कर वार२ फुला कर,वार२ उसके भक्षणमें उसका अपक्षय करके भक्षण करते हैं तैसे ही चन्द्रलोकका शरीर पाये हुए इन कर्मिष्ठोंको उस चन्द्रलोकमेंके देवता उनके कर्मानुसार फल देना रूप पुष्ट करके अपनी सेवा करवाना रूप अपक्षय करते हुए सेवा कराते हैं। इस प्रकार पन्द्रहवीं कण्डिकासे यहां तक दोनों मार्गोंकी प्राप्तिके साधनको कहकर पांचवें प्रश्नका और उत्तर तथा दक्षिण मार्गको दिखाकर प्रथम प्रश्नका निर्णय किया। अब इस लोककी प्राप्तिका प्रकार

दिखाते हुए दूसरे और तीसरे प्रश्नका निर्णय करते हैं- उन कर्मिष्ठोंका वह चन्द्रलोकको प्राप्त करानेवाला यज्ञ आदि कर्म जब क्षीण होता है तब वे इस आकाशको ही प्राप्त होते हैं अर्थात् उस शरीरके आरम्भक कर्मका क्षय होनेसे वह जलमयशरीर आकाशकी समान सूक्ष्म होकर आकाशको प्राप्त होता है। आकाशसे वायुको, वायुसे वर्षाको और वर्षासे पृथिवीको प्राप्त होते हैं। वे कर्म करनेवाले पृथिवीको प्राप्त होकर अन्न होजाते हैं अर्थात् धान्य आदि अन्नके साथ संबन्ध पाजाते हैं। फिर वे पुरुषरूप अग्निमें होमे जाते हैं, अर्थात वीर्यके साथ संबन्ध पाकर स्त्रीरूप अग्निमें होमे जाते हैं, तब जन्म लेते हैं, इसप्रकार शरीरोंको पाये हुए वे कर्मका अनुष्ठान करते हुए मर कर चन्द्रलोकमें और वहांसे फिर इस लोकमें, इसप्रकार बारंबार चक्कर लगाते हैं। जो इन उत्तर और दक्षिणरूप दोनों मार्गोंको नहीं जानते अर्थात् इनकी प्राप्तिके कारणरूप उपासना तथा कर्मका अनुष्ठान नहीं करते हैं वे गोबर आदि बुरे स्थानोंमें कीड़े तथा पतंगे होते हैं तथा जो दन्दशूक कहिये काटने के स्वभाववाले डांस मच्छर सांप आदि दीखते हैं इन सब योनियोंमें कर्मानुसार उत्पन्न होते हैं। यह गति बड़ी कष्टदायक है, इसलिये शुभ कर्म करने चाहियें १६

षष्ठाध्यायस्य द्वितीयं ब्राह्मणं समाप्तम्

स यः कामयेत महत्प्राप्नुयामित्युदगयन आपूर्यमाणपक्षस्य पुण्याहे द्वादशाहमुपसद्व्रती भूत्वौदुम्बरे कँ स चमसे वा सर्वौषधं फलानीति संभृत्य परिसमुह्य परिलिप्याग्निमुप-

समाधाय परिस्तीर्याऽऽवृताऽऽज्यꣳ सꣳस्कृत्य पुꣳसा नक्षत्रेण मन्थꣳ संनीय जुहोति यावन्तो देवास्त्वयि जातवेदस्तिर्यञ्चो घ्नन्ति पुरुषस्य कामान्। तेभ्योऽहं भागधेयं जुहोमि ते मा तृप्ताः सर्वैः कामैस्तर्पयन्तु स्वाहा। या तिरश्ची निपद्यतेऽहं विधरणी इति ता त्वा घृतस्य धारया यजे सꣳ राजनीमहꣳ स्वाहा॥ १॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (महत्) महत्त्वको (प्राप्नुयाम्) पाऊँ (इति) ऐसा (कामयेत) चाहे (सः) वह (उदगयने) उत्तरायणमें (आपूर्यमाणपक्षस्य) शुक्लपक्षके (पुण्याहे) पवित्र दिनमें (द्वादशाहम्) बारह दिन तक (उपसद्व्रती) केवल दूध पीकर रहनेके व्रतवाला (भूत्वा) होकर (औदुम्बरे) गूलरके बनाये हुए (कंसे) गोलाकार पात्रमें (वा) या (चमसे) चमस नामक पात्रमें (सर्वौषधम्) धान्य आदि सब औषध (फलानि) फल (इति) इत्यादि (संभृत्य) भली प्रकार भर कर (परिसमुह्य) भूमिको झाड़ बुहार कर (परिलिप्य) लीपकर (अग्निम्) अग्निको (उपसमाधाय) समीपमें स्थापन करके (परिस्तीर्य) चारोंओर कुशाओंको बिछा कर (आवृता) शास्त्रमें कही हुई रीतिसे (आज्यम्) घीको (संस्कृत्य) संस्कारयुक्त करके (पुंसा नक्षत्रेण) पुरुष नक्षत्रके द्वारा (मन्थम्) पीठीको (संनीय) पास रख कर (जुहोति) होम करे (जातवेदः) हे सर्वज्ञ कल्प ! (त्वयि) तुम्हारे अधीन

(यावन्तः) जितने (तिर्यञ्चः) कुटिल बुद्धिवाले (देवाः) देवता (पुरुषस्य) पुरुषके (कामान्) इच्छित विषयों (घ्नन्ति) नष्ट करते हैं (तेभ्यः) उनके लिये (अहम्) मैं (भागधेयम्) भाग को (जुहोमि) होमता हूँ (तृप्ताः) तृप्त हुए (ते) वे (माम्) मुझको (सर्वैः) सब (कामैः) इच्छित विषयोंसे (तर्पयन्तु) तृप्त करें (स्वाहा) यह आहुति देता हूं (तिरश्ची) कुटिल बुद्धिवाली (या) जो देवता (अहम्) मैं (विधरणी) सबको धारण करनेवाली हूं (इति) ऐसा मानकर (निपद्यते) तुम्हारे आश्रयमें रहती है (ताम्) उस (संराधनीम्) सकल साधनवाली को (अहम्) मैं (घृतस्य) घीकी (धारया) धारा करके (यजे) पूजता हूँ (स्वाहा) यह आहुति देता हूं ॥ १ ॥

(भावार्थ)-अब ऊपर कहे पितृयानमार्गमें पहुँचने के साधन श्रीमन्थ नामक कर्मको कहते हैं, कि—जो कर्मका अधिकारी गृहस्थ, यह चाहे कि—मैं 'महान् होजाऊं' उत्तरायणमें शुक्लपक्षके कर्मसिद्धिदायक शुभ दिन आरम्भ करके बारह दिन तक उपसद् व्रत करे अर्थात् केवल दूध पीकर रहे, और गूलरके बनाये हुए गोलाकार पात्रमें अथवा चमस नामके यज्ञपात्रमें व्रीहि आदि सब औषधें तथा फल आदि अच्छे प्रकारसे भर कर तदनन्तर पृथिवीको झाड़ बुहार लीप कर अग्निको समीपमें स्थापन करे। उस अग्निके चारों ओर इसप्रकार कुशा बिछावे कि-उनका अग्रभाग पूर्वकी ओरको या उत्तरकी ओरको रहे। फिर स्थालीपाकमें कही हुई रीतिसे घीका संस्कार करके हस्त आदि पुरुष वाचक नक्षत्रवाले पवित्र दिनमें सर्वौषध आदिकी पीठीको

गोलाकार पात्रमें या चमसाकार पात्रमें दही, शहद, घीसे सींच कर एक छोटेसे मथनेके दण्डसे मथकर उस पात्रीको अपने और अग्निके मध्यमें दक्षिणकी ओरको रख कर गूलड़के स्रुवेसे संस्कार किये हुए घीको लेकर इन मंत्रोंसे होम करे हे सर्वज्ञकल्प अग्निदेव ! तुम्हारी अधीनतामें रहनेवाले जितने देवता कुटिल बुद्धिवाले होकर पुरुषके इच्छित विषयोंमें बाधा डाला करते हैं उन देवताओंके लिये मैं घीका भाग होमता हूँ, वे देवता तृप्त करें 'स्वाहा' हे जातवेद ! जो कुटिल बुद्धिवाले होकर 'मैं ही सबको धारण करनेवाला हूँ' ऐसा मानकर आपके आश्रयमें रहता है उस सकल साधनवाले देवताको मैं घीकी धारासे पूजता हूँ 'स्वाहा' ॥ १ ॥

ज्येष्ठाय स्वाहा श्रेष्ठाय स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे सꣳ स्रवमवनयति। प्राणाय स्वाहा वसिष्ठायै स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे सꣳस्रवमवनयति। वाचे स्वाहा प्रतिष्ठायै स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मंथे सꣳ स्रवमवनयति। चक्षुषे स्वाहा सम्पदे स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मंथे सꣳ स्रवमवनयति। श्रोत्राय स्वाहाऽऽयतनाय स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मंथे सꣳ स्रवमवनयति। मनसे स्वाहा प्रजात्यै स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मंथे सꣳ स्रवमवनयति। रेतसे स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मंथे सꣳ स्रवमवनयति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ज्येष्ठाय) ज्येष्ठके लिये (स्वाहा) आहुति देता हूँ (श्रेष्ठाय) श्रेष्ठके लिये (स्वाहा)

आहुति देता हूँ (इति) इसप्रकार (अग्नौ) अग्निमें (हुत्वा) होम करके (संस्रवम्) स्रुवेमें लिपटे हुए घीको (मन्थे) पीठीमें (अवनयति) टपकाता है (प्राणाय) प्राणके लिये (स्वाहा) आहुति देता हूँ (वसिष्ठायै) वसिष्ठाके लिये (स्वाहा) आहुति देता हूँ (इति) ऐसे (अग्नौ) अग्निमें (हुत्वा) होम करके (संस्रवम्) संस्रवको (मन्थे) मन्थमें (अवनयति) टपकाता है (वाचे) वाणीके लिये (स्वाहा) आहुति देता हूँ (प्रतिष्ठायै) प्रतिष्ठाके लिये (स्वाहा) आहुति देता हूँ (इति) ऐसा कह कर (अग्नौ) अग्निमें (हुत्वा) होम करके (संस्रवम्) संस्रवको (मन्थे) मन्थमें (अवनयति) टपकाता है (चक्षुषे) चक्षुके लिये (स्वाहा) आहुति देता हूँ (सम्पदे) सम्पद्के लिये (स्वाहा) आहुति देता हूँ (इति) ऐसे (अग्नौ) अग्निमें (हुत्वा) होम करके (संस्रवम्) संस्रवको (मन्थे) मन्थमें (अवनयति) टपकाता है (श्रोत्राय) श्रोत्रके लिये (स्वाहा) आहुति देता हूँ (आयतनाय) आश्रयके लिये (स्वाहा) आहुति देता हूँ (इति) ऐसे (अग्नौ) अग्निमें (हुत्वा) होम करके (संस्रवम्) संस्रवको (मन्थे) मन्थमें (अवनयति) टपकाता है (मनसे) मनके लिये (स्वाहा) आहुति देता हूँ (प्रजात्यै) प्रजातिके आहुति देता हूँ (इति) ऐसे (अग्नौ) अग्निमें (हुत्वा) होम करके (संस्रवम्) संस्रवको (मन्थे) मन्थमें (अवनयति) टपकाता है (रेतसे) उपस्थके लिये (स्वाहा) आहुति देता हूँ (इति) ऐसे (अग्नौ) अग्निमें (हुत्वा) होम करके

(संस्रवम्) संस्रवको (मन्थे) मन्थमें (अवनयति) टपकाता है ॥ २ ॥

(भावार्थ)-ज्येष्ठाय स्वाहा, श्रेष्ठाय स्वाहा, इन दोनों मंत्रोंसे अग्निमें आहुति छोड़कर संस्रव कहिये जो घी स्रुवेमें लग रहा हो उसको मन्थ कहिये उस सर्वौषध आदिकी पीठीमें टपका देय। प्राणाय स्वाहा, वसिष्ठायै स्वाहा, इन दोनों मंत्रोंसे अग्निमें होम करके संस्रवको मन्थमें टपकादेय। वाचे स्वाहा, प्रतिष्ठायै स्वाहा, इन मंत्रोंसे अग्निमें होम करके संस्रवको मन्थमें टपका देय। चक्षुषे स्वाहा, सम्पदे स्वाहा, इन मन्त्रोंसे अग्निमें होम करके संस्रवको मन्थमें टपकादेय। श्रोत्राय स्वाहा, आयतनाय स्वाहा, इन मन्त्रोंसे अग्निमें होम करके संस्रवको मन्थमें टपकादेय। मनसे स्वाहा, प्रजात्यै स्वाहा, इन मंत्रोंसे अग्निमें होम करके संस्रवको मन्थमें टपकादेय। रेतसे स्वाहा, इस मंत्रसे अग्निमें होम करके संस्रवको मन्थमें टपकादेय ॥ २ ॥

अग्नये स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मंथे संस्रवमवनयति। सोमाय स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे संस्रवमवनयति। भूः स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे संस्रवमवनयति। भुवः स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे संस्रवमवनयति। स्वः स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे संस्रवमवनयति। भूर्भुवः स्वः स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मंथे संस्रवमवनयति। ब्रह्मणे स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे संस्रवमवनयति। क्षत्राय स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे संस्रवमवनयति। भूताय स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे

संस्रवमवनयति भविष्यते स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे संस्रवमवनयति । विश्वाय स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे संस्रवमवनयति । सर्वाय स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे संस्रवमवनयति । प्रजापतये स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे संस्रवमवनयति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अग्नये) अग्निके लिये (स्वाहा) आहुति देता हूं (इति) ऐसे (अग्निमें) हुत्वा (होम) करके (संस्रवम्) संस्रवको (मन्थे) मन्थमें (अवनयति) टपकाता है (सोमाय) सोमके लिये (स्वाहा) आहुति देता हूँ (इति) ऐसे (अग्नौ) अग्निमें (हुत्वा) होम करके (संस्रवम्) संस्रवको (मंथे) मन्थमें (अवनयति) टपकाता है (भूः स्वाहा) भूके लिये आहुति देता हूँ (इति) ऐसे (अग्नौ) अग्निमें (हुत्वा) होम करके (संस्रवम्) संस्रवको (मन्थे) मन्थमें (अवनयति) टपकाता है (भुवः स्वाहा) भुवरके लिये आहुति देता हूं (इति)) ऐसे (अग्नौ) अग्निमें (हुत्वा) होम करके (संस्रवम्) संस्रवको (मन्थे) मन्थमें (अवनयति) टपकाता है (स्वः स्वाहा) स्वर्गलोकके लिये आहुति देता हूं (इति) ऐसे (अग्नौ) अग्निमें (हुत्वा) होम करके (संस्रवम्) संस्रवको (मन्थे) मन्थमें (अवनयति) टपकाता है (भूर्भुवः स्वः) भू भुवर स्वर तीनोंके लिये एक साथ आहुति देता हूँ (इति) ऐसे (अग्नौ) अग्निमें (हुत्वा) होम करके (संस्रवम्) संस्रवको (मन्थे) मन्थमें (अवनयति) टपकाता है (ब्रह्मणे) ब्राह्मण जातिके लिये (स्वाहा) आहुति देता हूं (इति) ऐसे (अग्नौ) अग्निमें (हुत्वा) होम

करके (संस्रवम्) संस्रवको (मन्थे) मन्थमें (अवनयति) टपकाता है (क्षत्राय) क्षत्रिय जातिके लिये (स्वाहा) आहुति देता हूं (इति) ऐसे (अग्नौ) अग्निमें (हुत्वा) होम करके (संस्रवम्) संस्रवको (मन्थे) मन्थमें (अवनयति) टपकाता है (भूताय) भूतके लिये (स्वाहा) आहुति देता हूं (इति) ऐसे (अग्नौ) अग्निमें (हुत्वा) होम करके (संस्रवम्) संस्रवको (मन्थे) मन्थमें (अवनयति) टपकाता है (भविष्यते) भविष्यत्के लिये (स्वाहा) आहुति देता हूं (इति) ऐसे (अग्नौ) अग्निमें (हुत्वा) होम करके (संस्रवम्) संस्रवको (मन्थे) मन्थमें (अवनयति) टपकाता है (विश्वाय) विश्वके लिये (स्वाहा) आहुति देता हूं (इति) ऐसे (अग्नौ) अग्निमें (हुत्वा) होम करके (संस्रवम्) संस्रवको (मन्थे) मन्थमें (अवनयति) टपकाता है (सर्वाय) सबके लिये (स्वाहा) आहुति देता हूं (इति) ऐसे (अग्नौ) अग्निमें (हुत्वा) होम करके (संस्रवम्) संस्रवको (मन्थे) मन्थमें (अवनयति) टपकाता है (प्रजापतये) प्रजापतिके लिये (स्वाहा) आहुति देता हूं (इति) ऐसे (अग्नौ) अग्निमें (हुत्वा) होम करके (संस्रवम्) संस्रवको (मन्थे) मन्थमें (अवनयति) टपकाता है ॥३॥

(भावार्थ)—अग्नये स्वाहा, इस मन्त्रसे अग्निमें आहुति देकर संस्रव कहिये स्रुवेमें लगा हुआ घी सर्वौषध आदिके मन्थमें टपकादेय। ऐसे ही सोमाय स्वाहा, भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा, भूर्भुवः स्वः स्वाहा, ब्रह्मणे स्वाहा, क्षत्राय स्वाहा, भूताय स्वाहा भविष्यते स्वाहा, विश्वाय स्वाहा, सर्वाय स्वाहा,

प्रजापतये स्वाहा, इनमेंसे एक २ को पढ़कर अग्निमें घृतकी आहुति देता जाय और स्रुवेमें लगा हुआ घी मन्थके ऊपर टपकादेय ॥ ३ ॥

अथैनमभिमृशति भ्रमदसि ज्वलदसि पूर्णमसि प्रस्तब्धमस्येकसभमसि हिंकृतमसि हिंक्रियमाणमस्युद्गीथमस्युद्गीयमानमसि श्रावितमसि प्रत्याश्रावितमस्यार्द्रे सन्दीप्तमसि विभूरसि प्रभूरस्यन्नमसि ज्योतिरसि निधनमसि संवर्गोऽसीति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अनन्तर (एनम्) इसको (अभिमृशति) स्पर्श करता है (भ्रमत्) भ्रमण करता हुआ (असि) है (ज्वलत्) प्रकाश करनेवाला (असि) है (पूर्णम्) पूर्ण(असि) है (प्रस्तब्धम्) निष्कम्प (असि) है (एकसभम्) एक सभारूप (असि) है (हिंकृतम्) हिंकृत (असि) है (हिंक्रियमाणम्) हिंकारका विषय (असि) है (उद्गीथम्) उद्गीथ (असि) है (उद्गीयमानम्) ऊंचेसे गान किया जानेवाला (असि) है (श्रावितम्) सुनाया हुआ (असि) है (प्रत्याश्रावितम्) बदलेमें सुनाया हुआ (असि) है (आर्द्रे) मेघके उदरमें (संदीप्तम्) प्रकाशरूप (असि) है (विभुः) विभु (असि) है (प्रभुः) समर्थ (असि) है (अन्नम्) अन्न (असि) है (ज्योतिः) ज्योति (असि) है (निधनम्) लय होनेका स्थान (असि) है (संवर्गः) संहार करनेवाला (असि) है ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-मन्थके द्रव्योंको दूसरी मथनीसेआलोडन

करके 'भ्रमदसि' इत्यादि मूलमें लिखे मंत्रोंको पढ़ता हुआ स्पर्श करे इन मंत्रोंका अर्थ यह है, कि-हे मन्थ! तू प्राण देवता वाला है, अतः प्राणके साथ एकत्व होनेके कारण तू सर्वात्मा है, अतः तू सब शरीरोंमें प्राणरूपसे भ्रमण करता है, अग्निरूपसे प्रकाश करता है, ब्रह्मरूपसे पूर्ण है, आकाशरूपसे निष्क्रिय है, जगत्रूप एक सभा तेरा ही रूप है, यज्ञके आरम्भमें प्रस्तोताका किया हिंकार तू ही है, यज्ञके मध्यमें हिंक्रियमाण तू ही है, यज्ञके आरम्भमें उद्गाताका किया उद्गीथ (जोरसे किया हुआ ॐकारका उच्चारण) तू ही है, यज्ञके मध्यमें उद्गीयमान तू ही है, अध्वर्युका सुनाया हुआ तू है, आग्नीध्रका प्रतिश्रावित तू है, मेघके उदरमें बिजलीरूपसे चमकनेवाला तू है, नानारूपवाला विभु तू है, प्रभु तू है, तू ही सामस्वरूप भोग्य होनेसे अन्न है, अग्निस्वरूप भोक्ता होनेसे ज्योति है, कारणरूपसे आध्यात्मिक और आधिदैविकका लयस्थान है और वाणी आदिका तथा अग्नि आदिका अपनेमें संहार करनेसे सम्वर्ग है ॥ ४ ॥

अथैनमुद्यच्छत्याम ꣳ स्याम ꣳ हि ते महि स हि राजेशानोऽधिपतिः समा ꣳ राजेशानोधिपतिं करोत्विति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) इसके अनन्तर (एनम्) इसको (उद्यच्छति) ग्रहण करता है [मंथ, त्वम्, आमंसि] हेमन्थ! तू सब प्रकारसे सबको जानता है [वयम्] हम (महि) महानरूपको (आमंहि) सब प्रकारसे जानते हैं (सः, हि) वह ही [त्वम्] तू (राजा) राजा (ईशानः) नियन्ता (अधिपतिः) स्वतंत्र (असि)

है (सः) वह (राजेशानः) राजा और नियन्ता [त्वम्] तू (माम्) मुझको (अधिपतिम्) स्वतन्त्र (करोतु) करो (इति) ऐसी प्रार्थना करे ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-इसप्रकार स्पर्श करनेके अनन्तर मन्त्रसे पवित्र हुए इस मन्त्रको पढ़ता हुआ चमससहित हाथमें लेय, मन्त्रका अर्थ यह है, कि-हे मन्थ ! तू सब प्रकारसे सबको जानता है और हम तेरे अति-महान् रूपको जानते हैं। वही प्राणरूप तू राजा, नियन्ता और स्वतन्त्र है, तू मुझे भी राजा, नियामक और स्वतन्त्र करदे ॥ ५ ॥

अथैनमाचामति तत्सवितुर्वरेण्यम् । मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः । भूः स्वाहा । भर्गो देवस्य धीमहि। मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव ᳪ रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता । भुवः स्वाहा । धियो यो नः प्रचोदयात् । मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुः मा ᳪ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः। स्वः स्वाहेति । सर्वाञ्च सावित्रीमन्वाह सर्वाश्च मधुमतीरहमेवेद ᳪ सर्वं भूयासं, भूर्भुवः स्वा-हेत्यन्तत आचम्य पाणी प्रक्षाल्य जघनेनाग्निं प्राक्शिराः संविशति प्रातरादित्यमुपतिष्ठते दिशामेकपुंडरीकमस्यहं मनुष्याणामेकपुंडरीकं भूयासमिति यथेतमेत्य जघनेनाग्निमासीनो व ᳪ शं जयति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) इसके अनन्तर (तत्) उस (सवितुः) सूर्यके (वरेण्यम्) श्रेष्ठ तेजको [धीमहि] ध्यान करते हैं (वाताः) वायु (मधु) सुखकारी (ऋतायते) चलते हैं (सिन्धवः) नदियें (मधु) मधुररसोंको (क्षरन्ति) बहाती हैं (ओषधीः) औषधें (नः) हमारे लिये (माध्वीः) मधुर रसवाली (सन्तु) हों (भूः-स्वाहा) भूलोकको आहुति देता हूं [इति] इसको पढ़कर (एनम्) इस मन्थ भागको (आचामति) भक्षण करता है (देवस्य) सूर्यके (भर्गः) तेजको (धीमहि) ध्यान करते हैं (नक्तम्) रात्रि (उत) और (उषसः) दिन (मधु) प्रसन्नता देनेवाले [सन्तु] हों (पार्थिवम्) पृथिवीका (रजः) रज (मधुमत्) व्याकुल न करने वाला (अस्तु) हो (द्यौः) द्युलोकरूप (पिता) पिता (नः) हमारे लिये (मधुमत्) सुखकारी [अस्तु] हो (भुवः स्वाहा) भुवर्लोकको आहुति देता हूं [इति,-द्वितीयं, आचमति] इस मंत्रको पढ़कर दूसरे भागका भक्षण करे। (यः) जो सूर्य (नः) हमारी (धियः) बुद्धियोंको (प्रचोदयात्) शुभ विषयोंमें प्रेरणा करे (वनस्पतिः) सोम (नः) हमारे लिये (मधुमान्) प्रसन्नता देनेवाला (सूर्यः) सूर्य (मधुमान्) प्रसन्नता देनेवाला (अस्तु) हो (गावः) किरणें या दिशायें (नः) हमारे लिये (माध्वीः) सुखकारिणी (भवन्तु) हों (स्वः स्वाहा) स्वर्गलोकको आहुति देता हूं (इति) इसप्रकार [तृतीयं, आचामति] तीसरे भागको भक्षण करता है (सर्वाम्) सब (सावित्रीम्) गायत्रीको (च) और (सर्वाः) सब (मधुमतीः) मधुमतीको (अन्वाह) पीछे कहे (अहम्,एव) मैं ही (इदम्) यह (सर्वम्)

सव (भूयासम्) होऊँ (भूर्भुवः स्वः स्वाहा) भूलोक भुवर्लोक और स्वर्लोक इन तीनोंको आहुति देता हूँ (इति) इस मंत्रसे [चतुर्थं, आचमति] चौथे भागको भक्षण करता है (अन्ततः) भक्षणके अन्तमें (आचम्य) आचमन करके (पाणी) दोनों हाथोंको (प्रक्षाल्य) धोकर (अग्निं, जघनेन) अग्निकी पश्चिम ओर (प्राक्-शिरः) पूर्वको शिर करके (संविशति) शयन करता है (प्रातः) प्रातः कालके समय (आदित्यं, उपतिष्ठते) सूर्यका उपस्थान करता है [यथा] जैसे (दिशाम्) दिशाओंमें (एकपुंडरीकम्) अखंड श्रेष्ठ (असि) हो [एवम्] ऐसे ही (अहम्) मैं (मनुष्याणाम्) मनुष्योंमें (एकपुंडरीकम्) अखंड श्रेष्ठ (भूयासम्) होऊँ (इति) ऐसा करके (यथा) जैसे (इतम्) आया था [तथा] तैसे (एत्य) आकर (अग्निं, जघनेन) अग्निके पश्चिममें (आसीनः) बैठा हुआ (वंशम्) वंशको (जपति) पढ़ता है ॥ ६ ॥

(भावार्थ)-फिर हाथमें लिये हुए मन्थके चार ग्रास करके अलग २ रख देय, पहले उनमेंका एक ग्रास लेकर 'तत्सवितुः' इत्यादि मन्त्रको पढ़ कर खाय, मन्त्रका अर्थ यह है, कि हम सूर्यके श्रेष्ठ तेजका ध्यान करते हैं वायु सुखदायक चलें, नदियें मधुर रसोंको बहावें, ओषधियें हमारे लिये मधुर रसवाली होजायं,मैं भूलोक की तृप्तिके लिये आहुति देता हूँ। फिर 'भर्गोदेवस्य' इत्यादि मन्त्रको पढ़ता हुआ दूसरे ग्रासको खाय, मन्त्रका अर्थ यह है- हम प्रकाशवान् सूर्यके तेजका ध्यान करते हैं, रात्रि और दिन हमें आनन्ददायक हों, मातारूप पृथिवी की रज हमें व्याकुल न करे, स्वर्गरूप पिता हमें सुखदाता

हो, मैं भुवर्लोकको तृप्तिके लिये आहुति देता हूँ । नियो योनः इत्यादि मन्त्रको पढ़ कर तीसरा ग्रास खाय, मन्त्रका अर्थ यह है—सूर्य हमारी बुद्धियों को शुभ विषयों में लगावे, वनस्पति सोम हमें उद्वेगकारी न हो, सूर्य हमें व्याकुल न करे, किरणें वा दिशायें हमारे लिये सुखकारी हों, मैं स्वर्गलोककी तृप्तिके लिये आहुति देता हूं । फिर चौथे ग्रासको भक्षण करने में ऊपर कही हुई पूरी गायत्री और सब मधुमती ऋचाओंको पढ़ कर कहे कि—यह सब मैं ही होजाऊँ, फिर भूर्भुवः स्वः स्वाहा कहे । पीछे में पात्रको धोकर वह जल भी पी लेय, फिर आचमन कर हाथ धोकर शुद्ध आचमन करें । तदनन्तर अग्निसे पश्चिममें पूर्वकी ओरको शिर करके रात्रिमें सो रहे । फिर प्रातःकाल उठ कर सूर्योदयके समयमें सन्ध्या करके सूर्यको देखता हुआ 'दिशामि-त्यादि' मन्त्रसे उपस्थान करे, मन्त्रका अर्थ यह है—हे सूर्य ! जैसे तुम दिशाओंमें अखण्ड श्रेष्ठ हो ऐसे ही मैं मनुष्योंमें अखण्ड श्रेष्ठ होजाऊँ, इस मन्त्रसे उपस्थान करनेके अनन्तर आजसे पहले जैसे आया था तैसे ही आकर अग्निसे पश्चिममें बैठ कर उपदेश देनेवाले आचार्य की परम्परारूप वंशको पढ़े ॥ ६ ॥

तꣳ हैतमुद्दालक आरुणिर्वाजसनेयाय याज्ञवल्क्यायान्तेवासिन उक्त्वोवाचापि य एनꣳ शुष्के स्थाणौ निषिञ्चेज्जायेरञ्छाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तम्) उस (एतम्) इसको (ह) प्रसिद्ध (आरुणिः) अरुणका पुत्र (उद्दालकः) उद्दा-

लक (वाजसनेयाय) वाजसनिके पुत्र (याज्ञवल्क्याय) याज्ञवल्क्य नामक (अन्तेवासिने) शिष्यके अर्थ (उक्त्वा) उपदेशदेकर (उवाच अपि) कहता भी हुआ (यः) जो (एनम्) इसको (शुष्के) सूखे हुए (स्थाणौ) ठुण्ठमें (निषिञ्चेत्) डाले (शाखाः) शाखायें (जायेरन्) उत्पन्न होजायँ (पलाशानि) पत्ते (प्ररोहेयुः) उग आवें (इति) इसप्रकार ॥ ७ ॥

(भावार्थ)-अरुणके पुत्र उद्दालक ऋषिने इस मन्थ की विधिको वाजसनिके पुत्र याज्ञवल्क्य नामक अपने शिष्यको उपदेश दिया और उससे कहा, कि-जो प्राणोपासक मनुष्यके लिये ऊपर कही रीतिसे संस्कार किये हुए मन्थको यदि सूखे हुए ठूँठमें चुपड़देय तो उसमें भी डालें निकल आवें और पत्ते उग आवें ॥ ७ ॥

एतमु हैव वाजसनेयो याज्ञवल्क्यो मधुकाय पैङ्ग्यायान्तेवासिन उक्त्वोवाचापि य एन ँ शुष्के स्थाणौ निषिञ्चेज्जायेरञ्छाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एतम्, उ, एव) इसको ही (ह) प्रसिद्ध (वाजसनेयः) वाजसनिका पुत्र (याज्ञवल्क्यः) याज्ञवल्क्य (पैङ्ग्याय) पैंगिके पुत्र (मधुकाय) मधुक नामवाले (अन्तेवासिने) शिष्यके अर्थ (उक्त्वा) उपदेश देकर (इति) इसप्रकार (उवाच, अपि) कहता भी हुआ (यः) जो (एनम्) इसको (शुष्के, स्थाणौ) सूखे हुए ठूँठमें (निषिञ्चेत्) मलदेय (शाखाः) डालें (जायेरन्) उत्पन्न होजायँ (पलाशानि) पत्ते (प्ररोहेयुः) उग आवें ॥ ८ ॥

(भावार्थ)-उस वाजसनिके पुत्र याज्ञवल्क्यने भी अपने शिष्य पैंगिके पुत्र मधुकको इस मन्थके विषयमें उपदेश देकर यही कहा था, कि जो इसको सूखे ठूँठमें मलदेय तो उसमें डालें और पत्ते निकल आवें ॥ ८ ॥

एतमु हैव मधुकः पैंग्यश्चूलाय भागवित्तये-ऽन्तेवासिने उक्त्वोवाचापि य एनꣳ शुष्के स्थाणौ निषिञ्चेज्जायेरञ्छाखाः प्ररोहेयुःपलाशानीति ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एतम्, उ, इव) इसको ही (ह) प्रसिद्ध (पैंग्यः) पैंगिका पुत्र (मधुकः) मधुक (भागवित्तये) भगवित्तके पुत्र (चूलाय) नामक (अन्तेवासिने) शिष्यके अर्थ (उक्त्वा) उपदेश देकर (इति) इसप्रकार (उवाच, अपि) कहता भी हुआ (यः) जो (एनम्) इसको (शुष्के, स्थाणौ) सूखे हुए ठूंठमें (निषिञ्चेत) मलदेय (शाखाः) डालें (जायेरन्) उत्पन्न होजायँ (पलाशानि) पत्ते (प्ररोहेयुः) उग आवें ॥ ९ ॥

(भावार्थ)-पैंगिके पुत्र मधुकने भी अपने शिष्य भगवित्तके पुत्र चूलको इस मन्थ विधिका उपदेश देकर कहा था, कि-जो इसको सूखे ठूंठमें चुपड़ देय तो उसमें शाखें और पत्ते निकल आवें ॥ ९ ॥

एतमु हैव चूलो भागवित्तिर्जानकेय आयस्थूणायान्तेवासिन उक्त्वोवाचापि य एनꣳ शुष्के स्थाणौ निषिञ्चेज्जायेरञ्छाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-(एतम्, उ एव) इसको ही (भागवित्तिः) भगवित्तका पुत्र (चूलः) चूल (जानकये) जनकके पुत्र (आयस्थूणाय) आयस्थूण नामक (अन्तेवासिने) शिष्यके अर्थ (उक्त्वा) उपदेश देकर (इति) इसप्रकार (उवाच अपि) कहता भी हुआ (यः) जो (एनम्) इसको (शुष्के) सूखे हुए (स्थाणौ) ठूँठमें (निषिञ्चेत) चुपड़ देय (शाखाः) शाखायें (जायेरन्) उत्पन्न होजायँ (पलाशानि) पत्ते (प्ररोहेयुः) उग आवें ॥ १० ॥

(भावार्थ)-भगवित्तके पुत्र चूलने भी अपने शिष्य जनकके पुत्र आयस्थूणको इस मन्थविधिका उपदेश देकर यही कहा कि जो इसको सूखे ठूंठमें मलदेय तो उसमें भी शाखा और पत्ते निकल आवें ॥ १० ॥

एतमु हैव जानकिरायस्थूणः सत्यकामाय जाबालायान्तेवासिन उक्त्वोवाचापि य एन ँ शुष्के स्थाणौ निषिञ्चेज्जायेरञ्छाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एतम्, उ एव) इसको ही (जानकिः) जनकका पुत्र (आयस्थूणः) आयस्थूण (जाबालाय) जबालाके पुत्र (सत्यकामाय) सत्यकाम नामक (अन्तेवासिने) शिष्यके अर्थ (उक्त्वा) उपदेश देकर (इति) इसप्रकार (उवाच, अपि) कहता भी हुआ (यः) जो (एनम्) इसको (शुष्के, स्थाणौ) सूखे ठूंठमें (निषिञ्चेत) चुपड़ देय (शाखाः) शाखायें (जायेरन्) उत्पन्न होजायें (पलाशानि) पत्ते (प्ररोहेयुः) उग आवें ॥ ११ ॥

(भावार्थ)-जनकके पुत्र आयस्थूणने भी अपने

शिष्य जवालाके पुत्र सत्यकामको इस मन्थ विधिका उपदेश देकर यही कहा था, कि-जो इसको सूखे ठूंठमें चुपड़ देय तो डालें और पत्ते निकल आवें ॥ ११ ॥

एतमु हैव सत्यकामो जाबालो ऽन्तेवासिभ्य उक्त्वोवाचापि य एन ᳫ शुष्के स्थाणौ निषिञ्चेज्जायेरञ्छाखाः प्ररोहेयुः पलाशानि नैनं नापुत्राय वाऽनन्तेवासिने वा ब्रूयात् ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एतम्, उ, एव) इसको ही (जाबालः) जवालाका पुत्र (सत्यकामः) सत्यकाम (अन्तेवासिभ्यः) शिष्योंके अर्थ (उक्त्वा) उपदेश देकर (इति) इसप्रकार (उवाच, अपि) कहता भी हुआ (यः) जो (एतम्) इसको (शुष्के, स्थाणौ) सूखे हुए ठूंठमें (निषिञ्चेत्) चुपड़देय (शाखाः) शाखायें (जायेरन्) उत्पन्न होजाय (पलाशानि) पत्ते (प्ररोहेयुः) उगआवें (तत्) उस (एतम्) इसको (वा) या (अपुत्राय) पुत्रसे भिन्नके लिये (न) नहीं (वा) या (अनन्तेवासिने) शिष्यसे अन्यके लिये (न) नहीं (ब्रूयात्) कहे ॥ १२ ॥

(भावार्थ)-जवालाके पुत्र सत्यकामने भी अपने शिष्योंको मन्थविधिका उपदेश देकर यही कहा था, कि जो उसको सूखे ठूंठमें मलदेय तो उसमें भी शाखायें और पत्ते निकल आवें फिर इस कर्मसे इच्छित विषयके सिद्ध होनेमें तो सन्देह ही क्या है ? इस मन्थकर्मके विज्ञानका उपदेश पुत्र और शिष्यके सिवाय और किसीको न देय ॥ १२ ॥

चतुरौदुम्बरो भवत्यौदुम्बरः स्रुव औदुम्बरश्चमस

औदुम्बर इध्म औदुम्बर्यौ उपमन्थन्यौ दश ग्राम्याणि धान्यानि भवन्ति व्रीहियवास्तिलमाषा अणुप्रियङ्गवो गोधूमाश्च मसूराश्च खल्वाश्च खलकुलाश्च तान् पिष्टान् दधनि मधुनि घृत उपसिञ्चत्याज्यस्य जुहोति ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(चतुः चार पदार्थोंका समूह (औदुम्बरः) गूलरका बना हुआ (भवति) होता है (स्रुवः) स्रुवा (औदुम्बरः) गूलरका (चमसः) चमस (औदुम्बरः) गूलरका (इध्मः) ईंधन (औदुम्बरः) गूलरका (उपमन्थन्यौ) मथनेके छोटे दो दण्डे (औदुम्बर्यौ) गूलर के होते हैं (ग्राम्याणि) गाँव में पैदा होनेवाले (दश) दश (धान्यानि) धान्य (भवन्ति) होते हैं (व्रीहियवाः) साठी और जौ (तिलमाषाः) तिल और उड़द (अणुप्रियङ्गवः) चीना और कँगनी (गोधूमाः) गेंहूं (मसूराः) मसूर (च) और (खल्वाः) मटर (च) और (खलकुलाः) कुलथी (तान्) तिन (पिष्टान्) पिसेहुओंको (दधनि) दहीमें (मधुनि) शहदमें (घृते) घीमें (उपसिञ्चति) मिलावे (आज्यस्य) घीका (जुहोति) होम करे ॥ १३ ॥

(भावार्थ)-इस होममें जिन पात्रोंकी और धान्योंकी आवश्यकता होती है, उनको बताते-हैं स्रुवा, चमस, ईंधन और मथनेके छोटे दण्डे ये चार गूलड़के होते हैं। ग्राममें उत्पन्न होनेवाले दश अन्न होते हैं-साठी, जौ, तिल, उड़द, चीना, कँगनी, गेंहूं, मसूर, मटर और कुलथी। ये तथा और जो यज्ञमें काम आनेवाले अन्न

तथा फल मिलसकें उनको लेलेय इन सबकी पीठी कर पात्रमें डालकर दही, शहद और घीमें मथे, तदनन्तर ऊपर लिखे अनुसार घीकी आहुति देय ॥ १३ ॥

षष्ठाध्यायस्य तृतीयं ब्राह्मणं समाप्तम् ।

एषां वै भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपोऽपामोषधय ओषधीनां पुष्पाणि पुष्पाणां फलानि फलानां पुरुषः पुरुषस्य रेतः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वै) प्रसिद्ध (एषाम्) इनमें (भूतानाम्) पञ्चमहाभूतोंका (पृथिवी) पृथिवी (रसः) सार है (पृथिव्याः) पृथिवीका (आपः) जल (अपाम्) जलोंका (ओषधयः) ओषधियें (ओषधीनाम्) ओषधियोंके (पुष्पाणि) फूल (पुष्पाणाम्) फूलोंके (फलानि) फल (फलानाम्) फलोंका (पुरुषः) पुरुष (पुरुषस्य) पुरुषका (रेतः) वीर्य [रसः] सार है ॥ १ ॥

(भावार्थ)—ऊपर धनाभिलाषी प्राणोपासकके लिये श्रीमन्थकर्मका उपदेश दिया, अब वह यदि विशेष पुत्र चाहे तो उसके लिये पुत्रमन्थ कर्म कहते हुए पुत्रोत्पत्ति के हेतु वीर्यके स्वरूपको कहते हैं, कि—इन प्रसिद्ध चराचर भूतोंका सार पृथिवी है, पृथिवीका सार जल, जल का सार गेंहूं धान आदि औषधियें, औषधियोंका सार उनके फल, फलोंका सार पुरुष और पुरुषका सार रेत (वीर्य) है क्योंकि-वह पुरुषके सब शरीरमेंसे निचुड़ कर उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

स ह प्रजापतिरीक्षाञ्चक्रे हन्तास्मै प्रतिष्ठां कल्पयानीति स स्त्रियꣳ ससृजे ताꣳ सृष्ट्वाऽध उपास्त तस्मात्स्त्रियमध उपासीत स एतं प्राञ्चं ग्रावाण-

मात्मन एव समुदपारयत्तेनैनामभ्यसृजत ॥२॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (ह) प्रसिद्ध (प्रजापतिः) विराट पुरुष (अस्मै) इस वीर्यके लिये (हन्त) किस (प्रतिष्ठाम्) आश्रयको (कल्पयानि) कल्पना करूँ (इति) इसप्रकार (ईक्षाञ्चक्रे) आलोचना करता हुआ (सः) वह (स्त्रियम्) स्त्रीको (ससृजे) रचता हुआ (ताम्) उसको (सृष्ट्वा) रचकर (अधः) नीचेके भाग (उपास्त) सेवन करता हुआ (तस्मात्) तिससे (स्त्रियम्) स्त्रीको (अधः) नीचेके भागमें (उपासीत) सेवन करे (सः) वह (आत्मनः) अपने (एनम्) इस (प्राञ्चम्) सुन्दर गतिवाले (ग्रावाणम्) पाषाणसमान जननेन्द्रियको (समुदपारयत्) सामर्थ्यमें सराहुआ करता हुआ (तेन) उससे (एनाम्) इस स्त्रीको (अभ्यसृजत) वार २ संसर्ग करता हुआ ॥ २ ॥

(भावार्थ)-विराट् पुरुष विचारने लगा, कि मैं इस पुरुषके वीर्यके योग्य कौनसा आधार रचूँ ? और उस प्रजापतिने विचार करके पत्नी शब्दसे कहीजानेवाली शतरूपा नामक स्त्रीको रचा, और उसको रचकर उसके नीचेके योनिस्थानमें मैथुन कर्म किया । इसलिये अन्य लोगोंको भी स्त्रीके साथ मैथुन कर्म करना चाहिये । यद्यपि यह कर्म जीव स्वयं जानते हैं, इसके उपदेशकी आवश्यकता नहीं थी, परन्तु यह कर्म विषयोपभोगकी दृष्टिसे न करके वाजपेय यज्ञकी दृष्टिसे करना चाहिये, इस उपदेशके लिये कहा है, सोई दिखाते हैं कि-पशु कर्ममें प्रवृत्तहुए प्रजापतिने अपने कामनामय इस सुन्दर क्रियावाले सोमको कूटनेके पाषाणकी समान जननेन्द्रिय

को सन्तानोत्पादक शक्तिसे भरकर स्त्रीके अभिमुख कर दिया जैसे कि-वाजपेय यज्ञमें सोमलतासे रस निकालनेके लिये निचलाकर छोड़ा रखते हैं, फिर उसी अपनी इन्द्रियसे पुत्रोत्पत्तिके लिये स्त्रीसे बार २ संसर्ग किया, इसलिये सबको अपनी ही भार्याके साथ पुत्रोत्पत्तिके सङ्कल्पसे संसर्ग करना चाहिये, वृथा वीर्यक्षय करनेमें शास्त्रकी आज्ञा नहीं है ॥ २ ॥

तस्या वेदिरुपस्थो लोमानि बर्हिश्चर्माधिषवणे समिद्धो मध्यतस्तौ मुष्कौ स यावान् ह वै वाजपेयेन यजमानस्य लोको भवति य एवं विद्वानधोपहासं चरत्यासाᳬं स्त्रीणाᳬं सुकृतं वृङ्क्तेऽथ य इदमविद्वानधोपहासं चरत्यस्य स्त्रियः सुकृतं वृञ्जते ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्याः) उसकी (उपस्थः) योनि (वेदिः) वेदि है (लोमानि) रोम (बर्हिः) कुशा है (चर्म) योनिमेंका चर्म [चर्म] मृगछाला है (मध्यतः) योनिका मध्यभाग (समिद्धः) प्रज्वलित अग्नि है (तौ) वे (मुष्कौ) मांसके दोनों परत (अधिषवणे) सोमको निचोड़नेके फलक हैं (वै) निश्चय (वाजपेयेन) वाजपेयसे (यजमानस्य) यजमानका (यावान्) जितना (ह) प्रसिद्ध (लोकः) लोक (भवति) होता है (तावान्) उतना (लोकः) लोक (अस्य) इसका (भवति) होता है (यः) जो (एवम्) इसप्रकार (विद्वान्) जाननेवाला (अधोपहासम्) अवाच्य कर्मको (चरति) करता है (सः) वह (आसाम्) इन (स्त्रीणाम्) स्त्रियोंके (सुकृतम्) शुभकर्मको (वृङ्क्ते)

ग्रहण करता है (अथ) और (यः) जो (इदम्) इस को (अविद्वान्) न जानता हुआ (अधोपहासम्) अवाच्य कर्मको (चरति) करता है (अस्य) इसके (सुकृतम्) शुभकर्मको (स्त्रियः) स्त्रियें (वृञ्जते) हर लेती हैं ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-स्त्रीका सब शरीर मानो यज्ञका साधन है, इसकी उपस्थ इन्द्रिय पवित्र यज्ञवेदी है, लोम कुशा हैं, योनिका चर्म ही बिछानेकी मृगछाला है, योनिका मध्यभाग प्रज्वलित अग्नि है और योनिके समीपके दोनों मांसखण्ड सोमको निचोड़नेके दो फलक हैं। इसको यज्ञकी वेदी समझ कर वंशको चलानेवाले सुपुत्रकी आशासे जब इसमें वीर्यरूप होमके द्रव्यकी आहुति दीजाती है तो जितना फल वाजपेय यज्ञ करनेवालेको मिलता है उतना ही फल इसको भी मिलता है, जो उपासक ऐसा जानकर स्त्रीसम्भोग करता है वह उस स्त्रीके पुण्यकर्मके फलरूप सुन्दर सन्तानको पाता है और जो ऐसा न जानकर विषयानन्दमात्र भोगनेको स्त्रीसंसर्ग करता है, उसके सुपुत्र न होकर उस स्त्रीसंभोगसे उसका पुण्यक्षय होता है ॥ ३ ॥

एतद्ध स्म वै तद्विद्वानुद्दालक आरुणिराहैतद्ध स्म वै तद्विद्वान्नाको मौद्गल्य आहैतद्ध स्म वै तद्विद्वान् कुमारहारित आह बहवो मर्या ब्राह्मणायना निरिन्द्रिया विसुकृतोऽस्माल्लोका-त्प्रयन्ति य इदमविद्वाꣳसोऽधोपहासं चरन्तीति बहु वा इदꣳ सुप्तस्य वा जाग्रतो वा रेतः स्कन्दति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ह) प्रसिद्ध (आरुणिः) अरुणका पुत्र (उद्दालकः) उद्दालक (तत्) उस (एतत्) इस कर्मको (विद्वान्) जानता हुआ (वै) निश्चय (आह स्म) कहता हुआ (ह) प्रसिद्ध (मौद्गल्यः) मुद्गलका पुत्र (नाकः) नाक (तत्) उस (एतत्) इस कर्मको (विद्वान्) जानताहुआ (वै) निश्चय (आह स्म) कहता हुआ (ह) प्रसिद्ध (कुमारहारितः) कुमारहारित (तत्) उस (एतत्) इस कर्मको (विद्वान्) जानताहुआ (वै) निश्चय (आह, स्म) कहताहुआ (बहवः) बहुतसे (मर्याः) मरण धर्मवाले (ब्राह्मणायनाः) ब्राह्मणजातिसे आजीविका प्राप्त करनेवाले (निरिन्द्रियाः) इन्द्रियोंको वशमें न रखनेवाले (विसुकृतः) पुण्यको क्षीण करते हुए (अस्मात्) इस (लोकात्) लोकसे (प्रयन्ति) चलेजाते हैं (ये) जो (इदम्) इस को (अविद्वांसः) न जानतेहुए (अधोपहासम्) अवाच्य कर्मको (चरन्ति) करते हैं (इति) यह सिद्धान्त है (सुप्तस्य) सोयेहुएका (वा) या (जाग्रतः) जागते हुएका (इदम्) यह (रेतः) वीर्य (बहु) बहुतसा (वा) या थोड़ासा (स्कन्दति) स्खलित होता है [सः, प्राश्चित्तार्हः, भवति] वह प्रायश्चित्तके योग्य होता है ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-विषयोपभोग रूपसे स्त्रीप्रसङ्गको अनेकों आचार्योंने निन्दित कहा है । इस कर्मको वाजपेय यज्ञ की समान फलदायक जाननेवाले अरुणके पुत्र उद्दालक ने मुद्गलके पुत्र नाकने और कुमारहारितने निश्चयके साथ कहा है, कि-स्त्रीसंभोगकी इस यज्ञविधिको जो नहीं समझते थे ऐसे अनेकों मरणधर्मी इन्द्रियोंको वशमें

न रखसनेके कारण विषयासक्त और ब्राह्मणशरीरको केवल आजीविकाका साधन बनालेनेवाले, मैथुनमें आसक्त होकर इस जीवनको खो बैठे और नरकमें जापड़े इस ऋषियोंकी आज्ञा है, कि श्रीमन्थ कर्म करके ब्रह्मचर्यके साथ स्त्रीके ऋतुकालकी बाट देखनेवालेका सोतेमें या जागतेमें बहुत या थोड़ा वीर्य स्खलित होजाय तो वह प्रायश्चित्तका पात्र होता है ॥ ४ ॥

तदभिमृशेदनु वा मन्त्रयेत यन्मेऽद्य रेतः पृथिवीमस्कान्त्सीद्यदोषधीरप्यसरद्यदपः इदमहं तद्रेत आददे पुनर्मामैत्विन्द्रियं पुनस्तेजः पुनर्भगः पुनरग्निर्धिष्ण्या यथास्थानं कल्पन्तामित्यनामिकाङ्गुष्ठाभ्यामादायान्तरेण स्तनौ वा भ्रुवौ वा निमृज्यात् ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) उसको (अभिमृशेत्) स्पर्श करै (वा)और (अनु) उसके अनन्तर (मन्त्रयेत) मन्त्र पढ़े (मे) मेरा (अद्य) आज (यत्) जो (रेतः) वीर्य (पृथिवीम्) पृथिवी पर (अस्कान्त्सीत्) स्खलित हुआ है (यत्) जो (ओषधीः, अपि) ओषधियों पर भी (असरत्) गया (अपः) जलको [असरत्] गया (तत्) उस (इदम्) इस (रेतः) वीर्यको (अहम्) मैं (आददे) ग्रहण करता हूं (इन्द्रियम्) इन्द्रिय (माम्) मुझको (पुनः) फिर (एतु) प्राप्त हो (पुनः) फिर (तेजः) तेज (पुनः) फिर (भगः) सौभाग्य वा ज्ञान [एतु] प्राप्त हो (अग्निधिष्ण्याः) अग्नि है स्थान जिन का ऐसे देवता (पुनः) फिर (यथास्थानम्) ठीक स्थान

पर (कल्पन्ताम्) स्थापन करें (इति) इस मंत्रको पढ़कर (अनामिकांगुष्ठाभ्याम्) अनामिका और अँगूठेसे (आदाय) लेकर (भ्रुवौ) दोनों भौंके (वा) या (स्तनौ) स्तनोंके (अन्तरेण) मध्यमें (विमृज्यात्) तिलककी समान लगावे ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-जिसका वीर्य स्खलित हुआ है वह पुरुष उस स्खलित वीर्यको हाथसे छूता हुआ 'यन्मे इत्यादि' और 'तद्रेत' इत्यादि मंत्रको पढे, मन्त्रका अर्थ यह है, कि-जो मेरा वीर्य आज समय आनेसे पहले ही पृथिवी पर स्खलित होगया, ओषधि पर या जलमें गिरपड़ा है, उस वीर्यको मैं अब फिर ग्रहण करता हूं। उस वीर्यको अनामिका और अँगूठेसे उठा कर 'पुनर्मा-मित्यादि' मंत्रको पढता हुआ दोनों भौंके बीचमें या दोनों स्तनोंके बीचमें तिलकसा लगालेय, मन्त्रका अर्थ, यह है, कि-जो वीर्यरूपसे बाहर निकलगयी थी वह इन्द्रियशक्ति मुझे फिर प्राप्त हो, उसके कारण जो त्वचा की कान्ति फीकी पड़ गयी थी वह फिर प्राप्त हो, तथा सौभाग्य वा ज्ञान फिर प्राप्त हो। अग्निमें निवास करने वाले देवता उस वीर्यको ठीक स्थान पर स्थापित करें ॥ ५ ॥

अथ यद्युदक आत्मानं पश्येत्तदभिमंत्रयेत् मयि तेज इन्द्रियं यशो द्रविणँसुकृतमिति श्रीर्ह वा एषा स्त्रीणां यन्मलोद्वासास्तस्मान्मलोद्वाससं यशस्विनीमभिक्रम्योपमन्त्रयेत ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (यदि) जो (उदके)

जलमें (आत्मानम्) अपनी छायाको (पश्येत्) देखे (तत्) उस जलको (अभिमंत्रयेत्) मन्त्र पढ़कर प्रार्थना करे (मयि) मुझमें (तेजः) तेजभरा (यशः) यश देनेवाला (द्रविणम्) धनवाला (सुकृतम्) सत्कर्मवाला (इन्द्रियम्) वीर्य [अस्तु] हो (स्त्रीणाम्) स्त्रियोंमें (एषा) यह (ह) प्रसिद्ध (श्रीः) गुणवती है (यत्) क्योंकि (मलोद्वासाः) निर्मल वस्त्रवाली है (तस्मात्) तिससे (मलोद्वाससम्) निर्मल वस्त्रवाली (यशस्विनीम्) कीर्त्तिवाली [ताम्] उसको (उपमन्त्रयेत) पुत्रोत्पादनके लिये कहै ६

(भावार्थ)-और यदि प्रमादसे जलमें वीर्य स्खलित होजाय और वह उस समय जलमें अपनी परछाहीं देखपावे तो उस जलकी ओरको देखता हुआ 'मयि तेज इत्यादि' मन्त्रको पढ़े, मन्त्रका अर्थ यह है, कि-तेज कीर्त्ति, धन और सत्कर्म करनेवाले पुत्रको उपजानेवाला वीर्य मुझे प्राप्त हो । जिस स्त्रीमें उत्तम सन्तान उत्पन्न होसकती है उसकी प्रशंसा करते हैं कि स्वच्छवस्त्र धारण करनेवाली अपनी भार्या लक्ष्मीकी समान सकल स्त्रियोंमें श्रेष्ठ है, इसलिये निर्मल वस्त्र धारण करनेवाली कीर्त्तिमती अपनी स्त्री तीन रातका व्रत करके चौथे दिन स्नान करचुके तब उसके पास एकान्तमें जाकर कहे, कि-आओ आज हम तुम दोनों श्रेष्ठ पुत्रको उत्पन्न करनेका उद्योग करें ॥ ६ ॥

सा चेदस्मै न दद्यात्काममेनामवक्रीणीयात्सा चेदस्मै नैव दद्यात्काममेनां यष्ट्या वा पाणिना वोपहत्यातिक्रामेदिन्द्रियेण ते यशसा यश आदद इत्ययशा एव भवति ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सा) वह (चेत्) जो (अस्मै) इसको (न) नहीं (दद्यात्) देय [तर्हि] तो (एनाम्) इसको (कामम्) यथेच्छ (अवक्रीणीयात्) वशमें करे (सा) वह (चेत्) जो (अस्मै) इसको (न एव) किसी प्रकार भी नहीं (दद्यात्) देय [तर्हि] तो (एनाम्) इसको (कामम्) यथेच्छ (यष्ट्या) लकड़ीसे (वा) या (पाणिना) हाथसे (उपहत्य) ताड़ना देकर (अतिक्रामेत्) अभिगमन करे (यशसा) यशके हेतु (इन्द्रियेण) इन्द्रियके द्वारा (ते) तेरे (यशः) यशको (आददे) ग्रहण करता हूं (इति) ऐसा होनेपर (अयशा, एव) पुत्रहीन ही (भवति) होती है ॥ ७ ॥

(भावार्थ)-यदि वह लक्ष्मीरूप स्त्री अपने (पतिके) अनुकूल न हो और इस कामातुर पतिको मैथुन न करने देय तो पुरुष उसकी इच्छानुसार वस्त्र आभूषण आदि देकर वशमें करलेय, इस पर भी वह स्त्री अनुकूल न होय तो उसको दण्डका भय दिखाकर अथवा हाथसे पकड़ कर समझावे, कि-हे सुन्दरी ! यदि तू मेरी अभिलाषा पूरी नहीं करेगी तो मैं तुझे शाप देदूंगा कि-सन्तानसे जो यश प्राप्त होता है वह तुझे नहीं होगा अर्थात् मैं तेरे साथ समागम न करनेकी प्रतिज्ञा करके आजन्म ब्रह्मचारी रहूंगा तब तू सदाको पुत्रहीन होजायगी ॥ ७ ॥

सा चेदस्मै दद्यादिन्द्रियेण ते यशसा यश आददधामीति यशस्विनावेव भवतः ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(चेत्) जो (सा) वह (अस्मै) इसके अर्थ (दद्यात्) देय [तदा] तो (यशसा) यश

के हेतु (इन्द्रियेण) इन्द्रियके द्वारा (ते) तेरा (यशः) यश (आदधामि) स्थापन करता हूं (इति) ऐसा होने पर (यशस्विनौ, एव) यशवाले ही (भवतः) होते हैं ८

(भावार्थ)-यदि वह स्त्री ऊपर कहे शापके भयसे अपने पतिको सन्तानके निमित्त अवाच्य कर्म करनेको अवकाश देदेय तो 'इन्द्रियेण इत्यादि' मन्त्रको पढ़कर उस से समागम करे, मन्त्रका अर्थ यह है, कि मैं यशदायक पुत्र उत्पन्न करनेवाली अपनी इन्द्रियके द्वारा तुझमें गर्भस्थापन करता हूं । ऐसा होकर श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न होने पर दोनों ही यशस्वी होते हैं ॥ ८ ॥

स यामिच्छेत्कामयेत मेति तस्यामर्थं निष्ठाय मुखेन मुखँ सन्धायोपस्थमस्या अभिमृश्य जपेदङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधिजायसे स त्वमङ्गकषायोऽसि दिग्धविद्धामिव मादयेमाममूं मयीति ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (याम्) जिसको (माम्) मुझको (कामयेत) चाहे [इति] ऐसा (इच्छेत्) इच्छा करे (तस्याम्) उसमें (अर्थम्) इन्द्रियको (निष्ठाय) स्थापन करके (मुखेन) मुखसे (मुखम्) मुखको (सन्धाय) मिलाकर (अस्याः) इसके (उपस्थम्) उपस्थको (अभिमृश्य) हाथसे छूकर (जपेत्) मन्त्रको पढ़े (अङ्गात्, अङ्गात्) अङ्ग २ से (संभवसि) उत्पन्न होता है (हृदयात्) हृदयकी नाड़ीके द्वारा (अधिजायसे) प्रकट होता है (सः) वह (त्वम्) तू (अङ्गकषायः) अङ्गका रस (असि) है (दिग्धविद्धाम्, इव) विषसे बुझे बाणसे बिंधीहुई मृगीकी समान (इमाम्)

इस (अमुम्) मेरी भार्याको (मयि) मुझमें (मादय) मदयुक्त कर ॥ ९ ॥

(भावार्थ)-जो स्त्री पतिमें प्रेम न करती हो उसका समागमकालमें प्रीतिमती करनेका यह उपाय है, कि-विधानसे स्त्री समागम करनेवाला पुरुष यदि यह चाहे कि—यह स्त्री मेरे साथ प्रेम पूर्वक संभोग करे तो वह उस स्त्रीकी योनिमें जननेन्द्रियको स्थापन करके उसके मुखसे अपना मुख मिलावे और उसके उपस्थानको स्पर्श करताहुआ 'अङ्गादङ्गात् इत्यादि' मंत्रको पढे, मन्त्र अर्थ यह है, कि-हे वीर्य ! तू मेरे अङ्ग २ से उत्पन्न हुआ है और हृदयकी नाडीके द्वारा प्रकट होता है, इस प्रकार तू मेरे अङ्गोंका रस है, इसलिये तू इस मेरी भार्याको विषमें बुझे बाणसे मारी हुई मृगीकी समान मतवाली करता हुआ मेरे वशमें कर दे ॥ ९ ॥

अथ यामिच्छेन्न गर्भं दधीतेति तस्यामर्थं निष्ठाय मुखेन मुखꣳ सन्धायाभिप्राण्यापान्यादिन्द्रियेण ते रेतसा रेत आदद इत्यरेता एव भवति ॥५॥१०

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (याम्) जिसको (गर्भम्) गर्भ (न) नहीं (दधीत) धारण करे (इति) ऐसा (इच्छेत्) चाहे (तस्याम्) उसमें (अर्थम्) इन्द्रियको (निष्ठाय) स्थापन करके (मुखेन) मुखसे (मुखम्) मुखको (सन्धाय) मिलाकर (प्राण्यापान्यात्) संभोगकालमें पहले वायुको छोड़े और फिर उसको खेंचे (इंद्रियेण) इन्द्रियके द्वारा (रेतसा) वीर्यके द्वारा (ते) तेरे (रेतः) वीर्यको (आददे) आकर्षण करता हूं (इति) ऐसा करने पर (सा) वह (अरेता, एव) वीर्यशून्य ही (भवति) होती है॥१०॥

(भावार्थ)-और यह समझ कर कि-अभी इसके सन्तान होनेसे यौवन नष्ट होजायगा, यदि यह चाहे कि-इसके अभी गर्भस्थिति न हो तो उसके योनिस्थानमें जननेन्द्रियको स्थापन कर उसके मुखसे मुख मिलाकर प्राणन अपानन करे अर्थात् पहले अपने पुंस्त्वके द्वारा उसके स्त्रीत्वमें वायु छोड़े इसका नाम प्राणन है और फिर इसप्रकार ही उस वायुको खेंचे इसका नाम अपानन है। इस क्रियाके समय 'इन्द्रियेण' इत्यादि मन्त्र पढ़े मन्त्रका अर्थ यह है-इन्द्रिय और वीर्यके द्वारा मैं तेरे वीर्यको ग्रहण करता हूं, ऐसा करनेसे वह स्त्री अवश्य ही गर्भमें वीर्यको धारण नहीं कर सकती है ॥ १० ॥

अथ यामिच्छेद्दधीतेति तस्यामर्थं निष्ठाय मुखेन मुख ँ सन्धायापान्याभिप्राण्यादिन्द्रियेण ते रेतसा रेत आदधामीति गर्भिण्येव भवति ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (याम्) जिसको (दधीत) धारण करे (इति) ऐसा (इच्छेत्) चाहे (तस्याम्) उसमें (अर्थम्) जननेन्द्रियको (निष्ठाय) स्थापन करके (मुखेन) मुखसे (मुखम्) मुखको (सन्धाय) मिला कर (अपान्याभिप्राण्यात्) अपानन और अभिप्राणन करे (इन्द्रियेण) इन्द्रियके द्वारा (रेतसा) वीर्यके द्वारा (ते) तेरे (रेतः) वीर्यको (आदधामि) स्थापन करता हूं (इति) ऐसा करनेसे (गर्भिणी,एव) गर्भिणी ही (भवति) होती है ॥ ११ ॥

(भावार्थ)-जो चाहे कि-मेरी स्त्री गर्भधारण करे तो वह संभोगकालमें उसके योनिस्थान पर अपनी

जननेन्द्रियको स्थापन करके और उसके मुखसे मुख मिला कर अपानन और अभिप्राणन करे अर्थात् अपनी इन्द्रियके द्वारा उसकी इन्द्रियमेंसे रजको खेंच कर और उसको मैंने पुत्र उत्पन्न करनेके योग्य करदिया ऐसा मानकर अपने वीर्यके साथ उसमें छोड़देय। ऐसा करते समय 'इन्द्रियेण' इत्यादि मन्त्रको पढ़े, मन्त्रका अर्थ यह है, कि अपनी इन्द्रिय और वीर्यके द्वारा तेरे विषे वीर्यको स्थापन करता हूं, मन्त्र पढ़ कर ऐसा करनेसे वह स्त्री अवश्य ही गर्भिणी होती है ॥ ११ ॥

अथ यस्य जायायै जारः स्यात्तं चेद् द्विष्या-दामपात्रेऽग्निमुपसमाधाय प्रतिलोमᳪ शरब-र्हिस्तीर्त्वा तस्मिन्नेताः शरभृष्टीः प्रतिलोमाः सर्पिषाऽक्ता जुहुयान्मम समिद्धेऽहौषीः प्राणा-पानौ त आददेऽसाविति मम समिद्धेऽहौषीः पुत्र-पशूᳪस्त आददेऽसाविति मम समिद्धेऽहौषी रिष्टा-सुकृते त आददेऽसाविति मम समिद्धेऽहौषी राशा-पराकाशौ त आददेऽसाविति स वा एष निरिन्द्रियो विसुकृतोऽस्माल्लोकात्प्रैति यमेवंविद् ब्राह्मणः शपति तस्मादेवंविच्छ्रोत्रियस्य दारेण नोपहासमिच्छेदुत ह्येवंवित्परो भवति ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (यस्य) जिसकी (जायायै) स्त्रीका (जारः) उपपति (स्यात्) हो (तम्) उसको (चेत्) जो (द्विष्यात्) द्वेष करे [तर्हि] तो (आमपात्रे) कच्चे पात्रमें (अग्निम्) अग्निको (उपसमाधाय) स्थापन करके (प्रतिलोमम्) उलटे

(शरबर्हिः) कुशाके स्थानमें रामसर (स्तीर्त्वा) बिछा कर (तस्मिन्) उस अग्निमें (एताः) इन (शरभृष्टीः) बाणके सेंटोंको (प्रतिलोमाः) अग्रभाग उलटा कर (सर्पिषा) घीसे (अक्ताः) भीगे हुए (जुहुयात्) होमै (मम) मेरे (समिद्धे) प्रदीप्तमें (अहौषीः) तूने आहुति दी है (ते) तेरे (प्राणापानौ) प्राण और अपानको (आददे) ग्रहण करता हूं (असौ) यह (इति) ऐसा कहे (मम) मेरे (समिद्धे) प्रदीप्तमें (अहौषीः) तूने आहुति दी है (ते) तेरे (पुत्रपशून्) पुत्र और पशुओंको (आददे) ग्रहण करता हूँ (असौ) यह (इति) ऐसा कह कर आहुति देय (मम) मेरे (समिद्धे) प्रदीप्तमें (अहौषीः) तूने आहुति दी है (ते) तेरे (इष्टासुकृते) श्रौतस्मार्त्त कर्मोंको (आददे) ग्रहण करता हूँ (असौ) यह (इति) ऐसा कह कर आहुति देय (मम) मेरे (समिद्धे) प्रदीप्तमें (अहौषीः) तूने आहुति दी है (ते) तेरी (आशापराकाशौ) प्रार्थना और प्रतिज्ञाको (आददे) ग्रहण करता हूँ (असौ) यह (इति) ऐसा कह कर आहुति देय (एवंवित्) इस मन्त्र कर्मको जाननेवाला (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (यम्) जिसको (शपति) शाप देता है (सः) वह (एषः) यह (वै) निश्चय (निरिन्द्रियः) पुत्रोत्पादनकी शक्तिसे शून्य (विसुकृतः) क्षीण होगया है पुण्य जिसका ऐसा (अस्मात्) इस (लोकात्) लोकसे (प्रैति) गत हो जाता है (तस्मात्) तिससे (एवंवित्) इस अनिष्ट फलको जाननेवाला (श्रोत्रियस्य) वेदज्ञ[illegible] (दारेण) स्त्रीके साथ (उपहासं, उत) हास्यको भी (न) नहीं (इच्छेत) इच्छा करे (हि) क्योंकि (एवंवित्) ऐसा जाननेवाला (परः) शत्रु (भवति) होता है ॥ १२ ॥

(भावार्थ)-यदि वेदपाठी गृहस्थ ब्राह्मणकी स्त्रीका कोई उपपति हो और वह गृहस्थ उस उपपतिको शत्रु मानता हो तो वह मट्टीके कच्चे पात्रमें पञ्चभूतसंस्कार-पूर्वक अग्नि स्थापन करके कुशाके बदले बाणके सेंटे उलटे दक्षिणाग्र या पश्चिमाग्र विछावे, अग्निमें अग्र-भाग उलटा करके सेंटों को घोमें भिगोकर आहुति देय उस समय 'मम इत्यादि' मन्त्रको पढ़ना जाय। मन्त्रका अर्थ यह है, कि-अरे ! जो मेरी स्त्रीरूप अग्नि यौवन से प्रज्वलित हो रही थी। उसमें तूने अपने वीर्यकी आहुति दी है, इसलिये मैं तुझ अपराधीके प्राण और अपानको खेंचे लेता हूँ ऐसे मन्त्रको पढ़नेके अन्तमें फट् कहकर अथवा अपने शत्रुका नाम लेता हुआ आहुति छोड़े। फिर 'मम इत्यादि' मन्त्रको पढ़े, मन्त्रका अर्थ यह है कि-तूने मेरी स्त्री रूप यौवनसे दिपती हुई अग्निमें अपने वीर्यकी आहुति दी है, इस लिये मैं तुझ अपराधोके पुत्र और पशुओंको लिये लेता हूं, इस मन्त्र को पढ़नेके अन्तमें फट् कहकर या अपने शत्रुका नाम लेकर दूसरी आहुति छोड़देय। फिर 'मम इत्यादि' मन्त्र को पढे, मन्त्रका अथ यह है, कि-तूने मेरी स्त्री रूप यौवनसे प्रज्वलित अग्निमें अपने वीर्यकी आहुति दी है, इसलिये मैं तुझ अपराधीके किये हुए श्रौत और स्मार्त्त कर्मके फलको छीनता हूं। इस मन्त्रको पढ़नेके अन्तमें फट् कहकर या अपने शत्रुका नाम लेकर तीसरी आहुति देय। तथा फिर 'मम इत्यादि। मन्त्रको पढ़े, उसका अर्थ यह है कि-तूने मेरी स्त्रीरूप यौवनसे दहकती हुई अग्निमें अपने वीर्यकी आहुति दी हैं, इसलिये मैं तुझ अपराधी की प्रार्थना और प्रतिज्ञाको भ्रष्ट करता हूं। इस

मन्त्रको पढ़नेके अन्तमें फट् कहकर या अपने शत्रुका नाम लेकर चौथी आहुति भी देदेय । ऐसा जाननेवाला प्राणोपासक ब्राह्मण जिसको शाप देता है वह सन्तान उत्पन्न करनेकी शक्तिसे शून्य और क्षीणपुण्य होता हुआ इस लोकसे विदा होजाता है । इसलिये वेदवेत्ता ब्राह्मणकी स्त्रीके साथ व्यभिचार करने पर ऐसे अनिष्ट फलको जाननेवाला वेदवेत्ताकी स्त्रीके साथ सम्भोग तो दूरकी बात है, हास्य भी न करे. क्योंकि-वेदवेत्ता ब्राह्मण भी इस अपराधको जानने पर प्राणलेवा शत्रु बनजाता है ॥ १२ ॥

अथ यस्य जायामार्त्तवं विन्देत् त्र्यहं क ᳪ सेन पिबेदहतवासा नैनां वृषलो न वृषल्युपहन्यात् त्रिरात्रान्त आप्लुत्य व्रीहीनवघातयेत् १३

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (यस्य) जिसकी (जायाम्) स्त्रीको (आर्त्तवम्) ऋतुकाल (विन्देत्) प्राप्तहो (त्र्यहम्) तीन दिन तक (कंसे) काँसीके पात्रमें (न) नहीं (पिबेत्) पिये (अहतवासाः) फटे वस्त्र न पहरे (एनाम्) इसको (वृषलः) शूद्र (न) नहीं (वृषली) शूद्री (न) नहीं (उपहन्यात्) स्पर्श करे (त्रिरात्रान्ते) तीन रात्रि बीतजाने पर (आप्लुत्य) स्नान करके (व्रीहीन्) धानोंको (अवघातयेत्) कूटे ॥

(भावार्थ)-प्रसङ्गवश अभिचार कर्मको कहकर अब ऋतुकालका कर्त्तव्य कहते हैं, कि-जिसकी स्त्रीको ऋतुकाल प्राप्त होय उसकी वह स्त्री तीन दिन तक कांसीके पात्रमें न खाय पिये, फटे मैले वस्त्र न पहरे, उस समय इसको शूद्र या शूद्री न छुए, इस प्रकार तीनरात्रि

मिलाकर चौथे दिन प्रातःकाल स्नान करके चरुके लिये धान कूटे ॥ १३ ॥

स य इच्छेत्पुत्रो मे शुक्लो जायेत वेदमनुब्रुवीत सर्वमायुरियादिति (क्षीरोदनं पाचयित्वा) सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयितवै १४

अन्वय और पदार्थ-(मे) मेरा (पुत्रः) पुत्र (शुक्लः) गौर वर्णका (जायेत) उत्पन्न हो (वेदम्) वेदको (अनुब्रुवीत) पढ़े (सर्वम्) सब (आयुः) आयुको (इयात्) प्राप्त हो (इति) ऐसा (यः) जो (इच्छेत्) चाहे (सः) वह (क्षीरोदनम्) दूधका भात (पाचयित्वा) पकवाकर (सर्पिष्मन्तम्) घीके साथ (अश्नीयाताम्) दोनोंजने खाएँ (जनयितवै) उत्पन्न करनेको (ईश्वरौ) समर्थ हों ॥ १४ ॥

(भावार्थ)-जो चाहे कि-मेरा पुत्र गौरवर्ण शुद्धाचरण एक वेदको पढ़नेवाला और पूरी आयुवाला हो वह अपनी स्त्रीसे दूधका भात (खीर) बनवावे और घृत मिलाकर उसको दोनों खायँ तो ऐसे पुत्रको उत्पन्न करसकगे ॥ १४ ॥

अथ य इच्छेत्पुत्रो मे कपिलः पिङ्गलो जायेत द्वौ वेदानुब्रुवीत सर्वमायुरियादिति (दध्योदनं पाचयित्वा) सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयितवै ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (मे) मेरा (पुत्रः) पुत्र (कपिलः) सुनहले वर्णका (पिङ्गलः) कुञ्जी आंखों वाला (जायेत) उत्पन्न हो (द्वौ) दो (वेदौ) वेदों

को (अनुब्रुवीत) पढ़े (सर्वम्) सब (आयुः) आयु को (इयात्) पावे (इति) ऐसा (इच्छेत्) चाहे (सः) वह (दध्योदनम्) दही भात (पाचयित्वा) पकवाकर (सर्पिष्मन्तम्) घी सहित (अश्नीयाताम्) दोनों खायँ (जनयितवै) उत्पन्न करनेमें (ईश्वरौ) समर्थ हों १५

(भावार्थ -जो चाहे कि-मेरे सुनहले वर्णका, कुञ्जी आंखोंवाला, दो वेद पढ़ा और पूर्णायु पुत्र हो वह अपना स्त्रीसे दही भात पकवाकर उसको घीके साथ दोनों स्त्री पुरुष खायँ तो ऐसे ही पुत्र को उत्पन्न करसकेंगे ॥ १५ ॥

अथ इच्छेत्पुत्रो मे श्यामो लोहिताक्षो जायेत त्रीन् वेदाननुब्रुवीत सर्वमायुरियादुदौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयितवै॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (मे) मेरा (पुत्रः) पुत्र (श्यामः) श्यामवर्ण (लोहिताक्षः) लाल नेत्रोंवाला (जायेत) उत्पन्न हो (त्रीन्) तीन (वेदान्) वेदोंको (अनुब्रुवीत) पढ़े (सर्वम्) सब (आयुः) आयु को (इयात) पावे (इति) ऐसा (यः) जो (इच्छेत्) चाहे [सः] वह (उदौदनम्) जलमें चावल (पाचयित्वा) पकवाकर (सर्पिष्मन्तम्) घी डालकर (अश्नीयाताम्) दोनों अन्ने खायँ (जनयितवै) उत्पन्न करनेको (ईश्वरौ) समर्थ हों ॥ १६ ॥

(भावार्थ)-जो चाहे, कि-मेरे श्यामवर्ण, लाल २ आंखोंवाला तीन वेदोंको पढ़ा और पूर्णायु पुत्र हो वह अपनी स्त्रीसे जलमें चावल पकवाकर उसमें घी मिलाकर स्त्री पुरुष दोनों खायँ तो ऐसे पुत्रको उत्पन्न करनेमें समर्थ होंगे ॥ १६ ॥

अथ य इच्छेद् दुहिता मे पंडिता जायेत सर्वमायुरियादिति तिलौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तश्नीयातामीश्वरौ जनयितवै ॥ १७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (मे) मेरे (पण्डिता) पढ़ीलिखी (दुहिता) कन्या (जायेत) उत्पन्न हो (सर्वम्) पूर्ण (आयुः) आयुको (इयात्) प्राप्त हो (इति) ऐसा (यः) जो (इच्छेत्) चाहे [सः] वह (तिलौदनं) तिलमिश्रित भात (पाचयित्वा) पकवाकर (सर्पिष्मन्तम्) घी मिला हुआ (अश्नीयाताम्) खावें (जनयितवै) उत्पन्न करनेको (ईश्वरौ) समर्थ हों ॥१७॥

(भावार्थ)-जो चाहे कि-मेरे पढ़ी हुई पूर्णायु कन्या हो वह अपनी स्त्रीसे तिल भात पकवा कर और उसमें घी मिला कर दोनों जने खावें तो ऐसी कन्याको उत्पन्न करसकेंगे ॥ १७ ॥

अथ य इच्छेत्पुत्रो मे पंडितो विजिगीथः समितिंगमः शुश्रूषितां वाचं भाषिता जायेत सर्वान् वेदाननुब्रुवीत सर्वमायुरियादिति मांसौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयितवा औक्ष्णेण वार्षभेण वा ॥ १८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (मे) मेरे (पण्डितः) पण्डित (विजिगीथः) प्रसिद्ध (समितिंगमः) विद्वानोंकी सभामें जानेवाला (शुश्रूषिताम्) सुननेकी इच्छा की हुई (वाचम्) वाणीको (भाषिता) बोलनेवाला (पुत्रः) पुत्र (जायेत) उत्पन्न हो (सर्वम्) पूर्ण (आयुः) आयुको (इयात्) पावे (इति) ऐसा (यः) जो

(इच्छेत्) चाहे [सः] वह (मांसौदनम्) मांसमिला भात (पाचयित्वा) पकवा कर (सर्पिष्मन्तम्) घी सहित (अश्नीयाताम्) खायँ (जनयितवै) उत्पन्न करनेको (ईश्वरौ) समर्थ हों (औक्षेण) सेचनसमर्थके मांस करके (वा) वा (आर्षभेण) उससे अधिक अव-स्थावालेके मांस करके ॥ १८ ॥

(भावार्थ)-जो चाहे कि—मेरा पुत्र चतुर, प्रसिद्ध, विद्वानोंकी सभामें जानेवाला, सुननेयोग्य प्रिय वाणीको बोलनेवाला और पूर्णायु हो वह अपनी स्त्रीसे मांस मिला भात पकवा कर और उसमें घी मिला कर दोनों जने खायँ तो ऐसे पुत्रको उत्पन्न करसकेंगे, परन्तु वह मांस सन्तान उत्पन्न करसकनेवाले जवान हिरनका वा उससे अधिक अवस्थावालेका हो । यह विधि काम्य-विधि है, जो मांस भक्षण नहीं करते उनके लिये नहीं क्योंकि-उनको मांसभक्षणकी कामना होगी ही नहीं, मांसभक्षणकी कामना तो रावणसरीखे आसुर कर्मियों को ही होगी, इसलिये यह विधान निरामिषभोजियोंके लिये नहीं है, किन्तु धर्ममें श्रद्धा रखनेवाले मांसभोजि-योंके लिये है ॥ १८ ॥

अथाभिप्रातरेव स्थालीपाकावृताऽऽज्यं चेष्टित्वा स्थालीपाकस्योपघातं जुहोत्यग्नये स्वाहाऽनु-मतये स्वाहा देवाय सवित्रे सत्यप्रसवाय स्वाहेति हुत्वोद्धृत्य प्राश्नाति प्राश्येतरस्याः प्रयच्छति प्रक्षाल्य पाणी उदपात्रं पूरयित्वा तेनैनां त्रिर भ्युक्षत्युत्तिष्ठातो विश्वावसोऽन्यामिच्छ प्रपूर्व्यां संजायां पत्या सहेति ॥ १९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अनन्तर (अभिप्रातः) अति प्रातकालमें (स्थालीपाकावृता) स्थालीपाककी विधिसे (आज्यम्) घीको (चेष्टित्वा) संस्कृत करके (स्थालीपाकस्य) स्थालीपाकमेंके (उपघातम्) थोड़े को लेकर (जुहोति) होमता है (अग्नये, स्वाहा) अग्निको आहुति प्राप्त हो (अनुमतये, स्वाहा) अनुमतिको आहुति प्राप्त हो (सत्यप्रसवाय) सत्यको उत्पन्न करनेवाले (सवित्रे, देवाय) सविता देवताको (स्वाहा) यह आहुति प्राप्त हो (इति) इसप्रकार (हुत्वा) होम करके (उद्धृत्य) बचे चरुको निकाल कर (प्राश्नाति) खाता है (प्राश्य) खा कर (इतरस्याः) दूसरीको (प्रयच्छति) देता है (पाणी) दोनों हाथोंको (प्रक्षाल्य) धोकर (उदपात्रम्) पात्रमें जल (पूरयित्वा) भरकर (तेन) उससे (एनाम्) इसको (त्रिः) तीनबार (अभ्युक्षति) मार्जन करता है (विश्वावसो) हे गन्धर्व (अतः) इसमेंसे (उत्तिष्ठ) उठ (प्रपूर्व्याम्) पुष्ट (पत्या, सह) पतिके साथ (क्रीडन्तीनाम्) क्रीड़ा करती हुई (अन्याम्) दूसरीको (इच्छ) इच्छा कर (जायाम्) स्त्रीको (सम्) मैं प्राप्त होता हूं (इति) ऐसा कहे ॥ १९ ॥

(भावार्थ)-ऊपर जिन भातों को भक्षण करना कहा है उनको बनानेकी विधि कहते हैं, कि-स्त्रीको रजोधर्म होनेसे चौथे दिन अति प्रातःकाल उठकर स्नान प्रातः सन्ध्या आदिसे निपट कर स्त्रीके स्नान करके कूटे हुए उन चावलों को लेकर और स्थालीपाकमें कही हुई विधिसे घीका संस्कार करके और चरु आदिका भी संस्कार करके उसमें स्थालीपाकमेंसे थोड़ा २ लेकर

"अग्नये स्वाहा, अनुमतये स्वाहा, देवाय सवित्रे सत्यप्रसवाय स्वाहा" इन मन्त्रोंको पढ़कर तीन प्रधान आहुति छोड़े, इन मंत्रोंका अर्थ यह है कि-हे अग्निदेव ! मेरी दी हुई इस आहुतिको स्वीकार करो, हे अनुमति मेरी दी हुई इस आहुतिको स्वीकार करो और हे सत्यको उत्पन्न करनेवाले सविता देवता मेरी दी हुई इस आहुतिको स्वीकार करो । तदनन्तर स्विष्टकृत् आहुति देय, फिर स्थालीमें जो चरु शेष रहजाय उसको पात्रमें निकालकर तथा उसमें घी मिलाकर पति पहले आप खाय और फिर बचा हुआ अपना उच्छिष्ट अपनी स्त्रीको देय तदनन्तर हाथ धोकर, शुद्ध आचमन करके जलके पात्रको भर कर उस जलसे स्त्रीके ऊपर तीन बार मार्जन करे 'उत्तिष्ठत इत्यादि' मंत्रको पढ़ता जाय, मंत्रका अर्थ यह है, कि-हे विश्वावसु गंधर्व ! तू मेरी इस जायासे निकल जा, अपने पतिके साथ क्रीडा करती हुई किसी दूसरी युवा स्त्रीके पास चला जा, क्योंकि इस स्त्रीके साथ अब मैं संभोग करता हूं २९

धनेनाभिपद्येऽमोऽहमस्मि सा त्वं सा
त्वमस्यमोऽहं सामाहमस्मि ऋक् त्वं द्यौरहं
पृथिवी त्वं तावेहि विवहावहै सह रेतो
दधावहै पुंसे पुत्राय वित्तय इति ॥ ३० ॥

[illegible] (अथ) अनन्तर (एनाम्) इसको (अभिपद्यते) प्राप्त होता है (अहम्) मैं (अमः) प्राण , रूपि , हूं (त्वम्) तू (सा) वाणी है (सा) वाणी (त्वम्) तू (असि) है (अहम्) मैं (अमः) प्राण हूं (अहम्) मैं (साम) साम हूं (त्वम्) तू (ऋक्)

ऋचा है (अहम्) मैं (द्यौः) आकाश हूँ (त्वम्) तू (पृथिवी) पृथिवी है (एहि) आओ (तौ) ऐसे हम दोनों (संरभावहै) संभोगका उद्योग करें (पुंसे) पुरुषत्व युक्त (पुत्राय, वित्तये) पुत्रको पानेके लिये (सह) साथ (रेतः) वीर्यको (दधावहै) धारण करें (इति) ऐसा कहे ॥ २० ॥

(भावार्थ)-गन्धर्वकी बाधाको हटाकर और खीर आदिका भोजन करनेके अनन्तर अमोऽहमस्मीत्यादि मन्त्रको पढ़कर स्त्रीको आलिङ्गन करे। मन्त्रका अर्थ यह है, कि-मैं पति प्राण हूँ और तू मेरी स्त्री वाणी है अर्थात् जैसे वाणी प्राणके अधीन होती है, तैसे ही तू मेरे वशीभूत है, मैं सामवेद हूँ तू ऋक् है। मैं वीर्यकी वर्षा करनेवाला जनक आकाश हूँ, तू उस वीर्यको धारण करनेवाली माता पृथिवी है, ऐसे हम तुम दोनों पुरुषत्व शक्तिवाले पुत्रको पानेके लिये संभोगका उद्योग करें और साथ मिलकर रजवीर्यको गर्भस्थानमें स्थापन करें ॥ २० ॥

अथास्या ऊरू विहापयति विजिहीथां द्यावापृथिवी इति तस्यामर्थं निष्ठाय मुखेन मुखꣳ सन्धाय त्रिरेनामनुलोमामनुमार्ष्टि विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिꣳशतु । आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि पृथुष्टुके । गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥ २१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अनन्तर (अस्याः) इसकी (ऊरू) जंघाओंको (विहापयति) पृथक् करता है

(द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी (विजिहीथाम्) पृथक् २ हों (इति) इसको पढ़ कर (तस्याम्) उसमें (अर्थम्) जननेन्द्रियको (निधाय) स्थापन करके (मुखेन) मुखसे (मुखम्) मुखको (सन्धाय) मिलाकर (एनाम्) इसको (अनुलोमाम्) शिरसे लेकर चरणोंकी ओरको (त्रिः) तीन वार (अनुमार्ष्टि) हाथसे मार्जन करता है (विष्णुः) व्यापक भगवान् (योनिम्) योनिको (कल्पयतु) समर्थ करें (त्वष्टा) सविता (रूपाणि) अङ्गोंको (पिंशतु) अलग २ दीखने योग्य करे (प्रजापतिः) विराट् पुरुष (आसिंचतु) वीर्यको सींचे (धाता) सूत्रात्मा (ते) तेरे (गर्भम्) गर्भको (दधातु) पुष्ट करे (सिनीवालि) हे दर्श देवता (गर्भम्) गर्भको (धेहि) धारण कर (पृथुष्टुके) हे बड़ीभारी स्तुतिवाली ! (गर्भम्) गर्भको (धेहि) धारण कर (पुष्करस्रजौ) किरणोंकी मालावाले (अश्विनौ) सूर्यचन्द्रमा (देवौ) देवता (ते) तेरे (गर्भम्) गर्भको (आधत्ताम्) स्थापन करें ॥ २१ ॥

(भावार्थ)-आलिङ्गनके अनन्तर 'विजिहाथां द्यावापृथिवी' इस मंत्रको पढ़कर उसकी दोनों जंघाओंको अलग २ करे । मन्त्रका अर्थ यह है, कि-आकाश और पृथिवी अलग अलग हों । फिर उसके उपस्थ पर जननेन्द्रियको रखकर और मुखसे मुखको मिलाकर 'विष्णुः इत्यादि' मन्त्रको पढ़ता हुआ उस स्त्रीके शिरसे लेकर पैरों तक तीन वार हाथ फेरे । मन्त्रका अर्थ यह है, कि-व्यापक विष्णु भगवान् तेरी योनिको पुत्र उत्पन्न करनेमें समर्थ करें, सविता देवता उस पुत्रके सब अवयवोंक

दीखने योग्य करें, विराटपुरुष प्रजापति मेरे हृदयमें आविष्ट होकर तुझमें वीर्यका सेचन करे । सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ तेरे हृदयमें स्थित होकर गर्भको पुष्ट करे । हे दर्शकी देवता, परमस्तुतियोग्य सिनीवाली ! इस गर्भको गिरने मत दे । हे प्रिये ! किरणमाली सूर्यचन्द्रमा तेरे गर्भको स्थापन करें ॥ २१ ॥

हिरण्मयी अरणी याभ्यां निर्मन्थतामश्विनौ तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतये । यथाग्निगर्भा पृथिवी यथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी । वायुर्दिशां यथा गर्भ एवं गर्भं दधामि तेऽसाविति ॥ २२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(हिरण्मयी) ज्योतिर्मयी (अरणी) दो अरणियें (आस्ताम्) थीं (याभ्याम्) जिनसे (अश्विनौ) अश्विनीकुमार (निर्मथताम् मथते हुए (तम्) उस (गर्भम्) गर्भको (दशमे, मासि) दशवें महीनेमें (सूतये) सन्तान उत्पन्न होनेके लिये (हवामहे) स्थापन करते हैं (यथा) जैसे (पृथिवी) पृथिवी (अग्निगर्भा) अग्निके गर्भवाली होती है (द्यौः) द्युलोक (इन्द्रेण) सूर्यके द्वारा (गर्भिणी) गर्भयुक्त होता है (यथा) जैसे (वायुः) वायु (दिशाम्) दिशाओंका (गर्भः) गर्भ है (एवम्) ऐसे ही (असौ) यह मैं (ते) तेरे (गर्भम्) गर्भ को (दधामि) धारण करता हूं (इति) यह मन्त्र पढ़े ॥ २२ ॥

(भावार्थ)--पहले ज्योतिर्मयी दो अरणियें थीं, जिन से देववैद्य अश्विनीकुमारने पहले अमृतरूप गर्भको

मथकर निकाला था, तैसे ही अमृतरूप गर्भको मैं दशवें महीने सन्तान उत्पन्न होनेके लिये तेरे उदरमें स्थापन करता हूं, जैसे पृथिवी अग्नि (उत्ताप) से गर्भवती होती है, जैसे अन्तरिक्ष सूर्यसे गर्भ धारण करता है और जैसे वायु दिशाओंका गर्भ है ऐसे ही मैं तुझ भार्यामें गर्भ स्थापन करता हूं ॥ २२ ॥

सोष्यन्तीमद्भिरभ्युक्षति। यथा वायुः पुष्करिणीँ समिङ्गयति सर्वतः। एवा ते गर्भ एजतु सहावैतु जरायुणा। इन्द्रस्यायं व्रजः कृतः सार्गलः सपरिश्रयः। तमिन्द्र निर्जहि गर्भेण सावराँ सहेति ॥ २३ ॥

अन्वय और पदार्थ (सोष्यन्तीम्) प्रसवको प्राप्त होती हुई को (अद्भिः) जलसे (अभ्युक्षति) मार्जन करता है (यथा) जैसे (वायुः) वायु (पुष्करिणीम्) तालाव को (सर्वतः) सब ओरसे (समिङ्गयति) चलायमान करता है (एवा) ऐसे ही (ते) तेरा (गर्भः) गर्भ (एजतु) चलायमान हो (जरायुणा, सह) गर्भको लपेटनेवाली मांसपेशीके साथ (अवैतु) निकले (इन्द्रस्य) प्राणका वा गर्भका (अयम्) यह (व्रजः) मार्ग (सार्गलः) रुकावट सहित (सपरिश्रयः) जेलसे सहित (कृतः) किया (इन्द्र) हे प्रसूतिपवन ! (तम्) उस मार्गको [प्राप्य] प्राप्त होकर (गर्भेण, सह) गर्भके साथ (निर्जहि) निकल (सावराम्) जेलको (इति) ऐसे ही निकाल ॥ २३ ॥

(भावार्थ)-प्रसवकालमें जब स्त्री सन्तानको जनती

हो उस समय "यथा वायु इत्यादि" मन्त्रको पढ़कर उसके ऊपर जलका सिंचन करे । मंत्रका अर्थ यह है, कि-जैसे वायु तालाबके स्वरूपको न बिगाड़ कर सब ओरसे उसको चलायमान करता है ऐसे ही तेरा गर्भ चलायमान हो और मांसपेशी जेलके साथ बाहर आवे । प्राणका वा गर्भका यह योनिरूप मार्ग पहिले जरायुके साथ ईश्वरकी कृपासे रुका हुआ था, उसमें से गर्भ गिरता नहीं था । हे प्रसूतिपवनके अधिष्ठातृ-देवतारूप इन्द्र ! तू उस योनिमार्गमें आकर गर्भको साथ लेकर बाहर निकल आ और पीछेसे गर्भकी मांस पेशी (जेल) को भी बाहर निकाल दे ॥ २२ ॥

जातेऽग्निमुपसमाधायाङ्क आधाय कंसे पृषदाज्यं संनीय पृषदाज्यस्योपघातं जुहोत्यस्मिन् सहस्रं पुष्यासमेधमानः स्वे गृहे अस्योपसंद्यां मा च्छैत्सीत्प्रजया च पशुभिश्च स्वाहा । मयि प्राणाᳬंस्त्वयि मनसा जुहोमि स्वाहा । यत्कर्मणात्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्वान् स्विष्टᳬंसुहुतं करोतु नः स्वाहेति २४

अन्वय और पदार्थ-(जाते) उत्पन्न होने पर (अग्निम्) अग्निको (उपसमाधाय) यथाविधि स्थापन करके (अङ्के) गोदमें (आधाय) लेकर (कंसे) कांसीके पात्रमें (पृषदाज्यम्) दही मिले घीको (उपघातम्) थोड़ा २ लेकर (जुहोति) होम करता है (अस्मिन्) इस (स्वे, गृहे) अपने घरमें (एधमानः) बढ़ता हुआ (सहस्रम्) हजारों मनुष्योंका (पुष्यासम्) पोषण करूँ (अस्य) इसकी

(उपसन्धाम्) सन्ततिमें (प्रजया) प्रजा करके (च) और (पशुभिः) पशुओं करके (मह) सहित [श्रीः] लक्ष्मी (माच्छेत्सीत्) विच्छिन्न न हो (स्वाहा) यह आहुति देता हूं (मयि) मुझमें [ये, प्राणाः, तान्] मुझमें जो प्राण हैं, उन (प्राणान्) प्राणोंको (मनसा) मनके द्वारा (त्वयि) तुझमें (जुहोमि) समर्पण करता हूं (स्वाहा) यह आहुति देता हूं (कर्मणा) कर्मके द्वारा (यत्) जो (अत्यरीरिचम्) अधिक किया है (वा) या (यत्) जो (इह) इस कर्ममें (न्यूनम्) कम (अकरम्) कर चुका हूं (तत्) उसको (विद्वान्) जाननेवाला (अग्निः) अग्नि (स्विष्टकृत्) कर्मको पूर्ण करनेवाला [भूत्वा] होकर (नः) हमारे कर्मको (स्विष्टम्) आधिक्य रहित (सुहुतम्) न्यूनतारहित (करोतु) करे (स्वाहा) आहुति देता हूं (इति) ऐसा कहे ॥ २४ ॥

(भावार्थ)-पुत्रका जन्म होजाने पर पिता विधिपूर्वक अग्निका स्थापन करे और उस बालकको गोदमें लेकर तथा कांसीके पात्रमें दही मिले घीको स्थापन करके अस्मिन् इत्यादि, मन्त्रको पढ़कर उसमेंसे थोड़े २ घरकी आहुति देय । मन्त्रका अर्थ यह है, कि-इस अपने घरमें मैं पुत्ररूपसे बढ़ता हुआ सहस्रों मनुष्योंका पोषण करनेवाला होऊँ इस मेरे पुत्रकी सन्तानमें पुत्र पौत्रादि का, पशुओंका और धनका विच्छेद न हो, इस कामनासे मैं यह आहुति देता हूँ । फिर 'मयि इत्यादि' मन्त्रको पढ़कर दूसरी आहुति देय, मन्त्रका अर्थ यह है, कि— मुझ पितामें जो प्राण हैं उन प्राणोंको मैं अपने मनके द्वारा हे पुत्र ! तुझमें समर्पण करता हूँ, इस कामनासे ही यह आहुति देता हूँ । इसप्रकार प्रधान कर्म करके

फिर 'यत्कर्मणा इत्यादि' मन्त्रको पढ़ता हुआ आहुति देय मन्त्रका अर्थ यह है, कि-मैंने जो कुछ कर्म किया है उसमें कुछ न्यूनाधिकता होगयी हो तो उसको जानने वाला अग्नि सुकृत करदेय, इस कामनासे मैं यह आहुति देता हूँ ॥ २४ ॥

अथास्य दक्षिणं कर्णमभिनिधाय वाग्वागिति त्रिरथ दधि मधु घृतꣳ संनीयानन्तर्हितेन जातरूपेण प्राशयति भूस्ते दधामि भुवस्ते दधामि स्वस्ते दधामि, भूर्भुवः स्वः सर्वं त्वयि दधामीति २५

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अनन्तर (अस्य) इसके (दक्षिणम्) दाहिने (कर्णम्) कानको (अभिनिधाय) मुखके समान करके (वाक् वाक् इति) वाक् वाक् इस प्रकार (त्रिः) तीन बार (जपत्) जपे (अथ) इसके अनन्तर (दधि) दही (मधु) शहद (घृतम्) घी (संनीय) मिलाकर (अनन्तर्हितेन) और धातुके मेलसे रहित (जातरूपेण) सुवर्णसे (प्राशयति) चटाता है (भूः) भूलोक (ते) तेरे लिये (दधामि) चटाता हूँ, (भुवः) हे भुवर्लोक (ते) तेरे लिये (दधामि) चटाता हूँ (स्वः) हे स्वर्गलोक (ते) तेरे लिये (दधामि) चटाता हूँ (भूर्भुवः स्वः) भूर्भुवः स्वः (सर्वम्) सबको (त्वयि) तुझमें (दधामि) स्थापन करता हूँ (इति) ऐसा कहे ॥ २५ ॥

(भावार्थ)-स्विष्टकृत् होम करनेके अनन्तर पिता उस बालकके कानको अपने मुखके पास लाकर इसमें तीनों वेदरूप वाणी प्रवेश करे, इस अभिप्रायसे तीन बार वाक् वाक् कहे । फिर दही, शहद और घीको मिला

कर शुद्ध सोनेकी शलाकासे बालकको 'भूस्ते दधामि' भुवस्ते दधामि, इन चार मन्त्रोंको पढ़ता हुआ चार बार चटावै। इन मन्त्रोंका अर्थ यह है, कि-हे भू भुवः स्वः इन तीनों लोकोंके अधिष्ठात्री देवताओ! तुम्हारा वैभव और अनुकूल प्राप्त होनेके लिये इस बालकको यह चटाता हूं ॥ २५ ॥

अथास्य नाम करोति वेदोऽसीति तदस्य तद् गुह्यमेव नाम भवति ॥ २६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ)-अनन्तर (वेदः) परमात्मलक्षण सबका निजरूप (असि) है (इति) ऐसा (अस्य) इस बालकका (नाम) नाम (करोति) करता है (तत्) वह (नाम) नाम (अस्य) इसका (गुह्यम्, एव) गुप्त ही (भवति) होता है ॥ २६ ॥

(भावार्थ)-तदनन्तर पिता 'वेदोऽसि' अर्थात् तू अनुभव करिये परमात्मलक्षण सबका अपना रूप है ऐसा कहकर उसका नामकरण करे, उस बालकका यह नाम गुप्त ही रहता है ॥ २६ ॥

अथैनं मात्रे प्रदाय स्तनं प्रयच्छति । यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः । येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वती तमिह धातवेऽकरिति ॥ २७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अनन्तर (एनम्) इसको (मात्रे) माताको (प्रदाय) देकर (स्तनम्) स्तन (प्रयच्छति) देता है (सरस्वति) हे सरस्वती ! (ते) तेरा (यः) जो (स्तनः) स्तन (शशयः) सुखकी हेतु है स्थिति जिसकी ऐसा (यः मयोभूः)

जो सबके पालनका हेतु अन्नरूप है (यः) जो (रत्नधाः) धनोंका देनेवाला है (यः) जो (वसुवित्) कर्मफलका ज्ञाता है (सुदत्रः) कल्याणकर्त्ता है (येन) जिसके द्वारा (विश्वा) सब (वार्याणि) देवादिकोंको (पुष्यसि) पुष्ट करता है (तम्) उसको (धातवे) मेरे पुत्रके पानके लिये (इह) इस मेरी स्त्रीमें (अकः) दे (इति) ऐसी प्रार्थना करे ॥ २७ ॥

(भावार्थ)-फिर उस बालकको अपनी गोदमेंसे पिता उसकी माताको देय और 'यस्ते इत्यादि' मन्त्रको पढ़ता हुआ माताका स्तन उसके मुखमें लगा देय। मंत्रका अर्थ यह है कि-हे सरस्वती ! जो तेरा स्तन सबको सुख देता है, जो सकल प्राणियोंके जीवनका हेतु अन्न रूप है, जो धन देनेवाला है जो कर्मफलको देता है, जो कल्याणकर्त्ता है और जिस स्तनके द्वारा तू देवता आदि सबका पोषण करती है, उस अपने स्तनको तू मेरे पुत्रके पानके लिये इस मेरी स्त्रीके स्तनमें प्रवेश करके देदे ॥ २७ ॥

अथास्य मातरमभिमन्त्रयते। इलासि मैत्रावरुणी वीरे वीरमजीजनत्। सा त्वं वीरवती भव याऽस्मान् वीरवतोऽकरदिति। तं वा एतमाहुरति पिता बताभूरतिपितामहो बताभूः परमां बत काष्ठां प्रापच्छ्रिया यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं विदो ब्राह्मणस्य पुत्रो जायत इति ॥ २८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अनन्तर (अस्य) इसकी (मातरम्) माताको (अभिमन्त्रयते) संबोधन करके

मन्त्रोंको पढ़ता है (इला, असि) पृथिवीकी समान है (मैत्रावरुणी) अरुन्धतीकी समान [असि] है (वीरे) शुभ पुरुषके होने पर (वीरम्) पुत्रको (अजीजनत्) उत्पन्न करती हुई (सा) वह (त्वम्) तू (वीरवती) जीवते हुए बहुतसे पुत्रोंवाली (भव) हो (या) जो (अस्मान्) हमको (वीरवतः) पुत्रवान् (अकरत्)करती हुई (इति) ऐसा कहे (तम्) उस (एतम्) इसको (वै) निश्चय (आहुः) कहते हैं (बत) आश्चर्य हैकि- (अतिपिता) पितासे बढ़कर (अभूः) होगया (बत) आश्चय है (अतिपितामहः) पितामहसे बढ़कर (अभूः) होगया(बत) आश्चर्य है (श्रिया) लक्ष्मीसे (यशसा) यशसे (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्मतेजसे (परमाम्) श्रेष्ठ (काष्ठाम्) दशाको (प्रापत्) प्राप्त होगया (यः) जो (एवंविदः) ऐसा जाननेवाले (ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण का (पुत्रः) पुत्र (जायते) होता है (इति) ऐसा होता है ॥ २८ ॥

(भावार्थ)-इसके अनन्तर उस बालककी माताको सम्बोधन करके 'इलाऽसि, इत्यादि' मन्त्र पढ़े, मन्त्रका अर्थ यह है, कि-हे बालककी माता ! तू पृथिवीकी समान अपने पुत्रको सकल भोग देनेवाली है, तू अरुन्धतीकी समान पतिव्रता है । तूने शुभ अपने पतिके निमित्त करके योग्य सन्तानको जना है, तू जीवित रहनेवाले बहुतसे पुत्रोंकी माता हो, तैने हमें वीर पुत्र-वाला बनाया है । एसे विधिपूर्वक गर्भाधानसे उत्पन्न होनेवाले पुत्रके विषयमें लोग कहते हैं, कि-ओहो ! यह तो अपने पिता और पितामहसे भी बढ़गया । इसने ऐसी लक्ष्मी यश और ब्रह्मतेजको पाया है, कि—

इसकी परमोत्तम दशा है । जिस वेदवेत्ता ब्राह्मणके ऐसा पुत्र होता है उसका भी जगत्‌में बड़ी प्रशंसा होती है ॥ २८ ॥

इति षष्ठाध्यायस्य चतुर्थं ब्राह्मणं समाप्तम् ।

अथ वꣳशः । पौतिमाषीपुत्रः कात्यायनीपुत्रात्कात्यायनीपुत्रो गौतमीपुत्राद्गौतमीपुत्रो भारद्वाजीपुत्राद्भारद्वाजीपुत्रः पाराशरीपुत्रात्पाराशरीपुत्र औपस्वस्तीपुत्रात् औपस्वस्तीपुत्रः पाराशरीपुत्रात् पाराशरीपुत्र कात्यायनीपुत्रात्कात्यायनीपुत्रः कौशिकीपुत्रात्कौशिकीपुत्र आलम्बीपुत्राच्च वैयाघ्रपदीपुत्राश्च वैयाघ्रपदीपुत्रः काण्वीपुत्राच्च कापीपुत्राच्च कापीपुत्रः आत्रेयीपुत्रादात्रेयीपुत्रो गौतमीपुत्राद्गौतमीपुत्रो भारद्वाजीपुत्राद्भारद्वाजीपुत्रः पाराशरीपुत्रात्पाराशरीपुत्रो वात्सीपुत्राद्वात्सीपुत्रः पाराशरीपुत्रात्पाराशरीपुत्रो वार्कारुणीपुत्राद्वार्कारुणीपुत्रो वार्कारुणीपुत्राद्वार्कारुणीपुत्र आर्त्तभागीपुत्रादार्त्तभागीपुत्रः शौङ्गीपुत्राच्छौङ्गीपुत्रः सांकृतीपुत्रात्सांकृतीपुत्र आलम्बायनीपुत्रादालम्बायनीपुत्र आलम्बीपुत्रादालम्बीपुत्रो जायन्तीपुत्राज्जायन्तीपुत्रो

माण्डूकायनीपुत्रान्मांडूकायनीपुत्रो माण्डूकी-
पुत्रान्मान्डूकापुत्रः शाण्डिलीपुत्राच्छाण्डिली-
पुत्रो राथीतरीपुत्राद्राथीतरीपुत्रो भालुकीपुत्राद्भा
लुकीपुत्रः क्रौञ्चुकीपुत्राभ्यां कौञ्चिकीपुत्रौ
वैदभृतीपुत्राद्वैदभृतीपुत्रः कार्शकेयीपुत्रात्कार्श-
केयीपुत्रः प्राचीनयोगीपुत्रात् प्राचीन योगी-
पुत्रः साञ्जीवी पुत्रात्सांजीवीपुत्रः प्राश्नीपुत्रा-
दासुरिवासिनः प्राश्नीपुत्र आसुरायणादासुरा-
यण आसुरेरासुरिः ॥२॥ याज्ञवल्क्याद्याज्ञवल्क्य
उद्दालकादुद्दालकोऽरुणादरुण उपवेशेरुपवेशिः
कुश्रेः कुश्रिर्वाजश्रवसो वाजश्रवा जिह्वावतो
वाध्योगाज्जिह्वावान्वाध्योगो ऽसिताद्वार्षगणा-
दसितो वार्षगणो हरितात्कश्यपाद्धरितःकश्यपः
शिल्पात्कश्यपाच्छिल्पः कश्यपः कश्यपान्नै
ध्रुवेः कश्यपो नैध्रुविर्वाचो वागम्भिण्या
अम्भिण्यादित्यादादित्यानीमानि शुक्लानि यजू
ꣳषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते ॥३॥
समानमासाञ्जीवीपुत्रात्साञ्जीवीपुत्रो माण्डू-
कायनेर्माण्डूकायनिर्माण्डव्यान्माण्डव्यः कौ-
त्सात्कौत्सो माहित्थेर्माहित्थिर्वामकक्षायणा-
द्वामकक्षायणःशाण्डिल्याच्छांडिल्यो वात्स्या-

द्वात्स्यः कुश्रेः कुश्रिर्यज्ञवचसो राजस्तम्बायनाद्यज्ञवचा राजस्तम्बायनस्तुरात्कावषेयात्तुरः कावषेयः प्रजापतेः प्रजापतिर्ब्रह्मणो स्वयम्भु ब्रह्मणे नमः ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अब (वंशः) वंश [कथ्यते] कहाजाता है । (पौतिमाषीपुत्रः) पौतिमाषीपुत्र (कात्यायनीपुत्रात्) कात्यायनीपुत्रसे (कात्यायनीपुत्रः) कात्यायनीपुत्र (गौतमीपुत्रात्) गौतमीपुत्रसे गौतमीपुत्रः) गौतमीपुत्र (भारद्वाजीपुत्रात) भारद्वाजीपुत्रसे (भारद्वाजीपुत्रः) भारद्वाजीपुत्र (पाराशरीपुत्रात्) पाराशरीपुत्रसे (पाराशरीपुत्रः) पाराशरीपुत्र (औपस्वस्तीपुत्रात) औपस्वस्तीपुत्रसे (औपस्वस्तीपुत्रः) औपस्वस्तीपुत्र (पाराशरीपुत्रात्) पाराशरीपुत्रसे पाराशरीपुत्रः) पाराशरीपुत्र (कात्यायनीपुत्रात्) कात्यायनीपुत्रसे (कात्यायनीपुत्रः) कात्यायनीपत्र (कौशिकीपुत्रात्) कौशिकीपुत्रसे (कौशिकीपुत्रः) कौशिकीपुत्र (आलम्बीपुत्रात्) आलम्बीपुत्रसे (च) और (वैयाघ्रपदीपुत्रात्) वैयाघ्रपदीपुत्रसे (वैयाघ्रपदीपुत्रः) वैयाघ्रपदीपुत्र (काण्वीपुत्रात्) काण्वीपुत्रसे (च) और (कापीपुत्रात) कापीपुत्रसे (कापीपुत्रः) कापीपुत्र (आत्रेयीपुत्रात्) आत्रेयीपुत्रसे (आत्रेयीपुत्रः)आत्रेयीपुत्र (गौतमीपुत्रात्) गौतमीपुत्रसे (गौतमीपुत्रः) गौतमीपुत्र (भारद्वाजीपुत्रात्) भारद्वाजीपुत्रसे (भारद्वाजीपुत्रः) भारद्वाजीपुत्र (पाराशरीपुत्रात्) पाराशरीपुत्र से (पाराशरीपुत्रः) पाराशरीपुत्र (वात्सीपुत्रात्) वात्सीपुत्रसे (वात्सीपुत्रः) वात्सी पुत्र (पाराशरीपुत्रात्)

पाराशरीपुत्रसे (पाराशरीपुत्रः) पाराशरीपुत्र (वार्कारुणीपुत्रात्) वार्कारुणीपुत्रसे (वार्कारुणीपुत्रः) वार्कारुणीपुत्र (वार्कारुणीपुत्रात्) वार्कारुणी पुत्रसे (वार्कारुणीपुत्रः) वार्कारुणीपुत्र (आर्त्तभागीपुत्रात्) आर्त्तभागीपुत्रसे (आर्त्तभागीपुत्रः) आर्त्तभागीपुत्र (शौंगीपुत्रात्) शौंगीपुत्रसे (शौंगीपुत्रः) शौंगीपुत्र (सांकृतीपुत्रात्) सांकृतीपुत्रसे (सांकृतीपुत्रः) सांकृतीपुत्र (आलम्बायनीपुत्रात्) आलम्बायनीपुत्रसे (आलंबायनीपुत्रः) आलम्बायनीपुत्र (आलंबीपुत्रात्) आलम्बीपुत्रसे (आलम्बीपुत्रः) आलम्बीपुत्र (जायन्तीपुत्रात्) जायन्तीपुत्रसे (जायन्तीपुत्रः) जायन्तीपुत्र (माण्डूकायनीपुत्रात्) माण्डूकायनीपुत्रसे (माण्डूकायनीपुत्रः) माण्डूकायनी पुत्र (माण्डूकीपुत्रात्) माण्डूकीपुत्रसे (माण्डूकीपुत्रः) माण्डूकीपुत्र (शाण्डिलीपुत्रात्) शाण्डिली पुत्रसे (शाण्डिलीपुत्रः) शाण्डिलीपुत्र (राथीतरीपुत्रात्) राथीतरीपुत्रसे (राथीतरीपुत्रः) राथीतरीपुत्र (मालुकीपुत्रात्) मालुकीपुत्रसे (मालुकीपुत्रः) मालुकीपुत्र (कौश्चिकीपुत्राभ्याम्) दो कौश्चिकीपुत्रोंसे (कौश्चिकीपुत्रौ) दोनों कौश्चिकीपुत्र(वैदभृतीपुत्रात्) वैदभृतीपुत्रसे (वैदभृतीपुत्रः) वैदभृतीपुत्र(कार्शकेयीपुत्रात्)कार्शकेयीपुत्रसे(कार्शकेयीपुत्रः) कार्शकेयीपुत्र (प्राचीनयोगीपुत्रात्) प्राचीनयोगीपुत्रसे (प्राचीनयोगीपुत्रः) प्राचीनयोगीपुत्र (साञ्जीवीपुत्रात्) साञ्जीवीपुत्रसे (साञ्जीवीपुत्रः) साञ्जीवीपुत्र (आसुरिवासिनः, प्राश्नीपुत्रात्) आसुरिवासी प्राश्नीपुत्रसे (प्राश्नीपुत्रः) प्राश्नीपुत्र (आसुरायणात्) आसुरायणसे (आसुरायणः) आसुरायण (आसुरेः) आसुरिसे (आसुरिः) आसुरि (याज्ञवल्क्यात्) याज्ञवल्क्यसे

('याज्ञवल्क्यः) याज्ञवल्क्य (उद्दालकात्) उद्दालकसे (उद्दालकः) उद्दालक (अरुणात्) अरुणसे (अरुणः) अरुण (उपवेशेः) उपवेशिसे (उपवेशिः) उपवेशि (कुश्रेः) कुश्रिसे (कुश्रिः) कुश्रि (वाजश्रवसः) वाजश्रवासे (वाजश्रवाः) वाजश्रवा (जिह्वावत्) जिह्वावान् (वाध्योगात्) वाध्योगसे (जिह्वावान् वाध्योगः) जिह्वावान् वाध्योग (असितात्) कालें (वार्षगणात्) वार्षगणसे (असितः, वार्षगणः) कालावार्षगण (हरितात्) हरे) कश्यपात्) कश्यपसे (हरितः, कश्यपः) हराकश्यप (शिल्पात्,कश्यपात्) शिल्प कश्यपसे(शिल्पः-कश्यपः) शिल्प कश्यप (नैध्रुवेः, कश्यपात्) नैध्रुवि कश्यपसे (नैध्रुविः, कश्यपः) नैध्रुवि कश्यप (वाचः) वाणीसे (वाक्) वाणी (अम्भिणयाः) अम्भिणीसे (अम्भिणी) अम्भिणी (आदित्यात्) आदित्यसे (आदित्यानि) आदित्यके कहे हुए इमानि) ये (शुक्लानि) शुक्ल (यजूंषि) यजु (वाजसनेयेन) वाजसनिके पुत्र (याज्ञवल्क्येन) याज्ञवल्क्य करके (आख्यायन्ते) कहे जाते हैं (आसांजीवीपुत्रात्) सांजीवी पुत्र पर्यन्त (समानम्) समान है (साञ्जीवीपुत्रः) साञ्जीवीपुत्र (माण्डूकायनेः) माण्डूकायनिसे (माण्डूकायनिः) माण्डूकायनि (माण्डव्यात्) माण्डव्यसे (माण्डव्यः) माण्डव्य (कौत्सात्) कौत्ससे (कौत्सः) कौत्स (माहित्थेः) माहित्थिसे (माहित्थिः माहित्थि (वामकक्षायणात्) वामकक्षायणसे (वामकक्षायण) वामकक्षायण (शाण्डिल्यात्) शाण्डिल्यसे (शाण्डिल्यः) शाण्डिल्य (वात्स्यात्) वात्स्यसे (वात्स्यः) वात्स्य (कुश्रेः) कुश्रिसे (कुश्रिः) कुश्रि (यज्ञवचसः, राज-

स्तम्बायनात्) यज्ञवचा राजस्तम्बायनसे (यज्ञवचाः, राजस्तम्बायनः) यज्ञवचाराजस्तम्बायन(तुरात्, कावषेयात्) तुर कावषेयसे (तुरः, कावषेयः) तुर कावषेय (प्रजापतेः) प्रजापतिसे (प्रजापतिः) प्रजापति (ब्रह्मणः) ब्रह्मासे (ब्रह्म) ब्रह्म (स्वयम्भु) नित्य है (ब्रह्मणे) ब्रह्मके अर्थ (नमः) प्रणाम है ॥ १-४ ॥

(भावार्थ)-अब इस शाखाकी आचार्य परम्परारूप वंशको कहते हैं—पौतिमाषीपुत्र कात्यायिनीपुत्रसे, कात्यायनीपुत्र गौतमीपुत्रसे गौतमीपुत्र भारद्वाजीपुत्रसे भारद्वाजीपुत्र पाराशरीपुत्रसे पाराशरीपुत्र औपस्वस्तीपुत्रसे, औपस्वस्तीपुत्र दूसरे पाराशरीपुत्रसे, वह पाराशरीपुत्र कात्यायनीपुत्रसे कात्यायनीपुत्र कौशिकीपुत्रसे, कौशिकीपुत्र आलम्बीपुत्रसे और वैयाघ्रपदीपुत्रसे, आलम्बीपुत्र हिरण्यगर्भसे और वैयाघ्रपदीपुत्र काण्वीपुत्रसे और कापीपुत्रसे, काण्वीपुत्र हिरण्य-गर्भसे और कापीपुत्र आत्रेयीपुत्रसे, आत्रेयीपुत्र गौतमीपुत्रसे, गौतमीपुत्र भारद्वाजीपुत्रसे, भारद्वाजीपुत्र पाराशरीपुत्रसे पाराशरीपुत्र वात्सीपुत्रसे, वात्सीपुत्र दूसरे पाराशरीपुत्रसे, पाराशरीपुत्र वार्कारुणीपुत्र से वार्कारुणीपुत्र आर्त्तभागीपुत्रसे, आर्त्तभागीपुत्र शौंगीपुत्रसे शौंगीपुत्र सांकृतीपुत्रसे, सांकृतीपुत्र आलम्बायनीपुत्रसे आलम्बायनीपुत्र आलम्बीपुत्रसे, आलम्बीपुत्र जायन्तीपुत्रसे जायन्तीपुत्र माण्डूकायनीपुत्रसे, माण्डूकायनीपुत्र माण्डूकीपुत्रसे माण्डूकीपुत्र शाण्डिलीपुत्रसे, शांडिलीपुत्र राथीतरीपुत्रसे राथीतरीपुत्र भालुकीपुत्र से, भालुकीपुत्र दोनों क्रौञ्चिकीपुत्रोंसे दोनों क्रौञ्चिकीपुत्र वैदभृतीपुत्रसे, वैदभृती

पुत्र कार्शकेयीपुत्रसे, कार्शकेयीपुत्र प्राचीनयोगी पुत्र से, प्राचीनयोगीपुत्र साञ्जीवीपुत्रसे, साञ्जीवी पुत्र आसुरिवासि प्राश्नीपुत्रसे, प्राश्नीपुत्र आसुरायणसे, आसुरायण आसुरिसे, आसुरि याज्ञवल्क्यसे, याज्ञवल्क्य उद्दालकसे, उद्दालक अरुणसे, अरुण उपवेशिसे, उपवेशि कुश्रिसे, कुश्रि वाजश्रवासे, वाजश्रवा जिह्वावान् वाध्योगसे, जिह्वावान् वाध्योग असित वार्षगणसे, असितवार्षगण हरित कश्यपसे, हरित कश्यप शिल्पकश्यपसे, शिल्पकश्यप नैध्रुविकश्यपसे, नैध्रुविकश्यप वाक्से, वाक् अम्भिणीसे, अम्भिणी आदित्यसे (इसप्रकार इन्होंने वेदविद्या पायी, आदित्यके कहे हुए ये निर्दोष शुक्ल यजुर्वेदके मन्त्र वाजसनिके पुत्र याज्ञवल्क्यने प्रकट किये हैं)। इस आचार्य परम्पराको कहकर सकल वाजसनेयी शाखाओंमें वेदरूप ब्रह्मसे लेकर पाठके व्युत्क्रमसे साञ्जीवीपुत्र पर्यन्त समान है। साञ्जीवीपुत्र माण्डूकायनिसे, माण्डूकायनि माण्डव्यसे, माण्डव्य कौत्ससे, कौत्स माहित्थिसे, माहित्थि वामकक्षायणसे, वामकक्षायण शाण्डिल्यसे, शाण्डिल्य वात्स्यसे, वात्स्य कुश्रिसे, कुश्रि यज्ञवचा राजस्तम्बायनसे, यज्ञवचा राजस्तम्बायन तुरकावषेयसे, तुरकावषेय प्रजापतिसे और प्रजापति ब्रह्मासे, इसप्रकार इन्होंने वेदविद्या पायी, ब्रह्माको वेदविद्या अन्तर्यामीके द्वारा मिली, इसकारण आगे आचार्यपरम्परा नहीं है। ब्रह्म वेदरूपसे स्थित है, इसकारण वेद नामवाला ब्रह्म नित्य है, उस वेदरूप ब्रह्मको प्रणाम है १-४

इति षष्ठाध्यायस्य पञ्चमं ब्राह्मणं समाप्तम्

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥ १ ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

—०—

मुरादाबादनिवासि-भारद्वाजगोत्र-गौडवंश्यश्रीपण्डित-भोला-
नाथात्मज-ज्वालाकुमारोपनामक-पण्डितरामस्वरूप-
शर्मकृत-सान्वयपदार्थ-भावार्थसहिता बृहदा-
रण्यकोपनिषत्समाप्ता । शुभमस्तु ॥

छान्दोग्य उपनिषद्-मूल अन्वय पदार्थ और भाषा टीका सहित पृष्ठ संख्या ४८० उत्तम जिल्द १॥=) डाकमहसूल ।=)

सामवेद संहिता-सायण भाष्य और भाषाटीका सहित वेद हि धर्मका मूल है, वेदका स्वाध्याय करके अपने जीवनको सफल करना द्विजमात्रका कर्तव्य है, इसलिये ही हम वैदिक ग्रन्थों को प्राचीन संस्कृतभाष्य और भाषाटीकाके साथ छापकर सुलभ मूल्यमें प्रकाशित कर रहे हैं, कागजकी इतनी महँगी होने पर भी हमने इस ग्रन्थका मूल्य ५) मात्र रक्खा है । डाक महसूल ॥) अलग लगेगा ।

सुलभ महाभारत-हमने धार्मिक पाठकोंके सुभीतेके लिये मूल और भाषाटीका सहित महाभारत छापना आरम्भ किया है । भाषाटीका बहुत ही सावधानी शुद्धता और सरलताके साथ मूलके पदसे मिलाकर किया है, आजकलके भाषानुवाद इसके मुकाबिले में अधूरे हैं, पर्व अलग २ भी खरीदे जासकते हैं, परन्तु आदिपर्व और विराटपर्व नहीं रहा है, द्वितीयवार छपनेका प्रबन्ध होरहा है। रुपया पेशगी आनेसे छपेहुए पर्वोंका वी०पी० भेजाजायगा क्योंकि बहुतसे लोग मँगाकर वापस कर देते हैं उसमें डाकव्ययकी हानि होती है सब पर्वोंकी कपड़ेकी जिल्दें बँधी हैं । आदिपर्व २) सभापर्व १।) वन-पर्व ४) विराटपर्व १) उद्योगपर्व ३) भीष्मपर्व २।) डाकव्यय पृथक् लगेगा अगले पर्व छप रहे हैं ।

विदेह जनक उपन्यास-राजा जनक किस प्रकार संसार के पार हुआ, कर्मबन्धनसे संसारमें कैसी २ विचित्र घटनाएं होती हैं महात्माओंके सत्सङ्गसे सद्गति कैसे होती है, ऐसी ही उपदेशप्रद बातों से भरी राजा जनककी जीवनी बड़ी ही रोचक भाषामें लिखी गई है । कीमत ८ आना डाकव्यय ।)

हरिकीर्त्तन भजन संग्रह-यदि आप अपने बालक और स्त्रियोंको सत्यानाशी इश्किया गजलोंसे बचाकर नये २ तर्जकी ज्ञान भक्ति वैराग्य और हरिगुणगानकी गजलें पढ़ाना चाहें तो हरिकीर्त्तन भजन संग्रहके चारों भाग ॥) में खरीदिये हरएक भागका ≈)

भजन-नाटक बहार २ आना । चेतावनी गजल नौबहार १॥ आना नाटकीय रामायण (अयोध्याकाण्ड) ३ आना गजलगंगालहरी १॥ आना । ज्ञानभक्तिरत्नमाला २०० भजन ४ आना । भजन रत्न-माला कीमत २ आना । भजनवीसी दयानन्दखण्डन दो पैसा । सुदा-माचरित्र भजन गजल लावनी २ आना । बलिलीला (भजन गजल लावनी) १ आना